गोपीगीत-सुबोधिनी

(सविवरण)

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर
६३, स्वस्तिक सोसायटी
४था रस्ता, जुहुस्कीम
विले-पार्ले, मुंबई ४०००५६

प्रकाशनार्थ आर्थिकसहयोग :
१.सुश्री अदिति जनक शाह तथा सुश्री अनुजा जनक शाह
३५. लाड सोसायटी, अमदावाद-५४
२.श्रीगोपालदास छोटालाल शाह,
शंकर शेठ रॉड्, पूणे.
३.श्रीमतीवसुधाबेन घनश्याम शाह,
कालबादेवी रॉड्, मुम्बई.
४.श्रीमतीहेमलता हरिकृष्ण शाह
शंकर पेठ रॉड्, पूणे.
५.श्रीगोपालभाई टी शाह
सी.पी.टेन्क्, मुम्बई.
६.श्रीमतीनरेन्द्रकुमारी सिंघ.
६०१, कॅनवुड्, बान्द्रा, मुम्बई.

विवरणकार : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : पवित्रा एकादशी वि.सं.२०७७, सन् २०२०.

प्रति : १०००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक : पूर्वी प्रेस, राजकोट.

।। प्रकाशकीय ।।

नमाम्याचार्यवर्यान् मे तत्सुतौ स्वप्रभूनहम्।।
रासस्थश्रुतिरूपाः वै ऋषिरूपाश्च गोपिकाः।।१।।
प्रमाणसाधनातीतं रमणं स्वेच्छया तयोः।।
व्रजराजकुमारं हि राधयाराधितं भजे।।२।।
सुबोधिन्युत्सुकं यो मां चकारान्यरतं हृदा।।
स्मरामि सादरं वाडीलालं स्वग्रन्थदायकम्।।३।।
स काल: कीदृशो ह्यासीद् यो नीतो गीतचिन्तने।।
जनार्दनक्षेत्रवासे जीवन्मुक्त्यनुभावकः।।४।।

गो.श्रीदीक्षितजी महाराज (मेरे दादाजी) के नित्यलीलास्थ होनेके बाद कुछ वर्षों तक उनका जन्मदिन दादाजीके प्रिय शिष्य श्रीहंसराज गो. वेदके यहां कोल्हापुरमें मनाने जाते रहते थे. वहीं उस प्रसंगमें प्रिय हंसुभाईके अनुरोधपर गोपीगीत-सुबोधिनीका चिन्तन शुरु किया था. अब प्रयोजन तो याद नहीं आ रहा है परन्तु तभी कोल्हापुरसे हुबली धारवाड बेंगलुरु कोयंबत्तूर त्रिशूर अलेप्पी वरकला और कन्याकुमारी की दक्षिणयात्राका कार्यक्रम बना. इस सन. १९७९ मे-जूनमें की गई यात्राके दरम्यान गोपीगीत-सुबोधिनीका चिन्तन-प्रवचन चलता रहा. अन्तिम अंश जनार्दन (वरकला) क्षेत्रमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणकी बैठकमें सम्पन्न हुआ. इसकी मधुरस्मृति भी आजतक दिव्य आह्लादक लगती है तो अनुभूतिका क्या कहना? ‘‘ते हि नो दिवसाः गताः!’’

प्रिय हंसुभाईने ही तब इस प्रवचनकी ओडिओ केसेट उतारी थी. इसे सर्वप्रथम श्रीधनेश गांधीने लिपिबद्ध करना चाहा. बादमें दिल्लीनिवासी प्रिय श्रीअशोक शर्माजीने सम्पूर्णतया लिपिबद्ध की. उसका यथोचित संशोधन सम्पादन श्रीअतुल्य शर्माजीने अतीव मनोयोगपूर्वक कम्प्युटर्में फीड् किया जिसे बादमें श्री-श्रीमती धर्मेन्द्र झालाने मुद्रणप्रकाशनोचित

सन्दर्भोल्लेख अनुच्छेदक शीर्षक आदिसे भलीभांति मंडित किया. आवरकचित्र निर्मितिके हेतु श्रीमति ख्याति भुल्ला तथा मुद्रणोपयोगी उत्तरदायित्व श्रीपरेश शाह श्रीप्रवीण डढाणीया श्रीपीयूष गोंधिया और उनके सहयोगिओंने वहन किया. इन सभीके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हुवे...

सुश्री अदिति जनक शाह तथा सुश्री अनुजा जनक शाह के दादा-दादी एवं नाना-नानी के स्मरणार्थ श्री-श्रीमती जनक शाह, श्रीगोपालदास छोटालाल शाह, श्रीमतीवसुधाबेन घनश्याम शाह, श्रीमतीहेमलता हरिकृष्ण शाह, श्रीगोपालभाई टी शाह, श्रीमतीनरेन्द्रकुमारी सिंघ के आर्थिक सहयोगके प्रति कृतज्ञताज्ञापन करते हुवे...

गोस्वामी श्याममनोहर
मुंबई वि.सं.२०७७.

महाप्रभुजीकी बैठक - वरकला

॥ गोपीगीतविवरणम् : विषयानुक्रमणिका ॥

विषय	पृष्ठ
गोपीगीतम्	१-२
विवरणमंगलाचरणम्	३
विवरणोपक्रम	३
निरोधको स्वरूप	३-६
निरोधस्कन्धमें तामसप्रकरणको स्थान	६
तामसप्रकरणके अवान्तर प्रमाण प्रमेय साधन फल प्रकरण	७-९
तामसफलप्रकरणके अध्यायार्थ : भगवद्गुण	९
प्रथमाध्याय : ऐश्वर्य	९-१२
द्वितीयाध्याय : वीर्य	१२-१५
तृतीयाध्याय : यश	१५
चतुर्थाध्याय : श्री	१५
पंचमाध्याय : धर्मी	१६
षष्ठाध्याय : वैराग्य	१६-१८
सप्तमाध्याय : ज्ञान	१८
पूर्वाध्यायसंगति	१८
॥ गोपीगीतको अध्ययन ॥	१९...
सुबोधिनी कारिका	१९
गोपीगीतकी विभिन्न व्याख्यायें	१९-२१
करमचन्दकम्पाउन्डर : नीमहकीम खतरे जान	२१
त्रिवेणीसंगम !!	२२
गोपिजनन्के अपराधको स्वरूप	२३-२८
गोपीजनन्के प्रकार	२९-३१
स्तुतिन्के प्रकार	३१

श्लोक : १	**३५-७८**
जयति	३७
'जयति'सु मंगलस्थापन	३९
त्वदवतारेण व्रजः सर्वोऽपि कृतार्थः	४०
प्रक्षिप्तमें भी प्रक्षिप्त !!	४१
व्रजको सर्वोत्कर्ष	४२
मायावादीन्की माया !	४३
व्रजको माहात्म्य : वैकुण्ठादपि उत्कर्षः	४४
बारीके चक्करमें दीवार ही तोड़ देनी !	४५
प्रपञ्चके बिना निरोध नहीं	४५
श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि	**४७-५०**
दयित दृश्यताम्	**५०**
त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते	**५०**
नाटक चलवेवालो नहिं हे	५१
हृदय और आँख को झगड़ा	५३
दयित = प्रिय दयावान्	५५
अधिकारानुसार यशवर्णनसू ही प्रभुकी प्रसन्नता	५८
महाप्रभुजीकु कौनकी कानि देनी	५९
ठाकुरजीकु गीताको उपदेश !!	६०
स्तुतिको कारण	६१
गोपीगीत : फलात्मक यशको वर्णन	६२
रसाभिनय-रसानुभवकी प्रक्रिया	६३-६६
संयोग-विप्रयोग	६६-६७
रामावतार और कृष्णावतार	६७
संगीतमें टूं-टूं...	६८
अवज्ञा : दृप्ता केशवम् अब्रवीत	७०
स्तुतिको हेतु	७२
रसस्वभावसू अपराध और स्तुति	७२

गालीकी मिठास	७३
व्रजपतिको विलक्षण मूड	७५
स्वभावोद्गिरण	७६
तच्छ्रवणेन प्रभोः परमसन्तोषः	७७
श्लोक : २	**७९-१२९**
तामसभावसू प्रार्थना : **किं वधो न!**	७९
चोरीको स्वभाव बढ़-बढ़के...घात तक	८२-८४
अदर्शनस्य वधसाधकत्वम्	८४-८६
हे वरद!	८६
भगवद्दृष्टि सर्वघातुका	८७
गोपीनूकी तन्मयता/अर्जुनदृष्टि	८९
अधिकारानुसार सम्बोधन	९०
लौकिक और अलौकिक काम	९१-९४
कुछ तो कर	९५
दर्शन दान नहीं करवेसु तेरो नाथत्व जायेगो!	९५
हे सुरतनाथ	९९
विधान और अनुवाद	१००
अस्ति कश्चिद् वागर्थः ?	१०१
दृष्टिसृष्टिवाद और सृष्टिदृष्टिवाद	१०३
कन्वेयरबेल्ट् पर भगवान्!	१०५
यदि भक्त भी शून्यहृदय हो जायेंगें!	१०६
इन्द्रियसामर्थ्यको दुरुपयोग-निरुपयोग-सदुपयोग	१०६-१०८
शुद्धाद्वैत भी नास्तिकता ?	१०८
काले आकाश बीच चमचमातो कंचनजंघा	११०-११२
आधुनिक तर्कसंगत वैज्ञानिक रासवर्णन!	११२
कारिका	१२२
भगवद्भावावेशकी प्रक्रिया	१२२-१२९

श्लोक : ३ १३०-१३७
कालीयविष = विषयासक्तिसु रक्षा १३१
तृणावर्त = राजसभावसु रक्षा १३२
"अहं ब्रह्मास्मि" तो हे पर "तत्त्वमसि"? १३३
साधनदोषसु रक्षा १३५
ये प्रेमको पंथ कराल महा! १३५

श्लोक : ४ १३८-१८९
पुष्टिभक्तिमें माहात्म्यज्ञानको रोल्/महत्त्व १३८-१४२
ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं १४२
अनन्तश्री १४४
अनेकतन्त्रकान्तारे १४६
एकसे बढ़कर एक! १४७
तुमतो ब्रह्म हो! १४८
वैष्णवीं व्यतनोत् मायाम् १५०
ज्ञानीको उपालंभ/ब्लेकमेइल् १५१
निगूढ़प्रश्न १५२
न खलु गोपिकानन्दनो भवान् **१५४**
अखिलदेहीनाम् अन्तरात्मदृक् १५५
विखनसार्थितः १५७
सात्त्वतां कुले उदेयिवान् **१५९**
कृष्णको प्राकट्य १६१
व्याख्याकी तीन प्रणाली १६५
देवकीजन्मवादो १६७
शृंगाररसभाववत्त्वात् कटाक्षोक्ति १६८
भवान् १६९
स्नेहः पापशंकी १६९
मनोरथकी गति १७१

परस्पर शोभातिशय	१७२
सेवामें मनको लगनो/प्रभुमें अखण्डवृत्ति	१७३
प्रभुसन्मुखता	१७५
आशाको भी आस्वादन!	१७६
भगवद्भावन्कु तोल नहीं सके	१७८
हठेन दासीकृता	१८१
इत्थंभूतगुणो हरिः	१८१
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा	१८२
सख उदेयिवान्	१८४
आत्मारामोऽपि अरीरमत्	१८४
आगमनं स्वसमर्पणार्थमेव	१८६
श्लोक : ५	**१९०-२२६**
अप्रार्थितं न दास्यतीति...प्रार्थयन्ति	१९०
शिरसि करसरोरुहं धेहि	१९६
कान्त! कामदं विचरचिताभयम्	१९८
शरणागतपालनं तु ईश्वरधर्मः	२००
प्रकाश	२०२
ज्ञानमार्गीय और भक्तिमार्गीय भाषा	२०४
रसावेगमें रसोच्छलन	२०५
शुद्धाद्वैतदर्शनके विकासके दो बीजरूपभाव : निर्भयता और रमण	२१२
निर्भयताको कारण	२१३
निर्भयता कभी अरमणको कारण भी	२१४
“कितनो सुन्दर!” v/s ‘यहां क्या धर्‍यो हे!”	२१४
ज्ञानदृष्टि और भक्तिदृष्टि	२१९
सर्वात्मभाव	२२०
विमुक्तमानिनः	२२२
पण्डितमन्यता	२२३

सितारवादनके सर्टीफिकेट्स् देखो! २२३
विमुक्तमानिता और विमुक्तता २२४
माधव! तावकाः...त्वयिबद्धसौहृदाः २२५

श्लोक : ६ **२२७-२६५**
पूर्वश्लोकसंगति २२७
धाष्ट्र्येन २२८
भवत्किंकरी २३३
अवतारप्रयोजन २३३

श्लोक : ७ **२६६-२७८**

श्लोक : ८ **२७९-३०४**
मरणपूर्वावस्था मोह/इमा मुह्यतीः २८३
नित्यता मा अस्तु! २८४
ईश्वरवाद और शून्यवाद २८६
हे वीर! २८८
प्रभुकी वाणीके तीनस्वरूप २९१
स्वरूप/लीलानुसारी शास्त्रवर्णन २९२
विधान अभिधान और अपोहन २९४
मधुरया गिरा = श्रुतिन्को मोह २९८
बुधमनोज्ञया गिरा ३०२
पुष्करेक्षण! ३०२

श्लोक : ९ **३०५-३४३**
कियान् पूर्वं जीवः! ३२२
तापनिवर्तकता ३२३
अज्ञानमूलक और ज्ञानमूलक वैराग्य ३२४

संस्कारयोग्यता और त्यागयोग्यता	३२६
संस्काराशक्तैः परित्यागएव बोध्यते	३३०
कविभिः ईडितं कल्मषापहम्	३३२
श्रवणमंगलम्	३३३
भगवत्कथाकी श्री	३३४
तो कथा ही क्यों न करों!	३३९
श्लोक : १०	**३४४-३७०**
रसानुभूति = आनन्दको साकाररूप	३४५
षड् व्यामोहका गुणाः	३५३
वियोगो बाधते तावद्...	३५५
प्रहसितं प्रिय	३५७
भगवदवगुण या भगवद्गुण?	३५९
हे प्रिय!	३६०
क्षोभजनकता	३६१
वेणुवादनसु उपदेश	३६५
ध्यानमंगलम्	३६९
वाणीसम्बन्धि क्षोभक	३६९
श्लोक : ११	**३७१-३९७**
किम् आसनम् ते गरुडासनाय...!	३७२
गोमयम् पायसम्	३७४
एकलव्यता	३७६
कलिलता मनः कान्त! गच्छति	३७९
ले महाराज!	३८८
कभी चरणकु पूछके देख!	३९०
प्रभु नांगे पायन अनुदिन गैया चारी	३९२
मनःकान्त कलिलतां गच्छति	३९६

श्लोक : १२	**३९८-४३३**
मनोहरे वपुषि मग्नमनः मुनिमण्डली:	३९८
श्रुतिन्को गौणार्थ और मुख्यार्थ	३९९
वेणुनादको आह्वाहन	४००
श्रुतिन्को समन्वय	४०१
सन्ध्यायां भगवन्तं दृष्ट्वा...	४०४
सहजस्नेहको स्वरूप	४०५
भगवद्भावको कारण	४०८
प्रभु अपने गुण और गुणसम्बन्धि सेवक सहित प्रकटे हें	४१०
दिनपरिक्षये	४१३
रजोगुणस्य अयं समयः	४१३
निलकुन्तलाः भ्रमराइव रसबोधकाः	४१५
वनरुहाननम्	४१६
मुहु दर्शयन् नः मनसि स्मर यच्छसि	४१९
हे वीर!	४२१
स्नेह और परिश्रम को विचार	४२२
व्रजरज और प्रभुमुखारविन्द	४३०
आधुनिकदृष्टि और स्नेहदृष्टि	४३१
श्लोक : १३	**४३४-४७६**
चरणकी दोषनिवर्तकता और गुणाधायकता	४३९
आधिहन् और आर्तिहन्	४४२
प्रणयावलोकन ही पुजन	४४२
हृदयतापः चिन्ता च निवारणीया	४४६
योगीन्की और गोपीजनन्की समस्या	४४९
दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति	४५०
चरणपंकजके भी भगवान्के जैसे षड्गुण	४५२
प्रणतकामदम् = ऐश्वर्यम्	४५२

सागर और कृपासागर के गुण	४५६
पद्मजार्चितम् = धर्मरूपम्	४५७
धरणिमण्डनम् = कीर्ति/श्रीरूप	४५८
चरणकी पुरुषार्थरूपता = अनिष्टनिवारकता और इष्टप्रापकता	४५९
धरणिमण्डनम् ध्येयम् आपदि	**४६४**
टिप्पणी : श्लोक : १२	४६५
टिप्पणी : श्लोक : १३	४६६
वैराग्यसूं वैराग्य	४६७
सकलं तद्धि तवैव माधव!	४६८
नग्नक्षपणकस्य ग्रामे रजकः किं करिष्यति	४६९
ब्रह्मसम्बन्धदीक्षाको तात्पर्य	४७०
वरः तुष्यति नान्यथा	४७२
शरणागतितात्पर्य	४७४
श्लोक : १४	**४७७-५०८**
दानवीर	४८०
अधरामृतको चतुर्धावर्णन्	४८३
कामनाकी परिच्छिन्नता ब्रह्मकी अपरिच्छिन्नता	४८४
क्षुदुद्बोधक और अन्तःकरणदोषनिवर्तक	४८८
वेणुनाद = प्रमाणबल	४९५
शास्त्रम् अवगत्य...कृष्णः सेव्यः	४९६
ब्रह्मसूत्र : प्रमाण-प्रमेण-साधन-फलनिरूपण	५००
सर्वोत्कृष्टसाधन अनन्यभक्ति	५००
नृणां मने भोक्तृभावात्मकम्	५०५
श्लोक : १५	**५०९-५१७**
त्रुटि युगायते	५०९
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्	**५१२**
टिकनो मुखारविन्दपे	५१६

श्लोक : १६ ५१८-५३५
सर्वसाधनहीनस्य...श्रीकृष्णःशरणंमम ५१८
कपटको मूल ५१९
चेर्‌को एडवान्टेज ५२०
ब्रह्मकी मायिकता! ५२१
क्रीडाके लिये देहधारण ५२३
तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम् ५२४
आपीतमपि नातृप्यत ५२६
गतिविद् : भजने तारतम्यविद् ५२८
तव उद्गीतेन च मोहिताः ५३०
सारे पुष्टिजीव गतिविद् ५३२
हीनताकी उत्कृष्टता ५३४

श्लोक : १७ ५३६-५३९
मोहके कारण : गुणत्रय और भगवद्रूपके षड्गुण ५३७
अतिस्पृहायुक्त मनकी स्थिति ५३८

श्लोक : १८ ५४०-५५५
प्रभुको स्वरूप और व्रजमें प्राकट्य ५४१
सर्वोद्धारकता कृष्णावतारकी विशेषता ५४२
व्रजलीलाको वैशिष्ट्य ५४५
अर्जुनके व्याजसुं गीतोक्तसिद्धान्त प्रकट किये ५४६
व्रजलीलाको रहस्य ५४७
पुष्टिभक्तन्‌को स्वरूप = त्वत्स्पृहात्मना ५५१

श्लोक : १९ ५५६-५६५
प्रभुको प्राकट्य ५६१
उद्धृतवचनानुक्रमणिका ५६६-५७९

॥श्रीकृष्णाय नमः॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

(तामसफलप्रकरणान्तर्गतम्)

॥ गोपीगीतम् ॥

॥ श्रीगोप्य ऊचुः ॥

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि।
दयित! दृश्यतां दिक्षु तावकास् त्वयि धृतासवस् त्वां विचिन्वते॥१॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ! ते शुल्कदासिका वरद! निघ्नतो नेह किं वधः॥२॥
विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतो भयाद् ऋषभ! ते वयं रक्षिता मुहुः॥३॥
न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख! उदेयिवान् सात्त्वतां कुले॥४॥
विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते शरणमीयुषां संसृतेर् भयात्।
करसरोरुहं कान्त! कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥५॥
व्रजजनार्तिहन्! वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित।
भज सखे! भवत् किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय॥६॥
प्रणतदेहिनां पापकर्षणं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्॥७॥
मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण!।
विधिकरीरिमा वीर! मुह्यतीर् अधरसीधुनाप्यायस्व नः॥८॥
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।

श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदाऽजनाः ॥९॥
प्रहसितं प्रिय! प्रेमवीक्षितं विहरणं च ते ध्यानमंगलम्।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि॥१०॥
चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ! ते पदम्।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त! गच्छति॥११॥
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर् वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर् मनसि नः स्मरं वीर! यच्छसि॥१२॥
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयम् आपदि।
चरणपंकजं शन्तमं च ते रमण! नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्॥१३॥
सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर! नस् तेऽधरामृतम्॥१४॥
अटति यद् भवान् अह्नि काननं त्रुटि युगायते त्वाम् अपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं त चे जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥१५॥
पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस् त्जेन् निशि॥१६॥
रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुर् अतिस्पृहं मुह्यते मनः॥१७॥
व्रजवनौकसां व्यक्तिर् अंग! ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥१८॥

यत् ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय! दधीमहि कर्कशेषु॥
तेनाटवीम् अटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर् भ्रमति धीर् भवदायुषां नः॥१९॥

।। विवरणम् ।।

।। विवरणमंगलाचरणम् ।।

किंयान् पूर्वं जीव: तदुचितकृतिश्चापि कियती।
भवान् यत्सापेक्षो निजचरणदाने (दास्ये) बत भवेत्।।
अत: स्वात्मानं स्वं निरुपममहत्त्वं व्रजपते!।
समीक्ष्यास्मन्नेत्रे शिशिरय निजास्याम्बुजरसै:।।
नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनम्।
लक्ष्मीसहस्रलीलाभि: सेव्यमानं कलानिधिम्।।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
षड्भिर् विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम।।

।। विवरणोपक्रम ।।

(निरोधको स्वरूप)

दशमस्कन्ध पूरो भक्तन्के निरोधके और प्रभुके निरोधके वर्णनके लिये प्रवृत्त भयो हे. निरोध = भक्तन्को निरोध कहो चाहे प्रभुको निरोध कहो, दोनोंकु देखवेकी दिशा अलग अलग हें पर हें एक ही सिक्काके दो पेहलु. भक्त भगवान्में निरुद्ध हो जाय अथवा भगवान् भक्तमें निरुद्ध हो जाय.

'प्रपंचविस्मृतिपूर्वक' मने प्रपंचकु भूलके जा बखत भक्तकी भगवान्में अनन्य आसक्ति सिद्ध हो जाय तो भक्तको 'निरोध' केहवावे. भक्तन्के साथ भक्तन्के मनोरथके अनुरूप अथवा मनोरथसू भी अधिक, सुखप्रद लीलायें प्रभु जो करें, वो भगवान्को निरोध.

भगवान्को निरोध क्यों हे? क्योंकि भगवान् सर्ग विसर्ग स्थान

पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा मुक्ति आश्रयादि रूप अनेकविध लीला कर रह्यो हे. प्रत्येक कण-कणमें वाकी लीला चल रही हे. प्रत्येक क्रिया वाकी ही लीला हे और वाकी लीला होयवेके कारण, कोई भी वस्तु ऐसी नहीं हे जो वाकी लीला नहीं होय. अरे! इतनो बिज़ी जो निरन्तर दशविध लीला कर रह्यो हे. ऐसे होते भये भी जा बखत प्रभु यों कहें ''नहीं, अभी मोकु फुरसत नहीं हे''.

द्वितीयस्कन्धकी सुबोधिनीमें आप यदि देखोगे तो पता चलेगो कि प्रभुकी जैसे दशविध लीलायें हें, ऐसे आचार्यचरणने वहां बतायो हे कि वस्तुमात्रमें प्रभुकी दशविध लीलायें चल रही हें. जैसे एक बेग् ले लो, एक गोंदकी शीशी ले लो, आचार्यचरण ऐसी छोटी वस्तुमें भी भगवान्‌की दशविध लीला चल रही हें, ऐसो निरूपण करें हें. इतने छोटे मंचनूपे जाके जाकी दशविध लीलायें चल रही होंय और समग्र ब्रह्माण्डमें जाकी दशविध लीलायें चल रही होंय, वो व्यक्ति कितनो बिज़ी! इतनो बिज़ी व्यक्ति कभी यों कहे कि ''भाई! अभी फुरसतमें नहीं हें. दूसरी बात मत करो.'' तो क्या हो गयो? **'निरोध'** हो गयो. मने अन्य सारी लीलानूकु भूलके कोई एक लीलामें प्रभुको अभिमान जग जाये. अब सब लीलायें चल रही हें. कोई लीला स्थगित नहीं भई हें पर भगवान्‌कु उनकी विस्मृति हो जाये वो **'निरोध'**.

जैसे भक्तके प्रपंचको नाश नहीं होवे हे. **''तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः तद्गुणानेव गायन्त्यो न आत्मागाराणि सस्मरुः''** (भाग.पुरा.१०।२७।४३). व्रजभक्तनूको मन भगवान्‌में लग गयो, उनकी वाणीमें भगवान्‌की बातें आवे लग गई, भगवान्‌की चेष्टायें उनके शरीरमेंसू प्रकट होवे लग गई, उनकी आत्मा भगवदात्मक हो गई और भगवद्गुणनूकु गाते गाते उनकु ये स्थिति प्राप्त भई कि न तो अपनो होश रह्यो, न स्मरण रह्यो, न अपने घरको स्मरण

रह्यो. उनको कोई आत्मघात नहीं भयो, न उनने कोई घरसू संन्यास लियो. देहमें रेहते भये, देहकी विस्मृति हो जानी, घरमें रेहते भये घरकी विस्मृति हो जानी, केवल प्रभुमात्रपरता, उनमें प्राप्त भई, वाके कारण उनको निरोध भयो. ये प्रभुमात्रपरतारूप एकाग्रता कोई यौगिक क्रियान्के कठोर नियमन्सु प्राप्त नहीं भई हती. केवल भगवदासक्तिके कारण ये एकाग्रता उनकु प्राप्त भई हती. या अर्थमें वस्तुको नाश नहीं हतो, घरको नाश नहीं हतो, केवल आसक्तिके कारण वस्तुकी विस्मृति भई हती, घरकी विस्मृति भई हती; संसारकी विस्मृति भई हती, संसारको नाश नहीं भयो. ठीक याही तरहसु प्रभु दशविध लीलायें करें, तो वो दशविध लीलायें स्थगित नहीं हो जायें. वो दशविध लीलायें चलती रहें. दशविध लीलायें चलते भये भी और सब लीलान्की विस्मृति और केवल एक भक्तन्के मनोरथन्कु पूर्ण कैसे करनो? भक्त जो मनोरथ करे वासू कैसे "**चिन्तिताधिकदायक**" (पु.स.ना.२७९) रूपमें अधिक फलको दान करनो? या अर्थमें भगवान्को निरोध हे. लीलायें सब चल रही हें पर भगवान्को निरोध या लीलामें हो गयो. अभी कोई और कामकी उनकु फुरसत नहीं हे. अब ये विरुद्धधर्माश्रय हे कि और सब लीलान्कु करते भये भी विस्मृति. ये प्रभुके लिये कोई कठिन काम नहीं हे.

समझो जो टाइपराइटिंग् करें हें उनकु बराबर मालूम हे. क्रियायें सब चलती रहें, आँख सामने लिखे भये पत्रकु देखती रहें और अंगुली उनकी कीबोर्डपे पड़ती रहें. अच्छे टाइपिस्ट्सु तुम पूछो तो पता चलेगो कि वाके मनमें कुछ और विचार भी आते रहें. वाको मतलब जो मनमें विचार कुछ आ रह्यो हे, आँख कुछ और देख रही हें, मने ज्ञानशक्ति अन्यत्र हे, क्रियाशक्ति अंगुलीकी अन्यत्र हे और मनकी स्नेहशक्ति भी कहीं भटकती रहे, याको नाम 'निरोध'.

ऐसे ही सब प्रभु लीलायें करते रहें पर प्रभुको मन उनमें

नहीं हे. वो लीलायें ओटोमेटिक् चलती रहें. जा चीजको सृजन हो रह्यो हे वाको सृजन होतो रहे, जाको पालन हो रह्यो हे वाको पालन होतो रहे, जाको नाश हो रह्यो हे वाको नाश चलतो रहे, भक्तकी भक्ति चलती रहे, जाकु मुक्ति देनी हे वाकु मुक्ति मिलती रहे. जो-जो डिपार्टमेन्ट् हें वो काम सब चलते रहें हें पर भगवान्के चित्तकी एकाग्रता भक्तके मनोरथकी पूर्तिमें हे. या अर्थमें "भगवान्को निरोध." **ये सारो दशमस्कन्ध भक्तको भगवान्में निरोध और भगवान्को भक्तमें निरोध याके वर्णनमें ही कह्यो गयो हे.**

(निरोधस्कन्धमें तामसप्रकरणको स्थान)

अब वाके अधिकारीके विभिन्न भेद बताये. व्रजके तामस भक्त मथुराके राजस भक्त द्वारिकाके सात्त्विक भक्त. ऐसे उनके विविध भेद बताये. इन भेदन्के अनुसार, एक बात बिलकुल सत्य हे कि भगवान् जहां भी पधारे, व्रजमें बिराजे तो तामस व्रजभक्तन्के जो तामस मनोरथ हते, उनके तामस भावसू प्रभुने पूर्ति करी. मथुराके राजस भक्तन्के जो राजस मनोरथ हते, उनके राजस भावसू पूर्ति करी और वासु अधिक पूर्ति करी. ऐसे सात्त्विक भक्तन्के सात्त्विक मनोरथ हते, उनके सात्त्विक भावन्सू पूर्ति करी.

ये भगवान्में आसक्तिके कारण "**शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु न विदुः सन्तम् आत्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः**" (भाग.पुरा.१०।८७।४६) ऐसो द्वारिकाके भक्तन्के लिये भी कह्यो जाये हे. व्रजभक्तन्के लिये भी कह्यो जाय हे जो "**तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः तद्गुणानेव गायन्त्यो न आत्मागाराणि सस्मरुः**" (भाग.पुरा.१०।३१।४३). जितने भक्त हें उनकी भगवान्में एकाग्रता और भगवान्की उनमें एकाग्रता, याहीमें निरोध गतार्थ होवे हे. यामें तामसप्रकरण व्रजकी लीलाको हे. व्रजमें जो भगवान्ने लीलायें करी, वो सारी लीलान्के प्रकरणकु आचार्यचरणने 'तामसप्रकरण' नाम दियो.

(तामसप्रकरणके अवान्तर प्रमाण प्रमेय साधन फल प्रकरण)

तामसप्रकरणके चार अवान्तरप्रकरण किये. प्रमाण प्रमेय साधन और फल. प्रमाण प्रमेय साधन और फल को मतलब ये कि भगवान्ने ऐसी लीला करी कि भगवान्के ज्ञानके या भगवद्रसानुभवके जो भी प्रमाण हते, वो प्रमाण अब नहीं चइयें. कोई अन्य प्रमाणसू भगवान्कु जाननो चाहे, तो निरोध कैसे केहलाये? तो आसक्तिमें भेद पड़ जायेगो. एक साधनकी आसक्ति एक प्रमाणकी आसक्ति एक प्रमेयकी आसक्ति. जाननो हे प्रभुकु? अब जानोगे क्या जब वोही जनम गयो तुम्हारे यहां! अब तुम कहोगे कि हम या प्रमाणसु जानेंगे वा प्रमाणसु जानेंगे तो जितने ज्यादा प्रमाणन्सु जानवेकी कोशिश करोगे उतनो तुम्हारो निरोध खण्डित. तो प्रभुने प्रमाणको निरोध कियो. मेरेकु जानवेके लिये कोई प्रमाणकी आवश्यकता नहीं हे. मेरेकु जानवेके लिये मेरी लीलायें पर्याप्त हें और सारे प्रमाण व्यर्थ हें. ये प्रमाणको निरोध.

व्रजभक्तन्कु कोई साधन करवेकी जरूरत नहीं हे. व्रजभक्तन्के पास जानवेके जो उपाय भगवान्ने शास्त्रन्में बताये वो नहीं हें. "**ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः अव्रतातप्ततपसः सत्संगाद् माम् उपागताः. केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुः अञ्जसा**" (भाग.पुरा.११।१२।७-८). कोई प्रमाणकी जरूरत नहीं हे. प्रमेय जिन प्रमाणन्सू सिद्ध होवे हे, उन प्रमाणन्को भगवान्ने अपनेमें निरोध कियो. अपनेमें निरोध कैसे कियो? यदि व्रजभक्तन्की अविद्या दूर करनी हे तो भगवान् पूतना मारेंगे. यदि व्रजभक्तन्के देह इन्द्रियादिकन्के अध्यास दूर करने हें तो भगवान् दो चार असुर मारें और भावना ये करें कि मैंने व्रजभक्तन्के अज्ञानादि दोष निवृत्त कर दिये. अब भक्त खुद जब करे तो ध्यान धारणा समाधि यम नियम के जो भी कुछ कठोर नियम हते वो वापें लागु होवे, पर वो सब साधना भगवान् अपने आप खुद कर रहे हें. क्यों? क्योंकि व्रजभक्तन्में भगवान्को निरोध हो गयो. भगवान् क्यों निरोधके

साधन कर रहे हें? यालिये कि व्रजभक्तनूमें निरोध होवेके कारण भगवान् ये सोच रहे हें कि जीव जो कुछ साधन अपने अपने प्रमाणनूसु मोकु जानवेके लिये करे हे, वो सब साधन और प्रमाण व्रजभक्तनूके बजाय मैं कर लऊं जासू इनको भार कम हो जाये. मने "**चिन्तिताधिकदायक**" (पु.स.ना.२७९) उनके सारे दोष खुद बेठके निवृत्त कर रहे हें.

दादाजी कंई बार हमकु पुस्तक देते, तो ऐसे ही नहीं देते, अन्डरलाइन् करके देते. कारण क्या? सारी किताबकु पढ़के कौनसो भाग महत्त्वपूर्ण हे कौनसो भाग महत्त्वपूर्ण नहीं हे सो मैं छांटू तब वह महत्त्वकी बात पता चले. पर दादाजीको स्नेह, सो पेहले ही दादाजी किताब पढ़के अन्डरलाइन् करके देते कि "ये पढ़ लीजो." अब ज्यादा खटपटकी जरूरत नहीं होती. अन्डरलाइन् लगी भई हें, उतनो हिस्सा देख्यो और बात समझमें आ जाती कि कौनसी बात कहां हे? ज्यादा खटपट नहीं होती. ऐसे अन्डरलाइन् करके पुस्तक पढ़वेकु देते. जो साधन मेरे करनो चइये वो दादाजीने कर लियो. ऐसे ही जो कुछ भी जानवेके साधन व्रजभक्तनूकु करवे चइते थे वो प्रभु करते रहें. उनकु सिर्फ नवनीत-नवनीत बिल्यो बिलायो शुद्ध मख्खन मिल्यो. प्रमाणको निरोध, जो कोई विषय जानने होंय, जिन विषयनूकु जानवेके कारण प्रभुको ज्ञान सम्भव हो सके, उन विषयनूसु भी व्रजभक्तनूको निरोध करवा दियो. भगवान् और कोई विषयकु जाने नहीं. जो जो मनोरथ व्रजभक्तनूके होंय, वैसो वैसो खुदको स्वरूप धारण करके, वैसे वैसे भावके अनुरूप अपनी प्रमेयरूपता जताई. ये भयो प्रमेयको निरोध. ऐसे ही साधननूको निरोध और फलको निरोध हे. मने और कोई फल नहीं केवल प्रभु ही फल. "**भगवानेव हि फलम्**" (पु.प्र.म.१७). केवल प्रभु ही फल या रूपमें और उन प्रभुकी फलरूपता भक्तनूके ही रूपमें ओर रूपमें उनकी फलरूपता नहीं. या अर्थमें प्रभुको भी निरोध भक्तमें भयो. या सारे

प्रकरणकु समझावेके लिये तामसफलप्रकरणकी प्रवृत्ति भई हे.

(तामसफलप्रकरणके अध्यायार्थ : भगवद्गुण)

प्रत्येक प्रमाण प्रमेय साधन और फल प्रकरणमें भगवान्‌के छे गुण ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य और सातवें खुद प्रभु, ऐसे सात सात अध्यायके प्रकरण हें. तदनुसार ये तामसफलप्रकरण सात अध्यायको हे. यामें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री फिर स्वयं ठाकुरजी मने धर्मी और फिर वैराग्य और ज्ञान. या क्रमसु एक एक अध्यायको निरूपण हे. प्रथम अध्याय तामसफलप्रकरणको ऐश्वर्यको अध्याय हे. द्वितीय अध्याय वीर्यको अध्याय हे. तृतीय अध्याय यशको अध्याय हे. चतुर्थ अध्याय श्रीको हे. पांचवों अध्याय धर्मीको हे मने प्रभुके निरूपणपरक हे, प्रभुके गुणपरक नहीं हे. ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य ये सब प्रभुके गुण हें. छठ्ठो अध्याय प्रभुके वैराग्य गुणके निरूपणके लिये हे. सातवों अध्याय ज्ञानके वर्णनके लिये हे. थोड़ोसो अपन् ये क्रम समझ लेंगे जासू अपनेकु ये पता चले कि गोपीगीत कहां हे. जैसे अपन् कहीं जावें तो नक्शा देख लें बराबर कि या गाँव जावेको ये नक्शा हे. ऐसे थोड़ो नक्शा मैं आपकु बता रह्यो हूं कि अपन्‌कु कहां जानो हे. वो अपन् अच्छी तरहसु समझ लें. वाके बाद अपन् गोपीगीत शरु करें.

(प्रथमाध्याय : ऐश्वर्य)

प्रथम अध्यायमें ऐश्वर्यको वर्णन कियो. आचार्यचरण बहोत सुन्दर वाको कारण बतावें हें. ऐश्वर्य कैसे? ऐश्वर्य मने जो स्वतन्त्र होय वो ‘ईश्वर’ कहावे. ईश्वर होवेको गुण ‘ऐश्वर्य’. परतन्त्र होय वो ‘ईश्वर’ नहीं केहवावे. स्वतन्त्र होय वो ‘ईश्वर’ कहावे. स्वतन्त्र होवेके कारण वो ईश्वर हे और ईश्वरको गुण = ऐश्वर्य. स्वतन्त्र माने क्या? कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् समर्थ जो होवे वो स्वतन्त्र.

प्रथम अध्यायमें ऐश्वर्यको वर्णन क्यों हे? व्रजकी गोपिकायें अपने अपने घरमें, अपने अपने काममें लगी भई हती. वेणुवादन करके ठाकुरजीने उनकु बुलायो. अब वेणुवादन तो अव्यक्त शब्द हतो, व्यक्त शब्द तो हतो नहीं. कोई भी स्वर लगाओ सा रे ग म प ध नि सा, वामें कहीं भी 'आओ' ऐसो तो नहीं आयेगो. मने कोई व्यक्त आज्ञा तो नहीं हे. अव्यक्त शब्द, जामें कोई व्यक्त आज्ञा नहीं हे, व्यक्तनिर्देश नहीं हे, वासू तो खींचके बुला लियो. ये 'कर्तुं समर्थ' मने जा चीजकु जा रूपसुं करनो हे, वा रूपसुं कर सकें. 'अकर्तुं समर्थ' कैसे? 'जाओ' कही फिर भी भक्त गये नहीं. जब व्रजभक्त ठाकुरजीके पास पहोंच गये, तो भगवान्ने कही "अब तुम व्रजमें जाओ. तुम यहां क्यों आ गई?" तो कोई गोपिका नहीं गई. ये 'अकर्तुं समर्थ' ये व्यक्त शब्द हते. साक्षात् परब्रह्म कहें कि 'जाओ', तो कोईकी ताकत हे कि टिक जाये. खाली भौंह तान दे तो भग जाये आदमी. पर, जब आज्ञा दे कि "चले जाओ, यहां मत रुको" और सब व्रजभक्तें डटी भई हें. ये 'अकर्तुं समर्थ' खुदकी वाणीकु खुदने उलट दी. खुदको अव्यक्तनाद, अकर्म हो गयो न! जो बुलावेमें समर्थ नहीं हे वासू तो भक्तन्कु बुला लिये और खुदकी व्यक्त वाणी जो निषेध कर रही हे कि 'जाओ', पर जावेमें समर्थ नहीं हे. भगवान्की आज्ञाको उल्लंघन करके भी सामने जवाब देनो, खंडन करनो! ये 'अन्यथाकर्तुं समर्थ' हे. भगवान् केह रहे हें 'जाओ' और व्रजभक्त केह रहे हें कि 'जाओ' को मतलब 'मत जाओ', ये अन्यथाकर्तुं सामर्थ्य. भगवान् केह रहे हें "**रजन्येषा घोररूपा**", व्रजभक्त केह रहे हें 'अघोररूपा'. जब तुम साथमें हो तो घोर कैसे? एक नयो अवग्रह/अर्थ अपने आप निकालें वामेंसू. "**घोरसत्त्वनिषेविता**" बड़े बड़े भयंकर जानवर यहां रहे हें. वो केह रहे हें 'अघोरसत्त्वनिषेविता', जब तुम यहां रेह रहे हो, जब हम यहां रेह रहे हें तो तुममेंसे हममेंसे कौन घोर हे बताओ? यहां ये सब अघोरसत्त्व हें. भगवान् केह रहे हें "**न इह स्थेयं**"

“यहां मत रहो” तो वो केह रहे हें कि “यहीं रहो”. या तरहसू सब अन्यथाकर्तुम्. अब ये अन्यथाकरणम् व्रजभक्तन्ने और गोपिकान्ने क्यों अपनी सामर्थ्यसू कियो? ये सारी तीनों प्रकारकी लीलायें, भगवान्के ऐश्वर्यके निरूपणमें हें. भगवान् कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् सर्वसमर्थ हें मने चइये सो करें. अव्यक्तनादसू बुला सकें और व्यक्तनादसू नहीं भी जावें. व्यक्तनादको एक स्पष्ट समझमें आ रह्यो हे पर वाको उलटो अर्थ भी समझमें आ रह्यो हे. वो अन्यथाकर्तुं सामर्थ्य. या तरहसु ऐश्वर्यको वर्णन प्रथम अध्यायमें कियो.

हंसुभाईने प्रश्न कियो “उन् व्रजभक्तन्के अनुसार ही अपनो सारो सेवाप्रकार चले हे. तो अपनेमें ये लीला कैसे निरोध लायेगी? अपने और ठाकुरजीकी व्रजलीलामें अन्तर क्या?”

वाके उत्तरमें कहें हें स्फुट तो जरूर हे, स्फुट नहीं हे ऐसी बात नहीं हे. पर अन्तर कितनो हे यामें और वामें, कि अपनी सेवा अभी प्रमाणदशाकी ही सेवा हे. वा सेवामें भी पूर्णनिरोध सिद्ध नहीं भयो हे. निरोधरूपा सेवा नहीं हे निरोधमार्गीय सेवा हे, मतलब निरोधकी ओर ले जावेवाली सेवा. क्योंकि प्रपंचविस्मृति और भगवदासक्ति दोनों ही अपनेकु पूर्णरूपेण नहीं हें. जब निरोध ही अपनो सिद्ध नहीं भयो तो फल अभीसु कहांसु प्राप्त होयगो! निरोध सिद्ध हो जाये तो निरोधको फल होय. निरोधमें भी प्रमाणनिरोध प्रमेयनिरोध साधननिरोध और फलनिरोध. ये फलनिरोध तो निरोधकी चतुर्थी कक्षा हे.

प्रमाणप्रकरणमें भी अपनो निरोध तो सिद्ध होनो चइये. वहां निरोध सिद्ध क्यों भयो हे? क्योंकि प्रभु खुद निरुद्ध हो गये हें. वासू निरोध सिद्ध हो रह्यो हे. अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकु वा भावसु ग्रहण करनो शुरु करें तो प्रमाणको निरोध हो गयो कि मेरे घरमें मेरो ठाकुर पधार्‍यो. तब तो वो लीला थोड़ी आगे चले. अन्यथा “घरना छोकरा घंटी चाटे पाड़ोसी ने आटो” के न्यायसू

अपन् गाँवके मन्दिरन्में भटकें, फिर तो प्रमाणनिरोध ही नहीं भयो. आगे प्रमेय साधन और फल की कक्षा तो दूरापास्त बातें हें. घरमें ठाकुरजी पुष्ट होके पधारे वामें तो भाव हे नहीं. अब वामें भाव ही नहीं तो फिर लीला चले कैसे? पेहले ही ठाकुरजीकी स्वरूपविस्मृति कर रहे हो!. जब प्रपंचकी विस्मृति करो तो कथा आगे चले. निरोधकी लीला तो तब आगे चले जब प्रपंचविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति होय. तुम स्वरूपविस्मृतिपूर्वक प्रपंचासक्ति करते जाओ कि अपने स्वरूपकु हम भूलेंगे और गाँवकी पंचायत करेंगे. फिर डिमाण्ड् करेंगे कि सेवाको फल हमकु कैसे दीखे? बताओ, दीखे कहांसु? पुस्तक सीधे पढ़वेकी हे वाकु उलटो खोलके पढ़वे लग जाओ तो पाठ समझमें आयेगो? ऐसो हो जाये तो वाको उपाय क्या? वो "तू जो कहत हे वो नाहीं निकरत हे" (एक वृद्धाके मरवेके समय वाके प्राण नहीं निकल रहे हते. वाके बेटाने कही कि "माँ रामको नाम ले." वृद्धाने कही "जो तू कहत हे वो नाहीं निकरत", इतनो केहके वाके प्राण निकल गये पर रामको नाम वाके मुंहसू नहीं निकल्यो.) आचार्यचरणने सब बात समझाई पर अपन् समझें ही नहीं वो बात याके लिये घोटाला होवें हें.

(द्वितीयाध्याय : वीर्य)

द्वितीय अध्यायमें भगवान्के वीर्यको वर्णन हे. कैसे वीर्यको वर्णन हे? वो बतावें हें कि यदि वो गोपिकायें कोई साधारण प्रेमिकायें होती और भगवान् कोई साधारण प्रेमी जैसे होते तो यहां भगवान् अन्तर्हित भये और वहां गोपिकायें घरमें जाके सो जाती कि चलो रास करवे गये थे पर नहीं मिले. अपन् टिकिट् लेके फिल्म देखवे जावें, ड्रामा देखवे जावें और कोई बखत हीरो नहीं आवे तो क्या करें? घरमें आके सो जायें. रेडियो चलाके बेठ जायें. अरे! आज शो नहीं भयो तो आज रेडियो सुन लो. ताश खेलवे बेठ जायें. ठाकुरजीके पास गये रास करवे, जितनी देर दीखे उतनी देर ठीक

रह्यो, आनन्द रह्यो. अन्तर्हित हो गये तो चलो गुडबाय्. तुम तुम्हारे रस्ते, हम हमारे रस्ते. एक ऐसी भी लीलायें चलें दुनियामें! ये तोताचश्म प्यार. तोताकु पिंजरामें धर रखो, 'राम राम राम' करे. पिंजरामेंसु उड़्यो तो फिर वाकु 'राम राम' याद नहीं आवे. जितनी देर पिंजरामें रह्यो उतनी देर 'राम राम'. क्योंकि गाममें दूसरे तोतायें तो 'राम राम' करें नहीं. अब वो 'राम राम' करनो दूसरे तोतान्सु बोलवेमें तो सहायक होवे नहीं, तो वो क्यों बोले 'राम राम'? पिंजरामें वो 'राम राम' बोले तो वाकु दाड़िम मिले, अनार मिले. शायद 'राम राम' दाड़िम अनार के अर्थमें केहतो होयगो. बोले तो वो दाड़िम अनार हे, क्योंकि अच्छे सिखायवेवाले, सिखावेके पेहले सामने रखें खायवेकु और सिखावेके बाद वाकु खायवेकु दें. घंटा भर रोज वाके सामने 'राम राम' करो, फिर अनार या दाड़िम दो, तो थोड़े दिन बाद वाकु समझमें आ जाये कि दाड़िम अनार तभी मिले जब 'राम राम' होवे. तो जब भी दाड़िम अनार मूंगफली की भूख लगे तो तभी 'राम राम राम' शुरु करे. अब वो बिचारे कहे 'राम राम' हे पर वाको मतलब तो दाड़िम अनार मूंगफली होवे. मने नाम इतनो बड़ो पर अर्थ इतनो छोटो. याके लिये वो भाषा तो तोतान्में आवे नहीं, पोपट यों समझतो होयगो शायद कि मनुष्य सब मूर्ख हें, जो "टैं टैं" नहीं करके "राम राम" बोले हें दाड़िम अनारकु. उनकी भाषामें शायद वाकु "टैं टैं" कह्यो जातो होयगो? तो जो भाषायें अपन् नहीं बोलते होंयगे, वो बोलतो होयगो. सो ये तोताचश्म प्यार केहवावे. आँख देखेको प्यार.

ऐसे जो व्रजभक्तन्को तोताचश्म प्यार होतो तो भगवान् तिरोहित भयो और उनने कही होती चलो गये थे पर आज प्रोग्राम् फेल् भयो, चलो अब घर चलो, पर ऐसो नहीं हे. तिरोहित हो गये तो भी व्रजभक्त वहीं बेठें रहे खोज्यो उद्विग्न भये कातर भये विरहकातर भये. **"क्वासि क्वासि महाभुज!"** (भाग.पुरा.१०।२७।३९) कह्यो.

कोईके मनमें ये वृत्ति नहीं आई कि लौटके अब घर चले जायें. चले भी जाते तो कोई फरक नहीं पड़तो. फिर सुबह तो लौटके जानो ही हतो. वो तो रातकु भी लौटके आ सकते थे. प्रभुने तिरोहित होके और उनके साथ कैतव नहीं कियो पर स्नेहको संवर्धन कियो. या अर्थमें भगवान्‌को स्वरूप कैसो हे? परोक्ष अपरोक्ष दोनोंन्‌में इतनी सामर्थ्य हे कि वो प्रेमकु निभा सके. या अर्थमें द्वितीय अध्यायमें प्रभुके सामर्थ्यको और वीर्यको वर्णन भयो.

जब तिरोहित हो गये, वाके बाद गोपिकान्‌ने खोज शुरु करी. जब खोज शुरु करी तब धीरे धीरे जो राधासहचरी हती, उनके साथ अन्तर्हित होवेके एक एक चिन्ह दिखाई दिये. आगे मार्गमें गई तब चार चार चरणचिन्ह दिखाई पड़े. जासू ये बात समझमें आई कि महाराज कहीं छिपे भये हें. अकेलो ही गायब नहीं भयो हे दो जनें गायब भये हें. तब ये ख्याल आयो कि जरूर कुछ गड़बड़ी हे. यहां राधासहचरीके मनमें भी ये भाव जग्यो कि अन्य गोपिकान्‌को महत्त्व भगवान्‌के हृदयमें इतनो नहीं हे जितनो मेरो महत्त्व हे. यदि भगवान्‌के हृदयमें मेरो महत्त्व हे तो मेरो महत्त्व कितनो? या तरहसु उनकु भी वोही मान भयो जो मान इतर व्रजभक्तन्‌कु भयो. वा मानके प्रशमनके लिये, प्रभु उनके सामनेसुं भी अन्तर्हित भये. वो मानको जो रूप हतो कि राधासहचरीके हृदयमें ये भाव जग्यो के जैसे और गोपिकान्‌सु अन्तर्हित होके भगवान् मेरे साथ पधारे हें, तदवत् मैं भी कहीं छिप जाऊं और ये मोकु खोजते फिरें तो वा दृश्यको कैसो आनन्द आवे! वा दृश्यकु उनने ये कही **"न पारये अहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः"** (भाग.पुरा.१०।२७।३७). आप मोकु दोड़ाके ले जा रहे हो पर अब मैं चलवेकु तैयार नहीं हूं. यदि तुमकु ले जानो हे तो मोकु गोदीमें उठाके ले जाओ. अन्यथा मैं यहां बेठी हुं. "बेठी हुं" को मतलब कि मैं छिप जाऊं और तुम खोजते फिरो. ये आकार जब भावको आयो तब

फिर भगवान् अन्तर्हित भये.

तब वो गोपिकायें खोजती खोजती, वृक्षन्सु लतान्सु पशु-पक्षीन्सु, सबसु पूछती पूछती जब उनने ये चरणचिह्न देखे तो वाको अनुसरण करनो शुरु कियो. चार चार चरणचिह्न देखे. वो चरणचिह्नन्के विभिन्न रूप, विभिन्न स्थलन्में गति, सब अनुमानपूर्वक कथा घड़ती चली गई कि अब ये भयो, अब ये भयो और अब ये भयो. वा एक ऐसी गोपीको ऐसो सौभाग्य देखके, कुछ थोड़ी ईर्ष्या भई, उनके मनमें कुछ थोड़ो क्षोभ भयो. वा क्षोभ ईर्ष्या इन सबकु लेते भये जा बखत आगे गई तो अचानक पता चल्यो कि वो गोपी भी अपने ही तरह बेठके विलाप कर रही हे. **''हा नाथ! रमण! प्रेष्ठ! क्वासि क्वासि महाभुज''** (भाग.पुरा.१०।२७।४०) तब वाके मुंहसु ये पता चल्यो. प्रभुने उपदेश नहीं दियो देखो, उपदेश कोईकु नहीं दियो. उपदेश देवे बेठें तो लीलामें रसाभास हो जाये. केवल लीला ऐसी करी कि सबकु अपनी अपनी बात समझमें आ गई. वा गोपीने ये बात कही कि मोकु ऐसो गर्व भयो यासूं मैने ऐसे वचन कहे और वासूं प्रभु तिरोहित भये. तब सब गोपीन्कु समझमें आ गई कि ऐसो ही गर्व हमकु भी भयो और ऐसे ही गर्वके कारण प्रभु तिरोहित भये. जब अपनो दोष समझमें आयो तब प्रभुके गुण समझमें आये.

(तृतीयाध्याय : यश)

जब प्रभुको गुण समझमें आयो तब प्रभुके यशके गानमें सबकी सब प्रवृत्त भई. एक एक गोपी अपने तरहको एक एक गान करवे लगी. ये तो अपन् गोपीगीतमें जाके देखेंगे. गोपीगीतमें गोपिकान्ने भगवान्के गुणको गान कियो, वोही यशको प्रकरण हे.

(चतुर्थाध्याय : श्री)

भगवान्के या ऐश्वर्य यशके गानसू जब प्रभुको प्राकट्य भयो, **''तासाम् आविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षात्**

मन्मथमन्मथः'' (भाग.१०।२९।२) या तरहको प्रकट रूप ही भगवान्की श्री हे, भगवान्की शोभा हे. **''चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितः त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर् दधत्''** (भाग.पुरा.१०।२९।१४) ये भगवान्की श्री हे.

(पंचमाध्याय : धर्मी)

वाके बाद रासलीला शुरु भई जो कि साक्षात् धर्मीको निरूपण हे. वाके बाद परीक्षितने आड़ो टेड़ो सवाल कर दियो और रासलीलाको वर्णन वहीं समाप्त हो गयो.

(षष्ठाध्याय : वैराग्य)

रासलीलाको वर्णन समाप्त भयो और श्रीशुकदेवजीकु भगवान्को वैराग्य गुण याद आयो. फिर मनमें विरक्ति जगी. क्यों व्युत्क्रम हो गयो? नहीं तो ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य. वैराग्यको वर्णन तो अन्तिम आनो चइये पर बीचमें वैराग्यको वर्णन क्यों आ गयो? क्योंकि जो कथा चल रही थी वा बखत परीक्षितने कुछ आड़ो टेड़ो प्रश्न कर दियो. ऐसो प्रश्न नहीं कियो कि जासू कथाको स्रोत और आगे बढ़तो. पर ऐसो प्रश्न कियो जासू कथाको स्रोत अवरुद्ध भयो. जासू कथामें विघ्न भयो. कथाके मूलरसमें आभास भयो. वा आभासके कारण शुकदेवजीकु थोड़ी विरक्ति भई, तो उनकु भगवान्को वैराग्यको गुण याद आ गयो. कथा तो चलती रही तापर भगवान्के वैराग्यके गुणके निरूपणकी कथा चली. क्योंकि परीक्षितने बड़ो प्रमाणमूलक प्रश्न कियो हतो. क्यों प्रमाणमूलक हतो? वचन देखो. प्रमाणके आधारपे परीक्षितने ये प्रश्न कियो **''संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमाय इतरस्य च अवतीर्णो हि भगवान् अंशेन जगदीश्वरः स कथं धर्मसेतूनां कर्ता वक्ताभिरक्षिता प्रतीपम् आचरद् ब्रह्मन्! परदाराभिमर्शनम्. आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्. किम् अभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत!''** (भाग.पुरा.१०।३०।२७-२९). ये सारो रासलीलाको

वर्णन सुनके परीक्षितके मनमें ये संदेह हो गयो कि "**संस्थापनाय धर्मस्य**" भगवान्को अवतार धर्मके संस्थापन और अधर्म के प्रशमनके लिये हे और वो जगदीश्वर भगवान् यहां प्रकट भयो, धर्मसेतुको निर्माण करवेवालो, धर्मसेतुको वक्ता, धर्मसेतुको अभिरक्षण करवेवालो, वाने ही धर्म विपरीत परस्त्रियन्के साथ रास कियो! याको क्या स्वरूप? फिर यदुपति भगवान् तो आप्तकाम हें. उनके मनमें कोई कामना तो हे ही नहीं पर या तरहसु परस्त्रीन्के साथ जो रास कियो, तो ऐसो जुगुप्सित काम क्यों कियो?

अब ये बात परीक्षितकी सुनते ही शुकदेवजीको मूड खराब हो गयो. बड़ी डांट डपट लगाई, समझायो "**धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा. नैतत् समाचरेद् जातु मनसापि ह्यनीश्वरः विनश्यति आचरन् मौढयाद् यथा रुद्रो अब्धिजं विषम्**" (भाग.पुरा.१०।३०।३०-३१) आदि केहके समझायो और सब बात कही पर शुकदेवजीको मूड तो खराब हो गयो. वासू ज्ञानके बजाय भगवान्को वैराग्यगुण पेहले याद आ गयो. तोकु कथामें विरति भई तो भगवान्को वैराग्यगुण याद आ गयो. नंदरायजी धर्मको बड़ो अभिमान लेके धर्मकर्तव्यसु अम्बिकावनमें यात्रा करवे गये. वहां अजगरने उनकु ग्रास कियो फिर कैसे भगवान्ने उनकु छुड़ायो, ये याद आयो. वाके बाद ये बालभावको क्रम बतावेके लिये कि बालभावमें प्रमाणपरक होके अन्याश्रय करवे गये तो कैसो विघ्न आयो. कान्तभावमें प्रमाणपरक होके गोपिकायें दाऊजीके साथ रासके लिये पधारी तो वामें शंखचूड़ आयो. फिर ठाकुरजीकु छुड़ानो पड़्यो. ऐसे जबजब धर्मपरक होके धर्मनिष्ठासू या प्रमाणनिष्ठासू अन्याश्रय कियो तबतब विघ्न आयो. याके लिये प्रमाणनिष्ठा और धर्मनिष्ठा फलप्रकरणमें इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हे. शुकदेवजी कुछ परोक्षरीतिसु परीक्षितकु यह समझा रहे हें कि जब फलप्रकरण चल रह्यो हे, वामें ये प्रमाण और धर्म की चर्चायें तु कहां ला रह्यो हे? ये तो धर्म जाके लिये हे वाको

प्रकरण चल रह्यो हे, प्रमाणनुसु सिद्ध होवेवालो जो हे वाको प्रकरण चल रह्यो हे, वा बीचमें तेंने ये प्रकरण कहां छेड़ दियो? ऐसी दो कथायें कही. वासु थोड़ो चित्तको समाधान भयो वैराग्यके कारण, परीक्षितके प्रश्नपे भी थोड़ी विरक्ति आई होगी.

(सप्तमाध्याय : ज्ञान)

ये कथा केहके शुकदेवजीके हृदयकु भी थोड़ो समाधान भयो, भगवान्के वैराग्यको थोड़ो विचार करके कि सब कछु भगवदिच्छासू हो रह्यो हे. अन्तमें भगवान्ने ही नन्दरायजीकु अजगरसु छुड़ायो और भगवान्ने ही गोपीकान्कु शंखचूड़सु छुड़ायो. ये सोचके शंखचूड़ और अजगर रूपी शंकायें जो परीक्षितकु ग्रस रही हे, यासु भगवान् ही छुड़ायेंगे, ये सोचके शुकदेवजी फिर पाछे भगवद्ज्ञानमें तत्पर होवेके कारण, या ज्ञान-वैराग्यके ज्ञानके कारण उनकु पिछलो प्रकरण याद आयो. जब सुबह व्रजभक्त फिर लौटके व्रजमें आये, तो उनकी स्थिति संसारकी क्रियान्में रचीपची नहीं हती. **"तन्मनस्का: तदालापा: तद्विचेष्टा: तदात्मिका तद्गुणानेव गायन्त्यो न आत्मागाराणि सस्मरु:"** (भाग.पुरा.१०।२७।४३) या न्यायसू युगलगीतको वर्णन भगवान्के ज्ञानके रूपमें शुकदेवजीने कियो. ये अपने तामसफलप्रकरणकी पूरी थीम् हे.

(पूर्वाध्यायसंगति)

पूर्वाध्यायके अन्तमें शुकदेवजी कहें हे. **"पुनः पुलिनम् आगत्य कालिन्द्या कृष्णभावनाः समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षया"** (भाग.पुरा.१०।२७।४४). आचार्यचरण सुबोधिनीमें कहें हें **ननु विवेकरहिताः कथं तत्र आगताः? तत्र आह कृष्णभावना इति. कृष्णएव भावना यासाम्... ततः "कस्या वा भाग्यात् स्नेहेन कृपया वा आगच्छेद्" इति संदेहात् समवेता जाताः. तदा साधनान्तरम् अलभमानाः कृष्णं सदानन्दं जगुः, दोषनिवारणे हरिगुणगानमेव साधनम् इति निवृत्ते पुनर् दोषे स्वयमेव आयास्यतीति तदागमनकांक्षया जगुः**

॥ गोपीगीतको अध्ययन ॥

अब गोपीगीतके अध्ययनमें प्रवृत्त होवें.

(सुबोधिनी कारिका)

अष्टाविंशे हरेर् गानं स्वभावाद् अपराधतः।
कृतावज्ञा गोपिका हि स्तोत्रं चक्रुर् इतीर्यते॥१॥
एकोनविंशतिविधा गोप्यः स्वस्याधिकारतः।
एकोनविंशतिविधां स्तुतिं चक्रुर् हरेः प्रियाम्॥२॥

विवरणम् :

ये अठ्ठाइसवें अध्यायमें हरिको गान हे. **हरेः गानं स्वभावाद् अपराधतः कृतावज्ञा गोपिकाहि स्तोत्रं चक्रुः इति ईर्यते.** हरिको गान मने हरिके गुणन्को गान, हरिके यशको गान. क्यों? कुछ लोग समझ नहीं पावें. मनमें यह संदेह होवे कि भगवान् तिरोहित भये तो या गानकी क्या जरूरत हती? मनमें ऐसो संदेह होवे कि गान करके क्या गोपिकायें अपने प्रेमकु प्रकट कर रही हती? कौनकु जतानो चाहती हती? यदि या तरहकी कोई गणना मनमें हती, तो ऐसे गणनामूलक प्रेमकु क्या प्रेम कह्यो जा सके हे?

(गोपीगीतकी विभिन्न व्याख्यायें)

व्याख्याकारें गड़बड़ शड़बड़ करते रहें. बात समझमें आवे नहीं. कभी केह दें कि ये बात भई. 'गोपी' शब्दके अलग अलग अर्थ निकालें. "गोभिः इन्द्रियैः पिबति कृष्णरसम् इति गोपी", इन्द्रियन्सु रसको, कृष्णरूपी रसको जो पान करे वो गोपी. अब दीमाग चकरावे उनको. ब्रह्म तो निर्गुण निराकार निर्धर्मक हे, वाको इन्द्रियन्सु ज्ञान कैसे हो सके? ज्ञान नहीं हो सके तो उलटे पुलटे अर्थ निकालें. ये हीनाधिकारक भक्ति हे. कभी कहें कि प्रेम और ज्ञान के बीचमें

अन्तर हे. ज्ञानी निर्गुण निराकारकु भजे हे. प्रेम ऊपरकी अवस्था वाकु भजे हे पर ये सारे आरोपित धर्म हे. मने कौन देखे हे? कौनकु देखे हे? कौन देखवेवालो हे? कौन दीखवेवालो हे? कौन दृष्टा हे? कौन दृश्य हे? ज्ञानमें भगवान् दृष्टा हें और जीव दृश्य हे. कर्ममार्गमें यों सोचे कि मर्यादामें भगवान् दृष्टा हें और जीव दृश्य हे. ज्ञानमार्गमें न तो भगवान् दृष्टा हें और न जीव दृश्य हे. केवल दृश्यमात्र हे. भक्तिमार्गमें यों सोचे कि जीव दृष्टा हे और भगवान् दृश्य हें. ऐसे विभिन्न विकल्प करके बातकु सुलझावेके बजाय और उलझा देवें.

आचार्यचरणने बहोत सीधो कह्यो **स्वभावाद् अपराधत:** गान कियो हे यामें न दृष्टा और दृश्य को झगड़ा हे; गान कियो हे यामें न ज्ञान और भक्ति को झगड़ा हे; उनने अपने स्वभावसु गान कियो हे. प्रत्येक गोपिकाको कुछ स्वभाव हे. अब सारी गोपिकानूपे एक स्वभाव लादनो!

संस्कृतमें एक श्लोक आवे "**यस्य कस्य तरोर् मूलम् येन केन प्रपेशयेत् यस्मै कस्मै प्रदातव्यम् यद्वा तद्वा भविष्यति.**" गाममें महामारी फैली. तो चेला गुरुजीके पास गयो. गुरुजीके पास जाके पूछी कि "गुरुजी! कोई दवाई बताओ. ये रोग फैल्यो हे. कोई जड़ी-बूटी हे क्या?" गुरुजीने कही कि "कोई भी वृक्षकी जड़ ले लें." वाने कही कि "कायकी जड़ लें?" गुरुजीने कही "कोईकी भी ले लें और वाकु पीस. पीसके वाकी गोली बना और बांट सबनूकु." वाने पूछी कि "कौनसी गोली कौनसे रोगीकु बांटनी?" गुरुजीने कही "जब कोई रोगी आये तो वाकु कोई भी गोली दे दे. वामें क्या हे? कोई विवेकको सवाल थोड़े ही हे." चेलाने पूछी कि "रोग मिटेगो कि नहीं मिटेगो?" गुरुजीने कही कि "जाकी आयुष्य हे वो तो मरवेवालो हे नहीं तेरी गोलीसु, जाकी आयुष्य

नहीं हे वो तेरी गोलीसु बचवेवालो नहीं हे. तो तेरेकु चिन्ता क्यों करनी? पुण्य कर और गोली बांटतो चल्यो जा. मरवेवालो मरेगो और जीवेवालो जीयेगो. वामें मरवेवालो झगड़ा करवे तो आयेगो नहीं और जीवेवालो वैद्यराजकु धन्यवाद देवे तो आयेगो कि तुम्हारी गोलीसु बच्यो. कौनकु खबर कौनकी गोलीसु बच्यो कि कायेसु बच्यो?" "यस्मै कस्मै प्रदातव्यम् यद्वा तद्वा भविष्यति." आयो न रोगी तो दो गोली!

(करमचन्दकम्पाउन्डर: नीमहकीम खतरे जान)

हमारे किशनगढ़में करमचन्द एक कम्पाउन्डर्. वाके सामने हमकु एक बार बुखार आ गयो. दो-तीन दिन तो मैंने अपनेपे खूब कन्ट्रोल् कियो भूखे रेहके कि शायद बुखार उतर जाये पर माथा सुन्न पड़वे लग गयो. तो मैं भी हिम्मत हार गयो. मैंने कही की "भई! बुलाओ जो भी होवे." अब वहां करमचन्द ही कम्पाउन्डर् और कोई दूसरो डॉक्टर् मिले नहीं. करमचन्दने आके कही कि "या तो टाईफाइड् होनो चइये, या तो न्युमोनिया होनो चइये, या तो फ्लू होनो चइये." अब तीनोंमेंसु कौनसो रोग पता चले तो तो वाकी दवा दे न! वाने कही कि होयगो तो तीनोंमेंसु ही कोई एक रोग. तो वाने तीनोंकी दवाई दे दी. अब तीनोंकी दवाई दे दी तो बुखार तो उतर गयो. एक दिनमें या दो दिनमें. अब शरीरमेंसु मेरी चमड़ी खिरनी शुरु भई. दवाईको रिएक्शन् आ गयो. मैं कहूं कि "मेरी चमड़ी खिर रही हे. ये दवाईको असर हे" पर सब किशनगढ़के लोग कहे कि "ठण्डीमें चमड़ी खिरे. मैंने कही कि "भई! यासु बड़ी बड़ी ठण्डीयें मैंने सहन करी हें, कभी चमड़ी मेरी खिरी नहीं" पर वो कहे कि "जे जे आप चिंता करो ही मत." अब अपनेकु करमचन्द जैसो कम्पाउन्डर् मिले तो क्या होयगो! मैंने दो दिन और बाट देखी कि ठण्डीके बखत शायद खिरती होयगी, ये एक नयो कौभाण्ड भयो. अब कानमेंसु भी चमडी खिरवे लगी. तो मैंने कही

कि ‘‘अब भागो यहांसु. नहीं तो करमचन्द कुछ सोच साचके कोई और एक दवा दे देगो तो करम अपने पूरे ही फूट जायेंगे.’’ वोही ‘‘यस्मै कस्मै प्रदातव्यम् यद्वा तद्वा भविष्यति.’’ तीनोंकी गोली ज्ञान कर्म भक्ति की मिलाके सबनूकु बांट दें. अब वो रिएक्शन् आ जाये. ये एक अच्छे वैद्यको प्रकार नहीं हे कि सबके लिये एक ही मार्ग.

(त्रिवेणीसंगम!!)

बम्बईमें नवनीतप्रिय शास्त्रीजीकी कथा हती तो एक भागवत पढ़वे आयो. अब वाने भागवत पढ़ी. भागवत पढ़वेके बाद, नवनीतप्रिय शास्त्रीजीकी कथाके बाद वाने टकोर करी कि तुम केवल भक्तिमार्गको सम्प्रदाय चलाओ. हमारे तो ज्ञान कर्म और भक्ति को त्रिवेणी संगम हे. या बातको मोकु बड़ो बुरो लग्यो. मैंने कही कि ‘‘ऐसी कैसी बात? याको मतलब कि याकी सरस्वती तो सूखी भई हे.’’ ‘‘बोले क्यों?’’ मैंने कही ‘‘त्रिवेणीसंगममें सरस्वती तो सूखी भई हे. गंगा और यमुना दो ही नदी बेह रही हें. सरस्वती तुम्हारी सूख गई हे. दोको ही संगम हो रह्यो हे ज्ञानको और कर्मको. कहां हे त्रिवेणीको संगम? जहां त्रिवेणी संगम हे वहां द्विवेणी ही हे गंगा और यमुना की. सरस्वती सूखी भई हे. सरस्वती तुम्हारी भी सूखी भई हे. करो तुम तुम्हारे त्रिवेणीको संगम. हमारे तो भक्तिमार्गको सम्प्रदाय हे.’’ **‘‘भूल जिन जाय मन अनत मेरो. अन्यसम्बन्धते अधिक डरपत रहों सकल साधनहु ते कर निवेरो’’** (श्रीहरिरायजी).

तो ऐसे वैद्य या तरहकी दवायें बांटते फिरें. सबके लिये सब मार्ग खुले हें जाओ. ‘‘चोर बनोके मोर यहां सब चलता हे.’’ ऐसो अर्थ आचार्यचरण नहीं करे हें. आचार्यचरण स्पष्ट करें हें **अष्टाविंशे हरेः गानं स्वभावाद् अपराधतः**. प्रत्येक गोपीको एक ही स्वभाव हे ऐसी बात नहीं हे. प्रत्येक गोपीको अलग अलग स्वभाव हे. सारीकी सारी पुष्टिभक्त हें, लेकिन स्वभाव सबके एक जैसे नहीं

हें. पुष्टिभक्तिमें भी अलग अलग स्वभाव हें. उन सब स्वभावन्कु पेहचाननो जरूरी हे. जैसे कोई वैद्यके पास जाओ तो तुम्हारी सिम्पटम् पेहचाने. सिम्पटम् पेहचानके फिर दवा दे तो वा दवाईको लाभ हो सके. करमचन्दकी तरह तीनों रोगकी सम्भावना मानके तीनों रोगकी दवाई दे देवे तो वाको उपाय तो कछु हो नहीं सके. आचार्यचरण प्रत्येक गोपीके स्वभावकु पेहचाने हें. प्रत्येक गोपीके स्वभावकु पेहचानके फिर वाकी व्याख्या कर रहे हें. 'गोपी', गोपी माने कौन? वो "गोभि: कृष्णरसम् पिबति इति गोपी". अब सब गोपी गोपी. ज्ञान कर्म और भक्ति की सब गोपी. ऐसो त्रिवेणी संगम आचार्यचरणकी व्याख्यामें नहीं मिलेगो. अब आप लोग समझ जाओ "यस्मै कस्मै प्रदातव्यम् यद्वा तद्वा भविष्यति".

(गोपिजनन्के अपराधको स्वरूप)

याके लिये आचार्यचरण पेहलेसु कहें हें **स्वभावाद् अपराधत:**. प्रत्येक गोपीको अपनो अपनो चरित्र हे. प्रत्येक गोपीको अपनो अपनो स्वभाव हे. वो भक्त हें यह बात ठीक हे पर भक्तिके कारण वाने अपनो स्वभाव नहीं खोयो हे. वो भक्त हे और भक्त होवेके साथ साथ वाको स्वभाव भी हे. ये गान, प्रत्येक गोपीने अपने अपने स्वभावके अनुरूप कियो हे. "गोभि: कृष्णरसम् पिबति इति गोपी" के न्यायसू एक जैसो गान नहीं कियो हे. **अपराधत:** ये **'अपराध'** शब्द क्या हे? 'मान'. दरअसल जाकु 'अपराध' कह्यो जाय हे प्रभुके समक्ष जीव मान करे, ये जीवको अपराध, पर ये मान अथवा ये अपराध, लौकिक अपराध नहीं हे. ये अपराध भी भगवदात्मक अपराध हे. ये यद्यपि यहां वर्णन नहीं आयो हे, ये वर्णन आगे जाके गुसांईजीने कियो हे. क्योंकि मैं पेहले ही बता चुक्यो हूं कि ये निरोधको प्रकरण हे और निरोधको प्रकरण होवेके कारण हर चीजकु भगवान्ने अपनेमें निरुद्ध करी हे. जैसे इनके साधनन्को अपनेमें निरोध कियो हे. ऐसे ही इनके कुसाधनन्को भी भगवान्ने अपनेमें

निरोध कियो हे. मने यदि इनको अपराध भी घटित हो रह्यो हे, तो भगवदात्मक अपराध हे. कोई लौकिक अपराध नहीं हे.

एक कारण बताऊं. आरम्भमें जब गोपिकायें आई और भगवान्ने उनकु कह्यो कि तुम व्रजमें पाछे लौटके चली जाओ. वा बखत भगवान्के वाक्यन्कु अन्यथा केहते बखत ये स्पष्ट कह्यो **''मैवं विभो अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलम् प्राप्ता''** (भाग.पुरा.१०।२६।३१). सारे विषयन्को त्याग करके ये गोपिकायें जो भगवान्के पास आई हें, उनमें क्या मानादिके अपराध हो सकें हें? एक साधारण ज्ञानी या एक साधारण निष्काम कर्म करवेवालो साधक इन् गुणन्सु ऊपर उठ जाये हे, तो प्रभुचरण ये बात कहे हें कि साक्षात् अंगसंगवाली गोपिकान्में क्या ये अपराध संभव हे? दरअसल उनमें ये अपराध कतई संभव ही नहीं हे. पर भगवान्की रसात्मिका लीला हे, वाकी गतिरूपताकु प्रकट करवेके लिये भगवान् स्वयं उनके हृदयमें मानके रूपमें प्रकट भये हें. यानि ''दोषोपि भगवदात्मक:'' दोष भी इनके भगवदात्मक हे. वाको कारण कया? क्योंकि प्रकरण निरोधको चल रह्यो हे. भगवान् इनसू बंध गयो हे और ये भगवान्सू बंध गई हें ये मूलप्रकरण हे. या मूलप्रकरणकु समझके सारी बात आगे समझो, तब ये बात समझमें आ जायेगी. अब जो भगवान्सू बंध गई हें और भगवान् जिनसू बंध गयो हे, ऐसे भक्तन्के मान चाहे काम चाहे क्रोध चाहे ईर्ष्या इत्यादि गुण लौकिक नहीं हें. भगवान्ने ही उन लीलान्कु प्रकट करवेके लिये वा वा तरहके भाव उनके हृदयमें पैदा किये हें. यहां आके गुसांईजीने स्पष्ट कियो हे कि मान इनमें क्यों आयो? मान इनमें या लिये आयो कि भगवान् इनके साथ चले. भगवान्ने इनके गलेमें हाथ डाल्यो.

हमारे बम्बईमें एक नंदलाल हतो ऐसो चतुर कि कोई मिनिस्टर् आवे तो केमरामेन्कु दस रुपिया बीस रुपिया पचास रुपिया दे देवे;

करनो कछु नहीं. निरीहभावसु मिनिस्टर्के पीछे खड़्यो रहे. केमरामेन्कु इशारा कर दे कि ''फोटो पाड़ लो'' बस. क्यों? मिनिस्टर्के साथ फोटो आ जाये. अब वो मिनिस्टर् याकु जाने नहीं, ये मिनिस्टर्कु जाने नहीं सिवाय याके कि ये मिनिस्टर् हे. साथमें फोटो आ जाये और वो फोटो घरमें सज जाये. बड़े बड़े नेतान्के साथ, नासरके साथ वाको फोटो, नेहरुके साथ वाको फोटो. कोई ऐसो बड़ो नेता नहीं जाके साथ नंदलालको फोटो नहीं. अब वामें कारण क्या? केमरामेन्कु पचास रुपिये दिये तापर वो फोटो साथ पड़वेके कारण कितनो मान होवे वाको! कोई मिनिस्टर् बोल दे तो वाको कितनो मान हो जाये! वासू ऑफिसरें भी घबरावे लग जायें. साधारण आदमी वाके घरमें जावे और देखे कि जवाहरलाल नेहरुके साथ वो खड़ो भयो हे. कलाम नासरके साथ खड़ो भयो हे. देखते ही स्तब्ध हो जाये आदमी कि क्या व्यक्तित्व हे याको, बड़े बड़े सब नेतान्के साथ याको मिलनो-जुलनो हे. अब ट्रिक् वाकी केवल इतनी कि केमरामेन्कु वाने पचास रुपिया दिये. दादाजीके पास रोज आतो थो, मूलतानी हतो.

तो एक फोटो मिनिस्टर्के साथ होवेसू इतनो मान बढ़े तो जा बखत ठाकुरजी उनके गलामें खुद हाथ धर दें तो कितनो मान बढ़्यो. वो जो मान बढ़ायो वाको जिम्मेदार कौन? उनके गलामें खुद ठाकुरजीने हाथ डालके वा तरहको मान बढ़ायो. मान बढ़्यो तो बढ़्यो पर ऐसो बढ़्यो कि वो ठाकुरजी तक पहोंच गयो. मान बढ़े तो फिर वाकी कोई सीमा थोड़े ही हे. अब मान बढ़्यो और ठाकुरजी तक पहोंच्यो, तब ठाकुरजी तिरोहित भये. या बातकु समझावेके लिये कि बढ़ायो भयो मान मेरो हे. बढ़ायो भयो मान उतने अर्थमें सहायक हे कि जितने अर्थमें लीलामें सहायक हो सके हे. उतने अर्थमें सहायक नहीं हे कि जामें वो लीलामें व्यवधायक हो जाये. वाके लिये **'अपराध'** भी केह रहे हें, **'अवज्ञा'** भी

केह रहे हें कि गोपिकान्ने भगवान्की अवज्ञा करी. गोपिकान्ने भगवान्को अपराध कियो. ये अपराध और अवज्ञा की सामर्थ्य भी उनकी दी भई हे, ये बात मत भूलियो. ये बात कारिकामें समझमें नहीं आयेगी पर प्रकरण देखोगे तो समझमें आयेगी कि निरोधको प्रकरण हे. वाके लिये उनके दोषन्को भी निरोध हे, उनके गुणन्को भी निरोध हे, उनकी अच्छाईको भी निरोध हे और उनकी जो कुछ बुराई हें वाको भी निरोध हे.

श्रीयामुनेयाचार्य कहें हें "**वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथातथाविधः तदयं तव पादपद्मयोः अहम् अद्यैव मया समर्पितः**" (आळ.स्तोत्र ५२) जैसो मेरो शरीर हे, जैसो मेरो गुण हे, जो कुछ मैं हूं, जैसे मेरे गुण हें, "**तदहम् तव पादपद्मयोः**" जैसो मैं हूं तेरे पादपद्ममें "**अहम् अद्यैव मया समर्पितः**", मैं समर्पित हूं. अब समर्पित हूं तो जो कुछ भी हूं तेरो हूं. वामें मोकु चिन्ता करवेकी क्या बात हे! जब जीव भगवान्में निरुद्ध हो गयो और भगवान् जा बखत जीवमें निरुद्ध हो गयो, तो गुण और अवगुण, वाके दोष और वाके शील सब कुछ भगवदात्मक हो गये, वाको अब कुछ भी नहीं हे और सब कुछ वाको हे क्योंकि भगवान् वाको हे. जाको भगवान् हे वाकु क्या चीज नहीं हे! या लिये कहें हें कि **कृतावज्ञा गोपिका हि स्तोत्रं चक्रुः इति ईर्यते** उन्होंने स्तोत्र कियो. जिन् गोपिकान्ने भगवान्की अवज्ञा करी ऐसी गोपिकान्ने अपने स्वभावसू और अपराधके कारण ये गान कियो हे. ध्यानसू देखोगे तो भगवान्के या यशने प्रकट होवेके लिये जीवसु अपराध करवायो हे. असलमें स्वभाव जीवकु उत्तेजित कर रह्यो हे. नहीं तो यश प्रकट कैसे होयगो? यश प्रकट हो रह्यो हे, वाके कारण ये अपराध और स्वभाव यहां दीख रहे हें. यहां यश खुद प्रकट होनो चाह रह्यो हे. मार्ग शोध रह्यो हे.

जैसे ये थोड़ी विपरीत उपमा हे पर समझवेमें सहायक होयगी. अपने शरीरमें कोई विजातीय द्रव्य चल्यो जाये तो क्या होवे कि जो शरीरके श्वेतकण होवें हें, वो वा विजातीय द्रव्यकु पकड़-पकड़के खावें हें और वासू खूनमें उनको जोरदार संघर्ष होवे. वा संघर्षके कारण शरीरमें गरमी आवे हे. वा गरमीसू ही वो सारे विजातीय द्रव्य नष्ट होवें हें. अपन् क्या कहें कि ताप ज्यादा चढ़्यो, तो ज्यादा बीमार हे. ज्यादा ताप चढ़्यो वाको मतलब ये हे कि वाके अन्दर ज्यादा सामना हो रह्यो हे. जो कम ताप चढ़े तो खतम ही हो जाये पर क्या होवे कि ज्यादा संघर्ष इतनो बढ़ जाये, जो सहन नहीं हो पावे और जीव चल दे वो एक दूसरी कथा हे. नहीं तो ताप अपने आपमें बुरी चीज नहीं हे. ताप अपने आपमें एक सहायक चीज हे. एक विजातीय द्रव्य जो अपने शरीरमें आ गयो वाकु कोई तरहसु रक्त पचानो चाहे हे और पचावेके लिये गरमी पैदा करे हे जासू वो पच जाये. दरअसल ताप तो शरीरके निर्वाहके लिये होवे हे पर अधिक हो जाये तो लोग यों कहे हें कि तापके कारण चल्यो गयो. गयो तो विजातीय द्रव्यके कारण, तापके कारण नहीं. ताप तो ऐसी चीज हे कि अगर नहीं होतो तो विजातीय द्रव्य शरीरमें घोटाला कर देतो. अब अपनेकु वो विजातीय द्रव्य तो दीखे नहीं, दीखे तो ताप. ताप आ गयो और चल्यो गयो. ताप आयवेसू नहीं चल्यो गयो. ताप तो अच्छी वस्तु हती.

ऐसे यश जा बखत अन्दर आयो, तब स्वभावसू वाको संघर्ष शुरु हो जाये, प्रकट हो जाये ईर्ष्याके रूपमें. यदि यश स्वभावके साथ टकरावे नहीं, तो गान प्रकट कैसे होयगो? गान तो सहज ही वा रूपमें प्रकट भयो हे जैसे गान प्रकट होवे हे. वामें कोई खराबी नहीं हे पर जब भगवान्‌को यश अपने अन्दर आयो और अपने स्वभावके साथ टकरायो, तो वो प्रकट तो होयगो ही. अब

जाको तामस स्वभाव हे तो यश तामसरूपसू प्रकट होयगो. जाको राजस स्वभाव हे वो राजसरूपसू यश प्रकट होयगो और जाको सात्त्विक स्वभाव हे, वो सात्त्विकरूपसू यश प्रकट होयगो. प्रभुको यश एक बखत विजातीय द्रव्य बनके अपने स्वभावमें अन्दर आवे हे और अपने स्वभावसू टकराके फिर गानके रूपमें प्रकट हो जाये. अब गानके रूपमें जा बखत प्रकट हो रह्यो हे तो ताप तो होयगो ही. दरअसल तापमें खराबी नहीं हे. यहां खराबीको उदाहरण हे. उदाहरणमें खराबी हे. यहां श्रेष्ठतामें ले लो. ये जो स्वभाव प्रकट हो रह्यो हे, कोई भगवान्‌कु गाली दे रही हे, कोई भगवान्‌की प्रशंसा कर रही हे, कोई भगवान्‌कु केह रही हे कि "तुम वंचक हो." कोई केह रही हे कि "तुम कितव हो," कोई केह रही हे कि "तुम क्रूर हो." कोई केह रही हे कि "तुम दयालु हो." अब ये कि तुम दयालु हो कि तुम क्रूर हो कि तुम कितव हो कि तुम सज्जन हो, ये सब भगवान्‌के गानके रूपमें यश प्रकट हो रह्यो हे पर प्रकट कैसे हो रह्यो हे? स्वभावको माध्यम लेके. जैसे अपने शरीरके अन्दर रह्यो भयो जीवेको जो तत्त्व प्रकट होवे तापके रूपमें पर इतनो विजातीय द्रव्य आयो, वासू कितनो ताप चढ़्यो, याकु लेके प्रकट होवे. थोड़ो बहोत कोई विजातीय द्रव्य भयो होवे, तो सो डिग्री ताप आके ही छुटकारा हो जाये. अब कोई भयंकर विजातीय द्रव्य अपने शरीरके अन्दर जीवेके लिये गयो तो, वाकु जीतवेके लिये ज्यादा वाकु संघर्ष करनो पड़े. ज्यादा संघर्ष करे तो दो तीन चार डिग्री तक ताव आ जाये. जोर मारे तो पांच डिग्री तक ताव आ जाये. वा माध्यमकु लेके वो प्रकट हो रह्यो हे. दरअसल प्रकट हो रह्यो हे वाकी श्रेष्ठता हे, वाकी अश्रेष्ठता नहीं हे. ऐसे ही स्वयं यश प्रकट हो रह्यो हे. अपराध और स्वभाव ये तो केवल वाके माध्यम बने हें.

कारिका :

एकोनविंशतिविधा गोप्य: स्वस्य अधिकारत:.

एकोनविंशतिविधां स्तुतिं चक्रुः हरेः प्रियाम्.
राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा तथा।
एवं चतुर्विधा गोप्यः पतिमत्यो निरूपिताः॥३॥

विवरणम् :

उन्नीस प्रकारकी गोपिकान्ने अपने अपने अधिकारके अनुरूप भगवान्की उन्नीस प्रकारकी स्तुति करी, वो उन्नीस प्रकारकी कैसे हें वो गिना रहे हें.

(गोपीजनन्के प्रकार)

पेहले तो गोपीजनन्के दो प्रकार. एक तो श्रुतिरूपा गोपिकायें. वेदकी एक एक श्रुतियें गोपीके रूपमें प्रकट भई. प्रत्येक श्रुति परमात्माको ही प्रतिपादन करे हे पर तद्-तद् आचार्य, तद्-तद् ऋषिन्ने अपने अपने स्वभावके अनुरूप तद्-तद् श्रुतिन्को परमात्मासु भिन्न अर्थन्में योजन कियो. वो सारी श्रुतियें 'अन्यपराः' हो गई. एक एक भाष्यकार, एक एक ऋषिने एक एक श्रुतिको अर्थ परमात्मासु अलग जो बतायो, वो मानो ब्रजकी एक एक गोपिकान्को एक एक गोपन्के साथ ब्याह भयो. तो सारी श्रुतियां 'अन्यपराः' हो गई.

व्यासजीने आके "**अथातो ब्रह्मजिज्ञासाः**" (ब्र.सू.१।१।१) ब्रह्मजिज्ञासा करनी हे, करके फिरसु सब श्रुतिन्को ब्रह्मपरक अर्थ कियो. वो मानो एक रास हे. वो नामात्मक रास हे. वो जो समन्वयाध्याय व्यासजीने लिख्यो, वो एक नामात्मक रास हे. ये रूपात्मक रास हे. श्रुतियें अन्यपरा हें क्योंकि प्रथमतया श्रुतिन्में ऐसो व्यामोह उत्पन्न हो ही जाये हे. कोई भी श्रुति आई नहीं कि सबकु अपनो अपनो मोह उत्पन्न होवे कि या श्रुतिकु यहां घटाओ. कोई श्रुतिकु महादेवजीपरक घटा दे, कोई कार्तिकेयपरक घटा दे, कोई गणेशजीपरक घटा दे, कोई सूर्यपरक घटा दे, कोई निराकारपरक घटा दे, कोई निर्गुणपरक

घटा दे. जाके मनमें जो श्रुति आवे, वाकु वा पर घटा दें. ये श्रुतियें अन्यपरा: हो गई. ये श्रुतिरूपा गोपिकायें अन्यपरा हें. क्योंकि ऋषिनूने उनके ब्याह अलग अलग प्रमेयनूके साथ कर दिये.

दूसरी गोपिकायें कुमारिकायें हें. वो कुमारिकायें अनन्यपूर्वा केहवावें. अग्निरूपायें, अग्निकुमारिका. वो सब भगवानूको ही पतित्वेन वरण कर चुकी हें. कात्यायनी व्रतके प्रसंगमें भगवानूने उनकु वरदान दियो हे “**मया इमा रंस्यथ क्षपा:**” (भाग.पुरा.१०।१९।२७), शरदऋतुमें मैं तुम्हारे साथ रास करूंगो. अब दो विभाग भये गोपिकानूके, एक विवाहिता और दूसरी कुमारिका. जो विवाहिता गोपिकायें हें वो श्रुतिरूपा हें. जो कुमारिकायें हें वो ऋषिरूपा हें.

आचार्यचरण एक बड़ी सुन्दर बात निबन्धमें कहें हें कि ये ऋषियें श्रुतिके उल्टे-पुल्टे अर्थ बताके दुनियाकु व्यामोह पैदा करे हें पर खुद वैसो नहीं करें. खुद परमात्मोपासक होवें. ये अन्यपरक नहीं होवें पर दुनियाकु अन्यपरक कर देवें. ऐसे आचार्यचरण आज्ञा करें. गामको निर्गुण निर्धर्मक निराकार निर्विशेष को अर्थ बताके श्रीशंकराचार्य “**भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते**” (शंकाराचार्य) करें. पूरे गामको निर्गुण निर्धर्मक निराकार निर्विशेष बताके खुदके लिये “**भज गोविन्दं...**”. तो ये सब कुमारिकायें, ऋषि हें जितने, ये ओर कहीं नहीं जावें. श्रुतीनूको अर्थ अन्यपरक कर दें. दूसरेनूकु अन्यपरक कर दें. हर ऋषिने सबकु अलग अलग अन्यपरक कर दियो हे पर खुद “**भज गोविन्दं...**”. ये कभी अन्यपरक नहीं होवें. यासू ये सब ऋषियें ‘अनन्यपूर्वा’ हें. याही केलिये आचार्यचरण आज्ञा करे हें “**राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा तथा एवं चतुर्विधा गोप्य: पतिमत्यो निरूपिता:**”. पतिमती गोपी चार प्रकारकी हें. राजसी तामसी सात्त्विकी और निर्गुणा. मने ये उनके स्वभावको वर्णन हे. जा तरहसु ये पतिमती गोपिकायें चार प्रकारकी हें वाही तरहसु कुमारिकायें

भी चार प्रकारकी हें. सात्त्विक राजस तामस और निर्गुणा. पेहलो श्लोक गावेवाली गोपिका सात्त्विक-राजसी हे. दूसरो श्लोक गावेवाली सात्त्विक-तामस हे. तीसरो श्लोक गावेवाली गोपिका निर्गुण हे.

कारिका :

तथैव अनन्यपूर्वाश्च प्रार्थनाम् आहुः उत्तमाम्।
गुणातीताः सात्त्विकीश्च तामसी राजसीस्तथा॥४॥

विवरणम् :

(स्तुतिन्के प्रकार)

अब तुम गोपीगीतके श्लोकन्पे ध्यान दोगे तो कुछ श्लोक ऐसे हें जो प्रार्थनापरक हें और कुछ श्लोक वर्णनपरक हें. प्रार्थनापरक श्लोक कुमारिकान्के हें. वर्णनपरक श्लोक श्रुतिरूपान्के हें. श्रुतिन्को काम क्या? ब्रह्मको वर्णन करनो. तो वर्णनपरक श्लोक तो श्रुतिरूपान्के द्वारा वर्णित श्लोक हें और प्रार्थनापरक, मने जा चीजकी प्रार्थना की गई हे कि "तु प्रकट हो जा," कि "तु आ जा," ऐसे ऐसे प्रार्थनापरक श्लोक कुमारिकान्के श्लोक हें अर्थात् ऋषिरूपा गोपिकान्के.

यहां विवाहितान्कु 'अन्यपूर्वा' कह्यो जाय और कुमारिकान्कु 'अनन्यपूर्वा' कह्यो जाय. अन्यपूर्वाको मतलब क्या? पेहले कहीं और गई हें और फिर कृष्णके पास आई हें. अनन्यपूर्वा वो जो पेहले कहीं भी नहीं गई हें और कृष्णके पास आई हें. इनके सारे प्रसंगमें पेहले कुमारिकान्को वर्णन करे हें. अनन्यपूर्वा गोपिकान्में पांचमों श्लोक गावेवाली गोपिका सात्त्विकसात्त्विक हे. छठ्ठो श्लोक गावेवाली सात्त्विक-तामस हे. सातमों श्लोक गावेवाली सात्त्विक-राजस हे. आठमों श्लोक गावेवाली निर्गुण हे.

कारिका :

कृष्णभावनया सिद्धा विशेषेणाह ताः शुकः।

अनन्यपूर्विकाएव पुनः तिस्रो मुदा जगुः ॥५॥

विवरणम् :

ये जो ऋषिरूपा गोपिकायें हें, इनकी कृष्णभावना अतिशय प्रबल हे. याके लिये शुकदेवजी इनको वर्णन प्रथमतया करनो चाहे हें. अनन्यपूर्वा राजसक्रमसु तीनश्लोक गावे हें. नवमों श्लोक राजस-सात्त्विकने गायो हे. दसमों श्लोक गावेवाली गोपिका राजस-तामस हे. ग्यारहमों श्लोक गावेवाली गोपिका राजस-राजस हे. उन्नीस श्लोकनूमें कौनसी गोपिकाने कौनसो श्लोक कह्यो हे, ये बात अपन् अब समझ रहे हें. तो दो प्रकारकी गोपिकायें अपनूने समझी. ऋषिरूपा कुमारिका और श्रुतिरूपा अन्यपूर्विका. कुमारिका गोपिकानूके प्रथम चार श्लोक हें. वो गोपिकायें चार स्वभावकी हें. एक सात्त्विक स्वभावकी हे, एक राजसी स्वभावकी हे, एक तामसी स्वभावकी हे और चौथी निर्गुण स्वभावकी हे. ये चार श्लोकनूके चार अधिकारिनूको वर्णन आ गयो. फिरसु तीन श्लोक और उन्हींके हें. **अनन्यपूर्विकाएव पुनस्तिस्रो मुदा जगुः** और तीन श्लोक उनके ही अधिकीमें कहे हें.

कारिका :

सात्त्विकी तामसी चैव राजसी चेति विश्रुताः।
सपूर्वाश्च ततस् तिस्रः तामसी राजसी परा॥६॥
पुनस्ताएव त्रिविधा ''अटती''त्यादिभिस् त्रिभिः॥
राजसी तामसी चैव सात्त्विकीति विभेदतः॥७॥

विवरणम् :

पश्चात् अनन्यपूर्वा बारमें, तेरमें और चौदवें तकके श्लोकनूमें राजस क्रमसु गान करे हें और पन्दरवें सोलवें और सत्रवें तक तामस क्रमसु गावे हें. या प्रकार गानमें बारमों श्लोक गावेवाली गोपिका राजस-तामस हे, तेरमों श्लोक गावेवाली गोपिका राजस-राजस हे,

चौदमों श्लोक गावेवाली गोपिका राजस-सात्त्विक हे.

याके बाद वे ही अन्यपूर्वा पन्दरमों, सोलमों और सत्तरमों श्लोक तामस क्रमसु गान करें हें. पन्दरमें श्लोकंकु गावेवाली गोपिका तामस-सात्त्विक हे. सोलमें श्लोककु गावेवाली तामस-तामस हे.

कारिका :

अनन्यपूर्वा द्विविधा राजसी सात्त्विकी तथा।
तमसा तामसी तत्र नास्ति इति एकोनविंशति:।।८।।
अथवा प्रार्थनाद्या: या: सप्तान्ते द्विविधा पुन:।
चतुर्थ्यस्तु समास्तत्र तत एकोनविंशति।।९।।

विवरणम् :

सत्तरवें श्लोककु गावेवाली तामस राजस हे.

अन्यपूर्वा गोपिकान्ने सत्तरमें श्लोकमें अपने कथनको उपसंहार कर लियो. अत: अब तामस क्रमसु अढारवों और उन्नीसवों श्लोक अनन्यपूर्वा गावे हें. अढारवों श्लोक गावेवाली गोपिका तामस-सात्त्विक हे. उन्नीसवों श्लोक गावेवाली तामस-राजस हे. या प्रकार उन्नीस श्लोकन्में उन्नीस गोपिकान्को वर्णन आयो.

अथवा दूसरो कल्प ये भी बतायो कि प्रार्थनाके नौ श्लोक मने पेहलो दूसरो तीसरो पांचमों छठ्ठो सातमों और आठमों और वाके बाद तेरमों और चौदमों, ये श्लोक अनन्यपूर्वा मने कुमारिकान्ने गाये हें तथा अन्यपूर्वा मने विवाहितान्ने भी नव दस ग्यारह बारह पन्द्रह सोलह सत्तर अढार और उन्नीस ऐसे नव श्लोक गाये हें. बाकी चोथो श्लोक दोनोंन्ने गान कियो हे.

कारिका :

तत्तद्वाक्यानुसारेण तासां भावो निरूप्यते।
अन्यथाऽनेकता स्तोत्रे प्रकारैर् नोपयुज्यते।।१०।।

विवरणम् :

तद्-तद् गोपिकान्के भावानुसार श्रीशुकदेवजीने वर्णन कियो हे और याके लिये इतनी विविधता भगवान्की यामें आ गई हे. एक ही भगवान् उनके लिये क्रूर हो गयो हे और एक ही भगवान् उनके लिये दयालु भी हो गयो हे. नहीं तो ये जो प्रकार हे वाको वर्णन कैसे हो सके?

----*----

॥ श्लोक. १ ॥

उत्थानिका :

तत्र प्रथमं राजस्य: काश्चन गोप्य आहु: जयति इति :

॥ श्रीगोप्य ऊचु: ॥

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज: श्रयत इन्दिरा शश्वदत्रहि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥१॥

सुबोधिनी :

मंगलार्थो अत्र 'जय' शब्दः, यथा फलं साधयेत् स्तोत्रं तथा निर्विघ्नार्थः. अन्यथा क्रियाम् आदौ न प्रयुंज्यात्. त्वदवतारेण व्रजः सर्वोऽपि कृतार्थो, वयमेव परम् अकृतार्थाएवेति यथा वयमपि कृतार्था भवामः तथा यत्नः कर्तव्य इति वक्तुं व्रजस्य तवावतारेण सर्वोत्कर्षो जात इति आहुः ते जन्मना व्रजो अधिकं जयति इति. सर्वोत्कर्षेण स्थितिः जयो, अधिकजयो वैकुण्ठादपि उत्कर्षः. नहि वैकुण्ठे भगवान् एवंविधां लीलां करोति. यद्यपि मथुरायां जन्म जातं तथापि तेन जन्मना न मथुरा सर्वोत्कर्षेण स्थिता किन्तु व्रजएव.

ननु भगवज्जन्मनः सर्वोत्कर्षहेतुत्वं न लोके प्रसिद्धम्, अनन्यत्वेन एकत्वाद्, अतः तादृश उत्कर्षहेतुः वक्तव्यो यो लोके प्रसिद्धः इति चेत्, तत्र आह श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि इति. अत्र व्रजे इन्दिरा सर्वदा श्रयते हीनभावेन आश्रयं कुरुते. वैकुण्ठे तु सैव नियता भार्येति न तस्याः सर्वदा श्रयणं कर्तव्यं भवति, इह तु तादृश्यो वयम् अनेका इति तस्याः स्वास्थ्याभावात् कदा वा ममावसरो भविष्यतीति निरन्तरं सेवते. अतो लक्ष्मीस्थित्या लोका उत्कर्षं मन्यन्ते सा पुनः लक्ष्मीः गोकुलाश्रया जाता. हि युक्तश्च

अयं अर्थः : पतिव्रता हि सा, यत्र पतिः स्वयम् अन्याधीनतया तिष्ठति भक्तेषु कृपां ख्यापयितुं तदुक्तम् उलूखलप्रकरणे, तत्र तद्भार्या सुतरामेव आश्रयते इति किम् आश्चर्यम्! तव जन्मना व्रजस्य सर्वोत्कर्षः सर्वजनीनः, अतः तव रमणे न कापि न्यूनता न वा लक्ष्म्या मनसि विषादो, अंगीकृतत्वात्.

अतः कारणाद् अस्मदर्थम् आगतेन त्वया दृश्यताम् इदं गोकुलम् एकदा द्रष्टव्यम्. वाक्यार्थो वा कर्माग्रे वक्ष्यमाणः. तावकाः त्वयि धृतासवः दिक्षु त्वां विचिन्वत इति दृश्यताम्. एतादृशो अर्थो अनुचित इति अनुचितप्रदर्शनेन बोधयन्ति. लोका हि ब्रह्मादयः त्वम् अवतीर्णो व्रजे वर्तसे इति निश्चित्य समायान्ति, व्रजस्थाः पुनः अस्मदादयः दिक्षु विचिन्वन्ति - इयं महति अनौचिती.

ननु व्रजस्थानां भक्तिः नास्ति, अन्यथा विरहे म्रियेरन्, अतः अभक्ता न पश्यन्ति इति युक्तम् इति चेत्, तत्र आहुः त्वयि धृतासव इति, त्वदर्थमेव धृता असवः प्राणाः यैः. यदैव त्वदनुपयोगं ज्ञास्यन्ति तदैव त्यक्ष्यन्ति इति भावः. अतएव त्वां विचिन्वते प्राणान् आश्वासयितुम्, अल्पविलम्बेऽपि प्राणा गमिष्यन्ति इति. अन्यथा व्रजे गच्छेयुः, प्रातः त्वमेव आयास्यतीति अन्वेषणं व्यर्थमेव स्यात्. दिक्षु त्वदीयाः त्वयि सतीति महद्दैन्यम्, अतः एकवारं त्वदीयाः पश्य इति प्रार्थना. एवम् एकया दर्शनं प्रार्थितम्. दयित! इति सम्बोधनाद् भर्त्रदर्शनेन स्त्रीणां जीवनं न युक्तम् इति निरूपितम्. यद्यपि भगवान् चेत् पश्येत् तदा न कोऽपि पुरुषार्थः सिध्येत् तथापि दैन्यं दृष्ट्वा आत्मानमपि प्रदर्शयेद् इति तथा प्रार्थना॥१॥

विवरणम् :

ये राजसी गोपी बोल रही हे. अब ये राजसी क्यों हे? ये जब हम अच्छी तरहसु श्लोक पढ़ लेंगे तब समझमें आयेगो. वाने

क्या क्या बात कही. ये बात केहवेमें वाको राजस स्वभाव कैसे प्रकट भयो? अभी अपन् ये मानके चलें कि ये राजसी गोपी हे. अब वाको राजसी स्वभाव कैसे प्रकट हो रह्यो हे वो पूरो वर्णन पढ़ेंगे तब समझमें आयेगो.

(जयति)

मंगलार्थो अत्र 'जय' शब्दः. 'जय' शब्द मंगलके लिये हे. 'जय' को अर्थ मंगल नहीं हे पर मंगल करवेके लिये 'जय' शब्द हे. जैसे ये यश गान कर रही हें तो मंगल होवे पर मंगल क्या? ''आये भवन मेरे'' आवे हे न! पदमें. मेरे भवनमें आये ये ही सबसु बड़ो मंगल हे. ठाकुरजी प्रकट हो जायें, यासू बड़ो मंगल भक्तकु कोई ओर हे नहीं. प्रभु प्रकट होंय याके लिये **'जयति'** केह रही हें. **यथा फलं साधयेत् स्तोत्रं तथा निर्विघ्नार्थः**. कथंचित् या यशगानको फल प्रभु प्रकट हो जाये, वाके लिये **'जयति'** केह रही हे. मने बोलवे जा रहे हें पर मनमें एक हिचक आ गई कि ऐसो शब्द मुंहसू नहीं निकल जाये कि जासू प्रकट नहीं होवे.

जब श्रीमहाप्रभुजीकु संन्यास लेनो थो तो वा समय कुटियामें अग्निको प्राकट्य भयो. तब महालक्ष्मीजीने कही ''निकलो निकलो निकलो.'' सो महाप्रभुजी निकल गये. निकलो या अर्थमें नहीं कही कि घर छोड़के निकल जाओ. वो कुटिया जो जल रही थी वाके लिये कही हती पर आपने वाकु संन्यास लेवेकी पत्नीकी आज्ञा मानी.

कोइने कवितामें कही ''मतिराम हरी चूड़ियां खनकी''. मने हरी चूड़ियां खनकी पर वो 'मतिराम' ''मति राम हरी'' हो गयो. 'मतिराम' वाको नाम हतो. तो 'मति' और 'राम' अलग हो गये. सो ''मति राम हरी'' ऐसे हो गयो. तो दो साल तक वासु कविता

बननी ही बन्ध हो गई. ‘‘मति राम हरी’’ ऐसो शब्द जो निकल गयो पेहलेसु तो वासु दो साल तक कविता बननी ही बन्ध हो गई. वा शब्दको ऐसो प्रभाव पड़ गयो. शब्दको भी बड़ो विचित्र प्रभाव पड़ जाये ना! कोई तथास्तु केह जाये. वाने कही ‘‘मति राम हरी चूड़ियां खनकी’’ और कोइने तथास्तु केह दी तो वो दो साल तक चूड़ियां ही खनकातो रह्यो. क्योंकि मति तो रामने हर ली. तो ऐसे कोई शब्द न निकल जाये, वाके लिये पुराने लोगन्के मनमें बड़ी सावधानी रेहती. अगर आपकु ख्याल होय तो कोई अपन्सु जायवेकी आज्ञा मांगे तो अपन् यों नहीं कहें कि ‘जाओ’ पर कहें कि ‘‘जाय आओ’’. अपन् यों नहीं कहें कि ‘जाओ.’ क्योंकि ‘जाओ’ कहें और सचमुचमें चल्यो जाय तो! ‘‘चलन चहत अब कृपानिधाना’’ तो मुश्किल हो जाये ना! याके लिये अपने यहां ‘जाओ’की आज्ञा नहीं दें. प्राचीन पुराने लोग जब जायवेकी आज्ञा मांगे तो अपन् ‘जाओ’ नहीं केहके ‘‘जाय आओ’’ कहें हें. मने जाओ भले पर जाके आओ. ऐसे ही गोपिकान्को हृदय इतनो उद्विग्न हे प्रभुके दर्शन नहीं होवेके कारण, तासू बहोत सावधानीसु पेहले पेहले ही केह रही हें **‘जयति’**. अरे! सब बात बादमें सम्भाल लेंगे पर एक बखत जय तो हो जाये. जय हो जाये तो सब बात संभल जायेगी. या बखत तो प्रभुके अप्रकट होयवेसु पराजय हो गई. मने प्रमाणकी पराजय हो गई, साधनकी पराजय हो गई. क्योंकि प्रभु जा बखत अप्रकट हो जायें, तो फिर सारे साधन परास्त हो गये.

कुमारिकायें पुष्टिजीवकी साधनशक्तिको स्वरूप हें. श्रुतिरूपा गोपिकायें पुष्टिजीवकी प्रमाणशक्तिको स्वरूप हें. पुष्टिजीव इतनी ही साधना कर सके हे कि ‘‘**नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः**’’ (भाग.पुरा.१०।१९।४). पुष्टिजीव इतनो ही जान सके हे कि ‘‘**अक्षण्वतां फलम् इदं न परं विदामः सख्यः पशूननुनिविवेशयतोर् वयस्यैः. वक्त्रं व्रजेशसुतयोर्**

अनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतम् अनुरक्त कटाक्षमोक्षम्'' (भाग.पुरा.१०।१८।७). पुष्टिजीवन्की प्रमाणशक्तिको आधिदैविक स्वरूप श्रुतिरूपा गोपिकायें हें. पुष्टिजीवन्की क्रियाशक्तिको आधिदैविक स्वरूप कुमारिकायें ऋषिरूपा गोपिकायें हें. जा बखत भगवान् तिरोहित भये, वा बखत सब साधनन्की पराजय हे. अब उन साधनन्की जय, उन साधनन्की सामर्थ्यसू तो हो नहीं सके हे. प्रभुकी सामर्थ्यसू ही हो सके हे. उनकी क्रियाशक्तिको जो साधन हे और उनकी ज्ञानशक्तिको जो साधन हे, मने श्रुतिरूपा और ऋषिरूपा गोपिकान्की विजय कायमें निहित हे? प्रभुके प्रकट होवेमें, प्रकट प्रभु ही उनको मंगल हे.

(**'जयति'** सु मंलगस्थापन)

मंगलार्थो अत्र 'जय' शब्दः. मंगल ही उनकी विजय हे. वाके लिये केह रहे हें कि **जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः. यथा फलं साधयेत् स्तोत्रं तथा निर्विघ्नार्थः.** ये स्तोत्र अपने फलकु सिद्ध कर दें, गोपिकान्को मन वा बखत ऐसो आर्द्र हो गयो **'जयति'** शब्द केहवेसु. **अन्यथा क्रियाम् आदौ न प्रयुंज्यात्.** क्रियासु वाक्य शुरु नहीं होवे. **ते जन्मना व्रजः अधिकं जयति.** ऐसे क्रिया तो अन्तमें आनी चइये पर कोई तरहसु मुंहसू गड़बड़ निकल जाये और ''मति राम हरी'' हो जाये वामें प्रभु प्रकट नहीं होवें तो व्याकरणको खंडन होतो होय तो होवे दो पर पेहले मंगल तो कर दो. जैसे घरमें रेहवे तो बादमें जावें पर पेहले कुम्भ स्थापन कर आवें. जब व्यवस्था हो जायेगी तब रेहवे जायेंगे पर पेहले एक बार कुम्भ तो स्थापन कर दें. ऐसे **'जयति'** सु गोपिकान्ने मंगल स्थापन कर दियो. अब वाकु भरते रहेंगे जब समय आयेगो. मंगल या बखत बहोत पेहली आवश्यकता हे. प्रभुके प्रकट होयवेमें मंगल निहित हे. नहीं तो **क्रियाम् आदौ न प्रयुंज्यात्** नहीं तो क्रियापदकी पेहले क्या आवश्यकता थी!

(त्वदवतारेण व्रजः सर्वोऽपि कृतार्थः !)

त्वदवतारेण व्रजः सर्वोऽपि कृतार्थो. अब देखो एक एक राजसभाव. **जयति** तो कह्यो वो तो यश हे. अब वो यश स्वभावसू टकराके आ रह्यो हे. अब धीरे धीरे टोन्टिंग् शुरु हो रही हे. वो राजस स्वभावको यश हे. कहें हें **त्वदवतारेण व्रजः सर्वोऽपि कृतार्थो.** अरे! तेरे प्रकट होवेसू, तेरे अवतारसू सारो व्रज कृतार्थ हो गयो. मने अब जो तू प्रकट नहीं होयगो तो व्रजमें अकृतार्थता हो जायेगी. बोल तोकु क्या इच्छा हे? क्या तू अपने अवतारकु अव्यवस्थापित करवे जा रह्यो हे? अब वो ऐसे नहीं केह रही हें पर वाके भीतर छिपे भये अन्दरके राजसभाव ऐसे हें.

हमारे एक परिचितसु हम महीना, दो महीनासु नहीं मिले हते. सो हमने एक दिन सोची कि चलो उनसु मिल आवें. अब उनके घरमें झगडा चल रह्यो थो. पर हमकु पता नहीं हतो कि उनके घरमें झगड़ा चल रह्यो हे. जब हम घरमें घुसे तो पता चल्यो कि झगड़ा चल रह्यो हे. अब लौटके भी कैसे जायें! अब हमारे घुसवेसू उनको झगड़ा तो बन्ध हो गयो पर सब मुंह लटकाके गम्भीर चेहरा बनाके बैठ गये. अब उनकी माँने तो बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करी कि ‘‘आप पधारे, बड़ो आनन्द भयो, अच्छो लग्यो’’ पर हम भी समझ रहे हते कि कितनो आनन्द भयो या बखत! एक लड़काने तो केह ही दियो कि ‘‘रातकु इतनी देरसु कैसे पधारे? सुबह पधारियो.’’ तो मैंने कही ‘‘बहोत अच्छा, तो मैं जा रह्यो हूं.’’ पर एक बखत कबूल तो कर लें तो हम भी भग जायें. अब घुस ही गये तो कैसे भगें! ऐसे ही भाव व्यक्त हो जाये. अब भयो विनयसु पर झगड़ाके समय क्यों आ गये! अब झगडा तो रात्रि जैसो अन्धकार ही हे. यासू कही कि ‘‘सुबह पधारियो.’’

ऐसे ही याके मुंहसु निकल जाये कि **ते जन्मना व्रज: सर्वोऽपि कृतार्थो**. तेरे जन्मके कारण सर्व व्रजमें कृतार्थता हे. जब तेरे जन्मसू कृतार्थता हे और तू प्रकट नहीं हो रह्यो हे तो तेरे जन्मको प्रयोजन क्या? ये राजसभाव अन्दरको. **वयमेव परम् अकृतार्थाएवेति यथा वयमपि कृतार्था भवाम: तथा यत्न: कर्तव्य: इति वक्तुं व्रजस्य तवावतारेण सर्वोत्कर्षो जातः इति आहु:.** सारो व्रज तो कृतार्थ भयो पर हमतो अभी तक कृतार्थ नहीं हो पाई. क्योंकि तू प्रकट नहीं हो रह्यो हे. अब ये क्या न्याय कि सारो व्रज तो कृतार्थ भयो पर यहां हम भी रेह रही हें वो कृतार्थ नहीं हुई. क्या हम व्रजमें नहीं हें! हम भी जासू कृतार्थ होवें ऐसो यत्न करनो चइये.

(प्रक्षिप्तमें भी प्रक्षिप्त!!)

अभी के.का.शास्त्रीने गीता छपवाई. यामें कही कि ‘‘गीताके सातसो श्लोक महाभारतमें प्रक्षिप्त हें.’’ ये बात तो हमकु समझमें आ गई कि सारी गीता महाभारतमें प्रक्षिप्त हे. सारेके सारे सातसो श्लोक झूठे. फिर कहे कि ‘‘सातसो श्लोकन्‌मेंसु सत्तर श्लोक अप्रक्षिप्त हें.’’ तब हमारो माथो ठनक्यो कि याको मतलब क्या? जब सारी गीता झूठी तो छेसो तीस श्लोक ज्यादा झूठे! भई झूठेमें झूठो क्या! कोई न्युटन्‌के लिये कहे हें कि वाने बिल्ली और बिल्लीके बच्चा कु निकलवेके लिये घरकी दीवारमें दो छेद बनवाये. कोईने पूछी कि ‘‘दो छेद क्यों रखवाये?’’ तो वाने कही कि ‘‘एकमेंसु बिल्ली निकलेगी और दूसरेमेंसु बिल्लीको बच्चा निकलेगो.’’ तो वाने कही ‘‘बड़े छेदमेंसु बच्चा भी निकल जायेगो.’’ तो कहें कि ‘‘ये बात तो समझमें आई ही नहीं हती.’’ अरे! जब सारी गीता ही प्रक्षिप्त हे, सातसोके सातसो श्लोक झूठे तो सत्तरकु ओर झूठो केहवेको मतलब क्या? अब बड़े शास्त्री हें तो उनकु ये बात समझमें नहीं आवे. हमारे जैसेन्‌कु ये बात समझमें आवे. ये तो समझमें आ

जावे कि सातसो श्लोक झूठे पर ये समझमें नहीं आवे कि सातसोमेंसु सत्तर श्लोक और कैसे झूठे? पर वाने या आधारपे पूरी किताब ही छपवा दी. गुजरात गवर्नमेंट्ने वो किताब छपवाई हे. सातसो श्लोक झूठे और सातसोमेंसु वो सत्तर श्लोक झूठे. अब बड़े बड़े शास्त्रीयन्में ऐसे ऐसे घोटाला होवें हें. अब पुष्टिमार्गको तिलक और लगायो हे, ये वाकी खूबसूरती.

(व्रजको सर्वोत्कर्ष)

श्रीठाकुरजीपे गोपिकायें कुछ ऐसो ही आरोप लगा रही हें कि सारो व्रज कृतार्थ और हम अकृतार्थ!! ये कौनसो गणित हे महाराज, ये जरा हमकु समझाओ! या तो तुम अपनो गणित सुधारो. सारो व्रज कृतार्थ तो हम भी कृतार्थ, क्योंकि हम भी तो व्रजमें हें. यदि हम कृतार्थ नहीं तो सारो व्रज कृतार्थ कैसे? हमकु ये समझाओ. दोनों बात कैसे हो सके हें? ये राजस स्वभावके कारण पूछ रही हें. स्तुति कर रही हे मने भगवान् स्तुत्य हे, ये बात समझमें आ रही हे पर राजस स्वभाव कोई न कोई निन्दामें प्रवृत्त करे हे. दबी जुबानकी लीला हे कड़क निन्दा नहीं. कड़क निन्दा प्रकट हो जाये तो तामस स्वभाव प्रकट हो जाये. दबी जुबानसु निन्दा हे कि भई सोचो तो जरा! "राज मुखारविन्दसु आज्ञा करें और दास मनमें विनती करे." ऐसे जो सोचे वो राजस स्वभाव केहवावे. या तरहसु एक गोपिका केह रही हे **सर्वोऽपि व्रजः कृतार्थो वयमेव परम् अकृतार्था.** ये कौनसो हिसाब हे ये समझाओ महाराज! नहीं तो अपनो गणित सुधारो. **यथा वयमपि कृतार्था भवामः तथा यत्नः कर्तव्यः**. ऐसो कुछ यत्न करो. **इति वक्तुं व्रजस्य तवावतारेण सर्वोत्कर्षो जात इति आहुः**. तेरे व्रजमें अवतरित होवेके कारण व्रजको परम उत्कर्ष भयो क्या कहें! यों ताना मार रही हें. कैसो उत्कर्ष भयो कि हम वेणुनाद सुनके रातकु वनमें आ गई. हमने

तेरी बातको जवाब देके सब कुछ तोकु समझा भी दियो और वाके बाद भी तू अप्रकट हो गयो! ये कैसो उत्कर्ष हे व्रजको! **ते जन्मना व्रजो अधिकं जयतिइति. सर्वोत्कर्षेण स्थितिः जयो, अधिकजयो वैकुण्ठादपि उत्कर्षः.** कहें हें कि हे प्रभु! तेरे जन्मके कारण व्रजको अधिक उत्कर्ष हे. बोले कितनो उत्कर्ष? कहें हें इतनो उत्कर्ष कि जितनो उत्कर्ष वैकुण्ठमें भी नहीं हे.

(मायावादीन्की माया!)

ये ज्ञानमार्गी लोग खोटे खोटे अर्थ करें. विकुण्ठ कहें हें मानो मुक्ति. अब विकुण्ठ मने ज्ञान जामें कोई कुण्ठा नहीं रेह जाये. मने गुसांईजी केह रहे हें कि भक्तिमें कुण्ठा रहे हे. विकुण्ठ माने ज्ञान और वैकुण्ठ में क्योंकि भगवान्को जन्म नहीं हे क्योंकि ज्ञानमें भगवान् अजन्मा हे. भक्तिमें भगवान्को मायिक जन्म होवे हे. अब वोही मायिक जन्म हो जाये. अब जैसे पेड़ हें, झाड़ हें वगैरह वगैरह पर लकड़ी काटवेवालेकु क्या दीखे, लकड़ा. ऐसे भगवान्की लीलामें विरुद्धधर्माश्रयता हे, अलौकिकता हे, सब हे पर मायावादी ज्ञानीकु केवल माया ही दीखे. माया लाओ कहीं न कहींसु. वर मरो, कन्या मरो पर पुरोहितकी झोली भरो. वैसे माया माया माया... लाओ पागलकी तरहसु. नहीं आती होय कहींसु भी पर मायाकु पकड़के ले आओ. भगवान्को जन्म नहीं हे तो कैसे जन्मे? मायाके कारण जन्म हो जाये. अरे भाई! भगवान्के उद्यानमें लीला हे, माया भी हे और कितने प्रकारकी माया हे, योगमाया हे, सर्वभवनसामर्थ्यरूपा माया हे. कई प्रकारकी माया हें पर इनकु एक ही प्रकारकी माया दीखे अविद्यारूपा माया. अविद्याके कारण भगवान्को जन्म हो जाये. वैकुण्ठमें भगवान्को जन्म नहीं हे और भक्तिमें जन्म हो जाये हे याके लिये ज्ञानको अधिक उत्कर्ष हे, याकु अपन् नहीं देखें हें ऐसो वे माने.

(व्रजको माहात्म्य : वैकुण्ठादपि उत्कर्षः)

पर आचार्यचरण क्या कहें हें, **अधिकजयो वैकुण्ठादपि उत्कर्षः** वैकुण्ठसु अधिक उत्कर्ष क्यों हे? क्योंकि **न हि वैकुण्ठे भगवान् एवंविधां लीलां करोति.** जा तरहकी लीला भगवान् व्रजमें कर रहे हें वा तरहकी लीला वैकुण्ठमें सम्भव नहीं हे. याको कारण क्या? क्योंकि वैकुण्ठमें तो सब कुछ निर्गुण हे. व्रजको माहात्म्य निर्गुणताके कारण नहीं हे. यद्यपि व्रजमें भी जो निर्गुण भक्त हें, जिनके उद्गार आगे जाके आयेंगे, उनकु महाप्रभुजी कहेंगे कि बड़े उत्तम उद्गार हें पर व्रजको माहात्म्य वा निर्गुण उद्गारन्के कारण या भक्तन्की निर्गुणताके कारण नहीं हे. **व्रजको माहात्म्य हे तामस-भक्तन्में भगवान्के निरुद्ध होवेके कारण.** ध्यानसू समझो या बातकु कि व्रजको माहात्म्य निर्गुण-भक्तन्के कारण नहीं हे, व्रजको माहात्म्य भगवान्के कारण भी नहीं हे, व्रजको माहात्म्य भक्तिके कारण भी नहीं हे. व्रजको माहात्म्य बड़ी लचीली बात हे. तामस-भक्तन्में भगवान्के निरुद्ध होवेके कारण. यामेंसु एक भी शब्द काढ़ लो, तो सब गड़बड़ हो जाये. इतनो नाजुक हे याको कन्स्ट्रक्शन्. जैसे पत्तान्को मकान खड़ो करो और वामेंसु एक पत्ता निकाल लो, सारो मकान गिर जायेगो. कोई टिक नहीं सकेगो. ऐसो लचीलो ये कन्स्ट्रकशन् हे कि व्रजको माहात्म्य सिर्फ या कारण हे कि तामस-भक्तन्में भगवान् निरुद्ध भयो. ये वैकुण्ठमें संभव नहीं हे. वैकुण्ठमें निर्गुणभक्त मिल जायेंगे, वैकुण्ठमें पुष्टिभक्ति मिल जायेगी, वैकुण्ठमें पुरुषोत्तम मिल जायेंगे पर तामस-भक्तन्में भगवान्को निरोध नहीं मिलेगो. ये वैकुण्ठमें नहीं मिल सकेगो. वाको कारण क्या? **"निरोधो अस्य अनुशयनम् आत्मनः सह शक्तिभिः"** = **प्रपंचाधिकरणिका लीलाः.** (भाग.पुरा.२।१०।६) प्रपंचमें भगवान्की लीला निरोध हे. सो निरोधमें आश्रयभाव, मने वैकुण्ठमें आश्रयभाव तो हे पर वैकुण्ठमें प्रपंच नहीं होवेके कारण निरोध संभव नहीं हे. अरे! जेल होय तो बंधे न आदमी और जेल ही नहीं होय तो आदमी बंधे कैसे!

(बारीके चक्करमें दीवार ही तोड़ देनी!)

हमकु एकने कही अंग्रेजीके समर्थनमें, कि अंग्रेजी होनी ही चइये. क्यों? तो कहें कि अंग्रेजीके कारण बाहरकी हवा अन्दर आवे हे. अंग्रेजीकी बारी बन्द कर दोगे तो बाहरकी शुद्ध हवा अन्दर आनी बन्ध हो जायेगी. तुम्हारे रूममें अंधेरा और घुटन हो जायेगी. हमने कही ये बात बिलकुल सच्ची हे पर बारी तभी होवे जब दीवार होवे. अगर भारतीय भाषान्की दीवार नहीं होयगी तो बारी कहां बनेगी? पेहले भारतीय भाषाकी दीवार तो खड़ी करो. फिर वामें अंग्रेजीकी बारी खोल दो. अंग्रेजीकी बारी बने वामें हमारेकु कोई आपत्ति नहीं हे पर तुम अंग्रेजीकी बारी बनावेके चक्करमें कहीं दीवार मत तोड़ दीजियो. अपने हिन्दुस्तानकी जितनी भाषायें हें गुजराती होय मराठी होय कन्नड होय मारवाड़ी होय, उन सब भाषान्की दीवारें खड़ी रेहवे दो और फिर वामेंसु एक एक बारी बना लो. अंग्रेजीकी बारी ही क्यों बनाओ. सब भाषान्की चारों दीवारन्पे बारी बना दो. रशियन्की बारी बनाओ, फ्रेंच्की बारी बनाओ. जापानीज़्की बारी बनाओ, पचास बारी बनाओ पर दीवार तो कायम रखो! जब दीवार ही तोड़ दोगे तो बारी कहांसु आवेगी!

(प्रपञ्चके बिना निरोध नहीं)

तो ऐसे ही यदि प्रपंच नहीं भयो तो भगवान्को निरोध कहांसु आवेगो? निरोधको मतलब क्या? एक तरहसु घिर जानो. घिरवेके लिये कितनी जरूरत हे? कोई घिरवेवाली चीज चइये. कोई घेरवेवालो चइये. जबतक दो चीज नहीं होंय तबतक तो बने नहीं. घिरवेवाली चीज कौनसी? जबतक प्रपंचसू प्रभु खुद घिरे नहीं तबतक निरुद्ध कैसे होयंगे? या लिये तामस-भक्तन्में भगवान्को निरोध वैकुण्ठमें सम्भव नहीं हे. ऐसो मत समझियो कि वैकुण्ठमें पुष्टिभक्ति नहीं हे. पुष्टिभक्ति भी हे, पुष्टिस्वरूप भी हे. ऐसी बात नहीं हे कि पुष्टिस्वरूप नहीं

हे पर वहां अविद्याग्रस्त जीव नहीं हें और वहां तामस स्वभाव नहीं हे. एकाध ऐसो भक्त नहीं हे कि जो या तरहकी खरी खोटी सुना दे भगवान्कु. वहां सब हाथ जोड़के खड़े रहें. अब वामें खरी खोटी नहीं सुनावे तो माहात्म्य क्या!

या लिये केह रहे हें **वैकुण्ठादपि उत्कर्षः**. केहनो क्या चाह रही हे ये गोपिका? अरे भई! हमारेमें कोई दोष होय, तो वोही तो तेरो व्रजको उत्कर्ष हे. हम जैसे दोषवाली हें, उन दोषन्के कारण, उन दोषन्कु स्वीकार करके तू प्रकट नहीं भयो तो निरोधको, लीलाको स्वभाव कैसे चरितार्थ होयगो? यदि हमारे दोषन्कु तेनें इन्कार कियो, तो तेरी निरोधलीला सांगोपांग नहीं होयगी. नहीं तो लीला करतो रेह वैकुण्ठमें बेठके! यदि तू डिमाण्ड् करे, तू ऐसी मांग करे कि जब तुम सर्वथा निर्दुष्ट हो जाओ तब मैं प्रकट होऊं तो महाराज फिर वैकुण्ठ पधारो. "**भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि**" (पु.प्र.म.१७), "**जैसो हूं तैसो कहाऊं तेरो**" (श्रीहरिरायजी). हम सुधरवेवाले नहीं पर तू हमारे साथ आ जा. बाकी फिर सम्भाल लेंगे एक दूसरेके साथ रेहके. ये क्या हे? अरेन्ज्ड्मेरेज् और लवमेरेज् को अन्तर हे. अरेन्ज्ड्मेरेज् जैसे भी होय लड़कीकु ब्याह दियो जाय. वाके बाद आपसमें एक दूसरेकु समझके एक दूसरेकु सुधार लें. लवमेरेज्में क्या हे कि एक दूसरेके एक्सपरिमेंट् होवें, इन्टरव्यु होवें. एक दूसरेके साथ मिलें और फिर मेरेज् होवे. पर ये अरेन्ज्ड्मेरेज्को चक्कर हे कि जैसो हे वैसे ब्याह दो एक बखत, बाकी बादमें सम्भाल लेंगे प्रभु. **ते जन्मना व्रजो अधिकं जयति.** जब जनम गयो हे तो प्रकट हो जा. हमारे दोषन्कु क्या देखे हे! हम तेरेकु सम्भाल लेंगे, तू हमारे गुण-दोषन्कु सम्भाल लीजो पर एक बार तो प्रकट हो जा.

तो कहे हें कि **न हि वैकुण्ठे भगवान् एवंविधां लीलां करोति. यद्यपि मथुरायां जन्म जातं तथापि तेन जन्मना न मथुरा सर्वोत्कर्षेण स्थिता किन्तु व्रजएव.** जन्म तो मथुरामें भयो पर मथुराको वो उत्कर्ष नहीं आयो. कौनसो उत्कर्ष? तामस-भक्तन्के चक्करमें भगवान् फंस गये, चइये जैसे नाच नचायो, मने सूरदासजी कहे हें **"ये ले अपनी लकुट कमरिया बहुविध नाच नचायो"** ठाकुरजी भी इतने कंटाले कि इतनो नाच? कोई कुछ कहे, कोई कुछ कहे कोई कहे कि माँ नहीं हे, कोई कहे कि बाप नहीं हे. कोई चोर बतावे, कोई कुछ बतावे. तो **"ये ले अपनी लकुट कमरिया बहु विध नाच नचायो. सूरदास तब विहंसि यशोदा ले उर कण्ठ लगायो."** तो कहें हें कि ये सामर्थ्य भक्तन्कु वैकुण्ठमें कहांसु मिलेगी? ये जो तेरो सर्वोत्कर्ष हे कि तामस-भक्तन्में तेरो निरोध वो मथुरामें स्थित नहीं भयो किन्तु व्रजमें ही भयो.

(श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि)

कहें हें **ननु भगवज्जन्मनः सर्वोत्कर्षहेतुत्वं न लोके प्रसिद्धम्, अनन्यत्वेन एकत्वाद्, अतः तादृश उत्कर्षहेतुः वक्तव्यो यो लोके प्रसिद्ध इति चेत्, तत्र आह "श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि" इति.** समझो कि भगवान्के जन्मसू व्रजको सर्वोत्कर्ष भयो, ये हर व्यक्ति तो जान नहीं सके और जो व्यक्ति जाने हे, वो सर्वोत्कर्ष और जन्म में भेद नहीं करेगो. कैसे? मने घर कहां? बगीचाके सामने. बगीचा कहां? घरके सामने. भेद कैसे होयगो कि दोनों कहां हें? भगवान्के जन्मसू उत्कर्ष कैसे? जन्म्यो कैसे? उत्कर्षके कारण. भेद कैसे हो पायेगो कि जन्मसू उत्कर्ष कि उत्कर्षसू जन्म? दोनों एक ही चीज लग रही हें. पेहचाननो कैसे कि व्रजको उत्कर्ष? वो कहें हें **सर्वोत्कर्षहेतुत्वं न लोक प्रसिद्धम्.** तो वो कहें हें कि कोई ऐसो हेतु बताओ कि जासू व्रजको उत्कर्ष पता चले.

वहां कहें हें **तत्र आह श्रयत इन्दिरा शश्वद् अत्र हि इति. अत्र व्रजे इन्दिरा सर्वदा श्रयते** हीनभावेन आश्रयं कुरुते. **वैकुण्ठे तु सैव नियता भार्येति न तस्या: सर्वदा श्रयणं कर्तव्यं भवति.** कहे हें कि एक उत्कर्ष तो व्रजको ये हे कि वैकुण्ठमें तो तेरी सिर्फ एक लक्ष्मी हे और यहां षोडशसहस्र लक्ष्मी हें. जैसे आगे जाके रासपंचाध्यायीके प्रारम्भमें श्रीमहाप्रभुजीने वर्णन कियो हे कि इन षोडशसहस्र गोपिकान्में लक्ष्मी आविष्ट हे. लक्ष्मीके अंशन्को प्रवेश हे. यासू लक्ष्मीकु भी ये सौभाग्य मिले कि कथंचित् तामस-भावसू भगवान्कु स्नेह कैसे होवे? वो लक्ष्मीकु वहां कैसे मिल सके? लक्ष्मीकु तामस-भावके स्नेहको सुख वैकुण्ठमें मिले नहीं. लक्ष्मीकु राजसभावके स्नेहको सुख वैकुण्ठ मिले नहीं. सात्त्विक-भावके स्नेहको सुख जैसो सुख लक्ष्मीकु वैकुण्ठमें तो मिले नहीं. याके लिये इन विविध भाववाली गोपिकान्में लक्ष्मी प्रविष्ट हो जाये और विविध भावन्के सुखकु लक्ष्मी अनुभव करे हे. तो लक्ष्मी हमारो आश्रय करे कि हम सुख लेवेके लिये लक्ष्मीको आश्रय करें? वैकुण्ठमें चले जायें तो वहां तो लक्ष्मी महारानी बनके बैठी भई हे. वहां तो लक्ष्मीके आगे कोई बोल ही नहीं सके.

तो यों कहें हें कि **इन्दिरा अत्र व्रजे सर्वदा श्रयते ...इह तु वयम् अनेका.** यहां अनेक लक्ष्मीयां खड़ी होकर बाट देख रही हें. वहां एक लक्ष्मीके कारण तू बैठ्यो भयो वैकुण्ठनाथ बने हे और यहां अनेक व्रजगोपिकायें बैठी भई हें तो तू गोपिकावल्लभ क्यों नहीं बने हे? **अत्र हीनभावेन आश्रयं कुरुते. वैकुण्ठे तु सैव नियता भार्येति** वहां तो एक नियत भार्या हे तेरी और कोई भार्या ही नहीं हे. **इति न तस्या: सर्वदा श्रयणं कर्तव्यं भवति.** वो सहारा तो तेरेकु मिले नहीं पर व्रजको उत्कर्ष क्या हे कि वो लक्ष्मी यहां श्रयण करे हे, यहां आश्रय करे हे. **इह तु तादृश्यो**

वयम् अनेका इति तस्या: स्वास्थ्याभावात् कदा वा मम् अवसरो भविष्यतीति निरन्तरं सेवते. अब जब अनेक हो जायें, जहां कोम्पीटीशन् हो जाये, वहां तो झुकनो ही पड़े. वैकुण्ठमें तो कोई झुकवेको प्रश्न ही नहीं हे. क्योंकि **स्वास्थ्याभावात्** में कोई स्वस्थता ही नहीं रहे. न जाने कौनसे भावमें कौनसो सुख कौनसी गोपिकाकु न मिल जाये, या आशंकामें, या आशामें हर गोपिकाके पीछे पीछे लक्ष्मी डोलती फिरे. प्रत्येक सुखकु लेवेके लिये प्रत्येक गोपिकाके पीछे लक्ष्मी डोलती फिरें हे. नहीं तो कौनसो अवसर चूक जाये? क्या पता चले?

अतो लक्ष्मीस्थित्या लोकाः उत्कर्षं मन्यन्ते. अब कहें कि दुनिया यों कहे हे, हमारे तो लक्ष्मीकी चिन्ता नहीं हे पर लक्ष्मीके पीछे पीछे फिरे हे. अब बोल! अब तो प्रकट हो जो यदि वैकुण्ठमें जाके फिर छिप गयो होय तो! कौनके यहां जायेगो? वहां भी तोकु कोई नहीं मिलेगो. जा लक्ष्मीके पीछे तू जातो होयगो वो लक्ष्मी तो हमारे पीछे फिर रही हे. अब तू कहां छिपके जानो चाह रह्यो हे बता? **अतो लक्ष्मीस्थित्या लोकाः उत्कर्षं मन्यन्ते सा पुनर् लक्ष्मी: गोकुलाश्रया जाता. हि युक्तश्च अयम् अर्थः - पतिव्रता हि सा, यत्र पति: स्वयम् अन्याधीनतया तिष्ठति भक्तेषु कृपां ख्यापयितुम्, तदुक्तम् उलूखलप्रकरणे, तत्र तद्भार्या सुतरामेव आश्रयत इति किम् आश्चर्यम्!.** अरे भई! जिन व्रजभक्तन्के आधीन तू हो गयो, अब पति जब आधीन हो गयो तो पत्नी तो सुतराम आधीन हो ही गई. पत्नी तो स्वयं ही यहां फिर रही हे, क्योंकि **पतिव्रता हि सा** क्योंकि पतिव्रता हे. जब पति अन्याधीन होके, भक्ताधीन होके बिराजमान हे, भक्तमें अपनी कृपा दिखलावेके लिये, तो वाकी भार्या भी भक्ताधीन होके क्यों नहीं बिराजेगी! ये बात उलूखलप्रकरणमें बताई गई हे कि भक्ताधीन हें. अगर भक्ताधीन नहीं होते तो उलूखलसु क्यों बंधते? **तव जन्मना व्रजस्य सर्वोत्कर्ष:**

सर्वजनीनः. या तरहसु तेरे जन्मके कारण व्रजको उत्कर्ष सर्वजनीन हे.

(दयित दृश्यताम्)

अतः तव रमणे न कापि न्यूनता न वा लक्ष्म्या मनसि विषादो, अंगीकृतत्वात्. अतः कारणाद् अस्मदर्थम् आगतेन त्वया दृश्यताम् इदं गोकुलम् एकदा द्रष्टव्यम्. अब विनय आ गयो, क्योंकि राजस हे. थोड़ो सुनावा-सुनावी भी करे फिर राजसभावके कारण अपने ओर ढल जाये कि क्या स्थिति भई. फिर थोड़े दुःखी होके केह रही हे कि अरे भई! जब ये स्थिति हे **तव जन्मना व्रजस्य सर्वोत्कर्षः सर्वजनीनः.** तब तेरे रमणमें कोई न्यूनता तो हे नहीं. रमणमें न्यूनता नहीं हे और तू कहे हे कि लक्ष्मी नाराज हो जायेगी. लक्ष्मी भी नाराज नहीं होयगी क्योंकि लक्ष्मी तो खुद यहां फिर रही हे. मने वाने हमकु स्वीकार कर लियो हे. जब तू हमारे लिये और व्रजके लिये ही, प्रकट भयो हे तो क्यों हमारी आँखन्सु ओझल हे? यदि हमारे लिये प्रकट नहीं होतो और हमारी आँखसु ओझल होतो, तब तो ठीक बात हती पर जब हमारे लिये प्रकट भयो हे तो हमारी आँखसु ओझल होवेको कारण क्या? **अतः कारणाद् अस्मदर्थम् आगतेन त्वया दृश्यताम् इदं गोकुलम् एकदा द्रष्टव्यम्.** एक बार तू या गोकुलकु आके देख. एक बार तू या व्रजकु आके देख कि तेरे चले जावेसु क्या स्थिति हो गई!

(त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते)

अथवा गोकुलकु नहीं तो हमकु देख कि हम तेरेकु कैसे खोज रही हें! **तावकाः त्वयि धृतासवः दिक्षु त्वां विचिन्वत इति दृश्यताम्.** हम तोकु कैसे खोज रही हें? तो कहें हें कि क्यों खोज रही हो? इतनो विरह हे तो प्राण क्यों नहीं निकल जायें? तो कहें हें कि **धृतासवः** प्राण या लिये नहीं निकले कि

प्राणको कुछ तेरे लिये उपयोग हे. स्वसुखके विचारसू प्राणधारण नहीं हे पर प्रभुसुखके विचारसू प्राणधारण हे. हमकु ऐसो भी लग रह्यो हे कि विरहके कारण हम प्राण भी त्याग दें तो तेरो व्रजमें आगमन व्यर्थ हो जायेगो. **त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते इति दृश्यताम्.'** ये आके देख. **एतादृशो अर्थो अनुचित इति अनुचितप्रदर्शनेन बोधयन्ति.** यदि तू नहीं आयो और हम तेरे निमित्तसु तेरेलिये प्राण धारण करके बेठी भई हें और फिर भी तेंने हमकु आके नहीं देख्यो, तो कितनी अनुचित बात होयगी! जरा तो विचार कर.

लोका हि ब्रह्मादयः त्वम् अवतीर्णो व्रजे वर्तसे इति निश्चित्य समायान्ति, व्रजस्थाः पुनर् अस्मदादयः दिक्षु विचिन्वन्ति. कहें हें कि जब भगवान्ने व्रजमें प्रकट होयवेकी इच्छा प्रकट करी तो देवतान्ने विचार कियो कि ओ हो हो!! अब व्रजमें लीला होयगी. तो एक एक देवतायें एक एक रूप ले लेके प्रकट भये. अब वो आके देखेंगे कि भगवान् यहां आके लीला करवेके बजाय तिरोहित हो गये तो क्या देवतायें तेरेपे नहीं हंसेंगे?

(नाटक चलवेवालो नहिं हे)

रवीन्द्रनाथ टैगोरके बखत कोईने चैतन्य महाप्रभुको नाटक कियो. कलकत्ताकी एक वेश्याकु चैतन्य महाप्रभु बनायो. अब चैतन्य महाप्रभुको जब नाटक भयो तो उनकी इच्छा भई कि रामकृष्ण परमहंस यदि एक बार आके नाटक देखे तो प्रचार बढ़ जाये और नाटक खूब चले. जाके रामकृष्ण परमहंसकु, समझायो कि "एक बखत आप आके नाटक देखो." उनने कही कि "नाटक देखवेमें मेरी रुचि नहीं हे." उनने कही कि "आप कमसे कम ये तो देखो कि चैतन्य महाप्रभुकु आवेश कैसे आवे हे?" रामकृष्णने कही कि "तब तो जरूर आके देखूंगो पर एक बात निश्चित समझो कि ये नाटक चलवेवालो नहीं हे." उनने कही कि "बाबाजी हें, भक्तिके कारण

यों ही बोलें हें,'' पर कही कि ''आप देखो तो सही फिर हम आपकु केश् करते रहेंगे.'' रामकृष्ण परमहंस गये और नाटक देख्यो. वस्तुतः वा वेश्याने ऐसो सुन्दर अभिनय कियो, जैसे साक्षात् चैतन्य पधारें होंय. रामकृष्ण तो गद्गद् हो गये. इन्टरवल् भयो तो सीधे दोड़के अन्दर गये और वेश्याके पैर पकड़ लिये. चैतन्य मानके वाको इतनो आवेश आ गयो. अब वा वेश्याने कही ''कि रामकृष्ण परमहंस मेरे पैरपे लिपट गये तो अब मैं नाटक करूंगी क्या!'' इन्टरवल्सु सीधी आश्रमपे चली गई, नाटक खतम हो गयो. अब सब कहें ''नाटक चलाओ, नाटक चलाओ'' पर जब हीरोइन् ही नहीं मिले तो नाटक कहांसु चलाये! सारो कौभाण्ड हो गयो. रामकृष्णने कही हती कि ''चैतन्यको आवेश आवे हे तो नाटक चलेगो नहीं यदि चैतन्यको आवेश नहीं हे तो नाटक तो चल ही रह्यो हें'' पर चैतन्यको आवेश आ जाये तो नाटक नहीं चल सके. वस्तुतः वो इन्टरवल्के बाद भाग ही गई कि जब रामकृष्णने पैर पकड़ लिये, लिपट गये, तो अब कौनकु नाटक दिखानो!

ऐसे ही सब बड़े बड़े देवतायें देखवे आवें और ये देख लें कि तू ही गायब हे तो क्या स्थिति होयगी ड्रामाकी! ये छिपवेको नाटक कैसे चलेगो महाराज! या लिये अब प्रकट हो जाओ. ऐसो नाटक मत करो. तू अवतीर्ण भयो हे ये देखवेके लिये सब देवतायें आयें. **''आये देव विमानन् चढ़ चढ़...एक एक ते आगे बढ़ बढ़''** अपने यहां आवे हे कि नहीं. एक एक विमानमें देवता देखवे आयें और यहां आके देखें कि हीरो ही गायब हे. ऐसो नाटक चलेगो कैसे! कितनी देर चलेगो! तो ऐसो तो मत कर. **व्रजस्थाः पुनर् अस्मदादयः दिक्षु विचिन्वन्ति.** हम दिशान्में खोज रही हें कि कहां गयो नायक? **इयं महति अनौचिती.** यासु ज्यादा अनौचिती और क्या होयगी! कहें कि **ननु व्रजस्थानां भक्तिः नास्ति, अन्यथा विरहे म्रियेरन्, अतः अभक्ता न पश्यन्तीति युक्तम् इति चेत्.**

कहें हें कि हम तो या लिये प्रकट नहीं हो रहे हें कि तुममें भक्ति नहीं हे. क्योंकि यदि सच्ची भक्ति होय, यदि सच्चो स्नेह होय, इतनो विरह सच्चो होय तो मर जानो चइये याके लिये जो भक्त नहीं हें वाकु हम देखनो नहीं चाहें या हमकु भक्त देख भी नहीं सकें हें. तो कहें हें कि ये बात नहीं हे. हम जो मर नहीं रही हें वाको कारण भी तू खुद ही हे. हम तो मर भी जायें, पर तू हे याके कारण हम मर भी नहीं पा रही हें. करें तो क्या करें!

(हृदय और आँख को झगड़ा)

श्रीगुसांईजी बहोत सुन्दर आज्ञा करें हें. मेरो हृदय तो विरह चाहे हे पर ये आँखें विरह नहीं चाहें पर तेरो रूप चाहें हें. या हृदय और आँख में झगड़ा हो गयो. मैं दोनोंनकु समझाऊं कि तू भी समझ जा थोड़ी देर और तू भी समझ जा थोड़ी देर पर दोनोंन्मेंसु कोई भी मेरी बात माने नहीं हे. आँख झगड़ा ठानके बेठी हे कि नहीं! देखनो हे देखनो हे देखनो हे...विप्रयोग कहे तो कहें हें कि ये प्राण और आँखन् की बंधी भई जो आशा हे कि ये हृदयमेंसु बाहर प्रकट जायेगी तो वा प्रकट भये स्वरूपके लिये तो ये प्राण ही अपेक्षित होयंगे. यदि प्राण छूट गये तो बाह्य प्रकट रूपकु क्या लाभ होयगो!

तत्राहुः त्वयि धृतासव इति, त्वदर्थमेव धृता असवः प्राणा यैः. यदैव त्वदनुपयोगं ज्ञास्यन्ति तदैव त्यक्ष्यन्ति इति भावः. कमसु कम तू एक बार प्रकट होके ये केह दे कि तुम हमारे उपयोगके लिये नहीं रहे, तो चल हम मरवेके लिये तैयार हें पर प्रकट होके इतनी बात तो केह दें. यदि तू ये चाहे हे कि हम अपने प्राण त्याग दें तो एक बार प्रकट होके ये बात केह दे. बिना प्रकट भये ये घोटाला चालू मत रख. पता नहीं चले कि हृदयको पक्ष

लेनो कि आँखको पक्ष लेनो. अपने मनमें ये संवाद विसंवाद चलतो ही रहे. **अतएव त्वां विचिन्वते प्राणान् आश्वासयितुम्.** याके लिये हम अपने प्राणन्कु आश्वासन देवें हें कि अभी तुम मत निकलो. शायद या पेड़पे नहीं मिल्यो तो जैसे चीरहरण लीला करके कदम्बवृक्षके ऊपर बेठ गयो थो, वैसे कदम्बपे बैठ्यो भयो मिलेगो. यदि यहां नहीं मिलेगो तो वहां मिल जायेगो; कहीं न कहीं तो मिलेगो. ये आशा अनवरत आश्वासन दे रही हें. याके लिये प्राण टिके भये हें. नहीं तो प्राणन्के टिकवेकी कोई आवश्यकता नहीं हती और अपेक्षा भी नहीं हती. **अल्पविलम्बेऽपि प्राणा गमिष्यन्तीति.** अल्प भी विलम्ब होयगो तो प्राण चले जायेंगे. क्योंकि अब थकान शुरु भई हे. अब इतनो खोज चूके जब नहीं मिल रह्यो हे, अब थकान लग रही हे. यदि निराशा जरा भी छू गई तो प्राण फिर टिक नहीं पायेंगे.

“आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो हि अंगनानां सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि.” (मेघदूत.पूर्व.९) आशाको बन्धन फूलके जितनो नाजुक बन्धन हे. यासु बंध्यो भयो हे तो बंध्यो भयो हे यदि छूट गयो तो प्राण छूट जायेंगे. यदि आशाको बंधन जरा भी छूट्यो तो प्राण छूटवेमें जरा भी देर नहीं लगेगी. ये कुसुम सदृश (जैसो) आशाके बंधनसू बंधे भये हें, इतनेमें ही प्राण बंधे भये हें. वालिये केह रहे हें **अन्यथा व्रजे गच्छेयुः.** यदि तेरे मिलनकी हमकु आशा नहीं होती, तो व्रजमें जाके सो नहीं जाती अरे आज नहीं मिल्यो पर कल सुबह तो तू आयेगो ही ना! हमारे साथ लुका-छिपी कर रह्यो हे पर व्रजके साथ लुका-छिपी कैसे करेगो? व्रजमें तो लुका-छिपी चले नहीं. सिर्फ दर्शनको ही प्रश्न होतो तो अभी नहीं घण्टा भर बादमें, जैसे प्रातःकालके समय वनमें गाय चरायवे जावे हे तो हम दिन व्यतीत करें हें कि नहीं! वो पांच-छे घण्टा जैसे व्यतीत करें, वैसे ये पांच-छे घण्टा भी व्यतीत कर लेंगी. चित्तमें

कोई निराशा नहीं हे, मनमें कोई स्नेहकी क्षीणता नहीं हे. आशाको बन्धन हे और विप्रयोगकी तीव्रता हे, याके लिये यहां खोज रहे हें. प्राण तेरेमें अटके भये हें या लिये प्राण तेरेकु खोज रहे हें.

प्रातः त्वमेव आयास्यतीति अन्वेषणं व्यर्थमेव स्यात्. दिक्षु त्वदीयाः त्वयि सतीति महद्दैन्यम्. अब तू नहीं होय और तेरेकु खोज रहें होंय तब तो कोई बात नहीं हे. तू हे और यहीं कहीं छिप्यो भयो हे और दीख नहीं रह्यो हे. यासु ज्यादा दीनताको और विषय क्या! लुका-छिपी होय तो कितने देरकी होय! कोई ज्यादा देरकी थोड़े ही होय. अब तो काफी देर हो गई, विलम्ब हो गयो. अब ये अधिक विलम्बको हेतु क्या हे? **अतः एकवारं त्वदीयाः पश्य इति प्रार्थना.** याके लिये यदि तू चाहतो होय कि हमारे प्रेमके परीक्षणमें हमारे प्राण छूट जायें, तो कमसे कम एक बार प्रकट होके यों तो केह दे कि मैं दर्शन देनो नहीं चाहूं हूं, पर केह तो दे.

(**दयित** = प्रिय दयावान्)

दयित! इति सम्बोधनाद् भर्त्रदर्शनेन स्त्रीणां जीवनं न युक्तम् इति निरूपितम्. 'दयित' मने दयावान्. **'दयित'** कहें जो दयावालो हे. जो प्रिय हे. दयाके पात्रकु भी दयित केह सके हें शायद. दयालुकु भी दयित केह सके हें. प्रियकु भी दयित कहे हें. तो कहें हें कि जब पति नहीं दीखे हे, तब जीवन युक्त नहीं हे. याके लिये कहे हें कि ''एक बार हमकु देख.''

आचार्यचरण कहें हें **यद्यपि भगवान् चेत् पश्येत् तदा न कोऽपि पुरुषार्थः सिध्येत् तथापि दैन्यं दृष्टवा आत्मानमपि प्रदर्शयेदिति तथा प्रार्थना.** अरे! तू हमकु एक बार देख! भगवान् तो सबकु निरन्तर देख ही रह्यो हे, देखवेमें क्या पुरुषार्थ सिद्ध हो जायेगो!

भगवान् देखे यासू पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होयगो. भगवान् दीखे यासू पुरुषार्थ सिद्ध होयगो. तू हमकु दीख यों प्रार्थना नहीं करके तू हमकु देख यों प्रार्थना कर रहें हें, वो या लिये कि तू **दयित** हे. यदि तू एक बार हमारी स्थिति देख लेगो, तो तोकु प्रकट होनो ही पड़ेगो. तो हम यों केह रहें हें कि ''एक बार तू हमकु देख ले'' तो दीखवेको काम तो स्वभावतया सिद्ध हो ही जायेगो. सीधे दीखवेकी प्रार्थना नहीं करके देखवेकी प्रार्थनाको अभिप्राय ये हे कि हमारी अवस्था देख और वाके बाद यदि तोकु दीखवेकी इच्छा नहीं होवे, तो ठीक हे बात खतम भई. एक बार हमारी अवस्था देख ले तो तू हमकु दीख जायेगो, ये हमकु पूर्ण विश्वास हे.

टिप्पणी :

अष्टाविंशाध्यायार्थोक्तो स्वभावाद् अपराधतः इति, तदवस्थायाएव स्वभावो यद्गुणगानमेव भवत्येव. अतः तत्स्वभावादेव गानं चक्रुः इति सम्बन्धः. पक्षान्तरम् आहुः अपराधतः इति. भक्तेभ्योऽपि स्वस्मिन् आधिक्यज्ञानलक्षणम् अपराधं प्राप्य ''अस्मान् यदि प्रार्थयिष्यति तदा रसं दास्याम'' इति मानलक्षणा कृतावज्ञा याभिः तादृश्यो यतो अतः स्तोत्रं चक्रुः इत्यर्थः. अवज्ञया अप्रसादे स्तोत्रेण प्रसादो भविष्यतीति तथा इति भावः. यद्वा, स्वभावाद् रसस्वभावाद् यो अपराधः इति अग्रे पूर्ववत्. स्तोत्रम् इति गानविशेषम्, तथा च स्तोत्ररूपं गानं चक्रुः इत्यर्थः. अग्रे गुणकथनं भाववैजात्यज्ञापनार्थम् इति ज्ञेयम्.(१).

विवरणम् :

प्रथम टिप्पणीमें श्रीगुसांईजी आज्ञा कर रहे हें **अष्टाविंशे हरेः गानं... चक्रुः हरेः प्रियाम्**. कारिकामें कहें हें कि बहोतनूने ठाकुरजीकी स्तुति करी और बहोतन्की स्तुति सुनके ठाकुरजी प्रसन्न भी भये होयंगे और प्रकट भी भये होयंगे. सभी स्तुतिनूमें प्रभुके यशको ही वर्णन हे पर आचार्यचरण जब यों कहें हें कि **स्तुतिं चक्रुः हरेः**

प्रियाम् हरिकु प्रिय स्तुति. गोपीगीतकु ये जो विशेषण दियो कि ऐसी स्तुति जो हरिकु प्रिय हे. या गोपीगीतमें सामान्य प्रकरणके अर्थमें यशको वर्णन हे. ये बात तो ठीक हे. समझमें आयो पर या निरोधको जो मुख्यप्रकरण हे वाकी संगति समझाई हे. स्तुतियें तो भगवान्कु ओर भी कंई प्रिय हो सके हें. कंई स्तुतियें पसन्द आई होयगी. तद्-तद् भक्तन्ने तद्-तद् अवसरन्पे की होयगी पर या बखत प्रभुको निरोध हे और वा निरोधके कारण या स्तुतिसु बढ़के कोई स्तुति प्रिय लगे नहीं हे. जा तरहसु गोपिकायें प्रभुके यशको वर्णन कर रही हें, या यशके वर्णनके अलावा और कोई यश प्रभुकु या बखत अच्छो नहीं लग रह्यो हे. प्रभुको भी निरोध हो गयो हे. याके लिये कहे हें **एकोनविंशतिविधां स्तुतिं चक्रुः हरेः प्रियाम्.** यहां उन्नीस प्रकारसु हरिकु प्रिय स्तुतिको वर्णन हे. ये उन्नीस प्रकारसु हरिकी स्तुति हरिकु प्रिय लगे. मने जा स्तुतिकु सुनके हरि निरुद्ध हो जाये. ऐसी स्तुति और प्रभुके ऐसे यशको यहां वर्णन हे, वो उन्नीस प्रकारसु हे. वो उन्नीस प्रकार क्यों हें? वामें हेतु बतायो कि गोपीजनन्के खुदके स्वभाव और यूथके जो प्रकार हें वो उन्नीस प्रकारके हो जाय हें. कल अपनूने याको स्वरूप विस्तारसु समझ्यो. विवाहिता और कुमारिका. मने श्रुतिरूपा और अग्निकुमारिका ऋषिरूपा. फिर उनके अन्तर्गत चार चार भेद, सात्त्विक राजस तामस और निर्गुण के. फिर सात्त्विकमें तीन तीनके भेद. या तरहसु तीन तीन तीन नौ, नौ और नौ अठारह और एक निर्गुण. निर्गुण दोनोंमें कोमन् हे. याके लिये उन्नीस. मने नौ भेद श्रुतिरूपान्के, नौ भेद ऋषिरूपा गोपीजनन्के और एक निर्गुण गोपीन्को. वो दोनोंमें समान हे. याके लिये नौ नौ अठारह और एक उन्नीस, ऐसे भेद होवें हें. ये क्योंकि अपने अपने अधिकारसू उनने स्तुति करी हें, जा गोपीकु जैसे यशको गान करवेको अधिकार हतो, वो गोपी प्रभुके वैसे यशकु गावे तो प्रभुको वामें निरोध होवे. मने यश गानो भी आनो चइये ना! भलतो आदमी कोई भलतो यश गावे लग जाये तो मजा नहीं आवे.

(अधिकारानुसार यशवर्णनसू ही प्रभुकी प्रसन्नता)

कालीदासकी कथामें आवे हे कि कुमारसम्भवमें श्रीशंकर और पार्वतीके शृंगारको वर्णन जा बखत कर्‌यो तो कालीदासकु कोढ़ हो गई. क्योंकि ऐसे उद्‌दाम शृंगारके वर्णनको अधिकार कालीदासको हतो नहीं. या यशके वर्णनको अधिकार कालीदासको हतो नहीं करके वाकु कोढ़ हो गई. जब वाकु कोढ़ हो गई तो वाने प्रायश्चितरूपसु रघुवंश काव्य लिख्यो जाके कारण फिर वो कोढ़ दूर भई. कारण क्या? श्रीशंकर-पार्वतीकी कुमारसम्भवमें कोई निन्दा नहीं हती. मगर जा तरहके उद्‌दाम शृंगारको यशवर्णन वाने कियो वा वर्णनको कालीदासको अधिकार नहीं हतो. यशको वर्णन भी अधिकारानुरूप होवे तो अच्छो लगे. नहीं तो गड़बड़ घोटाला होवे.

दादाजीको नियम हतो कि चोरी करवेको जाको अधिकार होवे वो चोरी करे तो वापे नाराज नहीं होते पर जब वो मांगतो तो वो नाराज हो जाते. अन्तमें चोरी करवेवालेकु भी रुपिया देनो हे और मांगवेवालेकु भी रुपिया देनो हे. पर चोरी करवेवालो चोरी करके रुपिया ले तो नाराज नहीं होवें. क्योंकि वाको स्वभाव हे. मांगके रुपिया लियो तो नाराज हो जाते और मांगवेवालो जब चोरी कर लेतो तो बहोत नाराज हो जाते. बहोत गाली देते ‘‘दुष्ट हे, भ्रष्ट हे, नीच हे, नापाक हे...’’ क्योंकि वाको मांगवेको अधिकार हे, चोरी क्यों करी! तो अधिकारानुसार पैसा दियो जाय. जाको चोरीको अधिकार हे वाकु चोरीसु पैसा दियो जाय. जाको मांगवेको अधिकार हे वाकु मांगवेसु पैसा दियो जाय. वामें जो गड़बड़ी फेलावे तो गड़बड़ हो जाये.

ऐसे ही जाको जैसो यशवर्णनको अधिकार हे, वो भक्त वा प्रकारके यशको वर्णन करे, तब तो प्रभुकी प्रसन्नता होय, क्योंकि वा प्रकारके यशको वर्णन करवेसु रसाभास नहीं होवे न! हमकु महाप्रभुजीको

पलना झुलानो क्यों नहीं पसन्द आवे? क्योंकि रसाभास होवे. अब भावना हमारी ऐसी नहीं हे करें क्या! या लिये हमकु वहां जाके नन्दोत्सव करवेमें ज्यादा अच्छो लगे हे. पलना झुलावेमें हमकु थोड़ो रसाभास लगे अब करें क्या! मनमें ऐसी भावना ही नहीं कि महाप्रभुजी बालक हें. मनमें ऐसी भावना कि हमारे तातजी हें. अब तातजीकु पलना झुलावें तो रसाभास होवे. क्या करें स्वभाव हे! बात सच्ची हे कि पुरुषोत्तमभावसू पलना झूलें, वामें कोई दोष नहीं हे, पलना झूलें वामें कोई दोष नहीं हे पर हमारे मनको भाव ऐसो नहीं हे तो क्या करें! अब समझो कि कोई दिन दादाजीकु हम पलना झुलाते होंय तो रसाभास ही हे फिर. ऐसो रसाभास हमारे चित्तमें तब होवे जब महाप्रभुजीकी या प्रकारके सेवाके प्रसंग उपस्थित हो जाये कि जो सेवा अपन् श्रीठाकुरजीकी कर सकें वा प्रकारकी सेवाके प्रसंग जब श्रीमहाप्रभुजीके उपस्थित होवे तो. एक धोती उपरना धारण कर्‌यो भयो गम्भीर व्यक्तित्व, वामें पलना झूलवेको भाव मनमें पैदा नहीं होवे तो क्या करनो! अब नहीं हे ईलम्मागारूसु हमारो आइडेन्टिफिकेशन्. ये तो अपने अपने आइडेन्टिफिकेशन्की बात हे. कोईकु होय कोईकु नहीं होय.

(महाप्रभुजीकु कौनकी कानि देनी)

अभी हम सौरम गये तो एक बच्चीने हमकु पूछ्यो कि ''ठाकुरजीकु जब भोग धरें तो महाप्रभुजीकी कानिसू भोग धरें पर महाप्रभुजीकी बेठकमें जब जाय तब भोग कौनकी कानिसु धरनो?'' तो मैने कही : सामने तीन व्यक्ति दीख रहे हें. एक ईलम्मागारू दीख रही हें. एक महालक्ष्मीजी दीख रही हें. एक श्रीगुसांईजी अथवा दामोदरदासजी प्रभृति दीख रहे हें. पुत्र या शिष्य बिन्दुसृष्टि या नादसृष्टि, दो प्रकारके पुत्र दीख रहे हें. अब वामें तुमकु जामें जहां अपनो आइडेन्टिफिकेशन् होतो होय, उनकी कानिसु भोग धरो. अब हम यामें क्या केह सकें कि महाप्रभुजीकु कौनकी कानिसु भोग धरनो? ईलम्मागारुसु

आइडेन्टिफिकेशन् होतो होय तो उनकी कानिसु भोग धरो, महालक्ष्मीजीसु आइडेन्टिफिकेशन् होतो होय तो उनकी कानिसु भोग धरो और दामोदरदासजीसु आइडेन्टिफिकेशन् होतो होय तो उनकी कानिसु भोग धरो. अब महाप्रभुजीकु कौनकी कानिसु भोग धर्‍यो जा सके हे! हम तो गुसांईजीकी कानिसु भोग धरें. क्योंकि उनसु ही हमारो आइडेन्टिफिकेशन् लगे. और करें क्या! स्वभाव नहीं हे तो. अब ये तो अपने अपने हृदयकी बात हे. यामें कोई सिद्धान्तकी बात तो चले नहीं. सिद्धान्त चलाने जाओ तो माहात्म्यज्ञानको अपराध लगे.

समझो ठाकुरजी युद्धमें पधार रहे हें. वा बखत कोई गोपीगीत गावे तो मूड खराब हो जाये कि नहीं? गोपीगीतको एक प्रसंग हे. वा प्रसंगमें गोपीगीत गायो जाय तो गोपीगीतकी भी शोभा हे और समझे बिना कि गोपीगीतमें सर्वोच्च प्रभुको प्रिय यशको वर्णन हे, अब आव देखें न ताव जब देखो गोपीगीत गानो शुरु कर दें. पलनामें गोपीगीत, 'ले महाराज' की वृत्तिसु गोपीगीत गावे लग जायें तो रुचतो होय तो रुचनो बन्ध हो जाये.

(ठाकुरजीकु गीताको उपदेश!!)

वर्कलामें जनार्दनमें हम गये थे. वहां कोचीनसु एक वैष्णव आयो थो. अब महाप्रभुजीकी बेठकमें ठाकुरजीकु भोग आ रहे थे, तो वाने गीता सुनानो शुरु कियो "**अशोच्यान् अन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे गतासून् अगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः**" (भग.गीता.२।११) तो हंसुभाईने कही "अरे तू कौनकु उपदेश दे रह्यो हे? ठाकुरजीकु उपदेश दे रह्यो हे! या उपदेशकी जरूरत कौनकु हे जा बखत ठाकुरजीकु भोग आ रहे हें!" के "**गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः**" ये गीताको पाठ तो सो टका सच्चो पर वाको प्रसंग भी आदमी देखे कि नहीं देखे कि पकड़के ठाकुरजीकु गीताको उपदेश देनो शुरु कर दें! ऐसे कंई शिष्य होवें. अपनेकु गीताको उपदेश ठाकुरजीने

दियो और अपन् जब ठाकुरजीसु मिलें तो ठाकुरजीकु पकड़के गीताको उपदेश देनो शुरु कर दें. मैं तोकु एक बात बताऊं और एक दिन तू ही भस्मासुरकी तरह आके मोकु समझावे लग जाये अरे भई! मैंने ही तोकु ये बात समझाई और अब मेरो सुनवेको मूड नहीं हे. पर मानें ही नहीं. कहे ''सुनो! क्यों समझाई''. मुश्किल हो जाये, रसाभास हो जाये. ऐसे हर स्तुतिको, हर यशको एक प्रसंग हे और वा प्रसंगमें वा यशको वर्णन, वा स्तुतिकु करो तो वा यश और वा स्तुतिकी शोभा हे. (वामें चित्तको निरोध होवे.) स्तुति करवेवालेको भी और स्तुति सुनवेवालेको भी चित्तको निरोध होवे. अन्यथाप्रसंगमें अन्यथावर्णन करो तो कालीदासकी तरह कोढ़ हो जाये.

(स्तुतिको कारण)

या लिये स्तुति क्यों करी? ये श्रीगुसांईजी बता रहे हें. श्रीआचार्यचरण आज्ञा कर रहे हें **कृतावज्ञा स्वभावादपराधत: गोपिका चक्रु:**. जबतक ये प्रसंग न आवे, जबतक तुम्हारे स्वभाव और ये तुम्हारो अपराध 'मान'को प्रभुके साथ भयो हे ये अपराध कोई साधारण अपराध नहीं हे. जैसे प्रभुके वर्णनमें श्रीमहाप्रभुजी कहें हें ''**अधरं मधुरं...मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्**'' (मधु.१) तो ''**मधुराधिपते अपराधोपि मधुरो भवति**''. यदि मधुराधिपतिको कोई अपराध भयो हे तो वो अपराध भी मधुर हे. जीवको ये मधुर अपराध जबतक घटित न हो जाये तबतक गोपीगीतको प्रसंग प्राप्त नहीं होवे हे. जबतक ये स्वभाव न होय करवेवालेको, गोपीजनन्‌को जो भी कछु स्वभाव हे, वो स्वभाव जबतक न होवे, तबतक गोपीगीत वर्णनको प्रसंग नहीं होवे. जबतक अपनेसु ठाकुरजीकी कोई मधुर अवज्ञा नहीं हो जाये, अवज्ञा मने ठाकुरजीकी आज्ञाको उल्लंघन, ठाकुरजी नहीं चाहते होंय, ऐसो कोई अपराध अपन् कर न बेठें पर वा अपराधमें वो मधुरता होनी चइये जो मधुरता गोपीजनन्‌की अवज्ञा, गोपीजनन्‌के अपराधमें

हती. वो मधुरता जबतक वो अवज्ञामें नहीं होय, वा स्वभावमें ऐसी मधुरता नहीं होय, वा अपराधमें ऐसी मधुरता नहीं होय, तबतक या प्रकारके यशको वर्णन सुननो ठाकुरजीकु पसंद नहीं आयेगो.

(गोपीगीत : फलात्मक यशको वर्णन)

गोपीगीत तामसफलप्रकरणके अन्तर्गत यशको वर्णन हे. ये बात कभी मत भूलियो. मने गोपीगीतमें प्रभुको जा प्रकारके यशको वर्णन हे, वो फलात्मक यश हे. ये बात कभी मत भूलियो पर वो फलात्मक यशको भी प्रसंग कब आवे हे, वाकी संगति कब आवे हे **"प्रार्थये रसिकाः स्वैरं पश्यन्तु इदम् अहर्निशम् एतदरसानभिज्ञस्तु मा द्राक्षीदपि वैष्णवः"** (शृं.र.म.) श्रीगुसांईजी आज्ञा कर रहे हें. ये वाको प्रसंग और अधिकार, वाके भाव वाके अपराध जो भी कुछ हे यहां, उन सबको जा बखत योग जुड़ जाये, वा बखत ये यश हे, उत्तमोत्तम यश प्रभुके चित्तको भी निरोधकारी यशको वर्णन हे. भक्तके भी चित्तको निरोधकारी यशको वर्णन हे. या बातकु श्रीगुसांईजी टिप्पणीमें समझा रहे हें.

ये इतनी सब जो व्याख्या करी वाको मूल कारण ये हे कि श्रीगुसांईजी या बातकु समझा रहे हें यामें कोई श्यामबाबाको वचन नहीं हे. अब देखो ध्यान देके! **तदवस्थायाएव स्वभावो यद् गुणगानमेव भवत्येव.** जा अवस्थामेंसु ये गोपिकायें गुजरी हें, वो अवस्था बड़ी मधुर अवस्था हे. वो स्वभाव बड़ो मधुर स्वभाव हे. वा स्वभावको जा स्वरूपके यशको वर्णन करनो हे वो स्वरूप बड़ो मधुर स्वरूप हे. अतएव वो यशवर्णन बड़ो मधुर यश वर्णन हे. अब ये माधुर्य पूरी स्थितिको, पूरी अवस्थाको माधुर्य ही यशवर्णनके रूपमें प्रकट हो गयो हे. ये कोई जबरदस्ती कियो गयो वर्णन नहीं हे. ये वा माधुर्यको ही एक उच्छलन हे. जैसे कोठीमें जल भरते जाओ, जब अधिक भर जाय तो छलक जाय. या दूधमें जैसे उफान अधिक

आ जाये तो तपेलीके बाहर दूध आ जाये, ऐसे वा माधुर्यके अतिरेकके कारण ये रसको उच्छलन भयो हे. वा माधुर्यको अतिरेक क्यों भयो हे? वो मधुर रस जो उनके हृदयमें भर्‍यो भयो हतो, वो प्रभुके छिप जावेके कारण पक्यो हे, तप्यो हे याके लिये वामें उफान आ गई हे. दूध तपे तो उफन जाये. ऐसे प्रभुके विप्रयोगके कारण जो ताप भयो और वा तापके कारण तप-तपके वामें उफान आई तो वो यशोगानके रूपमें छलक गयो हे. यामें और कोई हेतु नहीं हे. इतनी मधुरता यदि ख्यालमें आवे तो गोपीगीतको भाव ख्यालमें आवे, नहीं तो ख्यालमें ही नहीं आवे.

श्रीगुसांईजी आज्ञा कर रहे हें **तदवस्थायाएव स्वभावो यद् गुणगानमेव भवत्येव. अतः तत्स्वभावादेव गानं चक्रुः इति सम्बन्धः.** अतः स्वभावसू गान कियो ये तो पेहलो पक्ष. दूसरो पक्ष **अपराधतः.** अपराधके कारण उनने गान कियो. **भक्तेभ्योऽपि स्वस्मिन् आधिक्यज्ञानलक्षणम् अपराधं प्राप्य ''अस्मान् यदि प्रार्थयिष्यति तदा रसं दास्याम'' इति मानलक्षणा कृता अवज्ञा याभिः तादृश्यो यतो अतः स्तोत्रं चक्रुः इत्यर्थः.** (ये पंक्ति थोड़ी क्लिष्ट हे यापे विचार करके कल बताऊंगो श्रीगुसांईजीकी कृपासु लगेगी तो.) तात्पर्य यहां इतनो हे कि अपराध क्या भयो? प्रभुको अवज्ञारूप अपराध भयो.

(रसाभिनय-रसानुभवकी प्रक्रिया)

प्रभु रसाभिनय कर रहे हें. भक्त रसानुभव कर रहे हें. एक रसको अभिनय और एक रसको अनुभव कर रहे हें. जैसे मंचपे कलाकार होवे, वो रसको अभिनय करे, दर्शक रसको अनुभव करें. नट होवे जैसे मैंने कल आपकु बतायो कि चैतन्यमहाप्रभुको वाने अभिनय कियो. चैतन्यमहाप्रभुके अभिनयमें जो उन्माद प्रकट भयो, वा उन्मादको वा नर्तकीने तो अभिनय कियो और वा उन्मादको अनुभव रामकृष्ण परमहंसने कियो. तो ये अभिनय और अनुभव में

संवाद चइये. अभिनय कर रह्यो होय और आदमी अनुभवके लायक स्थितिमें नहीं रहे तो संवाद टूट जाये. जो अनुभव करवेके लिये तैयार बेठ्यो हे और वाके सामने कोई अच्छो अभिनय नहीं करे तो रसाभास हो जाये. यासू रसाभिनय और रसानुभव को संवाद चइये. भगवान्‌ने वेणुनाद करके रसाभिनय शुरु कियो और वा रसाभिनयको अनुभव करवेवाली गोपिकायें हें. अब उत्तम अभिनयको ये स्वभाव हे कि अनुभव करवेवालेमें वाको आवेश आवे.

ये जमनादास अत्तरवाला हे न! याकु मधुकाका एक दिन अमेरिकन पिक्चर् दिखावे ले गये. अब वा अमेरिकन पिक्चर्में फाईटिंग्, मारामारी शुरु भई. तो या जमनादास अत्तरवालेने बांह चढ़ानी शुरु करी. जब जोर शोरपे मारामारी शुरु भई तो सीटपेसु उठ्यो. तबतक तो मधुकाकासु सहन भयो. जब बांह चढ़ा रह्यो थो, यों यों कर रह्यो थो, तबतक तो सहन भयो पर जैसे ही सीट्पेसु खड़ो भयो तो पीछेसु एक थप्पड़ लगाई कि ''बेठ चुपचाप.'' क्योंकि वो स्थिति असह्य हो गई. अब अभिनयकु देखते देखते वा अनुभवके आवेशमें आ जाय, वो अनुभवकी तीव्रता हे पर सब ऐसो अनुभव क्यों नहीं कर सकें? क्योंकि सबके अनुभव इतने तीव्र नहीं होवें.

जैसे पेहले यहां केदारनाथ मिश्राजी आये थे. तब सुदामालीला भई. तो कृष्ण और सुदामा उतनो नहीं रोवें जितनो मिश्राजी रोवे लग गये. वो उनके अनुभवकी तीव्रता हती. वो हर व्यक्तिकु नहीं होवे. अपन् सब लोग बेठे थे. हम भी बेठे थे. हमकु भी वा विरहको अनुभव हो रह्यो थो, वा वेदनाको अनुभव हो रह्यो थो पर उतनो अनुभव नहीं हतो कि अपनी आँखमें आंसू आवें. पर जब अनुभव तीव्र हो जाये तो फिर अभिनय शुरु हो जाये जो अब वा अश्रुपातकु तुम क्या कहोगे जो मिश्राजीकी आँखमें सुदामालीलाकु देखके आये? अब सुदामा मिश्राजी नहीं, मिश्राजी सुदामा नहीं, मिश्राजीसु

कोई कृष्ण बिछुड़ नहीं रहे हें पर मिश्राजीकी आँखमें आंसू क्यों? या लिये कि वो अनुभव होते होते अभिनयमें बदल जाये. वो अभिनय शुरु होवे लग जाय. जैसे आगके पास कोई चीज थोड़ी देर रखो तो वो गरम होवे और गरम होते होते पिघलवे लग जाये. ये स्वभाव हे. ऐसे ही अनुभूतिको ये स्वभाव हे कि रसानुभूति थोड़ी देरमें रसाभिनयमें परिवर्तित हो जाये.

अभी काश्मीरकी बात हे. जब भुट्टोकु फांसी लगाई तो लोग बड़े नाराज हो गये. तो भुट्टोकु फांसी लगावेवारेन्के ऊपर एक नाटक बनायो. नाटकमें केस् चलानो और उनकु फांसी लगानो. अब वो अभिनय करते करते उन सबकु इतनो जोश आ गयो कि जो पाकिस्तानको प्रेसीडेन्ट्र झिया बन्यो हतो, काश्मीरमें वाकु सच्चीमें मार डाल्यो. वो चढ़्यो तो खाली अभिनयके लिये फांसीके तख्तापर चढ़ावेवालेकु इतनो जोश आ गयो कि वाकु मार ही डाल्यो. क्योंकि अनुभव करते करते वो इतनो तीव्र हो गयो कि वो अभिनयमें परिवर्तित हो गयो. वामें येही भाव जग गयो कि येही झिया हे मारो याकु. बस बात इतनी कि क्यों भुट्टोकु फांसीपे चढ़ायो? तो सचमुचमें वो गरीब लड़काकु सबने मिलके मार डाल्यो. वो अभिनयकी तीव्रता हती. ऐसे ही अनुभवकी तीव्रतामें आदमी अनुभव करवे लग जाये कि "वो ही मैं हूं." ऐसो भाव जग जाये. जहां कुशल अभिनय होवे ना! वहां धीरे धीरे सचमुचमें ऐसो अनुभव होवे लग जाये कि "मैं वो ही हूं."

जा तरहको शृंगारको रसाभिनय प्रभु प्रस्तुत कर रहे हें, वा अभिनयके तीव्र होते होते गोपीजननकु ये हो गयो कि अब हम अभिनय करें. अब रोल् बदलो. अब प्रभुकु दर्शक बनाओ और खुद अभिनय करो. अब शृंगाररसमें क्योंकि विप्रयोग हे, याके लिये विप्रयोगको अनुभव तो करानो हे. वा प्रकारको अभिनय भी करनो

हे, नहीं तो भगवान् ये जो आज्ञा कर रहे हें **"न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां"** (भाग.पुरा.१०।२९।२२). मने गोपीजननूके प्रेमको ऋण मैं चुका नहीं सकु हूं, तो क्या गोपीजननूके बीचमेंसु तिरोहित होनो चाहेंगे प्रभु? क्या प्रभु छिपेंगे? तो वो क्या गोपीजननूके प्रेमको अनुभव प्रभुकु नहीं हे कि जो छिपनो चाहें! अथवा उनकु मान या रसानुभव की तीव्रतामें प्रकट भयो मान हे, ये क्या प्रभुकु मालूम नहीं हे?

(संयोग-विप्रयोग)

मालूम हे पर रसकी ही ये मर्यादा हे कि **"न विनाविप्रलम्भेन शृंगार/संभोगः पुष्टिम् अश्नुते"** (द्र.साहि.दर्प.३।२१३) जबतक विप्रयोग न हो जाये तबतक शृंगाररस पुष्ट नहीं होवे हे. **"कषायितेहि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते"** राग कब बढ़े? **"कषायिते'** स्नेह कब बढ़े? जब विप्रयोग होवे तब. जबतक विप्रयोग नहीं होवे तबतक स्नेह बढ़ नहीं सके. श्रीहरिरायजी जो विप्रयोग परमफलवादी हें, वाको कारण ये हे कि वो स्नेहकु प्रधान मानें हें. दूसरो केम्प् जो संयोग परमफलवादी हे, वो या लिये संयोगकु परमफल माने हें कि वो भगवान्‌के रूपदर्शनके आग्रहवादी हें. मने रसमें दो बात होवे. एक अपने हृदयमें रह्यो भयो भाव और एक वा भावकु सपोर्ट देवेवालो आलम्बन. जैसे वात्सल्य अपने हृदयमें पैदा भयो, तो वा वात्सल्यकु भी कोई आलम्बन तो चइये ना! तो बच्चा वात्सल्यको आलम्बन बने. अपने हृदयमें श्रद्धा होय तो ये भाव भयो. अब वा श्रद्धाको आलम्बन कोई श्रद्धास्पद व्यक्ति तो चइये ना! स्वभाव तो श्रद्धाको हे पर श्रद्धास्पद व्यक्ति नहीं होय तो श्रद्धा प्रकट नहीं होयगी. ऐसे ही वात्सल्यको स्वभाव हे कि जबतक बच्चा नहीं प्रकटे तबतक वा वात्सल्यको काम खोटो. ऐसे ही शृंगारको भाव जबतक मूर्तिवत् शृंगार प्रकट नहीं होवे तबतक वा स्वभावको आलम्बन प्रकट नहीं होवे. तो स्नेह जब भाव हे तो वा स्नेहके अनुरूप कोई स्निग्ध वस्तु भी तो होनी चइये जासू स्नेह हो सके. विप्रयोगपरमफलवादी

यों कहें हें कि स्नेह प्रधान हे. संयोगपरमफलवादी यों कहें हें कि नहीं स्निग्ध वस्तु प्रधान हे. स्नेहके बिना स्निग्ध कैसे प्रकट होयगो और स्नेहास्पद वस्तुके बिना स्नेह हो नहीं सके. दोनों अन्योन्याश्रित हें पर दोनोंनूके झगड़ा चलें. अब ये झगड़ा भी मधुर हें. यासु ये झगड़ा चलते भी रेहने चइये. क्योंकि जो चीज मधुर हे वो सब चलती रेहनी चइये. दुनियामें अमधुर कछु नहीं चलनो चइये. अमधुर दोस्ती भी नहीं चलनी चइये और मधुर झगड़ा भी चले तो हरकत नहीं. या लिये स्वभाव और अपराध जो प्रकट भयो, प्रभुकु ये सारी बातें पता हें, पर क्योंकि शृंगाररसकी मर्यादा हे कि बिना विप्रयोगके शृंगाररस पुष्ट नहीं होवे, याके लिये विप्रयोगरसको अभिनय तो प्रभुकु करनो हे. अब वा बीचमें गोपीजननूके भीतर रसानुभवकी तीव्रतामें ये भाव जग्यो कि भगवान् हमारो विप्रयोगानुभव करें, तब प्रश्न उपस्थित हो गयो कि अब क्या करनो?

(रामावतार और कृष्णावतार)

श्रीगुसांईजी बहोत सुन्दर समाधान करे हें : रामावतार और कृष्णावतार की एक तुलना देखो. वहां रामावतारमें विप्रयोगको अनुभव करते करते श्रीरामचन्द्रजीने वनके एक-एक वृक्ष और लतान् सु पूछ्यो कि "सीता कहां गई?" यहां गोपिकायें पूछ रही हें कि "कृष्ण कहां गयो?" ऐसे राम और कृष्ण कु तोलोगे तो एग्ज़ेक्टली अपोज़िट् दीखेंगे. हर बात उनकी अपोज़िट् हे. दोनोंकी ब्यूटी अलग अलग हें. रामको सौन्दर्य एक अलग हे. कृष्णको सौन्दर्य एक अलग हे पर हें दोनों एक दूसरेसु अपोज़िट्. वो दिनमें जन्में तो वो रातकु जन्में. वो मध्यानमें जन्में तो वो मध्यरात्रिमें जन्में. जितनो देखोगे उतनो अपोज़िट् मिलतो ही चले जायेगो. वहां एक पत्नीव्रतको इतनो भयंकर आग्रह कि एक पत्नी भी नहीं निभी. यहां अनेक पत्नी ऐसी कि यहां सोलह हजार करी और वहां द्वारिकामें जाके सोलह हजार और करी. सब बातनूमें कितनी विपरीतता हे. यहां प्रारम्भमें

वनवास भयो बादमें राज्यलाभ भयो. वहां देखो तो प्रारम्भमें राज्यलाभ हे और बादमें वनवास हे. ऐसे सब उल्टो-उल्टो चले. क्योंकि वो सारो मर्यादा और पुष्टि को भेद हे. यहां वनकी लीलायें अतिसुखद लीलायें हें. वहां वनकी लीलायें अत्यन्त दुःखद लीलायें हें. जो कुछ भी लीलायें वनकी हें श्रीरामावतारमें वो अत्यन्त दुःखद लीलायें हें. यहां वनकी लीला जैसी सुखद कोई लीला ही नहीं हे. **"चलो किन देखन कुंज कुटी" "यामें कहा गांठको लागे"**. कैसी सुखद वनकी लीलायें हें. वहां कैसी दुःखद लीलायें वनकी हें. तो हर बातमें यहां और वहां में विपरीतता हे. वहां लक्ष्मण अनुज हें. यहां अग्रज हें. वही शेष रामके अनुज हें. वही शेष कृष्णके अग्रज हें. तो वा अनुसार वहां उनने विप्रयोगानुभव कियो. ऐसो विप्रयोगानुभव कियो कि धोबीने केह दी तो सीताकु छोड़ दिये. यहां ब्रह्मा कहे तो ठाकुरजी कोईकु छोड़नो नहीं चाह रहे हें. चलो ठीक हे. खुद दुःखी होयंगे. वो मूर्ख हें जो यों सोचे हें कि श्रीरामचन्द्रजीने शंकाके कारण सीताजीकु छोड़ दिये. श्रीरामके हृदयमें सीताजीके लिये शंकाको कोई स्थान ही नहीं हतो. ये तो आजकलके मूर्खलोग बकवास करें. उनकु कोई शंका नहीं हती पर वो नाटन ही या तरहको हतो कि विप्रयोगानुभव करनो हे. यहां विप्रयोगकी तैयारी ही नहीं हे. न भक्तनूकी तैयारी हे और न भगवानूकी तैयारी हे, तो वाको क्या उपाय हे? जा बखत ब्रजभक्तें अनुभव कर रहे हें वा बखत अनुभवकी तीव्रतामें उनमें अभिनय प्रकट होवे लग्यो. वो अभिनय जब प्रकट होवे लग्यो, तब डिस्टर्बन्स्, रसाभास भयो.

(संगीतमें टूं-टूं...)

बम्बईमें हमारे एक परिचित हें. वाकु कहीं भी संगीत कार्यक्रममें ले जाओ तो वहां गावेवालो शुरु करे और यहां यह टूं-टूं आवाज निकालनो शुरु करे. अब भई! तोकु आनन्द आ रह्यो हे, ये बात सच्ची हे पर वो सुन लेगो गावेवालो तेरी टूं-टूं तो वाको कितनो

मूड खराब हो जायेगो!! वो जैसे जैसे तान बढ़े वैसे वैसे वाकु आवेश आवे. हमने वाके साथ संगीत सुननो छोड़ दियो. क्योंकि जब संगीत सुनें तो टूं-टूं करे तो चित्तमें घबराहट होवे लगे. वाकी बात समझमें आवे कि हमसु ज्यादा बिचारो सहृदय हे, वैसे सहृदय हम संगीत सुनवेमें नहीं हें पर वो ऐसी ऐसी विचित्र विचित्र अवाज निकाले, जैसे जैसे सितार बजे, वो टूं-टूं करे तो सुनवेमें कंटालो आ जाये. क्योंकि या बखत सुनवे आये हो तो सुन लो. अनुभव करो, अभिनय मत करो पर वा गरीबसु रह्यो नहीं जाय. तो वो रसाभास हो जाय.

ऐसे ही जब भगवान्ने इनकी अभिनयकी तैयारी देखी तो भगवान्ने कही कि अब बन्ध करो ये जल्सा. थोड़ी देर तिरोहित हो जाओ जासू कि इनकु ख्याल आवे कि ये अनुभवकर्त्री हें, अभिनयकर्त्री नहीं हें. याहीके लिये इनने जब कही **"न पारये अहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः"** (भाग.पुरा.१०।२७।३७) तो प्रभुने कही **"स्कन्धम् आरुह्यताम् इति"** (भाग.पुरा.१०।२७।३८) और आचार्यचरण आज्ञा करे हें **"स्वस्कन्धमेव आरुह्यताम् इति. सएव अत्यन्तं नटवटुः यः स्वस्कन्धम् आरुह्य नरीनर्ति."** (सुबो.१०।२७।३९) तुम यदि अपने कंधापे चढ़के नाच सकते होव तो या बखत हम तुमकु एलाउ करेंगे कि तुम रसाभिनय करो पर अभी हमारे तो गावेको मूड हे. गाना सुनवेको मूड नहीं हे. अभी हमारो अभिनय करवेको मूड हे, अनुभवको मूड नहीं हे. प्रभु चाहे तो कर सकें हें और रामावतारमें प्रभुने विप्रयोगानुभव कियो हे. ऐसो कियो हे कि कोई नहीं कर सकेगो.

मैं समझु कि वन हतो और लक्ष्मण हते और कोई साथमें हते नहीं, तो रामने एक एक वृक्ष और लतान्सु पूछवेकी कातरता भी दिखाई पर अयोध्यामें तो वो कातरता भी नहीं दिखा पाये होंयगे! वा करुणताकु कभी मनपे ख्याल लाओ के सीताकु भिजवा

दियो और एक आंसू भी टपका नहीं पाये! कितनी करुण स्थिति वा बखत उनने अनुभव करी होयगी! वा करुणताको अपनेकु अनुभव हो सके? वनमें तो अपनेकु वा करुणताको सहारो मिल गयो कि वृक्ष लतान्के सामने कातर हो होके पूछ लियो. रो लिये तो शायद हृदय थोड़ो हल्को हो जाये पर जहां एक आंसू नहीं टपके, एक अश्रु नहीं टपक्यो और एकदम राज्योचित मर्यादामें आज्ञा कर दी और वा बखत तो शायद सीताजी नवोढ़ा हती, या बखत तो सगर्भा हती तो भी भिजवा दियो. कितनी बड़ी करुणता भई होयगी! एक आंसू नहीं, एक उफ तक श्रीरामके मुखसु नहीं निकली, कितने बड़े विप्रयोगको अनुभव कियो होयगो! पर वो सारे विप्रयोगके अनुभवके बाद भी कोई जातकी वामें न्यूनता नहीं हे. प्रभु चाहे तो विप्रयोगानुभव कर सकें हें, नहीं कर सकें ऐसी बात नहीं हे. अब प्रश्न ये उठे कि विप्रयोगानुभव कौनकु होवे? जब अपनो प्रिय अपनेकु नहीं दीखे तो अपनेकु विप्रयोग होवे. भगवान् तो सर्वज्ञ हें. उनसु कोई चीज छिप कैसे सके कि उनकु विप्रयोग होवे! भगवान् सर्वज्ञ हें या लिये गोपियें चाहे कि हम छिप जाये तो भी छिप नहीं सकेंगी. या लिये कहें हें कि प्रभुकी विप्रयोगानुभवके लिये तैयारी नहीं हे. याके लिये श्रीगुसांईजी समाधान दें हें कि सर्वज्ञ होते भये भी प्रभु यदि चाहें तो अज्ञ बनके रो सके हें, कातर हो सके हें, जैसे रामावतारमें भये. अरे! जब माखनके लिये रो सके हे, जब आप्तकाम माखनके लिये रो सके हे, तो अपनी प्रियान्के छिपवेपे रो नहीं सके हे क्या! आनन्दसु रो सके हें, पर अभी तैयारी नहीं हे. मूड अभी रोवेको नहीं हे रुलावेको हे तो क्या उपाय हे? जैसो मूड वैसी बात.

(अवज्ञा : दृप्ता केशवम् अब्रवीत)

आचार्यचरण वहां कहें हें **सएव अत्यन्तं नटवटुः यः स्वस्कन्धम् आरुह्य नरीनर्ति. अशक्यं हि उपदिशति, प्रार्थितं तथा इति.** श्रीगुसांईजी

कहें हें "**वस्तुतस्तु महारसनिधानं तेन रसोद्दीपकम् इति उक्तं भवति. 'एतादृशे वने मद्वियोगेन मां विचिन्वन् यदि प्रियो भवति तदा कीदृशो रसः स्याद्' इति आशयेन अब्रबीत्. अतएव दृप्तात्वम् उक्तम्**" (टि.१०।२७।३७). स्वामिनीकी ये इच्छा भई कि मैं छिप जाऊं जैसे ये सबंके आगेसु छिप गये, ऐसे मोकु कोई मौका मिले तो छिप जाऊं इनके आगेसु और ये खोजते होंय, तो आनन्द आ जाये. याके लिये थोड़ो दर्प आयो और रसानुभवकी तीव्रताके कारण रसाभिनयमें वो प्रकट होवे लग्यो. वाहीके लिये श्रीगुसांईजी कहें हें "**नहि पूर्णज्ञानशक्तेः अविषयः कोऽपि भवितुं शक्नोति. यद्यपि विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्वेन रसात्मकत्वेन च जानन्नेव अजानन्नपि भवितुं शक्नोति इत्येवम् उत्तरं न सम्भवति, तथापि अत्र अतिप्रीतिविषयत्वेन "तं धर्म प्रकटयितुं न पारये" इति भगवदाशयज्ञापनाय 'प्रिया'पदम् उक्तम्**" (टि.३८). अब छिप नहीं सके और स्वामिनीके हृदयमें ऐसो भाव जग्यो कि मैं छिपूं और प्रभु खोजे तो वो सम्भव नहीं हतो पर कहें हें कि पूर्ण ज्ञानशक्ति होवेके कारण ये तो सम्भव नहीं हे तो भी प्रभु तो विरुद्धधर्माश्रय हें. चाहे तो पूर्णज्ञान शक्तिमान होते भये भी, आप्तकाम होते भये भी जैसे माखनके लिये रोये हें, ऐसे पूर्णज्ञान शक्तिमान होते भये भी स्वामिनीकु खोजते भये रोवें, तो क्यों नहीं रो सकें हें! तो कहें हें "**तथापि अत्र अतिप्रीतिविषयत्वेन 'तं धर्म प्रकटयितुं न पारये**" (टि.३८). तुम प्रिया हो और मैं बिछुड़नो नहीं चाहूं हूं और कोई दूसरी बात नहीं हे. तुम प्रिया हो और मैं तुमसु बिछुड़नो नहीं चाहूं हूं, या लिये मेरे आगेसु मैं तुमकु छिपवे नहीं दूंगो. पेहले मैं छिपके देखुं. वाके लिये कहे हें "'**प्रियात्वात् मम अशक्यं भवत्याः तिरोधानं, तत्सामर्थ्याभावाद् भवत्याः स्वतस्तिरोधानं तथा' इति भावः**" (टि.१०।२७।३८). प्रिया जो प्रार्थना कर रही हे वो देनो चइये पर अभी जो मेरो मूड हे, वामें मेरे लिये भी अशक्य हो गयो हे, प्रभु केह रहे हें, याके लिये दे नहीं सकुं हूं.

(स्तुतिको हेतु)

“अस्यां दशायां हृदि प्रकटः सन्नेव आनन्दात्मकतद्रसपोषको यतः इत्यर्थः” (टि.३८). तो ये अपराध और अवज्ञा वो सब भगवदिच्छासू ही भगवद्रसानुभूतिकी तीव्रताके कारण ही प्रकट भयो हे. ये कोई लौकिक अपराध या लौकिक अवज्ञा नहीं हे. या सारी लीलामें या अवज्ञाको भी एक रोल् हे और लीलामें या अपराधको भी एक रोल् हे या लिये श्रीमत्प्रभुचरण कहें हें **“अस्मान् यदि प्रार्थयिष्यति तदा रसं दास्याम्.”** (टि.का.१) यदि भगवान् हमारी प्रार्थना करे, भगवान् हमारी चाटुकारिता करे, उनकु ऐसो जो कभी मान जग्यो, तो वा बखत प्रभुने वाकी अवज्ञा मानी. वो अवज्ञा मानके तिरोहित भये. **अवज्ञया अप्रसादे स्तोत्रेण प्रसादो भविष्यतीति तथा इति भावः.** तो व्रजभक्तनूमें ये भाव जग्यो, या प्रकारकी हमने अवज्ञा करी, यासू अप्रसन्न होके तिरोहित भये, अब स्तुति करेंगे तो प्रसन्न होके प्रकट हो जायेंगे. या अपराधके कारण स्तुति हे ये स्तुतिको हेतु हे.

(रसस्वभावसू अपराध और स्तुति)

यद्वा स्वभावाद् रसस्वभावाद् यो अपराधः इति अग्रे पूर्ववत् (टि.). अब **स्वभावाद् अपराधतः** को एक अर्थ ये भी हो सके हे कि अपराध स्वभावके कारण भयो हे और स्वभाव कौनसो? रसको स्वभाव. रसको स्वभाव हे कि अभिनयकी तीव्रता अनुभव करते करते अभिनय प्रकट होवे लग जाये. **स्तोत्रम् इति गानविशेषणम्, तथा च स्तोत्ररूपं गानं चक्रुः इत्यर्थः** (टि.). स्तोत्र एक गानविशेष हे. प्रभुकु प्रसन्न करवेके लिये, उनने ये स्तोत्रगान कियो. **अग्रे गुणकथनं भाववैजात्यज्ञापनार्थम् इति ज्ञेयम्** (टि.). अर्थात् गुणकथन कियो. कोई सात्त्विकी हे कोई राजसी हे कोई तामसी हे. ये क्यों गिना रहे हें? आचार्यचरण यों जो कहें हें **राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा...** तो ये भाववैजात्य हे. नहीं तो गोपिकानूमें गुणवैजात्य क्यों आयो अगर भाववैजात्य नहीं हे? आगे गुणको कथन और भाववैजात्यको कारण बतायवेके

लिये गुणको निरूपण आचार्यचरणने कियो हे. अब यहां ये बात प्रकट भई कि प्रभुकु प्रसन्न करवेके लिये तो गोपीगीत गायो और वामें भी फिर गालियें ही दी हें. याको क्या संबंध हे? इन गालीनूसू क्या प्रभु प्रसन्न हो जायेंगे?. गालिब कहे हे **"उसे बेमहर कहनेसे वो मुझपे मेहरबान क्यूं हो?"** कोईकु घड़ी घड़ी जाके निर्दय हे, निर्दय हे, केहवेसू क्या वो दयालु हो जायेगो! और ज्यादा गुस्से हो जायेगो. जो कोई निर्दय भी होय और वाके सामने जाके तुम कहो कि तुम बहोत निर्दयता कर रहे हो, तो या प्रकारकी स्तुतिसू तो दयाको एकाध परसेन्ट् चान्स् भी लोप हो जायेगो. तो या लिये या प्रकारको कुहक केहनो और कितव केहनो, ये सबको क्या संबंध हे? अपराधके कारण. तो केह रहे हें कि यामें फिर एक हेतु और हे और वो हेतु हे **ननु "तदागमनकांक्षया जगुः" इति वचनाद् यथा मानेन अपराधाद् गतः** (टि.). भगवान् पधारेंगे या आकांक्षामें उनने गान शुरु कियो. तो गये क्यों? पधारे क्यों? तिरोहित क्यों भये? अप्रकट क्यों भये? जो मानके कारण. अब प्रकट कैसे होयंगे? जो स्तोत्रके कारण सन्तुष्ट होकर प्रकट हो जायेंगे. तब फिर स्तुतिमें ही गाली-गलौचकी ये सब स्थिति क्यों? ऐसो यश क्यों गायो कि तुम निर्दय हो, तुम तो क्रूर हो. तो केह रहे हें **स्तुतिः हि यथाधिकारं भवति** (टि.). हर व्यक्ति स्तुति अपने अधिकारानुसार करे हे. हर व्यक्ति अपने अधिकारके अनुरूप स्तुति कर सके हे. **एतासाम् एतादृशएव अधिकारो येन 'कुहक'-'कितवा'दिवचनानामपि स्तुतित्वम्** (टि.). इन भक्तनूको अधिकार ऐसो हे कि ये ठाकुरजीकु दो-चार गाली दें तो उनकु मजा आवे कि अब पड़ी गाली मजेदार. ये सचमुचमें अगर कहीं दीन बन जाये तो ठाकुरजीको मूड खतम. अब ये अपनो अपनो अधिकार हे.

(गालीकी मिठास)

हम कनिकाका या दादाजी की गाली नहीं खाते तो दिन खाली

जातो. उनको अधिकार हतो गाली देवेको. वो आशीर्वाद देते तो वो स्वाद नहीं आतो जो स्वाद गाली खाके आतो. एकाध ऐसी चिड़चिड़ाती गाली पड़ती तो स्वाद स्वाद हो जातो, जनम सुधर जातो. क्योंकि उनकी गालीमें वो मिठास हती, वो स्वाद हतो. दूसरो कोई गाली दे तो नाराज भी हो जाये, दिलमें चुभ जाये, बरसन भूले नहीं कि गाली दी हती. बड़े मन्दिरमें ये दो व्यक्ति ऐसे हते, एक तो कनिकाका और एक दादाजी जिनकी गालीको ही मजा आतो. छेड़के गाली खानो जीवनको उत्तमोत्तम अनुभव हतो. तो इन गोपिकान्को स्वभाव ऐसो हे कि या तरहसु छिपके, थोड़ो अप्रकट होके, इनकु चिढ़ाके दो-चार गाली प्रभु खा लें तो प्रभुकु भी संतोष होय कि आज दिन अच्छो गयो. एकाध गाली पड़ गई कसके. ये उनको अधिकार हे पर हर आदमी उनको अनुसरण करके गाली दे तो ये उनको बुरी लग जाये. ये अपनो अपनो अधिकार हे. मने इनकी गाली गाली नहीं हे, इनकी गाली स्तुति हे. दूसरेकी स्तुति भी होय सो गाली बन जाये ये अनधिकार चेष्ठा करे तो. या लिये कहें हें **एतासाम् एतादृशएव अधिकारो येन 'कुहक'-'कितवा'दिवचनानामपि स्तुतित्वम्** (टि). ये गालियां दें और प्रभु मानें कि चलो आज अच्छी स्तुति करी. जैसे कुम्भनदासजीने कह्यो कि नहीं! वहां "चलेगो कि मूंड कटवायेगो?" श्रीनाथजीकु गाली दी कि नहीं? श्रीनाथजी प्रसन्न हो गये. **अन्यथाग्रे तथानुवदिष्यन् "तदागमनकांक्षया जगुः" इति न वदेत्** (टि.). इनने जो गाली दी हें, वो गाली भी प्रभुकु प्रकट करवेके लिये दी हें. प्रभु जब प्रकट भये हें, तो वो इनने दो-चार गालियें दी अच्छी कस-कसके या लिये प्रभु प्रकट भये हें. ये नरमाईसु स्तुति कर देती तो प्रभुको मूड खराब हो जातो. आज तो दिन अच्छो नहीं गयो, ठण्डो गयो. दादाजी कंई बखत हमकु पेहचान जाते के जानकर छेड़ रह्यो हूं, गाली खावेके लिये तो केह देते कि "तू दुष्ट हे, बदमाशी करे हे." तो वा दिन हमारो भी मूड बिगड़ जातो जब गाली नहीं

पड़ती. जा दिन नहीं पेहचान पाते और अपन् कोई ऐसी चुभती केह आते तो बस गालियोंकी बौछार शुरु हो जाती और हमारो चित्त प्रसन्न हो जातो. कभी कभी पेहचान जाते दादाजी कि जानकर छेड़ रह्यो हूं. बदमाशी कर रह्यो हूं. तो केहते "गाली खायवेके लिये कर रह्यो हूं." ऐसी ऐसी केहते कि त्राहि त्राहि हो जाती. "अरे! तेरी बुद्धि क्यों भ्रष्ट भई. तेरेपे भाटा पड़ें." एक दिन दादाजीके आगे जाके कही "मेरी तो ऐसी इच्छा होवे हे कि पढ़ाई-वढ़ाई छोड़के अब बस तबला बजाऊं." तो ऐसे गरम भये कि त्राहि त्राहि हो गई. "अरे! तबला बजायेगो! येही करम रेह गयो हे बाकी तेरे जीवनमें!" बहोत मजा आ जाती. लाल हो जाते पूरे. वा गालीको एक स्वाद हतो. वो गालीकी मिठास हरेकके मुंहमें नहीं हे.

(व्रजपतिको विलक्षण मूड)

याके लिये यथाधिकार कहें हें. **न ह्येवं ब्रह्मादिभिरपि वक्तुं शक्यम्** (टि.). ब्रह्मा या बातकी, ऐसी गालीकी कल्पना कर सके? सोचे तो ब्रह्माजीकु घबराहट हो जाये, के ऐसी गाली दी कैसे जा सके हे! "**हिहीहीहींकारान् प्रतिपशु वने कुर्वति सदा नमद्ब्रह्मेशेन्द्रप्रभृतिषु च मौनं धृतवति मृगाक्षीभिः स्वेक्षानवकुवलयैः अर्चितपदे रतिर्प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे**" (परिवृढाष्टक.३). गायन्के विषे जो वो ग्वालिया हीं-हीं करके उन गायन्कु चरावें ऐसे फिरते फिरें. ब्रह्मायें बिचारे स्तुति करते होवे, उनकी तरफ निगाह भी नहीं जाय ऐसो कोई विलक्षण मूड जा बखत व्रजमें ठाकुरजीको देख्यो, तो मति चकरा जाय. ब्रह्मा जो स्तुति कर रह्यो हे वाके तरफ दृष्टि भी नहीं और जो गायें हें सो तो स्तुति नहीं कर सके क्यों जो पशु हें, उनके पीछे हीं-हीं करके दौड़ रहें हें वहां. ये कैसो मूड हे! ये अपने अपने अधिकारकी बात हे.

तथा च स्वस्वभावोद्‌गिरणे तच्छ्रवणेन प्रभोः परमसन्तोष इति ‘तासां भावएव निरूप्यते’ इत्यर्थः (टि.). प्रभुकु स्तुतिको संतोष नहीं हे. ये शब्द नहीं कहे होते और कोई दूसरे शब्द कहे होते तो भी बात वोही की वोही होती पर यहां स्वभाव प्रकट हो गयो. स्वभावको उद्‌गिरण हो गयो जैसे आदमीकु पचे नहीं और उल्टी हो जाये. बहोत गरिष्ठ खा लियो और वो पचे नहीं और उल्टी हो जाये वो उद्‌गिरण. ऐसो जो उनको स्वभाव हे, वाको ऐसो अतिरेक भयो कि उनसु रह्यो नहीं जाय, सो स्वभाव प्रकट हो गयो, उद्‌गिरण हो गयो. वो जा बखत उद्‌गिरण हो जाये तब परम संतोष हो जाये. जब स्वभाव आदमीको झलक जाये वो भी कब? जब घबराई भई परिस्थितिमें. आदमी जैसे कन्ट्रोल् कर रह्यो होय खूब पर अचानक वो स्वभाव प्रकट हो जाये. तब वाके स्वभावके प्राकट्यको आनन्द सामान्यतया रुटीनूमें कोई आदमी काम करतो होय, वाकु वो आनन्द नहीं मिले. जैसे एक आदमी क्रोधी हे और क्रोधकु बड़ो जप्त करके बैठ्यो होय. अब वो कोई ऐसी परिस्थिति वाकु उकसाती जाये और एकाएक वाके क्रोधको विस्फोट हो जाये, तो वा क्रोधको मजा आयेगो, ऐसो सामान्यमें मजा नहीं आयेगो. जैसे कोईको हंसवेको स्वभाव हे और खूब जप्त करे अपने आपकु, पर एकाएक वो हंसवेको स्वभाव फूट ही जाये कोई बखत तो वा हंसवेकी जैसी हसी सामान्य स्थितिमें नहीं आयेगी.

(स्वभावोद्‌गिरण)

एक महाराजकी शोकसभामें हम माधवबागमें गये. अब एक शास्त्रीको बेटा शोकसभामें आके बोल्यो. वाकु प्रवचन करवेके बीचमें ऊंऊंऊंऊं... करवेकी आदत हती. वो प्रवचन करे “...महाराज म्हारा ऊपर बहुंज कृपा राखता हता ऊंऊंऊंऊं...” अब मैं सोचु कि शोकसभाके बीचमें ये ऊंऊंऊंऊं... क्या हो रही हे! बड़ी विचित्र बात हे. अब वा बखत बचपना हतो, बहोत कोशिश करी अपने आपपे काबू रखवेकी,

कि भई! शोकसभा हे गम्भीर चेहरा बनाके बेठनो चइये. बहोत गम्भीर चेहरा बनाके बेठ्यो. अब मैंने सोच्यो कि देखूं दादाजीपे क्या प्रभाव पड़ रह्यो हे? दादाजीकी दाढ़ी बढ़ी भई हती और एकदम गम्भीर चेहरा लाल हो रह्यो थो, खाली तोंद हंसीके कारण हिल रही थी. अब वो दृश्य देखके मोसु रह्यो ही नहीं गयो, चालू शोकसभामें मैं ठहाका लगाके हंस दियो. अब दादाजी मोसू चिढ़ें कि "तू चालू शोकसभामें हंसे, तोकु शरम नहीं आवे." मैंने कही कि "आपको चेहरा एकदम गम्भीर, खाली तोंद हिल रही थी हंसीके कारण." तो दादाजीने कही कि "चेहरापे कोई भाव हतो?" तो मैंने कही "चेहरापे भाव होतो तो हंसी नहीं आती. जितनो आपने जप्त कर रख्यो थो और चेहरा गम्भीर बनाके खाली तोंद हिला रहे थे, सो हंसी वहां फूट ही गई." अब वाकी हंसी मोकु आज तक आवे हे कि कैसी हंसी हती. जीवनमें सेंकड़ों बार हंस्यो होऊंगो पर वैसी हंसी जो फूटी, वाकी हंसी मोकु आज तक याद आवे हे. तो फूट जाये स्वभावसू, उद्गिरण हो जाये, वाको एक अलग आनन्द हे. जो रुटीन्में स्वभाव चले वाको एक अलग आनन्द हे. अब अपनेपे बहोत संयम कर रहे हें, संतोष कर रहे हें, कन्ट्रोल् कर रहे हें और स्तुति करवे जायें पर गालीको स्वभाव एकाध बखत फूट जाये तो वैसो आनन्द सामान्य दशामें नहीं आवे.

(तच्छ्रवणेन प्रभोः परमसन्तोषः)

श्रीगुसांईजीने कैसे स्वभावकु पकड़्यो हे सो तुम देखो. **तथा च स्वस्वभावोद्गिरणे तच्छ्रवणेन प्रभोः परमसन्तोष इति** (टि.). सब स्तुति कर रही हें. सबन्के मनमें ये हे कि कथञ्चित् स्तुति करके प्रकट करें. स्तुति करवे बैठें और वा स्वभावके कारण एकाएक जोरमारके एकाध गाली निकल जाये, तो प्रभुकु भी आनन्द हो जाये कि ये फूट्यो स्वभाव. वो स्वभाव फूट्यो तो जो वाकी प्रसन्नता हे,

वो परम संतोष प्रभुकु होवे हे. शायद वाही संतोषके कारण प्रभु प्रकट हो जाये कि अब तो प्रकट होनो पड़ेगो. शायद हसी आ गई होगी प्रभुकु प्रकट होवेके पेहले. वहां आयो हे कि प्रभु हंसते भये प्रकट भये. एकाध गाली सुनके प्रभुसु भी नहीं रह्यो गयो होयगो. प्रकट होवेके पेहले प्रभुकु भी हसी आ रही होयगी कि देखो पड़ी गाली और उनसु रह्यो नहीं गयो होयगो और प्रकट हो गये.

विपक्षे बाधकम् आहुः 'अन्यथा' इति. यदि अन्यस्तुतिवद् अत्रापि स्तुतित्वमेव स्यात् न भावमात्रनिरूपणं, तदोपालम्भादिप्रकारैः अनेकरूपता स्तुतौ न सम्भवतीति सा न उच्येत इत्यर्थः (टि.). केवल बिना भावके, भावहीन ये स्तुति होती, तो वामें स्वभाव पूरो नहीं आतो. ये भावहीन स्तुति नहीं हे. भावसहित स्तुति हे. याके लिये या भावमें स्वभाव जुड़ गयो हे. या लिये कोईने उपालम्भ दियो कोईने गाली दी कोईने प्रार्थना करी जाको जैसो स्वभाव, वैसो वैसो स्वभाव स्तुतिमें प्रकट भयो हे. ये विविध विविध स्वभाव प्रकट भये हें स्तुतिमें, ये या बातको हेतु हे कि ये केवल भावहीन स्तुति नहीं हे, ये केवल कोई जातकी बौद्धिक स्तुति नहीं हे पर ये केवल उच्छलित स्तुति हे. यदि गणना करी होती तो जैसे अपन् ऑफिस्में जावें और कोई ऑफिसर्कु खुश करवेके लिये खोटी चापलूसी करें, तो अपन् पूरी गणना करके एक-एक शब्द बोलें. एकाध शब्द भी मुंहसु ऐसो न निकल जाये कि जासू ऑफिसर् नाराज हो जाये. क्योंकि वामें अपनो भाव नहीं हे, वासु केवल अपनो काम निकालनो चाहें. ऐसे गोपिकान्कु प्रभुसु कोई काम नहीं निकालनो हे. अपने स्वभावके उच्छलनमें की भई स्तुति हे. याके लिये यामें भाव हे. भाव हे क्योंकि स्वभावसू उच्छलित हे. याके लिये ये स्तुतिमें भावप्रवणता हे भावात्मकता हे ये बात बताई गुसांईजीकी टिप्पणीने.

----*----

॥ श्लोक : २ ॥

उत्थानिका :

एवं स्वदैन्य-अनौचित्यादिनिरूपणेन तस्या राजसत्वं निरूपितम्. तामसी तु वधाभावं प्रार्थयितुम् अदर्शनस्य बाधसाधकत्वम् आह शरदुदाशये इति :

विवरणम् :

एवं स्वदैन्य-अनौचित्यादिनिरूपणेन तस्या राजसत्वं निरूपितम्'. पेहली गोपी राजसी हती. राजस स्वभावके कारण, प्रभु प्रकट होय ऐसी प्रार्थना करवेके बजाय वाने और भी विनीत प्रार्थना एक बार और करी. प्रकट होव के मत होव पर एक बार देखो तो सही. एक बाजु ऐसी विनीत भावना प्रकट करी और दूसरी बाजु प्रभुको अनौचित्य दिखायो **"दयित दृश्यतां दिक्षु तावका स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते"** मने प्रकट नहीं होनो तुम्हारो अनुचित हे, ऐसो भी मुंहसु भाव प्रकट हो गयो. क्योंकि राजस हे न! राजस होवेके कारण मनकी स्थिति वाकी चंचल हे. थोड़ी विनय करवे जाये, थोड़ो अविनय हो जाये. फिर थोड़ो विनय करवे जाये तो थोड़ो एक विलक्षण प्रकारको वाके बोलवेमें, एक जातको जैसे पेन्ड्युलम् कभी यों जाये कभी यों जाये, ऐसी चंचलता वाकी वाणीमें और वाके भावमें आवे हे क्योंकि गोपी राजस हे.

(तामसभावसू प्रार्थना : किं वधो न!)

अब ये दूसरी गोपी तामसी हे. कर तो प्रार्थना रही हे पर एकदम भाटाके रूपमें. मने प्रार्थना क्या कर रही हे आक्षेप ही लगा रही हे. क्या कहे हे **तामसी तु वधाभावं प्रार्थयितुम् अदर्शनस्य वधसाधकत्वम् आह शरदुदाशय इति.**

श्लोक :

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ ते शुल्कदासिका वरद!निघ्नतो नेह किं वधः॥२॥

सुबोधिनी :

शरत्कालीनो यो अयम् उदाशयः पुष्करिणी, तत्र साधु सम्यक् प्रकारेण जातं यत् सरसिजं कमलं तदन्तर्वर्तिनी या श्रीः, तामपि मुष्णाति इति तादृग्रूपया दृशा दृष्ट्या, हे वरद!, यो निहन्ति तस्य किं वधो न!, अपि तु वधदोषो भवत्येव. येनैव साधनेन परस्य प्राणा गच्छन्ति तत्सम्पादनसाधको घातकः दोषभाग्भवति. अनेन भगवद्दृष्टिः सर्वघातुका निरूपिता, "आयुः मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छद्" इति वाक्यात्. तथा अस्मानपि प्रायेण क्रूरदृष्ट्या पश्यसि, अन्यथा कथं प्राणबाधा स्यात्? रूपं तु आनन्दमयमिति तद्दृष्टौ तदेव जीवयेद्, अतः तदभावात् केवलं घातयस्येव. किञ्च न वयं वधार्हाः यतो दासिकाः कुत्सिता दास्यः, नहि स्त्रियः अप्रयोजिकाश्च हन्यन्ते.

किञ्च वयं शुल्कदासिकाः, त्वं च सुरतनाथः, सर्वपुरुषार्थसाधकत्वेन तव सम्बोधनानि यथाधिकारं नियतानि. यथा धर्ममार्गे हे धर्मपालक! हे ब्रह्मण्य! हे यज्ञेश्वर! इत्यादीनि, अर्थे हे लक्ष्मीपते!, हे सर्वसिद्धिद! इत्यादीनि, तथा मोक्षे हे मुकुन्द! हे योगेश्वर! हे ज्ञाननिधे! इत्यादिनी धर्मार्थमोक्षार्थिभिः उच्यन्ते. एवम् अस्माभिरपि सुरतनाथ! इति उच्यते. सुरतं सम्भोगः जगति यावान् अस्ति तस्य भवान् नाथः, त्वदाज्ञाव्यतिरेकेण सुरतं जगति न प्रवर्तते. अतो ब्रह्मणा कामेन वा लोके सुरतप्रवृत्त्यर्थं वयं शुल्करूपा दासिका

दत्ताः. शुल्कं मार्गनिर्वाहकं द्रव्यं प्रतिबन्धनिवर्तकम्. सुरतं चेद् भगवत्येव निरुद्धं तिष्ठेत् तदा लोके रसो न भविष्यतीति अस्मद्द्वारा त्वत्तः तल्लोके प्रसृतं भवत्विति वयम् आगताः. तत् कार्यं दूरतएव स्थितं, प्रत्युत अस्मान् मारयसि. एवं सति सर्वमेव कामशास्त्रं व्यर्थं स्यात् तृतीयः पुरुषार्थश्च न भवेत्. अतः सर्वथा यदर्थं वयं प्रेषिताः तत्कर्तव्यम्. अथवा यदाकदाचित् कर्तव्यम्, इदानीं जीवयितव्या रूपप्राकटच्येन.

दृशो मारकत्वम् उपपादयन्ति श्रीमुषा...इति. यस्तु चोरो भवति स घातकोऽपि भवति, यथा यथा चौर्ये नैपुण्यं तथा तथा घातकत्वम्. तदर्थम् आहुः उदरश्रीमुषा इति. तत्रापि दुर्गजाताः ते अतिनिपुणाः, तत्रापि जलदुर्गजाः. तत्सरसिजम्. तत्रापि ते दुर्गएव तिष्ठन्ति, तत्रापि ते साधुजाताः प्रभवः, तत्रापि प्रकाशवति काले शीताद्युपद्रवरहिते. एवं देशकालस्वरूपादिभिः अशक्यचौर्यादपि पुरुषात् तदुदरवर्तिसर्वस्वनेता अन्तःस्थितप्राणान् साधारणगोपिकादीनां नेष्यति इति किम् आश्चर्यम्! चौर्यं हि क्रियते बलिष्ठेन अपकीर्त्यभावाय, तदत्र तु न भविष्यति इति उक्तं किं वधः न इति.

अथवा अदृशा अदर्शनेन दर्शनम् अदत्वा निघ्नतः किं बधो न? सुरतार्थम् आगताः. तद्गतं दूरे, अन्तरा मरणम् उपस्थितम्. तथा सति सुरतस्य अप्रकटितत्वात् नाथत्वमपि न स्यात्. नहि योगी अश्वनिर्माणसमर्थोऽपि 'अश्वपतिः' उच्यते. प्रकटयति चेत् तदा तथा. किञ्च अस्मद्वधे किम् आश्चर्यं, तव अदर्शने लक्ष्मीरपि न तिष्ठेत्, तदाहुः श्रीमुषा इति. उदरस्थिता श्रीः चेद् बहिरानीता, तदेव म्रियते अपुष्टत्वात् आमगर्भवत्. यद्यपि तस्याः

जीवने कालद्रव्यदेशवस्तूनि बहुन्येव सन्ति, तथापि त्वददर्शने न जीवति, तथा वयमपि, किञ्च त्वं सर्वेषां वरान् प्रयच्छसि, अस्मान् तु मारयिष्यसि इति महदाश्चर्यम्! वरदाता हि प्रत्यक्षो भवति. अथवा ते वयम् अमुल्यदासिकाः धर्मदासिकाः. अतो न हन्तव्याः. एवम् अनेकविधक्रौर्यभावनया काश्चिद् भगवन्तम् उपालभन्ते.

अन्तःस्थितो रसः पुष्टो बहिः चेद् न विनिर्गतः।
तदा पूर्णो नैव भवेद् इति वाग्निर्गमः तथा॥११॥

विवरणम् :

शरत्कालीनो यो अयम् उदाशयः पुष्करिणी, तत्र साधु सम्यक् प्रकारेण जातं यत्-सरसिजं कमलं, तदन्तर्वर्तिनी या श्रीः, तामपि मुष्णातीति तादृग्रूपया दृशा दृष्टया, हे वरद! यो निहन्ति तस्य किं वधो न! भगवान्पे आक्षेप लगा रही हे और केह रही हे कि तुम छिप नहीं गये हो परन्तु हमारी हत्या कर रहे हो. तुम छिप नहीं गये हो पर तुम हमारो वध कर रहे हो. वध कैसे कर रहे हें? तो कहें हें कि तुम अपने नेत्रनूसु हमारो वध कर रहे हो.

(चोरीको स्वभाव बढ़-बढ़के...घात तक)

आचार्यचरण कहें हें कि वध क्यों? वधकी क्या जरूरत पड़े? तो कहें हें कि जा आदमीमें एक बखत चोरीको गुण प्रकट होवे और धीरे धीरे यदि चोरीको स्वभाव बढ़वे लगे, तो कभी न कभी वाकु वध करनो ही पड़े. अब तुम्हारी आँखन्में चोरीको स्वभाव प्रकट हो गयो. जब चोर पकड़ावे तो कभी न कभी तो वाकु मारनो पड़े. शुरुआतको नयो चोर थोड़ो डरपोक होवे, थोड़ो नाहिम्मत होवे पर धीरे धीरे चोरी करते करते दृढ़ अभ्यास चोरीको हो जाये, तब जैसे चोरी-छिपे सामान चोर लियो, ऐसे ही काऊके प्राण भी

चोर ले तो हरकत नहीं आयेगी. क्योंकि चोरीको अभ्यास बढ़ जाये ना! तो तुम्हारी आँखें चोर हें. देखो एक चोरीको अपराध लगा रही हे और चोरी करते करते तुम्हारी आदत बिगड़ गई हे और तुम्हारी आँखें इतने अपराधी स्वभावकी हो गई हें कि वो हत्यापे भी उतारू हो गई हें. तुम केह रहे हो कि हम वध नहीं कर रहे हें तो बोलो कैसे वध नहीं कर रहे हो?

चोरी कैसे हे? वो कहे हे **शरद्-उदाशये साधुजातसत्सरसिजोदर श्रीमुषा दृशा** चोर एक्सपर्ट कब केहवावे? एक्सपर्ट चोर होवे तकमें तीन भेद होवे हें. एक होवे उचक्का. एक होवे चोर. और एक होवे डकैत. उचक्का, चोर और डकैत. उचक्का क्या होवे? बहोत कमजोर ढंगको चोर होवे. वो चोरी करे नहीं पर पड़्यो भयो लावारिस सामान मिल जाये तो उठा ले. चोर वासु थोड़ो आगे बढ़्यो भयो होवे, वो चोरी करे. चोरी करे मने बराबर प्लान् घड़े. कौनसे बखत चोरी करवेसू सामान बराबर हाथमें आयेगो. ऐसे प्लान् घड़े पर इतनी हिम्मत वाकी नहीं होवे कि डकैतकी तरह बन्दूक या शस्त्र छातीपे रखके, तुम्हारो माल जबरदस्ती खौंस जाये. एक अन्तिम अवस्था चोरकी होवे हे वो डकैतमें आ जाये. तुम्हारेपे शस्त्र रखें और शस्त्र रखके तुम्हारो माल तुमसु ले जाये. गोपिकायें भगवान्पे उचक्काको आरोप नहीं लगा रही हें. क्योंकि तामसी हे ना! वो ये नहीं केह रही हें कि प्रभुकी आँखें उचक्का जैसी हें. वो केह रही हे कि कहीं चोर और डकैत के बीचको काम कर रहे हो. कैसे? तुम श्रीकु चोरो. श्री कैसे? श्री माने पैसा. श्री माने शोभा, श्री माने धन. तो तुम श्रीके चोरवेवाले हो. कहांसु हमने श्री चोरी? तो कहें हें कि शरदऋतुमें खिले कमलकी शोभाकु अपनी आँखन्सु तुमने चोर ली हे. मने ये शोभा तुम्हारी नहीं हे, ये चोरी भई शोभा हे. ये तुम्हारे नेत्रकी शोभा नहीं हे. अब चोरी करवेकी तुमने आँखकु आदत डाली हे, तो आँखकी शोभा तुम चोरी करके बढ़ाओ

हो. अब बहोत चोरी करवेकी आदतसू तुम्हारी आँखमें मदको स्वभाव भी आ गयो. अब तुम चोरीसु डकैतीपे जा रहे हो. जबतक तुमने आँखन्सु कमलकी शोभा चोरी, तबतक तो हम क्षमा कर सकते थे कि तुम चोर हो पर अब तुम डकैतीके स्तर पर जा रहे हो. अब इन आँखन्सु तुम हमारे प्राणन्कु भी चोरवे जा रहे हो. अब तुम्हारेपे डकैतीको आरोप आ रह्यो हे, वधको भयंकर आक्षेप आ रह्यो हे. नहीं तो प्रकट हो जाओ. नहीं तो ये एलीगेशन् कायम हे. वो कहे हें ''तामसी तु वधाभावं प्रार्थयितुम्'' तामसी गोपी क्या युक्ति लगा रही हे कि प्रार्थना तो कर रही हे कि मेरो वध मत करो, जैसे बड़ी गिड़गिड़ा रही होय, दीन होय पर दीनताकी प्रार्थना करते करते फिर वाके मनमें तामस जगे. तामस जगे तो वधाभावकी प्रार्थना करवे जा रही थी कि हम मर रही हें, राजसी गोपीने भी ये प्रार्थना करी थी **''त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते''** हम मर जायेंगी यदि तू हमारे सामने प्रकट नहीं होयगो. तो येही बात वाकु भी ख्याल आई कि मर तो हम भी जायेंगे पर ये बात ख्यालमें आते-आते फिर तामस जोर पकड़ गयो. तो कहें हें कि तुम ही मारवेवाले हो. वो तो यों केह रही थी कि यदि तुम प्रकट नहीं होवगे तो हम मर जायेंगी पर याकु प्रार्थना करते करते जोश आ गयो, सो आक्षेप लगा दियो कि हम मरेंगी सो तो मरेंगी पर मारवेवाले तुम हो.

(अदर्शनस्य वधसाधकत्वम्)

वो कहे हे **तामसी तु वधाभावं प्रार्थयितुम् अदर्शनस्य वधसाधकत्वम् आह** तुम जो दर्शन नहीं दे रहे हो, ये दर्शन नहीं देके हमकु मार रहे हो. अब वाकी पूरी भूमिका घड़ रही हे कि तुम मारवेकी, घातकताकी हदपे पहोंचे हो, याके लक्षण, याके सिम्प्टम् हमकु पेहलेसु पता हें. ये तुम्हारी आदत, जैसे अपराधीकी केस् हिस्ट्री देखी जाये कि पेहले याने अपराध कियो कि नहीं कियो? मने सारे अपराधके

प्रूफ़ नहीं मिलते होंय तो केसहिस्ट्री देखी जाय. केसहिस्ट्रीमें यदि ये सिद्ध होवे कि पेहलेसु ही इनकी अपराधिवृत्ति हे, तो वो अपराधको बड़ो निश्चित प्रूफ़ नहीं मिलतो होय तब भी ये प्रूफ़ मान लियो जाय कि इनको पेहलेसु ही अपराध करवेको स्वभाव हे तो ये बखत इनने अपराध क्यों नहीं कियो होयगो? या हेतुसू यदि तुम्हारो पेहलेसू चोरीको स्वभाव हे तो आज तुम घातपे उतारू भये हो.

अब वो चोरीको स्वभाव सिद्ध कर रही हे कि **शरदुदाशये** अरे! साधारण चोर तो अंधेरामें चोरी करे. जब बद्‌दल गरज रहे होंय, जब दुनिया डरके अन्दर सोई भई होय तब चोरी करे, पर शरदके उजालामें तो कोई चोरी नहीं करे. तुम शरदके उजालामें चोरी कर रहे हो. तुम ऊंचे चोर हो. **शरदकालीन ऊदाशये** आप तो शरदकालके उजालामें चोरी कर रहे हो. कोई साधारण उचक्का होय तो पड़्यो भयो माल उठा ले. तुम वासु ऊंची कोटिके चोर सिद्ध हो रहे हो. क्योंकि सरोवरके बीचमें कमल, जो चारों ओर सिद्ध हो रहे हो. क्योंकि सरोवरके बीचमें कमल, जो चारों ओरसु सेफ़ हतो जाकु कोई चोर नहीं सके, जैसे जलदुर्ग बनाके कोई बेठ जाय, तो कोई चोर नहीं सके ना! जैसे सेफ़डिपोजिट्में कोई चीज रख दी तो फिर साधारण चोर तो वाकु चोर नहीं सके. सेफ़डिपोजिट्मेंसु कोईकु कोई चीज चोरनी होय तो ऊंचे कोटिको चोर चइये. तो ऐसे कहें कि तुम्हारी आँखें कोई ऊंची कोटिकी चोर हें. ये या बातसु सिद्ध हो रह्यो हे कि जो उदाशय हे, गम्भीर जल हे, उनमें जो कमल हते और बड़े सेफ़ हते, सुरक्षित हते, वहांसु तुमने उनकी शोभा चोर ली. यासु ऊंची कोटिके चोर हो ये सिद्ध भयो. जब ऊंची कोटिके चोर हो ये सिद्ध हो गयो तो तुम घातक भी सिद्ध हो, क्यों नहीं हो? सिद्ध करो प्रकट होके. क्योंकि तामस जग गयो एकदम प्रार्थना करते-करते.

तत्र साधु सम्यक् प्रकारेण जातं. अच्छा अब कोई बदमाशी करतो होय और वाकी कोई चीज चोर लें जैसे भिण्ड-मुरैनाके चोर डाकू हते. वो केहते हते कि कोई गरीब आदमी होय वाके यहां चोरी नहीं करेंगे. सो साधु आदमी होय वाके यहां चोरी नहीं करेंगे पर खुद जो बदमाशीसू पैसा कमाते होते, ऐसेन्के घर डाका डालते और माल चोर लेते. अब बिचारे कमलने क्या बदमाशी करी? कोई बदमाशी नहीं करी. साधु पैदा भयो. अपने आप पैदा भयो. कोई दूसरेकी शोभा वाने नहीं ली. अपने सहजरूपसू साधु कमल पैदा भयो वाके भी तुमने चोरी करी. मने तुम बहोत ज्यादा अपराधी हो, अब बताओ! ऐसे केह रही हे. कोई गलत प्रकारसू कमलने शोभा हासिल करी होती तो तो वाकी शोभा तुम चोर लेते, क्योंकि वाने भी गलत प्रकारसू हासिल करी. तो हमने भी वासु गलत प्रकारसू हासिल करी. कमल बिचारेने शोभा कोई गलत प्रकारसू तो हासिल करी नहीं हती, वाने भी सम्यक् प्रकारसु अपनी शोभा हासिल करी हती. वाकी शोभा तुमने चोर ली. चोर कैसे ली? शोभा ऐसे चोर ली कि कमल खिले, शरदऋतुमें पूर्ण कमल खिले वाकी जैसी शोभा, वासु ज्यादा दुगनी शोभा तुम्हारे नेत्रन्की हे. जैसे कोईके घरमें ज्यादा सजावट दीखे तो इन्कमटेक्स्वालेनूकु चिन्ता होवे कि कहांसु चोर्‌यो माल? इतनी सजावट कैसे हो रही हे? आधी तो कमाई भई पर आधी कहांसु आई? तो ऐसे ही इनकु चिन्ता हो रही हे कि चलो आधी तो ठीक तुम्हारे नेत्रकी शोभा पर उन कमलन्की शोभा जो फीकी पड़ रही हे तुम्हारे नेत्रन्के कारण, इतनी अधिक पैदा भई शोभा कहांसु आई हे हिसाब लाओ? अब यदि तुम हिसाब नहीं दे सके तो घोटाला हे. काले धोले चोपड़ायें हें तुम्हारे. ये बात वो केह रही हे.

(हे वरद!)

अब कहे हें **तत्र साधु सम्यक् प्रकारेण जातं यत्-सरसिजं**

कमलं, तदनतर्वर्तिनी या श्रीः, तामपि मुष्णातीति तादृग्रूपया दृशा दृष्टया, हे वरद! तु वरदान देवेवालो हे. अब प्रार्थना करनी हे ना तो याके लिये केह रही हे कि तुम तो वरदान देवेवाले हो. अरे भई! चोरी करी तो करी तुमने पर हमारो वध तो मत करो. इतनो वरदान तो दे दो. ये प्रार्थना कर रही हे. चोरी करी तो करी चलो हम याकु प्रकाशित नहीं करेंगी, चुप रेह जायेंगी, बोल तो दियो हे. जैसे एक बेरिस्टर्ने हमकु सुनायो. जजकु गाली देनी हती. अब गाली कैसे दें? यों केह दे जजसु कि ‘‘तू बेवकूफ हे’’ तो जज नाराज होके केस् ही हरा दे. तो वाने जजकु ऐसे कही कि ‘‘नहीं, नहीं. हम ऐसे नहीं केह रहे हें कि ‘‘आप वेबकूफ हो’’ पर हमारे केहवेको मतलब ये हे कि ‘‘ऐसे बुद्धिमान होते भये आप ऐसी बात केह ही नहीं सको.’’ अब ऐसी बात केह दे तो जज बेवकूफ सिद्ध हो जाये. मने जजकु गाली नहीं देते भये भी बेवकूफ केह दियो भरी कोर्टमें वाने. या तरहसू केह रही हे कि ‘‘हम या बातकु प्रकाशित नहीं करेंगी कोईकु कि तुम चोरीके धन्धायें कर रहे हो. पर प्रकट हो जाओ नहीं तो प्रकाशित करेंगी.’’ यामें थोड़ोसो ब्लेकमेल्को भी टोन हे.

(भगवद्दृष्टि सर्वघातुका)

वरद! निघ्नतो नेह किं वधः. अभी तक तो तुम चोरी ही कर रहे थे. अब क्या वध भी करोगे? **अपि तु वधदोषो भवत्येव. येनैव साधनेन परस्य प्राणा गच्छन्ति तत्सम्पादनसाधको घातकः दोषभाग्भवति. अनेन भगवद्दृष्टि सर्वघातुका निरूपिता.** अरे भई! हम तुम्हारो घात कहां कर रहे हें? तो कहें कि ‘‘तुम घात करो कि मत करो, तुम्हारे साधनसू कोई मरतो होय तो तुम घातक केहलाओगे ही.’’ जैसे तुम कहो कि हमतो अपने रस्तापे गाड़ी चला रहे थे, बीचमें आवेवालो मर गयो, ऐसे नहीं मान्यो जाय. तुम अपने रस्तापे गाड़ी चला रहे थे पर तुम्हारी ये जिम्मेदारी हे कि

जा बखत रस्तापे गाड़ी चलाओ, वा बखत कोई बीचमें आवे तो वाकु बचाके चलो. ऐसे यदि तुम अपने नेत्रन्में कमलन्की शोभा चोर रहे हो तो चोरो पर तुमकु वध करवेको अधिकार नहीं हे.

यदि तुम्हारे इतने अधिक चोरी करवेके कारण, जैसे कम्युनिस्ट् कहें कि "सेठिया कमावे तो कमावे पर एक सेठियाके कमावेके कारण कितने लोग भूखे मर रहे हें! तो वो कमानो क्या कामको!" ऐसे यदि तुम नेत्रन्में चोरी करके अपनी शोभा बढ़ाते होव तो वामें हमकु आपत्ति नहीं हे पर वो अधिक बढ़ती शोभा यदि हमारे वधको हेतु होती होय, तो हमारेकु दावा करवेको अधिकार हे. जैसे आपको पड़ोसी आपकु कहे कि "गाय पालो पर हमारेकु मच्छर काटे तो हमारेकु दावा करवेको अधिकार हे. गाय पालनो आपको हेडेक् हे पर मच्छर तो हमकु काट रहे हें." तो ऐसे गोपिकायें केह रही हें कि "तुम यदि अपने नेत्रन्की शोभा बढ़ाते हो तो बढ़ाओ पर हमारे वधको अधिकार तुमकु नहीं हे. यदि कोई भी स्थितिमें हमारो वध हो जायेगो, तो वा अपराधके भागी तुम होवगे." देखो ये वाको कैसो तामस टोन् हे. प्रार्थना कर रही हे और कैसी कैसी बात कर रही हे. यासू तुम्हारी दृष्टि सर्वघातक हे. मने घातशील हे. हमारो वध करवेवाली हे. **अनेन भगवद्दृष्टिः सर्वघातुका निरूपिता, "आयुर् मनांसि च दृशा सह ओज आच्र्छेद्"** (भाग.पुरा.१।१५।१५) **इति वाक्यात्. तथा अस्मानपि प्रायेण क्रूरदृष्ट्या पश्यसि, अन्यथा कथं प्राणबाधा स्यात्?** कहें हें कि "यदि तु क्रूर दृष्टिसू नहीं देखतो होय, तो हमकु प्राणबाधा क्यों हो रही हे?" यदि कहे की "हम तो कमलकी शोभासु देखें हें." "तो कमलसु अधिक तेरे नेत्रन्की शोभा हमारे वधको हेतु बन रही हे." **रूपं तु आनन्दमयमिति** रूपसु घात नहीं हो रह्यो हे. दृष्टिसू घात हो रह्यो हे. **तद्दृष्टौ तदेव जीवयेद्** क्योंकि रूपको दर्शन हो जायेतो हम जीवित हो जायें पर दृष्टि घात कर रही हे. **अतः तदभावात्**

केवलं घातयस्येव मने तेरे नेत्र प्लस् (और) रूप दोनों होंय, तो तो हम फिरसू जी जायेंगी, पर यदि रूपरहित केवल दृष्टि होय, रूपरहित केवल दृष्टि कैसे? दृष्टिकी शोभा हृदयमें चुभी भई हे. मने या गोपीको ध्यान दृष्टिकी शोभापे ही लग्यो भयो हे.

(गोपीन्की तन्मयता/अर्जुनदृष्टि)

जैसे अर्जुनकु पोपटकी आँख ही दीखती हती, ऐसे ही या तामसी गोपीकी दृष्टि सिर्फ भगवान्की दृष्टिपे लगी भई हे. अब वो भगवान्की दृष्टि घड़ी घड़ी याके हृदयमें चुभ रही हे. चुभ रही हे या लिये वधको प्रसंग आ रह्यो हे. वामें पेनोपन भी हे मने वामें धार भी हे सब कछु हे. अब वा सबके कारण हृदयमें दृष्टि चुभ रही हे, या लिये वो केह रही हे रूपरहित दृष्टि हे. प्रभुके स्वरूपमें तो रूपरहित दृष्टि हो नहीं सके हे पर याकी दृष्टिमें एकाग्रताके कारण याके अनुभवमें केवल रूपरहित दृष्टि हे. अब या रूपरहित दृष्टिको रूपसहित दृष्टि करवेको उपाय क्या? ऐसो रूप लेके प्रकट हो जा जासु दृष्टिपेसु हमारो ध्यान हट जाय और समग्र रूपपे हमारो ध्यान चल्यो जाय. जब तू प्रकट नहीं हो रह्यो हे तब हमारी दृष्टिमें तेरी दृष्टि चुभी भई हे और तकलीफ दे रही हे. यदि प्रकट हो जायेगो तो तेरो रूप तो आनन्दमय हे और वा आनन्दमयरूपके कारण हमारो ध्यान दृष्टिपेसु हट गयो, तो बचवेकी थोड़ी बहोत सम्भावनायें हें. सिर्फ मार देतो होतो तो चलो क्षमा कर दें पर कौनकु मार रह्यो हे ये तो सोच! जिनके यहां चोरी नहीं करनी चइये हती वहां चोरी करी. जब चोरी नहीं करनी चइये हती तब चोरी करी. जा चीजकी चोरी नहीं करनी चइये हती वा चीजकी चोरी करी. जिनकु नहीं मारनो चइये उनकु मार रह्यो हे. मने अपराध कितनो तीव्र हे. **किञ्च न वयं वधार्हाः यतो दासिकाः कुत्सिता दास्यः, न हि स्त्रियः अप्रयोजिकाश्च हन्यन्ते. किञ्च वयं शुल्कदासिकाः, त्वं च सुरतनाथः. सर्वपुरुषार्थसाधकत्वेन तव**

सम्बोधनानि यथाधिकारं नियतानि. भई! हमने कोई अपराध कियो होय और तू मारे तो तेरे मारवेको भी हेतु समझमें आवे पर हम तो तेरी दासिकायें हें. दासी भी नहीं दासिका. दासिका उन्हें कहें हें जो एकदम निम्नस्तरकी दासियें होंय. मने जो अति दयनीय होय. तो जो अत्यन्त दयनीय हें उनको तू वध कर रह्यो हे. तो ये कितनो बड़ो अपराध हे! और फिर हम दासी हें दास पुरुष नहीं हे स्त्रीको वध मान्यो जायेगो. स्त्री और ब्राह्मण को वध नहीं होय ऐसी एक शास्त्राज्ञा हे. एक तो स्त्री और वा स्त्रीमें भी दासिकायें, उनको तू वध कर रह्यो हे! **किञ्च वयं शुल्कदासिका:** हम मोल ली भई दासिकायें हें. मोल ली भई दासीन्को प्राचीनकालमें कभी हनन नहीं हो सकतो हतो. अब तो वो प्रथा हट गई. वो मोल ली भई दासीन्को वध भी नहीं हो सकतो. और केह रही हें **त्वं च सुरतनाथ:** और तू तो सुरतनाथ हे.

(अधिकारानुसार सम्बोधन)

आचार्यचरण कहें हें **सर्वपुरुषार्थसाधकत्वेन तव सम्बोधनानि यथाधिकारं नियतानि.** मने जाको जैसो अधिकार वैसे नामसु भगवान्को सम्बोधन करे. जैसे धर्ममार्गमें कोईकु स्तुति करनी होय भगवान्की तो यों कहें कि तुम 'धर्मपालक' हो, 'ब्रह्मण्य' हो, 'यज्ञेश्वर' हो, 'गोब्राह्मणप्रतिपालक' हो. मांगवेवाले आवें ना! तो आते ही वहांसु शुरु करें "अरे दीक्षितजी महाराज बड़े दानी हते! तिनके तुम बेटा हो." मने बात समझ जानी कि अब अपने क्या करनो? "अरे! तेरो पिता बड़ो दानी हतो!" मने दान मांगवे आयो हे. नहीं तो स्तुतिकी क्या जरूरत हे? अरे भई! कोई और स्तुति कर दे कि तू बड़ो लम्बो हे, छे फुट्को हे. वो स्तुति नहीं पर आते ही स्तुति करें "अरे! कहा केहनी तिहारे पिताकी. बड़ो दानी हतो दीक्षितजी महाराज. धर्मको स्तम्भ हतो." मने अब जो दान नहीं दो तो तुम धर्मके स्तम्भ नहीं रेह गये. अपनेकु पेहलेसु ही फंसा ले. ऐसे गोपिकायें

ठाकुरजीकु फंसा रही हें. आचार्यचरण कहें हें जाकु ठाकुरजीसू धर्म मांगनो होय वो "हे धर्मपालक! हे ब्रह्मण्य!, हे यज्ञेश्वर!" ऐसे ऐसे सम्बोधन करे. जाकु पैसा मांगनो होय तो वो क्या कहे? 'हे लक्ष्मीपते!' ध्यान ही पेहले गयो हे वा स्वरूप पर. हे तो स्तुति भगवान्‌की, हे तो सम्बोधन भगवान्‌को पर वामें कोई दूसरो स्वरूप ख्यालमें नहीं आवे. सबसु पेहले ख्यालमें आवे "हे लक्ष्मीपते!, हे सर्वसिद्धिद!". क्योंकि अर्थपुरुषार्थ सिद्ध करनो हे तो सबसु पेहले वो रूप अच्छो लगे. जाकु मोक्ष चईतो होय तो वो कैसे प्रार्थना करे भगवान्‌की "हे मुकुन्द!, हे योगेश्वर!, हे ज्ञाननिधि!". ज्ञाननिधि क्यों केह रहे हो क्योंकि तेरेसु ज्ञान चइये. मुकुन्द क्यों केह रहे हो क्योंकि तेरेसु मोक्ष चइये. तो ऐसे ही गोपिकायें कामपुरुषार्थकी सिद्धिके लिये भगवान्‌कु केह रही हें, **'सुरतनाथ!'** जासू ठाकुरजी फंस जाये. **इत्यादिनि धर्मार्थमोक्षार्थिभिः उच्यन्ते. एवम् अस्माभिरपि सुरतनाथ! इति उच्यते. सुरतं सम्भोगः जगति यावान् अस्ति तस्य भवान् नाथः, त्वदाज्ञाव्यतिरेकेण सुरतं जगति न प्रवर्तते.**

(लौकिक और अलौकिक काम)

कामकु मनसिज कह्यो जाय. मनमें जो पैदा होये वो मनसिज. कामको उत्तररूप हे वाणी. **"जगौ कलं वामदृशाम् मनोहरम्"** (भाग.पुरा.१०।२६।३) तो **"रन्तुं मनश्चक्रे"** (भाग.पुरा.१०।२६।१) और **"वामदृशाम् मनोहरम् जगौ"**. या बाजु वाणी प्रकट भई हे और वा बाजु मन प्रकट भयो हे. यासु सिद्ध भयो कि प्रभुमें अलौकिक काम प्रकट भयो. अलौकिक काम मने क्या? अपनेकु जो लौकिक काम प्रकट प्रकट होवे हे, अपने लौकिक पति-पत्नीके लिये, वाको आधिदैविक स्वरूप कामदेव हे. वा कामदेवके कारण पैदा होतो काम लौकिक काम केहवावे. कोई कामदेवके प्रभावमें आके प्रभुमें काम उत्पन्न नहीं भयो हे. प्रभुको काम अलौकिक हे या अर्थमें कि वो उनके आनन्द दिव्य स्वभावकु प्रकट करे हे. याहीके लिये वो

विकाररूप नहीं हे. जबकि लौकिक काम विकाररूप मान्यो जाय हे. दोषरूप मान्यो जाय हे. क्योंकि वो कामके अधिष्ठाता कामदेवके कारण पैदा भयो हे वा अर्थमें वो लौकिक काम हे. **सुरतं सम्भोगः जगति यावान् अस्ति तस्य** मने लौकिक काम तो भोगरूप हे. सम्यक्भोग नहीं हे क्योंकि अन्तमें दुःखमें परिणत होवे हे. **"विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत् तद् अग्रे अमृतोपमम् परिणामे विषमिव"** (भग.गीता १८।३८) पर ये काम आदि-अन्तमें सुखरूप हे. सगुणकाम अग्रमें दुःखरूप हे और पश्चात् भी दुःखरूप हे पर ये ऐसो नहीं हे. "अग्रपश्चात् उभयतः" सुखरूप हे, क्योंकि आनन्दरूप हे पर तू तो अलौकिक कामके रूपमें प्रकट भयो हे. लौकिक कामके विकाररूपमें प्रकट नहीं भयो हे. या प्रकारको कुछ अलौकिक काम हे. **तस्य भवान् नाथः त्वदाज्ञाव्यतिरेकेण सुरतं जगति न प्रवर्तते.** क्योंकि तेरी आज्ञा नहीं होय तो या जगत्में अलौकिक काम प्रकट नहीं हो सके हे. **अतो ब्रह्मणा कामेन वा लोके सुरतप्रवृत्त्यर्थं वयं शुल्करूपा दासिका दत्ताः** ब्रह्माने अथवा कामदेवने कामकु पैदा नहीं कियो हे पर हमकु पैदा कियो हे, ताकि अलौकिक काम प्रकट होवे. अब प्रकट होवे तो वाको खरिद (परचेस्) कैसे करनो? तो शुल्करूपमें हमकु दियो हे. ये शुल्करूप हे, ये वाको मूल्य हे. या मूल्यको स्वीकार करके या अलौकिक कामकु प्रकट करो. **शुल्कं मार्गनिर्वाहकं द्रव्यं.** मार्गके निर्वाहके लिये द्रव्यको शुल्क दियो जाय. **प्रतिबन्धनिवर्तकम्** और जो कुछ रस्तामें प्रतिबन्ध आवें उनको भी निवर्तन वा शुल्कके कारण होवे हे. जैसे अपन् जावें तो हाथखर्च लेवें ना! आजकल अपन् जाकु ट्रावेलर्सचेक् कहें.

सुरतं चेद् भगवत्येव निरुद्धं तिष्ठेत् तदा लोके रसो न भविष्यति. अब यदि अलौकिक काम प्रभुमें ही निरुद्ध रेहतो, तो ये रस लोकमें प्रकट नहीं होतो. या लिये **अस्मद्द्वारा त्वत्तः तल्लोके प्रसृतं भवत्विति वयम् आगताः.** पर जब हम शुल्करूपसे आये

तो हमारे कारण ये अलौकिक काम प्रकट होयगो या लिये हम यहां आई. **तत् कार्यं दूरतएव स्थितं, प्रत्युत अस्मान् मारयसि.** अब हमारे अवतारको प्रयोजन तो पूर्ण भयो नहीं और हमकु मार रह्यो हे? **एवं सति सर्वमेव कामशास्त्रं व्यर्थं स्यात्.** यदि हम मर जायें तो जितनो भी कामशास्त्र हे वो सब व्यर्थ हो जायेगो. **"भूतल भूषण विष्णुस्वामीपथ शृंगारशास्त्र सब रोते. जो पे श्रीवल्लभ प्रकट न होते"** (वधाई : सगुणदास) वा न्यायसू कहें हें कि हम लोकमें अलौकिक कामके प्रवर्तनके लिये प्रकट भई हें. अब यदि यहां हमारे प्राण छूट गये तो वा अलौकिक कामको प्रवर्तन नहीं होयगो. **तृतीयः पुरुषार्थश्च न भवेत्.** यदि अलौकिक काम प्रकट नहीं भयो तो तृतीयपुरुषार्थ सिद्ध नहीं होयगो. क्योंकि लौकिक काम तो पुरुषार्थ रूप ही नहीं हे अपितु अपराध हे. **अतः सर्वथा यदर्थं वयं प्रेषिताः तत्कर्तव्यम् अथवा यदाकदाचित् कर्तव्यम्, इदानीं जीवयितव्या.** अरे भई! तेरो कर्तव्य जो करनो होय तू कर पर सबसु बड़ी प्रोब्लेम् हमारी ये हे कि तू हमकु जीवित रख. हम जीवित कैसे होयगी? तो कहे **रूपप्राकट्येन.** यदि तेरो रूप प्रकट होवे तो.

दृशो मारकत्वम् उपपादयन्ति दृष्टिकी मारकता, घातकताको उपपादन करे हें. **श्रीमुषा इति. यस्तु चोरो भवति स घातकोऽपि भवति.** चोरकु कभी न कभी घातक भी बननो पड़ें हे. **यथा यथा चौर्ये नैपुण्यं तथा तथा घातकत्वम्.** जितनो जितनो चोरीमें एक्स्पर्ट होतो जाय वामें उतनी उतनी घातकता भी बढ़ती जाय हे. **तदर्थम् आहुः 'उदरश्रीमुषा' इति.** मने सरसिजके उदरमें रही भई शोभाकु तेंने चोर ली. ये तेरी चोरीको पेहलो अपराध भयो. **तत्रापि ये दुर्गजाताः ते अतिनिपुणाः, तत्रापि जलदुर्गजाः.** दुर्गमेंसु चोर ले तो और चोरको भी चोर और जलदुर्गमेंसु चोरे वो तो वासु भी निपुण चोर. **तत्सरसिजम्.** अब सरसिज जो कमल, वो जलमें दुर्ग हतो. **तत्रापि ते दुर्गएव तिष्ठन्ति, तत्रापि साधुजातोः प्रभवः.** और वो कमल

बाहर आते होंय और उनकी शोभा चोरतो होय तो ठीक हे पर जो कमल अपने तालाबमें स्थित हे. मने सबसु शोभास्पद कमल, वाकी शोभा तेरे नेत्रन्‌ने चोरी. अब वो कोई दूसरेकी शोभा चोरतो तो बात दूसरी हती पर **साधुजाता: प्रभव:.** बिचारे साधुकमलकी शोभा चोरी. **तत्रापि प्रकाशवति काले. कोईने अंधेरामें चोर लियो तो वो वाकी नावाकिफी हे. मने कोईके गैरवाकिफियतमें चोरी तब तो कोई बात हती पर प्रकाशवति काले. शीताद्युपद्रवरहिते.** ये सब बात अपनेकु आज समझमें नहीं आवें. पुराने शेहरन्‌में किशनगढ़में जाओ तो सब शीतकालमें अन्दर सोवे तो चोरी खूब आनन्दसु होवे. छतपे सोवे कौन! सो छतसू चढ़के घुस आवे. अब तो सब ही अन्दर सोवे तो पता ही नहीं चले. पुराने जमानामें ऐसी सब चोरियां ज्यादा होती हती. घातुक लोग गरमीमें चोरी करते. वाको कारण क्या कि गरमीमें सब छतपे सोवे तो घातुक लोग वहां जाके सबकु केप्चर् कर लेते.

एवं देशकालस्वरूपादिभि: अशक्यचौर्यादपि पुरुषात् तदुदरवर्तिसर्वस्वनेता अन्त:स्थितप्राणान् साधारणगोपिकादीनां नेष्यतीति किम् आश्चर्यम्! जब इतने चोर हो तो हमारे प्राण नहीं चोर जाओगे, याकी क्या गेरण्टी हे! **चौर्यं हि क्रियते** अच्छा चोर जायेंगे, हमकु चोर जावे दो. तो कहें हें **बलिष्ठेन अपकीर्त्यभावाय, तदत्र तु न भविष्यतीति उक्तं किं वध: न इति.** आदमी चोरी कब करे जब थोड़ो समाजको डर होय तब. ये समाजको डर हट जाये तो आदमी डकैत बन जाये. समाजको डर होय तब चोरी करे. चोरी-छिपे कोई चीज चोरे. तो ये कमलकी शोभा तुमने चोरी करी, वो बात तो छिप गई. क्योंकि हमारे जैसे कुछ लोगन्‌कु पता चली पर सबकु तो पता नहीं चली. अब अगर हमारे प्राण निकल गये तो सब गामकु पता चल जायेगी.

(कुछ तो कर!)

गालिब कहे कि **“इश्क मुझको नहीं वहशत ही सही. मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही.”** मोकु प्रेम नहीं मिले, भले पागलपन मिले. मेरो स्नेह चाहे पागलपनमें बदल जाये पर मेरे या पागलपनके कारण तेरी कीर्ति होती होय, यश बढ़तो होय कि कौनके पीछे ऐसे पागल भये या दुनियामें? इनके कारण. तेरी कीर्ति होवे दे. **“कता न कीजे ताल्लुक हमसे, कुछ नहीं तो अदावत ही सही.”** सारे सम्बन्ध तो मत तोड़. कुछ तो रख चाहे झगड़ा करवेके लिये, पर प्रकट हो जा पर प्रकट हो जा, सामने आ. सामने आये बिना याको सोल्युशन् नहीं हो सके. **“कता न कीजे ताल्लुक हमसे, कुछ नहीं तो अदावत ही सही.”** हमसु नाता मत तोड़. भले हमसु झगड़ा करवेके लिये ही प्रकट हो जा पर प्रकट तो हो जा. यदि हम मर गये तो तेरी अपकीर्ति नहीं हो जायेगी क्या!

(दर्शन दान नहीं करवेसु तेरो नाथत्व जायेगो!)

अथवा अदृशा अदर्शनेन दर्शनम् अदत्वा निघ्नत: किं वधो न? अथवा दर्शन नहीं देके जो हमारो वध कर रह्यो हे, वो क्या वध नहीं हे? **सुरतार्थमागता:** हम सुरतके लिये यहां वनमें आये. कामको प्रपोज़ल् तेंने कियो. वेणुको आवाह्न तेंने कियो. बुलाके मारनो, ये कहांको न्याय हे! एक तो बुलावे, आमन्त्रित करे, आमन्त्रि करके मारे. ये कहांको न्याय हे! गोपीजन् कहें हें **तद्गतं दूरे, अन्तरा मरणम् उपस्थितम्. तथा सति सुरतस्य अप्रकटितत्वाद् नाथत्वमपि न स्यात्.** तब तो सुरत भी नहीं होयगी और तू नाथ भी नहीं केहलायेगो. **न हि योगी अश्वनिर्माणसमर्थोऽपि अश्वपति: उच्यते.** अरे! एक योगी हे वो यदि चाहे तो घोड़ा पैदा करे चाहे तो हाथी पैदा कर सके. घोड़ा और हाथी दोनोंकु पैदा कर सके हे याके लिये वो अश्वपति नहीं कह्यो जायेगो. एकाध घोड़ा अपनी सामर्थयसू अपने पास रखे, तो अश्वपति कह्यो जाय. समझो कोईके

पास लाख रुपिया हे, दसलाख रुपिया हे कोईके पास यासू मिलमालिक तो नहीं केहवायेगो. एकाध मिल चलती होय, भले ही नुक्सानमें चलती होय, तो वो मिलमालिक केहवावे. लाख रुपियाके कारण मिलमालिक नहीं केहवावे. ऐसे सामर्थ्यके कारण अश्वपति नहीं पर अश्व होय तो अश्वपति केहवावे. होयगी तेरेमें कोई तरहकी सुरतनाथकी सामर्थ्य, वैकुण्ठादिमें तेरे सुरतआदिके सामर्थ्य होयगे पर अब यदि तू प्रकट नहीं होय तो तेरो सुरतनाथत्व स्वीकार्य नहीं हे. यामें बड़ी धमकीयें हें. तामसीको स्वभाव कैसो हे यामें देखो!

किञ्च अस्मद्वधे किं आश्चर्य, तव अदर्शने लक्ष्मीरपि न तिष्ठेत्. तो कहें हें कि क्यों तुम ऐसे मानके बैठे हो कि हम तुम्हारो वध कर रहे हें? हम प्रकट नहीं हो रहे हें तो तुम्हारो वध हो रह्यो हे! तो कहें कि तू हमकु ये बता यदि तू नहीं दिखे तो लक्ष्मी रेह जायेगी क्या? यदि तेरे दर्शन न होंय, तो लक्ष्मी टिक पायेगी? श्रीकु तू ही चोरे हे. जहां तू नहीं रहेगो वहांसु लक्ष्मी भी अपने आप चली जायेगी. जब लक्ष्मी जायेगी तो हमारी क्या बिसात! **तदाहु: श्रीमुषा इति. उदरस्थिता श्रीश्चेद् बहिरानीता, तदैव म्रियते, अपुष्टत्वाद् आमगर्भवत्.** कमलके उदरमें स्थित श्रीकु जब तू चोर ले हे, जैसे कच्चे आमकु बाहर काढ़ लो तो आम खतम हो जाये. वैसे श्रीकु बाहर काढ़ दी, तो श्री भी खतम हो जायेगी. जब तेरो दर्शन नहीं भयो तो श्री भी खतम हो जाये, तो हम खतम नहीं होंयगी, यामें आश्चर्य क्या!

यद्यपि तस्या: जीवने कालद्रव्यदेशवस्तूनि बहुन्येव सन्ति, तथापि त्वददर्शने न जीवति, तथा वयमपि. यद्यपि वाके जीवेके लिये बहोतसे देश काल द्रव्य वस्तुयें हें पर हमारेलिये जीवेको और कोई कारण ही नहीं हे यदि तेरे दर्शन नहीं भये. तो भी श्री तेरे बिना नहीं जिये हे तो हम कैसे जियेंगे! **किञ्च त्वं सर्वेषां वरान् प्रयच्छसि,**

अस्मान् तु मारयिष्यसीति महदाश्चर्यम्! गाममें तो तू श्रेष्ठ केहवावे हे. गामको तो तू वरद हे और हमारो मारक हे! गाममें ख्याति तेरी वरदकी हे. जाकु जो वर चहितो होय वो भगवान्के वरद हस्तसू मिले हे. ऐसो वरद हस्त रखते भये हमारेकु क्यों मारे हे! **वरदाता हि प्रत्यक्षो भवति.** वरदाताको प्रत्यक्ष होनो ही चइये. यदि वरदाता प्रत्यक्ष नहीं हे तो वर कौनसु मांगनो! यदि वरद हे तो प्रत्यक्ष होनो चइये तोकु नहीं तो तू वरद कैसो!

अथवा ते वयम् अमूल्यदासिका: धर्मदासिका:, अतो न हन्तव्या:. अथवा तो हम न खरीदी हुई दासिकायें हें या लिये वधके लायक नहीं हें. जैसे **'शुल्कदासिका'** पाठ होवे वैसे **'अशुल्कदासिका'** भी पाठ होवे हे. अशुल्कदासिका वाकु कह्यो जावे जैसे हम 'धर्मपिता', धर्मपुत्र संबंध रखें वैसे ही धर्मसू बिना मूल्य दिये जाकु हमने 'धर्मदासिका' मान लियो होय. जैसे अपनेकु दया आई कोई पे और वाने कही कि "मेरो पालन करो." तो अपन्ने कही "कि चल धर्मसू तू हमारो दास." ऐसी जो अशुल्कदासिकायें, धर्मसू जिनकु दास मान्यो, तो तोकु वा धर्मकी दुहाई हे, ऐसे केह रही हें. **एवं अनेकविधक्रौर्यभावनया काश्चिद् भगवन्तम् उपालभन्ते.** ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके भगवान्के क्रूरताके गुण ध्यानमें आ रहे हें. कर तो रही हे प्रार्थना पर वो सारे कार्य ध्यानमें आ रहे हें कि भगवान् या तरहसू क्रूर हे, वा तरहसू क्रूर हे. असल कारण क्या कि खुदके हृदयमें भाव तामस हे.

टिप्पणी :

सुरतनाथ इत्यत्र. **(सुरतं सम्भोगः इत्यादेः अयम् अर्थः. रतं लौकिकं 'भोग' शब्दवाच्यं, तत्तु सृष्टिम् आरभ्य प्रवर्तते. तत्र न भगवदाज्ञापेक्षा, सृष्टिसमानयोगक्षेमत्वात् तस्य. एवं सति सुष्ठु अलौकिकं शोभनरूपं यत् रतं तत् सम्यग्भोग शब्दवाच्यम्. तदस्मास्वेव त्वदाज्ञया इच्छया इति**

यावत्, तयैव प्रवर्तते. यतो जगत् लौकिकं गच्छति, नश्यत्येव, न तु स्थिरम् अतो अत्यलौकिकं स्वरूपानन्दरूपं तत्र प्रकटिभवितुं न अर्हति. एतादृशस्य तस्य भवानेव नाथः प्रवर्तको रक्षकश्च. एवं सति स रसः चेत् त्वय्येव निरुद्धः तिष्ठेत् तदा तु अलौकिका अपि भक्ताः शून्यहृदया भवेयुरिति त्वदिच्छां ज्ञात्वा त्वां प्रार्थयित्वा तादृशीः वयं प्रकटीकृताः यतः प्रतिबन्धनिवृत्तिः. अतएव अग्रे ''विखनसार्थितः'' इति वक्ष्यते. कामो भगवदीयः. मनसः पूर्वरूपत्वाद् वाचः उत्तररूपत्वात् ''मनः चक्रे'' इति उक्त्वा ''जगौ कलं वामदृशां मनोहरं'' ''ता दृष्वान्तिकम्'' इत्यादिकं च वाग्रूपम् अलौकिकभावप्रवर्तकं स्वप्रियासु इति आशयेन 'आज्ञा' पदम् उक्तम्. ''मैवं विभो अर्हति'' इत्यादिवाचां भगवद्भावात्मकत्वात् तासामपि आज्ञारूपत्वम् इति आशयः. तैरेव वचनैः प्रतिबन्धनिवृत्तिरपि). अतो ब्रह्मणा इति. अत्र अयं भाव : ''ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामा'' इत्यत्र भगवद्भावकामाः सन्तः साक्षात् तमलभमानाः श्रियोपांगा भावोद्गारिणो निरन्तरं प्रियसंगतत्वेन तद्भावात्मकत्वं प्राप्ताइति तत्सम्बन्धे तदनुभावेन कदाचित् स भावोऽपि भवेद् इति आशया तत्कामाः तपश्चरन्ति इति निरूपितम्. प्रकृते च स्वयं प्रभुः प्रकट इति तन्मार्गप्रकटनार्थं द्वारभूता वयं तेन प्रकटिता इति. अत्र 'सुरत' शब्देन सुष्ठु भगवता समं रतं येन इति भगवद्भावएव उच्यते न तु सम्भोगः, तस्यापामरमनुवर्तमानत्वेन त्वदाज्ञा...इत्यादिना नाथत्वविवरणं यत् तदनुपपत्तेः. एतन्मार्गप्राकट्येन ब्रह्मणो न कोऽपि भावः सिद्धः इति अरुच्या पक्षान्तरम् आहुः कामेन वा इति, भगवदीयभावरूपेण इति ज्ञेयम्. स्वामिनीदर्शने हि भगवतो भावः उद्रिक्तः सन् कामकार्यं करोति अतः तेनैव स्वार्थं वयं प्रकटीकृता इत्यर्थः.

विवरणम् :

कल अपन्ने **'शरदुदाशये साधुजात... नेह किं वधः'** याकी सुबोधिनी देखी. अब याकी टिप्पणी देखें :

(हे सुरतनाथ!)

सुरतनाथ इत्यत्र. **सुरतं संभोग इत्यादेः अयम् अर्थः. रतं लौकिकं 'भोग' शब्दवाच्यं, तत्तु सृष्टिम् आरभ्य प्रवर्तते. तत्र न भगवदाज्ञापेक्षा, सृष्टिसमान-योगक्षेमत्वात् तस्य.** कई टीकाकार **'सुरत'** को अर्थ करते बखत लौकिक काम और अलौकिक काम को प्रभेद नहीं करें हें. आचार्यचरणने सामान्यतया **'सुरतं'** यहां ये कह्यो. सुबोधिनीमें **सुरतं सम्भोगः जगति यावान् अस्ति तस्य भवान् नाथः** अब यहां कौनसो अर्थ लेनो सुरतको? क्या लौकिक काम अर्थ लेनो? जैसे धर्मको नियामक देव अधिष्ठाता आधिदैविक स्वरूप धर्मराज मान्यो जाय, अर्थको आधिदैविक स्वरूप लक्ष्मी मानी जाय, ऐसे कामको आधिदैविक स्वरूप क्या भगवान् हें? यदि **'सुरतनाथ'** शब्दको अर्थ यहां लौकिक काम लियो जाय, तो ऐसो अर्थ ध्वनित होवे कि कामको आधिदैविक स्वरूप भगवान् हें. दरअसल बात ऐसी नहीं हे. कामको एक स्वतन्त्र आधिदैविक देव कामदेव मान्यो गयो हे. वा लौकिक कामके अर्थमें भगवान् **'सुरतनाथ'** नहीं हें पर अलौकिक कामके अर्थमें **सुरतनाथ** हें. ये बातको अपन् भेद करके नहीं समझें तो गड़बड़ी हो जाये. वा लिये श्रीगुसांईजी यहां स्पष्टीकरण दे रहे हें. **सुरतं सम्भोग इत्यादेः अयम् अर्थः.** आचार्यचरणने **'सुरत'** को अर्थ जो **सम्भोग** कियो तो वहां श्रीगुसांईजी केह रहे हें कि **'रतम्'** और **'भोग'** ऐसे छुट्टो पाड़ो. जैसे **'सुरत'** में **'सु'** और **'रत'** हे. ऐसे ही **'सम्भोग'** में **'सम्'** और **'भोग'** हे. वामें **रतं लौकिकं 'भोग' शब्दवाच्यं,** 'रत' लौकिक हे 'भोग' शब्दवाची. यहां **'सुरत'** को अर्थ जो **सम्भोग** कियो, तो सम्यक्तया भोग लौकिक काममें नहीं हे. यासु यहां **सुरतनाथ! ते** में लौकिक काम नहीं लेनो. ये बात बताई. क्योंकि **तत्तु सृष्टिम् आरभ्य प्रवर्तते** लौकिक काम सृष्टिके आरम्भसु ही चल ही रह्यो हे. **तत्र न भगवदाज्ञापेक्षा** और वाके नाथ प्रभु होंय, मने वाको नियमन प्रभु करते होंय, ऐसी अपेक्षा नहीं हे. क्योंकि **सृष्टिसमानयोगक्षेमत्वात् तस्य** क्योंकि सृष्टि चल रही

हे, ऐसे ही लौकिक काम भी समान रूपमें चल रह्यो हे. **एवं सति सुष्ठु अलौकिकं शोभनरूपं यद् रतं तत् 'सम्यग्भोग'शब्दवाच्यम्'. याके लिये 'संभोग'को अर्थ यहां सुष्ठु अलौकिक मने जा कामकी शोभा, जा कामके कारण होती होय.**

(विधान और अनुवाद)

जैसे बतायो कि **''जोपे श्रीवल्लभ प्रकट न होते. भूतलभूषण विष्णुस्वामीपथ शृंगारशास्त्र सब रोते'** (सगुणदास). क्योंकि ये शृंगारशास्त्रकी लौकिक कामपरक व्याख्यायें प्रचलित हती और वो ही मान्य हो जाती. आचार्यचरणने पेहली बार ये दिखायो कि वात्स्यायन ऋषिको तात्पर्य इतनो क्षुद्र नहीं हो सके हे कि लौकिकशृंगारपरक वो सारे ग्रंथन्की रचना करें. यामें भगवान्की अलौकिक लीलान्कु समझावेके लिये ऋषिने ये शास्त्र लिख्यो हे. अब उनके लौकिक अर्थ घटावे होंय, मने दुनियामें स्वयं भगवान् ही अलौकिकरूपसू लौकिकरूपमें प्रकट भये हें. ऐसे ही शास्त्रके भी अलौकिक अर्थके बजाय लौकिक अर्थ घट जाते होवे, वो जीव स्वभाव हे. बाकी मूल ऋषितात्पर्य वैसो नहीं हो सके हे. **''मुनिर्विवक्षुः भगवद्गुणानां सखापि ते भारतम् आह कृष्णः. यस्मिन् नृणाम् ग्राम्यसुखानुवादैः मतिगृहीता नु हरेः कथायाम्.'** (भाग.पुरा.३।५।१२). महाभारतमें याने वाकु मार्‍यो और वाने वाकु मार्‍यो ये मुख्य प्रयोजन हे या कथंचित् हरिमें बुद्धिको लगानो प्रयोजन हे? मुख्य प्रयोजन हे कथंचित् बुद्धि हरिमें लगे. ग्रामोचित वाने याकु मार्‍यो वाकु याने मार्‍यो, वामें जो रत हें, सो शायद ये झगड़ा सुनके ही भगवान्में रत हो जायें. ग्राम्यसुख तो केवल अनुवाद हे. ग्राम्यसुखको विधान नहीं हे. अनुवाद और विधान में कितनो अन्तर होवे कि अनुवादमें, व्यक्तिको खुदको तात्पर्य नहीं होवे. जैसो वाने कह्यो, वैसो हमने कह्यो. पाछे हमने आवृत्ति की. जो विधान होवे वामें व्यक्तिको तात्पर्य होवे. एक वेदमें अपनो विधान मान्यो जाये, अनुवाद नहीं मान्यो जाये. क्योंकि वेद जब

भी कोई बात कहे हे, वाको कोई तात्पर्य होवे हे. स्मृति वेदको अनुवाद करे हे. उनको खुदको तात्पर्य नहीं हे वामें. या लिये अनुवादको प्रामाण्य नहीं मान्यो जाय पर विधानको प्रामाण्य मान्यो जाये. ऐसो सिद्धान्त हे. क्योंकि तात्पर्यवश शब्दप्रमाण होवे. जो तात्पर्यवान् शब्द नहीं होवे तो पोपट जैसे बोले वाको भी प्रामाण्य हो जाय. पोपट कोई वाक्य बोलतो होय, तो वो वाक्य प्रमाण नहीं केहवावे. क्योंकि वो बोल रह्यो हे पर वाको तात्पर्य वा अर्थमें नहीं हे. व्यक्ति कोई बात बोले तो अपन् मानके चलें कि बोल रह्यो हे तो कुछ तात्पर्य होयगो.

(अस्ति कश्चिद् वागर्थः ?)

जब कालीदास पेहली बखत बोल्यो तो विद्यावतीने कही कि "**अस्ति कश्चिद् वागर्थः ?**" सच्ची कथा हे या खोटी कथा हे, ये तो भगवान् जाने! पर कथा प्रचलित हे. कालीदास मूर्ख हतो. मूर्ख हतो तो जब अपनी पत्नीके पास गयो तब 'ऊष्ट्र' भी बराबर नहीं बोल पातो थो. "ऊष्ट ऊष्ट" केहतो थो. तो पत्नीने वाकु निकाल दियो. वाके बाद कालिदासने जाके देवीमाँकु प्रसन्न करके विद्वान् होवेको वर मांग्यो और प्राप्त भी कियो. अब घर आके वाने द्वार खुलवावेके लिये कही '**अनावृतकपाटं द्वारं देहि**". तो वाकी पत्नीने कही "**अस्ति कश्चिद् वागर्थः**'. तब वाकी पत्नीने कही कि "अब जो कुछ बोल रह्यो हे वा वाणीमें कुछ अर्थ हे." मने तात्पर्यके साथ बोल रह्यो हे. नासमझीसू नहीं बोल रह्यो हे. वाके बाद पत्नी द्वारा बोले गये वाक्यके एक एक शब्दपे कालीदासने एक एक महाकाव्य रच्यो. '**अस्ति**' कु लेके "**अस्ति उत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा: हिमालयो नाम नगाधिराज:**" सु प्रारम्भ करके '**कुमारसम्भव**' की रचना करी. '**कश्चिद्**' पदकु लेके "**कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा**' सु प्रारम्भ होवेवाले '**मेघदूत**' काव्यकी रचना करी. और '**वाक्**' पदकु लेके "**वागार्थाविव सम्पृक्तौ**" सु प्रारम्भ होवेवाले '**रघुवंश**' महाकाव्यकी रचना करी. ऐसी

आख्यायिका हती. अब सच्ची खोटी ये तो भगवान् जाने.

तो तात्पर्यवान् वाक्य प्रमाण होवे. वा न्यायसू ऋषिको तात्पर्य तो अलौकिक-शृंगारमें ही हे, लौकिक-शृंगारमें नहीं हे. अब या तात्पर्यको नहीं समझवेके कारण अधिकारभेदसू, अपने-अपने अर्थमें वाको अर्थघटन लोग करते रहे हें. याके लिये कहे हें **तत्र न भगवदाज्ञापेक्षा सृष्टि समान योगक्षेमत्वात् तस्य.** क्योंकि सृष्टि काल-कर्म-स्वभावसू चल रही हे. जब कोई चीजको एक्स्प्लेनेशन् नहीं मिले तो वहां भगवान्कु ले आओ. सृष्टि तो काल-कर्म-स्वभावसू अपने आप चल रही हे. जब भी कोई एक्स्प्लेनेशन् तूट जाये और अपन् जगत्की काल-कर्म-स्वभावके द्वारा एक्स्प्लेनेशन् नहीं कर सकें, तो भगवान्कु बीचमें लाके वाकी क्रिया कर दो. ऐसे नास्तिक लोग आस्तिकन्को अंग्रेजीमें उपहास उड़ावें. सृष्टि तो काल-कर्म-स्वभावसू प्रकट होके अपने आप चल रही हे, वहां अपनेकु भगवान्की अपेक्षा कहां पड़े! पर जहां लानी पड़े हे वहां लानी पड़े हे. वाही न्यायसु जैसे सृष्टि स्वतः चल रही हे काल-कर्म-स्वभावसू तो वैसे ही यह लौकिक काम भी अपने आप प्रकट होतो रहे हे. वामें भगवान्कु नाथ बनवेकी विशेष आवश्यकता हे नहीं.

एवं सति सुष्ठु अलौकिकं शोभनरूपं यत् रतं तत् 'सम्यग्भोग' शब्दवाच्यम्'. याके लिये सम्भोगको अर्थ लौकिक काम नहीं करके, ये अलौकिक जासु या लौकिक कामकी भी शोभा बढ़े. मने **''यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखम् अस्ति''** (छान्दो.उप.७।२३।१) **''यद् अल्पं तन्मर्त्यम्''** (छान्दो.उप.७।२४।१). जो भी कुछ अल्प हे वो तो मर्त्य हे. जो भूमा हे सो सुख हे. वा न्यायसू यदि या लौकिक कामकी भी कुछ शोभा होती होय तो वा कामके कारण हो रही हे. वो शोभनरूप अलौकिक कामकु यहां **'सम्यग्'** शब्दसू व्यक्त कियो जा रह्यो हे. **तदस्मास्वेव त्वदाज्ञया इच्छया इति यावत्,**

तयैव प्रवर्तते. यतो जगत् लौकिकं गच्छति, नश्यत्येव, न तु स्थिरम्'. **अब वो सुरत** माने अलौकिक-काम, वाके अनुसार गोपीजनें स्तुति कर रही हें कि वा अलौकिक-कामकी स्थिति हमारेमें हे. (और) वो हमारे स्वभावसू नहीं हे पर तेरी आज्ञा और तेरी इच्छासू हे. वाको कारण क्या? श्रीगुसांईजीकी पंक्ति याद करो **''तदनंगगुणो न तदव्रतकृतो अन्यदीयोपि वा''**. जो गोपिकायें हती वो बहोत छोटी पांच वर्षकी बालिकायें हती. जैसो वर्णन भागवतमें आयो हे, वा प्रकारको वर्णन वा वयक्रममें तो संगत नहीं होवे. तो ये वर्णन और उनके वयको जो उल्लेख, याकी संगति क्या? तो जा प्रकारकी लीलान्को वर्णन हे, वा प्रकारकी लीलाको वर्णन न तो कृष्णकी वा बखतकी वयसु संगत होवे हे और न गोपिकान्की वयक्रमसु संगत होवे हे. जो चित्रें बनावे हें लोग वामें तो युवतीन्के चित्र बनावे हें. बालिकायें तो बहोत छोटी हती. तो कहें कि कात्यायनीके व्रतसू क्या उनके वयमें कुछ अस्वभाविक विकास हो गयो हतो? तो गुसांईजी कहें हें कि वयको कोई अस्वभाविक विकास नहीं भयो थो. उनने कात्यायनीव्रत कियो, तो कात्यायनीव्रतके कारण कोई ऐसो वरदान मिल्यो हतो कि जासु उनमें यौवन प्रकट भयो? तो कहें कि कात्यायनीके व्रतको भी ये प्रभाव नहीं हतो. केवल प्रभुने शृंगारात्मिका दृष्टिसू उनकु देख्यो और वा दृष्टिको ही ये सारो प्रभाव हतो. **''प्रियकटाक्षगो अयं परम्''** . न तो ये कात्यायनीव्रतको प्रभाव हे, न उनकी वयको ये अस्वभाविक विकास हे. ये केवल परमात्माकी शृंगारात्मिका दृष्टिको वर्णन हे.

(दृष्टिसृष्टिवाद और सृष्टिदृष्टिवाद)

जैसे अद्वैतीन्में **दृष्टिसृष्टिवाद** हे वाने देख्यो तो सृष्टि पैदा भई. एक **सृष्टिदृष्टिवाद** हे और दूसरो दृष्टिसृष्टिवाद हे. ऐसे ये परमात्माकी दृष्टिसृष्टिवाद हे कि वाने देख्यो और वैसी सृष्टि पैदा भई. परमात्माकी दृष्टिमें, वचनमें और संकल्पमें भी इतनी सामर्थ्य हे क्योंकि सत्यकाम

हे, सत्यसंकल्प हे, सत्यदृष्टि हे. ऋषिनूमें ये सामर्थ्य मानी जाय कि "**ऋषिणाम् पुनर् आद्यानाम् वाचम् अर्थोनुधावति**'. (उत्त.रामच.१।१०). अर्थ वाणीको अनुसरण करे. वाणी अर्थको अनुसरण नहीं करे. जो कहें '**ऋतम्भरा प्रज्ञा**' केहवावें मने जो उनकी कल्पना भयी वो सत्य हो जावे और सत्यके अनुसार उनकी प्रज्ञा घटित नहीं होवे. ये उनको प्रभाव हे. ऋषिनूमें जब या तरहको विशेष प्रभाव मान्यो जाय तो परमात्मामें वो प्रभाव क्यों नहीं हो सके? याके लिये जो ये परमात्माको कुछ वर्णन हे **दृष्टिसृष्टिवाद** हे. बात समझावेके लिये केह रह्यो हूं. याकु गम्भीरतासु मत ले लीजियो. अपने यहां दृष्टिसृष्टिवाद मान्य नहीं हे पर उपहासमें या बातको केह रह्यो हूं. परमात्माने वा दृष्टिसू देख्यो और जा तरहसु परमात्माने देख्यो वा तरहसु सृष्टि भई. कुरूआनमें कहें कि परमात्माने कही '**कुन**' हो जाओ और आखी सृष्टि हो गई. '**कुन**' केहते ही आखी सृष्टि पैदा हो गई. क्योंकि परमात्माकी वाणी हे और वाणीको विषय सारो घटित हो गयो. परमात्माने वा दृष्टिसू देख्यो और वा तरहकी सारी सृष्टि पैदा हो गई. वोही बात गोपीजन केह रहे हें **तदस्मास्वेव**. या दृष्टिसु तेंने हमकु ही देख्यो हे और तेंने हमकु देख्यो हे यासू वा अलौकिक-कामकी प्रतिष्ठा हमारेमें ही हे. वो हमारे स्वाभाविक वयक्रमसु नहीं हे. न कोई हमारे अस्वाभाविक तप या व्रतके कारण हे. वो **त्वदाज्ञया इच्छया** हे. **तयैव प्रवर्तते** अथवा ये अशुद्ध पाठ होय तो **त्वयैव प्रवर्तते**. ऐसो भी पाठ हो सके हे. **यतो जगत् लौकिकं गच्छति, नश्यत्येव, न तु स्थिरम्**. क्योंकि यदि जगत्में कामकी कोई प्रतिष्ठा भी भई, अलौकिक-कामकी, तो कहें हें कि वो तो जगत् हे, मने जो चलतो भयो होय वाको नाम 'जगत्'. 'गच्छति' मने जो चलतो भयो होय, 'जगत्' मने जो निरन्तर चल रह्यो होय. लौकिक जगत् तो स्वयं चल रह्यो हे. वामें अगर कोई चीज प्रतिष्ठित भी करी, तो वो वाकु लेके जायेगो. अक्सर ऐसो ही होवे कि जितने भी शास्वतमूल्य जगत्में स्थापित करें जायें, वो

जगत्में टिक नहीं पावें, शास्वत रेह नहीं पावें, क्योंकि जगत् उनकु भी लेके चल रह्यो हे. स्थापित भयो नहीं कि चलनो शुरु कर दे. स्थिर रेह ही नहीं पावे चाहे कोई भी सिद्धान्त स्थापित करो. मने चोरीको सिद्धान्त भी स्थापित करो तो वो भी स्थिर नहीं रेह पायेगो. दो-चार आदमी ऐसे अचोर पैदा हो जायेंगे और जो अचोरीको सिद्धान्त स्थापित करो तो चोर तो पैदा ही भये हें. 'हे' ये जगत् चल रह्यो हे. जैसे एअरपोर्टपे कन्वेयरबेल्ट् होवे हें कि जापे सामान रख्यो नहीं कि सामान चलनो शुरु हो जाये.

(कन्वेयरबेल्ट् पर भगवान्!)

अहमदाबादमें हमकु एक आदमी केह रह्यो थो कि "मन्दिरमें एक कनवेयरबेल्ट् लगा दें और भक्त आके खड़ें हो जायें और घूमके दर्शन करें तो कैसो?" मैंने कही कि "थोड़ो रह्यो भयो सो भी चौपट हो जायेगो." आज तुम भक्तन्कु कन्वेयरबेल्ट्पे चढ़ा रहे हो, कल तुम यों कहोगे कि "भक्त ही कन्वेयरबेल्ट्पे क्यों चढ़ें, भगवान्कु ही कन्वेयरबेल्ट्पे पधराओ न! कि चारों ओर भगवान् घूम जायें और सबकु दर्शन हो जाये." मने प्रभुको रह्यो भयो माहात्म्य, अपने मनमें प्रभुके दर्शनकी उत्कंठा, वो सब खतम! ऐसे जगत् भी एक कन्वेयरबेल्ट् हे कि रख्यो नहीं कि चलनो शुरु हो जाये. कभी एअरपोर्टपे जाके देखवेवालो दृश्य होवे कि सामान रख्यो नहीं कि सामान चले.

अतो अत्यलौकिकं स्वरूपानन्दरुपं तत्र प्रकटीभवितुं न अर्हति. याके लिये अलौकिक स्वरुपानन्दरूप काम या **'तत्र'** = जगत्में प्रकट नहीं हो सके. या लिये **एतादृशस्य तस्य भवानेव नाथः.** अब यदि वाकु या जगत्में प्रकट करनो होय, तो जगत्की सामर्थ्यसू प्रकट नहीं हो सके हे. वो अलौकिक-काम अपन् अलौकिक स्वभावके कारण प्रकट हो नहीं सके हे पर तू **'अचिन्त्यकार्यकर्ता'** (पु.स.ना.५।६८)

हे मने **तर्कागोचरकार्यकृत्** (पु.स.ना.५।६८) हे, याके लिये तू चाहे तो या लोकमें ही अलौकिक कामकु भी प्रकट कर सके हे. **प्रवर्तको रक्षकश्च** प्रवर्तक भी तू हे और रक्षक भी तू हे.

(यदि भक्त भी शून्यहृदय हो जायेंगें!)

एवं सति स रसः चेत् त्वय्येव निरुद्धः तिष्ठेत् तदा तु अलौकिकाअपि भक्ताः शून्यहृदया भवेयुः इति त्वदिच्छां ज्ञात्वा त्वां प्रार्थयित्वा तादृशीः वयं प्रकटीकृताः यतः प्रतिबन्धनिवृत्तिः. क्योंकि तू ही प्रवर्तक हे, तू ही रक्षक हे. यदि तेरे बिना कोई विषयमें कामको प्रवर्तन या निर्देशन भयो तो वो अपनी वा अलौकिक गरिमासू च्युत हो जायेगो. याके लिये वो रस यदि तेरेमें ही निरुद्ध रह्यो, **तदातु अलौकिकाअपि भक्ताः शून्यहृदया भवेयुः.** तो जो अलौकिक भक्त हें, जिनमें या अलौकिक रसको अनुभव करवेकी सामर्थ्य हे, मने जो विषयानन्दसू ऊपर उठके ब्रह्मानन्द और ब्रह्मानन्द की स्थितिसू भी उठके भजनानन्दकी स्थितिमें जो भक्त पहोंच सके हें, उनके हृदयमें भी यदि या रसकी अनुभूति नहीं भई तो उनके हृदयमें तो शून्यता ही आ जायेगी.

(इन्द्रियसामर्थ्यको दुरुपयोग-निरुपयोग-सदुपयोग)

वेणुगीत सुबोधिनीमें कह्यो हे '''इदमेव इन्द्रियवताम् फलम् मोक्षोपि नान्यथा यथा अन्धकारे नियतास्थितिर् न अक्ष्णोः फलम् भवेत्'' (सुबो.कारि.१०।१८।१०). श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें कि जो प्रवाहीजीव हें, उनकी इन्द्रियन्की सार्थकता तो या अर्थमें हे कि वो लौकिकविषयन्को उपभोग करेंगे. लौकिकविषयन्के उपभोगके कारण या जगत्में आयेंगे और जायेंगे. क्योंकि वो जागतिक हें. जो कन्वेयरबेल्ट्सु छटकके बाहर भागनो चाह रहे हें, वो शायद इन्द्रियन्कु भी बेकार कर देंगे. हम याकु या तरहसु समझावें कि जैसे इन्द्रियादिकन्कु सामर्थ्य प्रभुने दियो, तो प्रावाहिक जीव तो सामर्थ्यको दुरुपयोग करें. मर्यादाजीव वाको निरुपयोग करें. जो इन्द्रियवान् हें और यदि भगवान्की कृपाके

भाजन हें, वे ही सदुपयोग कर सकें हें.

तो भगवान्ने इन्द्रियादिकनूकु जो सामर्थ्य दियो हे, आँखसु रूपके दर्शनको सामर्थ्य, कानसु शब्दके ग्रहणको सामर्थ्य, नाकसु गन्धके श्रवणको सामर्थ्य, उनको यदि लौकिकविषयनूमें विनियोग भयो तबतो दुरुपयोग हो गयो. दुरुपयोग या अर्थमें कि वो क्षुद्र उपयोग हे. यदि उनको उपयोग ही नहीं कियो तो तुम्हारे पास लाख रुपिया आये और तुमने जमीनमें गाड़ दिये, तो फिर वो पुरातत्त्वविभागके काम आयेंगे. न तुम्हारे दानमें काम आये, न तुम्हारे उपभोगमें काम आये, सो वो तो केवल नाशमें ही काम आये. ऐसे लखपति भी क्या कामके! ऐसो लाख रुपिया क्या कामको जो काम ही नहीं आवे! जमीनमें गड़्यो ही रहे, जाको न देवेकी सामर्थ्य, न उपभोग करवेकी सामर्थ्य, न छोड़वेकी सामर्थ्य, बस नाशकी सामर्थ्य. कोई पुरातत्त्ववेत्ता होय सो वाकु सेंकड़ों साल बाद खोदके काढ़े. वो काममें तो आवे नहीं. ज्ञानीकु जो या तरहकी सामर्थ्य प्राप्त होवे हे वो निरुपयोग चली जाय हे. भक्तिको कृपाभाजन वाको सदुपयोग कर सके हे. वा सामर्थ्यसु भगवान्कु इन्द्रियन्के विषय बनाके, अपने हृदयकु शून्य होवेसु बचा सके हे. क्योंकि भगवान्के रूपकु रसकु गन्धकु सबकु अपनी इन्द्रियन्को विषय बनाके, अपने हृदयकु रसपूरित कर सके हे. तो ये भक्तको और ज्ञानीको अन्तर हे. ये अन्तर यदि भगवान् तिरोहित ही रहें, तो वैसे भगवान् ज्ञानीके ही कामके, भक्तके कामके कहां भये! ये तिरोहित ही रेहनो हतो तो भक्तन्कु इन्द्रियादिकनूकी सामर्थ्य ही प्रदान क्यों करी! केवल असंग आत्मा पर्याप्त हती. तो कहें हें कि प्रवाहीजीवन्कु हमने प्रदान करी तो प्रवाहीजीवनूमें तो उनकी कछु उपयोगिता हे. दुरुपयोग ही सही पर अनुपयोग तो नहीं हे. कुछ तो हे!

अब यदि कहें कि मर्यादाजीवनूकु भी इन्द्रियसामर्थ्य तो या

न्यायसू प्रदान करी नहीं तो मुक्त भी कैसे होते? ईसाइन्में येही न्याय हे. ईसाइन्में कहें हें कि “भगवान्ने मनुष्यकु स्वतन्त्र क्यों बनायो? स्वतन्त्र नहीं बनाते तो भगवान्कु पावेको जो वाको प्रयत्न हे वो वाको नहीं केहलातो.” वा न्यायसू मर्यादाजीवकु जो इन्द्रियादिकन्को जो सामर्थ्य दियो गयो, वामें अगर इन्द्रियन्कु सामर्थ्य नहीं दी होती तो मुक्त कैसे केहवाते? अबद्धजीव और मुक्तजीव में अन्तर क्या रेह जातो? सबसु बड़ी तकलीफ ये हे कि बद्धजीव तो मुक्त हो सके पर अबद्धजीव मुक्त भी नहीं हो सके. मुक्त होवेके लिये बद्ध होनो जरूरी हे. चलो मर्यादामार्गके जीवन्कु इन्द्रियादिकन्की सामर्थ्य दी वो भी चलो संगत हो गई, पर जो केवल भक्तिमार्गीय जीव हें, उनकु न तो बंधनकी बात हे और न कोई मुक्तिकी बात हे. तो उनके इन्द्रियादिकन्की सामर्थ्यको प्रयोजन क्या? वो निष्प्रयोजित रेह जायेगी अगर भगवद्प्राकट्य नहीं होय तो. यदि इन्द्रियादिकन्की सामर्थ्यसू भगवान्कु विषय बना नहीं पाये, तो कमाई भई सारी सम्पत्ति या जो अपनेकु वारसामें मिली वो सारी वेस्ट् गई. याके लिये आचार्यचरण कहें हें “**इदमेव इन्द्रियवतां फलं मोक्षोऽपि नान्यथा. यथा अन्धकारे नियतास्थितिर् न अक्ष्णोः फलं भवेत्.**” वो तेंने दी हे और वाको प्रवर्तन और निर्वाह जैसे तेंने कियो हे, वाको रक्षण भी अब तेरी जिम्मेदारी हे. यदि व्रजकी लीला नहीं होती! (तो कैसे पता चलतो) प्रभुकु देख्यो जा सके हे, प्रभुके कंधापे हाथ धर्‍यो जा सके हे, प्रभुके हाथमें हाथ मिलाके चल्यो जा सके हे और कभी इच्छा होय तो एकाध चपत भी लगाई जा सके हे. ये सारे जीवके आँखके बाहुके सदुपयोग हें. अब व्रजभक्तन्ने तो सदुपयोग करके दिखायो. जीवकी थोड़ी बहोत प्रबुद्धइच्छा हे वो डरके मारे प्रकट नहीं होवे.

(शुद्धाद्वैत भी नास्तिकता?)

ऐसी बात कहें तो नास्तिक मान्यो जातो. वास्तवमें ऐसो भयो.

जब मर्यादामार्गके भावको जोर बहोत पकड़ जाये, तब या तरहके भावन्कु पाप मान्यो गयो हे. जब "जोन् ऑफ् क्रोस्" ने 'क्राईस्ट्' को या तरहको सारो वर्णन कियो, जैसे अपने यहां मधुर भक्तिको स्वरूप बतायो, तो वो पुस्तक वहां बेन्ड् हो गई और वहांसु वाकु निकाल्यो गयो, ये केहके कि "तुमने ईश्वरको अपराध कियो." अब वहां वामें एक मधुरभाव जग्यो पर क्योंकि मर्यादा ऐसी प्रबल हती कि वाकु अपराध ही गिन्यो गयो. थोड़ी बहोत सूक्ष्म इच्छामें भी एकाध बखत ऐसे डण्डा पड़ जायें. ब्रुनोने जा बखत शुद्धाद्वैतको निरूपण कियो, तो वा बखत राजाने वाकु बुलाके वाके लिये कह्यो कि "जितने भी यहूदी हें वो सब याकु ठोकर मारके जाओ." अब जितने भी वा गाममें हते वो सब वहां गये और एक ठोकर मारके आये. तो वा जमानामें शुद्धाद्वैत बोलवेको ये दण्ड भुगतनो पड़्यो. क्योंकि लोगन्के मनमें द्वैतवादकी मर्यादा बड़ी प्रबल हती. ब्रुनो जब लौटके आयो तब रबाईकु खूब गाली लिखि. सो डेढ़सो गाली लिखके डरके मारे गोली खा कर मर गयो. अब ऐसेमें गाली नहीं देंगे तो और क्या देंगे! जब द्वैतवादकी मर्यादामार्गकी प्रबलता हो जाये तो ये बात केहवेमें भी डर लगवे लग जाये ना! ऐसी स्थितिमें एकाध उदाहरण होंय कि ऐसो भी एलाउड् हे तो अपन् भी पांचवें सवार बन सकें.

चार घुड़सवार दिल्ली जा रहे थे. पीछे एक आदमी गधापे बेठके जा रह्यो हतो. सिपाहीने पूछी कि "चारों सवार कहां जा रहे हें?" तो घोड़ापे जो सवार हते वो बड़े अफसर हते सो उनने सोची कि "कौन जवाब दे!" पर पीछे जो गधापे बेठके आ रह्यो थो वासू रह्यो नहीं गयो. सो बोल्यो कि "पांचों सवार दिल्ली जा रहे हें." ऐसे ही दिल्ली जावेवाले जो पांचवें सवार हें वो कमसू कम केह तो सकें कि दिल्ली जा रहे हें. नहीं तो दिल्लीके दरवाजा ही बन्ध हो जाय.

(काले आकाश बीच चमचमातो कंचनजंघा)

तो वा न्यायसू कहें हें कि यदि सारे भक्त शून्यहृदय हो गये, ये अपने यहांकी परिभाषा सरल करके आपकु बता रह्यो हूं कि शुद्धपुष्टिके जीव कैसे होवे. ये बात जो मर्यादाके जीव हें या प्रवाहके जीव हें उनमें तो आ नहीं सकें. अपन् (आधुनिक मिश्रपुष्टिजीव) भी कमसू कम ये आशा तो कर सकें. अरे! यों तो केह सकें कि या तरहकी आशा होनी चइये. ये अपनो आईडियल् हे. यदि अपनेकु शिखर ही नहीं दीखतो होय तो कहां पहोंचनो हे यह पता कैसे चलतो!

वहां दार्जलिंग्में टाइगरपोइन्ट् देखवे जावें तो वहांसु बड़े सवेरे कंचनजंघा दीखे. अब कंचनजंघाकी हाईट् ऊपर वाके बाजुमें अंधेरा होवे. तो जब सूर्यकी किरण सबसु पेहले कंचनजंघापे पड़े. वा बखत कि जा बखत या पूरे एरियामें अंधेरा हे. सूर्योदय यहां नहीं भयो हे. कंचनजंघाकी हाईट्के कारण ये बात संभव हे. अब एमदम सुबह वो चारों ओर अंधेरा, कालो आकाश पर कंचनजंघा एकदम तेज भड़कती आगसी दीखे. विलक्षण दृश्य हे पर वो दस बार जाओ तो भी एक बार नहीं दीखे. क्योंकि जब जाओ तब बद्दल आ जायें और सूर्योदय दीखे नहीं. अब वो सूर्य प्रतिबिम्बित होतो तो होयगो परन्तु बद्दलन्की आड़ ऐसी आ जाये मर्यादाकी, कि रोज टाईगर पोइन्ट्पे जावें और बद्दलन्के कारण लौटके आ जावें. सोमेंसु एक बार दीखे पर जा दिन दीखे, वा दिन वो विलक्षणता नजर आवे कि सारो कालो आकाश और बीचमें चमचमातो कंचनजंघा. पर हर बखत वो मर्यादाके बद्दल बीचमें आड़े आते होंय तो सूर्यको प्रतिबिंब कंचनजंघापे दीखे नहीं. अब आठ हजार फीट् टाईगरहिल्स्पे जाओ और वाको लाभ कछु होवे नहीं. याके लिये कहे हें **एवं सति स रसः चेत् त्वय्येव निरुद्धः तिष्ठेत् तदातु अलौकिकाअपि भक्ताः शून्यहृदया भवेयुरिति त्वदिच्छां ज्ञात्वा त्वां प्रार्थयित्वा.** जब हमने देख्यो

कि भई! तेरे पास भी या तरहकी कुछ इच्छा हे, अब कैसी इच्छा हे ये तुमकु कैसे पता चली? अब वे भगवान्‌की इच्छा हे ये रहस्य इनकु ऐसे पता पड़ी “‘**स वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न रमते स द्वितीयम् ऐच्छत्. स इममेव आत्मानं द्वेधा पातयत् ततः पतिश्चपत्नी च अभवताम्.**” (बृह.उप.१।४।३). ये रहस्य यदि कोईकु पता चल गयो और वाने या रहस्यको उद्‌घाटन कर दियो तो वह तो श्रुतिरूपा गोपिजन्‌ने. श्रुतिरूपा गोपीन्‌ने प्रकट होके कही कि “चलो यह वाकी रमणेच्छा हे वो पूरी करो.” देवतान्‌ने और भक्तन्‌ने भी ऐसी प्रार्थना करी और **तादृशीः वयं प्रकटीकृताः**. अब वा प्रकारको स्वरूप हमारो प्रकट भयो. **यतः प्रतिबन्धनिवृत्तिः**. यासू भगवान्‌के अलौकिक स्वरूपके माधुर्यके (और) सौन्दर्यके अनुभवमें मर्यादाके या लौकिकताके या लोकोत्तर मर्यादान्‌के प्रतिबन्ध निवृत्त हो जायें. भक्त अपनी भक्तिके मृदु स्वभावके अनुरूप भगवान्‌के सौकौमार्यको सौन्दर्यको माधुर्यको स्वरूपको अनुभव कर सकें.

श्रीगुसांईजी समझा रहें हें **अतएव अग्रे विखनसार्थित् इति वक्ष्यते.** याके लिये आगे जाके कहेंगे “**विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख ऊदेयिवान् सात्त्वतां कुले**” (श्लोक४). **कामो भगवदीयः.** यहां लौकिक काम नहीं हे. वो मनके विकारसू उत्पन्न होवेवालो काम नहीं हे. यहां अलौकिक-काम हे. **मनसः पूर्वरूपत्वाद् वाच उत्तररूपत्वात्** (द्रष्ट: ऐत.उप.१।१।२) (द्रष्ट. : “मनएव पिता वाङ् माता...” (बृह.उप.१।५।७)) “**मनश्चक्रे**” (भाग.पुरा.१०।२९।१) **इति उक्त्वा “जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्” “ता दृष्ट्वान्तिकम्”** (भाग.पुरा.१०।२९।३,१७) **इत्यादिकं च वाग्रूपम् अलौकिकभावप्रवर्तकं स्वप्रियासु इत्याशयेन ‘आज्ञा’ पदम् उक्तम्** . अब कहें कि काम हे ये कैसे पता चल्यो? तो कहें हें कि भागवतके दशमस्कन्ध २९वें अध्यायमें स्पष्ट निरूपण कियो हे, “**भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायाम् उपाश्रितः**” (भाग.पुरा.१०।२९।१). भगवान्‌ने मनसु

उत्पन्न कियो. विराटस्वरूपके वर्णनमें मन कामको पूर्वरूप हे और वाक् कामको उत्तररूप हे. तो वा न्यायसु प्रथम जब मनकु उत्पन्न कियो, वाके बाद, "**जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्**" (भाग.पुरा.१०।२६।३). 'कल' माने वाणी भी उत्पन्न करी, केवल वाणी ही उत्पन्न नहीं करी पर वाको उद्दीपन विभाव भी उत्पन्न कियो. ये कहेके "**प्रतियात् व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः**" (भाग.पुरा.१०।२६।१९) "गोकुल जाओ, गोकुल जाओ". इन सबको ये अलौकिक-कामको उद्दीपन भी कियो. जो वाग्रूपसु भी अलगसु प्रवर्तित भयो, वासु भगवान्के अलौकिकस्वरूपमें कोई अलौकिक-कामको प्रादुर्भाव भी भागवतमें स्वीकार कियो गयो हे. **अलौकिकभावप्रवर्तकं स्वप्रियासु इति आशयेन् 'आज्ञा' पदम् उक्तम्**. या लिये केह रही हें कि भगवान्की आज्ञासु अलौकिक-कामको प्रवर्तन हे मने ये भगवदाज्ञा न होय, तो ये वेणुनाद केवल गोपिकान्कु सुनाई दियो. वेणुनाद तो वनमें भयो, सुनाई दियो व्रजमें और सुनाई देवेके बाद जो जा सकती थी, जिनको जारभाव नहीं हतो, जिनको सर्वात्मभाव हतो, वे ही रासमें पहोंच पायी. जिन्होंने जारभावसु प्रभुकु देख्यो. जिन्होंने विकृतभावसु सगुणभावसु प्रभुकु देख्यो, वो रासमें पहोंच नहीं पाई, ये सब प्रतिबन्ध क्यों भये यदि भगवदाज्ञा नहीं होती तो?

(आधुनिक तर्कसंगत वैज्ञानिक रासवर्णन!)

हम जब इन्टर्में थे तब हमकु तुलना करवेके लिये कोई प्रोफेसर्ने कही कि "हरिऔधको रासवर्णन और सूरको रासवर्णन याकी तुलना करो." तुलना तो हम भी कर देते पर वाने सब पोइन्ट्स लिखाये, कि हरिऔधको रासवर्णन वैज्ञानिक हे, आधुनिक हे, तर्कसंगत हे और सूरको रासवर्णन अवैज्ञानिक, असंगत हे और उदाहरण दियो कि हरिऔधने जो रासवर्णन कियो वामें सारे व्रजके पुरुष और स्त्री बाल-बच्चा सभी गये हें और सूरके रासवर्णनमें केवल गोपिकायें ही गई हें. ऐसे कैसे हो सके कि सारी गोपिकायें जायें. हमकु

बात बड़ी बुरी लगी. हरिऔध अच्छो कवि हे यामें दो मत नहीं हें पर या तरहसु सूरकु गिरानो, वो जच्यो नहीं. सो हमने एक पूरो निबन्ध लिख्यो कि "भगवान्‌ने ऑलइन्डिया रेडियोपे जाके बंसी बजाई. गोपिकान्‌ने वाकु सुनके टेलीफोन्‌पे फोरेस्ट् डिपार्टमेंट्सु कोन्टेक्ट् कियो कि कृष्ण कहां हें? इन्फोरमेशन् लाओ. तो वहांके ऑफिसर्‌ने कही कि "कृष्ण अभी या एरियामें घूम रहे हें". फिर भागमभाग शुरु भई...." तो वो पढ़के बड़ो नाराज हो गयो. अब पता नहीं चले कि कौनने लिख्यो पर खूब गालियां दी कि ये निबन्ध या तरहसु गलत हे, वा तरहसु गलत हे. जब घंटी बजवेकी तैयारी भई तो हमने खड़े होके कही कि "सर् आपने जो बात कही वो बात हमकु स्वीकार्य हे पर सवाल ये हे कि यदि हरिऔध वैज्ञानिक हे तो वाने जितने वैज्ञानिक उपकरण बताये वो गांधीवादके युगके हिसाबसु बताये. हमने गांधीवादके बाद जो फरधर् डेवलपमेन्ट् भई हें, वाके अनुसार रासवर्णन बनायो, याकु आप पसन्द क्यों नहीं कर रहे हो?" जितनी इन्फोरमेशन् वाकु हती वाके हिसाबसु वाने कही, अब वाकी तुलनामें इन्फोरमेशन् हमकु ज्यादा मिल गई हे तो हमारो रासवर्णन ज्यादा तर्कसंगत मानो. हरिऔधकी तुलनामें ज्यादा वैज्ञानिक वर्णन! ये क्या हे कि या तरहको रासको वैज्ञानिक वर्णन हो सके हे कि एकको सुनाई दियो और सबकु सुनाई नहीं दियो और कुछ ही जा सकी, सब नहीं जा सकी. यामें यदि कोई वेणुको कारण होतो तब तो संभव नहीं हो सके. हमारे सर्‌की बात सच्ची हे. अवैज्ञानिक तथ्य हे पर ये वैज्ञानिक तथ्य नहीं हे, यामें विज्ञानोत्तर तथ्य हे. विज्ञानसु ऊपरको तथ्य हे जाके कारण जिनकु प्रभुकु बुलानो थो उन्हींकु वेणुनाद सुनाई दियो. सबकु सुनाई नहीं दियो. जिनकु सुनाई दियो वामेंसु भी वो ही जा सकी जिनकु प्रभु चाहते थे कि आवे, सब नहीं आ सकी. याकी वैज्ञानिक या तार्किक व्याख्या नहीं हो सके हे. ये अतिवैज्ञानिक तथ्य हे. यासु सिद्ध होवे हे कि यहां भगवदाज्ञा नियामिका हे. यामें कोई

वेणुनाद नियामक नहीं हे, न गोपिकानूको स्वभाव नियामक हे.

"मैवं विभो अर्हति" (भाग.पुरा.१०।२६।३१) **इत्यादिवाचां भगवद्भावात्मकत्वात् तासामपि आज्ञारूपत्वम् इति आशयः'**. अब पलटके गोपिकानूने भी आज्ञायें दी हें. गोपिकानूने भी कोई विनय नहीं कियो हे, जब भगवानूने लौटवेकी कही कि "पाछे लौट जाओ", तो गोपिकानूने कही कि "ऐसी आज्ञा तुम नहीं दे सको हो". ये आज्ञा गोपीनूने की **"मैवं विभो! अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांन् तव पादमूलम् प्राप्ता भजस्व दुरवग्रह! मा त्यज अस्मान्"** (भाग.पुरा.१०।२६।३१). केहवेके लिये प्रार्थना हे पर आज्ञाके स्वरमें प्रार्थना हे. दादाजी या बातकु बताते कि जब घूमवे जानो होतो तो तातजीके पास जाके केहते कि "काकाजी! घूमवे जानो हे आज्ञा दो." वामें पूछनो काकाजी हमकु घूमवे जानो हे वाकी आज्ञा दो तो केहवेको मतलब क्या? हमकु आज्ञा दो याके लिये उनकु आज्ञा दे रहे हें. ऐसे गोपिकायें भगवानूसु केह रही हें **"मैवं विभो...पादमूलम्"** ये आज्ञा देवेकी सामर्थ्य भी क्या गोपिकानूकी हो सके हे? ये आज्ञा देवेकी सामर्थ्य गोपिकानूकी नहीं हो सके हे. ये भी एक तरहसु भगवदभिप्रेत हे. ये भगवदभिप्राय ही भगवानूकी वाणीसु मुखरित नहीं होके इनकी वाणीसु मुखरित हो गयो हे. अभिप्राय तो भगवानूको ही हे. भगवानूने ही कह्यो हे कि "तुम चले जाओ लौटके." वाको जवाब जो भगवानूकु अभिप्रेत हे, वो जवाब ही गोपिकानूने दियो.

जैसे सुकरातकु जो केहनो होतो वो सुकरात कभी नहीं केहतो. ऐसे ऐसे आड़े टेढ़े सवाल पूछतो कि आखिरमें सामनेवालेकु वो ही बात केहनी पड़ती जो सुकरातकी कल्पना होती. वासु अपने विचार केहलवातो खुद नहीं केहतो. तो जब वापे ये आक्षेप आयो कि तुम सबकु बिगाड़ रहे हो, तो वाने ये ही कही कि "मैने कौनकु कौनसी बात कही हे?" मैं तो सबसु उनकी बात ही समझवेकी

कोशिश करतो रह्यो. दरअसल बात सच भी हे और गलत भी हे. बाह्यरूपसु देखो तो सुकरातने अपनो मत कभी कोईकु नहीं समझायो. सबसु वाने प्रश्न ही कियो. केवल प्रश्न ही किये पर प्रश्न ऐसे ऐसे जटिल हते कि वो प्रश्नको उत्तर देवेवाले प्रश्नको उत्तर वो ही देते थे जो उत्तर सुकरातको अभिप्रेत होतो थो.

या तरहसू भगवान्ने गोपीकान्के सामने ऐसे ऐसे प्रश्न खड़े किये कि गोपिकान्कु वो ही उत्तर देनो पड़्यो जो उत्तर भगवान्कु अभिप्रेत हतो. अन्तर केवल कितनो पड़्यो? या आज्ञामें और वा आज्ञामें ‘‘लौट जाओ’’ आज्ञामें और ‘‘नहीं लौटेंगी’’ या ‘‘लौट जाओ केहवेकी आज्ञा तुम नहीं दे सको हो’’ ये आज्ञा, यामें अन्तर कितनो पड़्यो? एक ही अभिप्राय एक बखत या बाजुसु निकल्यो हे और एक बखत वा बाजुसु. **तैरेव वचनैः प्रतिबन्धनिवृत्तिरपिः.** क्योंकि ये आज्ञा भगवान्की यदि गोपिकान्के मुखारविन्दसु मुखरित नहीं होती तो तो महान् प्रतिबन्ध पेहले ही उपस्थित हो जातो. ‘‘प्रथम ग्रासे मक्षिकापातः’’ हो जातो, जा बखत भगवान्ने कही कि ‘‘लौट जाओ व्रजमें’’ वाही बखत प्रथम ग्रासमें मक्षिकापात हो गयो. पर जैसे ये भगवान्की आज्ञा प्रभुके मुखारविन्दसु मुखरित भई, ऐसे ही गोपिकान्के मुखारविन्दसु ये आज्ञा मुखरित भई कि ‘‘ऐसी आज्ञा देवेकी तुम्हारी सामर्थ्य नहीं हे.’’ यासु सारे प्रतिबन्ध निवृत्त भये. तो ये प्रतिबन्ध भी निवृत्त भये हें तो भगवदाज्ञासु भये हें.

ऐसो श्रीगुसांईजी केह रहें हें. ऐसो लगे हे कि पेहली टिप्पणी **‘सुरतनाथ’इत्यत्र अतो ब्रह्मणा इति’**सु प्रारम्भ हो रही हे. ये दूसरी टिप्पणी कहीं अन्यत्र मिली हे यासु वो जोइन्ट् की हे और वाको उल्लेख करनो भूल गये हें अथवा कहीं कहीं या तरहकी टिप्पणीमें श्रीगोकुलनाथजीको प्रश्लेष हे या श्रीगुसांईजीने भी दो दो बार टिप्पणी लिखि हें पर याको क्रम नहीं मिले हे. पेहले एक बार एक टिप्पणी

लिखि और फिर दूसरी टिप्पणी लिखि और वो बात एडिटिंग्में छूट गई हे. वाकी पुरानी पाण्डुलिपि देखें तो ये बात लक्ष्यमें आवे. या ये श्रीगोकुलनाथजीकी जोड़ी भई टिप्पणी हे.

अतो ब्रह्मणा इति. अत्र अयं भाव:. "ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामा:" (भाग.पुरा.१।१६।३२) इत्यत्र भगवद्भावकामा: सन्त: साक्षात् तम् अलभमाना: श्रियोपांगा भावोद्गारिणो निरन्तरं प्रियसंगतत्वेन तद्भावात्मकत्वं प्राप्ता इति तत्सम्बन्धे तदनुभावेन कदाचित् स भावोऽपि भवेद् इति आशया तत्कामाः तपश्चरन्ति इति निरूपितम्. मने एक कृपाकी कटाक्ष भगवान् मेरेपे डालें, या एक कृपाकी कटाक्ष हमपे पड़े या कामनाकु लिये ब्रह्माजी लक्ष्मीजी और बड़े बड़े देव तपस्यायें कर रहे हें. निरन्तर भगवान्को अनुसरण कर रहे हें. अब जो निरन्तर अनुसरण कर रहे हें, तो हम क्या खोटो कर रही हें? यदि हम न जायें तो हमने क्या खोटो कियो? क्योंकि **भगवद्भावकामा: सन्त:** ये देवतायें भगवद्भावकी कामनासु और साक्षात् भगवद्भावको लाभ तो मिले नहीं, साक्षात् भगवद्भाव प्राप्त होवे नहीं याके लिये ठाढ़े भये हें. **प्रकृते च स्वयं प्रभु: प्रकट इति तन्मार्गप्रकटनार्थं द्वारभूता वयं तेन प्रकटिता इति.** ब्रह्माजी भगवान्की कृपाकटाक्षकी कामनासु तपस्या करें और तपस्या करते भये भी भगवान्की कृपाकटाक्ष उनकु नहीं मिले.

हम नाशिकमें जब पढ़वे जाते तो हमारे एक ताराचन्द हतो. वा ताराचन्दको बाप वाकु रोज फटकारतो, कि "मैं को नी पढ़्या पर थे क्यों नहीं पढ़ो" ताराचन्द पढ़ नहीं पायो तो ताराचन्दने अपने बेटाको पढ़वे भिजवा दियो. अब ताराचन्दको बाप तो पढ़ नहीं पायो और ताराचन्द भी नहीं पढ़्यो पर वाने अपने बेटाकु हमारे पंडितजीके पास पढ़वेके लिये भिजवा दियो. वो बेटा भी बड़ो उपद्रवी, पढ़तो नहीं थो. वो रोज वासु लड़तो कि "मैं तो को

नी पढ़्यो पर थे क्यों नहीं पढ़ो?'' ऐसे ब्रह्माजीको ब्राह्मण होवेके नाते इच्छा तो भई पर कृपाकटाक्ष नहीं पा पाये. सो उन्होंने गोपिकानूकु प्रकट कियो. चलो मोकु तो कृपाकटाक्ष नहीं मिल पायो पर तुम तो कृपाकटाक्ष पाओ. ''मैं तो को नी पढ़्या पर थे क्यों नहीं पढ़ो?'' या तरहसु गोपिकानूकु प्रकट कियो हे. कब प्रकट कियो? जब पता चल्यो कि अब भगवान् प्रकट होवेवाले हें. तो ब्रह्माजीने कही चलो कि तुम तो वा कृपाकटाक्षकु प्राप्त कर लो कि कैसो हे?

अत्र 'सुरत'शब्देन सुष्ठु भगवता समं रतं येनेति भगवद्भावएव उच्यते न तु सम्भोगः देखो दोनों टिप्पणी ऐसी हें कि या टिप्पणीकु वो टिप्पणी मालूम नहीं हे और वा टिप्पणीकु ये टिप्पणी मालूम नहीं हे. यासूं ये निश्चित हो रह्यो हे कि दो अलग अलग टिप्पणी हें. अगर एक टिप्पणी होती तो रिपीटेशन् क्यों होतो! अब यासु ऐसो लगे हे कि ये टिप्पणी कोई अलग संदर्भमें लिख दी गई होयगी और फिर पाछे वा संदर्भकु रिराईट्र कियो हे. शायद यहां तो नहीं पर अणुभाष्यमें तेलीवाला केह हे कि ''गुसांईजीने दो बखत अणुभाष्य लिख्यो हे.'' वो दोनों कोपी तेलीवालाने देखी हें. दोनों कोपीन्के दर्शन उनने किये हें. एक बखत उनने एक ढंगसु लिख्यो पर फिर उनकु आखो पसन्द नहीं आयो, वाकु काट्र्यो नहीं, वैसोको वैसो छोड़ दियो और फिर रिराईट्र कियो हे. कहीं जो सर्वांशमें पसन्द नहीं आयो वहां तो काट देते थे पर वामें भी कोई अच्छी बात आई वाकु रेहवे दी. वामें कोई थोड़ी न्यूनता रेह गई तो फिर पाछी रिराईट्र करके वाकु लिख्यो. या तरहसूं दो-दो कोपी वाकु मिली भई हें और वाने कह्यो हे कि ''वाकु एडिट्र करवेमें बड़ी मुश्किल भई हे कि ये क्रम रखूं कि दूसरो क्रम रखूं!'' मोकु लगे हे कि श्रीगुसांईजीकी ये पद्धति हे, या तरहसु दो-दो बार लिखवेकी. एक बार लिख्यो और दूसरी बार फिर लिख्यो. ऐसे श्रीगुसांईजीकी ये अलग अलग बखत लिखि भई पंक्ति हें.

वाकु या तरहसु संकलित कियो गयो हे, ऐसो प्रतीत होवे हे. पाण्डुलिपि होय तो सारी बात कर सकें, नहीं तो गड़बड़ हो रही हे.

तस्याः आपामरमनुवर्तमानत्वेन 'त्वदाज्ञा...' इत्यादिना नाथत्वविवरणं यत् तदनुपपत्तेः. एतन्मार्गप्राकट्येन ब्रह्मणो न कोऽपि भावः सिद्धः इति अरुच्या पक्षान्तरम् आहुः कामेन वा इति भगवदीयभावरूपेण इति ज्ञेयम्. अब ये देखो, एक तो ब्रह्माने हमकु प्रकट कि और कहें कि ब्रह्माकु हमें प्रकट करवेके बाद भी कोई लाभ नहीं हो सक्यो या हो पायेगो. या अरुचिके कारण आचार्यचरण दूसरो कल्प दे रहे हें, जैसे तुलसीदासजी कहें हें कि "लौकिक आदमीन्की स्तुति कर करके सरस्वती रो रही थी पर जब रामकी स्तुति भई तब सरस्वतीने अपने घरमें बधाई मानी." तो वा न्यायसु कहें हें कि "काम भी पछता रह्यो थो, रो रह्यो हतो कि कहां फंसायो भगवान्ने!" पर जब कामको अलौकिक काम तरीके विनियोग होवे तो ऐसो विचार करके कामने ही इन गोपिकानूकु प्रकट करी हे. ये भाव यहां ले रहे हें.

स्वामिनीदर्शने हि भगवतो भाव उद्रिक्तः सन् कामकार्य करोति अतः तेनैव स्वार्थं वयं प्रकटीकृता इत्यर्थः. अब ये कामने **स्वामिनी दर्शने हि भगवतो भाव उद्रिक्तः.** ये प्रसंग यहां आके देखोगे तो पूर्णवर्णन आयो हे. "**दृष्ट्वा कुमुद्वन्तम् अखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् वनं च तत्कोमलगोऽभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्.**" (भाग.पुरा.१०।२६।३) या कारिकामें आखो वर्णन आयो हे. "**निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रिंयः कृष्णगृहीतमानसाः आजग्मुर् अन्योन्यम् अलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः**" (भाग.पुरा.१०।२६।४). या कारिकामें आखो अलौकिक कामको वर्णन आयो हे. वा अलौकिक कामने अपने स्वार्थके लिये हमकु प्रकट कियो हे. **स्वार्थं वयं प्रकटीकृता इत्यर्थः** या तरहसु श्रीगुसांईजीको व्याख्यान पूरो भयो.

कलके प्रसंगमें ये बतायो कि ब्रह्माजीने गोपीजननूकु अलौकिक शृंगारके प्राकट्यके लिये प्रकट करी. ये भी बतायो कि काम हतो वाने भी प्रकट करी. ये लाईन् श्रीगुसांईजीने डेवलप् करी हे. जब ब्रह्माने प्रकट करी, वाको समर्थन श्रीगुसांईजी (कर रहें हें.) देखो ये शास्त्री कहें कि "श्रीगुसांईजीने सुबोधिनी नहीं देखी" नहीं देखी होय तो ऐसे कोनामें पड़्यो भयो श्लोक या बखत कैसे याद आवे! अपन् जो निरन्तर देखते रहें हे उनकु तो याद आवे नहीं और गुसांईजीको कैसे याद आ गयो!

अतो ब्रह्मणेति. आचार्यचरण आज्ञा करें हें **अतो ब्रह्मणा कामेन वा लोके सुरतप्रवृत्त्यर्थ वयं शुल्करूपा दासिका दत्ता:**. ब्रह्माने, जैसे आप वा दिन बता रहे थे, किर्लोस्करने कि कौनने कही "कि मैंने सुगरफेक्ट्री नहीं चलाई तो कहा भयो!" मैं याकूं खरीद सकुं हूं. "आई केन् बाई धेयर् एक्स्पीरियेन्स् एन्ड् टेकनोलोजी ऑलसो." ऐसे ब्रह्मा चाहे हे, कि नहीं हे हमकु अनुभव, मत होवो! पर जब हमारी बनाई चीजकु वह अनुभव मिल जाये तो हमकु मिल गयो. तो शुल्करूपसु भगवद्भाव हे, भगवत्कटाक्ष हे, भगवत्स्नेहदृष्टि हे, वो मिले नहीं! तो या लिये, ब्रह्माजीने इन् गोपिकानूकु प्रकट कियो शुल्कके रूपमें कि ये शुल्क लेके तो भाव दे दो. मने या शुल्कके रूपमें यदि भाव हमकु मिले हे तो कमाके नहीं तो खरीदके सही! अब ये बात श्रीआचार्यचरणने कही **ब्रह्मणा कामेन वा लोके सुरतप्रवृत्त्यर्थ वयं शुल्करूपा दासिका दत्ता:**. वापे श्रीगुसांईजी केह रहे हें **अत्र अयं भाव:**. "**ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामा**" (भाग.पुरा.१।१६।३२) **इत्यत्र भगवद्भावकामा: सन्त:**. भगवद्भावकी कामना ब्रह्माके हृदयमें भी हे. वो भाव उनकु प्राप्त होवे नहीं हे. **साक्षात् तम् अलभमाना:** साक्षात् उनकु मिले नहीं, तो क्या करें हें कि लक्ष्मीके नयननूमें वो भावकी परछाई देखनो चाहें.

जैसे अल्लाउद्दीन खिलजीकी कथामें आवे हे कि वाकु पद्मिनी देखनी हती. पद्मिनी विवाहिता रानी हती और वाके परदा हतो. तो वाकु वो देख सके नहीं. तो वाने कही कि समझौता यापे हो जाये कि वो खड़ी रहे ऊपर और वाके आगे एक काच रख दियो जाय और वा काचमें वाकी परछाई दीख जाये. ऐसे ब्रह्माजी साक्षात् भगवद्भाव भगवान्के नेत्रनूमें उनकु नहीं दीखे, तो वो क्या करें कि चलो अब भगवान्के नेत्रनूमें दर्शन तो नहीं हो रहे हें वा भावके, तो मत होवे दो. भगवान्को भाव लक्ष्मीजीके नेत्रनूमें जो झलके वहां वाकी परछाई देखके कथंचित् वो सन्तोष माननो चाहें. **श्रियोपांगा भावोद्गारिणो निरन्तरं प्रियसंगतत्वेन.** श्रीके जो अपांग हें मने लक्ष्मीके कटाक्ष, वा भावनूको उदगिरण करें हें. उन भावनूकु वो पाछो रिफलेक्ट् करे हें. क्योंकि निरन्तरकी संगिनी हे. उनके कटाक्ष निरन्तर प्रियसंगत हें. निरन्तर प्रियसंगत होवेके कारण लक्ष्मीके नेत्रनूमें वो भाव सदा आते रहे हें कि जो भाव प्रभुके नेत्रनूमें आवें हें, तो वहांसु वो रिफलेक्शनूसु प्राप्त करनो चाहें हें. भई! असल न मिले पर लक्ष्मीके नेत्रनूमें भरे भाव हमारेपे कभी पड़ जायें तो कुछ पता चले कि कैसे भाव हें वहां!

तद्भावात्मकत्वं प्राप्ता इति तत्सम्बन्धे तदनुभावेन कदाचित् स भावोऽपि भवेद् इति आशया तत्कामाः तपः चरन्ति इति निरूपितम्. याके लिये लक्ष्मीजीके लिये तपस्या करें हें पैसा पानेके लिये नहीं. ब्रह्माजी लक्ष्मीजीको ध्यान धरके तपस्या करें कि उनके नेत्रनूसु प्रभुके भाव कभी छायाके रूपमें झलकते मिल जायें. आचार्यचरण कहें हें **''अत्र 'कटाक्ष' पदेन भगवन्निष्ठानुरागसहित-भगवविषयककामभावसहित-स्वसमर्पणभावोद्गिरणसहितार्द्धदृष्टिः उच्यते''** (सुबो.१।१६।३२). जो भगवान्में स्नेह हे, भगवान्की स्नेहदृष्टिको जो जवाब उनकी दृष्टिमें और वा दृष्टिके जवाबमें भावसहित स्वसमर्पणकी भावनामें, वो सर्वस्वसमर्पणकी भावनामें जो आखी दृष्टि छिप रही हे, वा दृष्टिसू देखनो चाहें

हें. कृपा करके कहीं वो दृष्टि दीख जाये! पर वो भगवद्दृष्टि उनकु मिले नहीं और वो लक्ष्मीजीकी भावदृष्टि भी उनकु मिले नहीं. **''ततः तस्यां दृष्टौ भगवान् भगवद्विषयकः कामो भगवत्स्नेहो लक्ष्मीः सृष्टिः इति पंचपदार्थाः सन्ति''** (सुबो.१।१६।३२). क्योंकि यदि वहां भी देख्यो जाये तो कितनी बड़ी बात हे, वहां भगवान् दीख जाये, भगवद्विषयक भाव दीख जाये, भगवान्‌को इनके बारेमें स्नेह दीख जाये. लक्ष्मी दीख जाये और सारी सृष्टि दीख जाये. क्योंकि भगवान्‌की एक दृष्टिमें सारी सृष्टिको प्रादुर्भाव हे. तो पांच पांच पदार्थ जहां दीख रहें हें पर वो नहीं दीखे. **''ते हि दुर्लभा एकत्र समुदिताः अतो दृष्टिविषयतासिद्ध्यर्थं भगवत्प्रपन्ना भगवति शरणं गताः भगवन्तं हृदये स्थापयित्वा इत्यर्थः तादृशः सन्तस्तपः कुर्वन्ति.''** (सुबो.१।१६।३२). मने वो मिले नहीं तो निरन्तर अपने हृदयमें भगवान्‌की छबिकु धारण करके और वापे ध्यानसु समाधि लगाके तपस्या करें कि चलो ध्यानसू तो दीखे अब कोई बखत साक्षात्कार भी होयगो. मने या श्लोकमें लक्ष्मीको ऐसो असाधारण माहात्म्य बतानो हे पर वहांसु प्रभुचरण ये बता रहे हें के लक्ष्मी और नारायण की परस्पर स्नेहदृष्टिकी ब्रह्माकु जब इतनी लालसा हे तो व्रजकी गोपिकान्‌की स्तुतिमें जाकी स्नेहदृष्टिमें जामें थोड़ो तामसभाव भी शायद रह्यो भयो होयगो. वामें लक्ष्मीजीके निहारवेमें निर्गुणभाव भी होयगो, पर व्रजकी गोपिकायें क्योंकि खुद तामस हें, तो वो तामस सात्त्विक राजस निर्गुण के भावविकार भगवान्‌की दृष्टिमें नहीं आये होयगे क्या? नहीं आये होंय तो स्नेह प्रकट ही कैसे होय? उन भावन्‌के लिये यहां सुतरां ब्रह्माजीने प्रकट करी. **प्रकृते च स्वयं प्रभुः प्रकट.** या बखत तो प्रभु तामस भक्तन्‌के बीचमें प्रकट भये हें. **तन्मार्गप्रकटनार्थं द्वारभूता वयं ब्रह्मणा प्रकटिता.** अब बताओ श्रीगुसांईजीकु सुबोधिनी नहीं लगे यों माननो? श्रीगुसांईजीकु नहीं लगेगी तो कौनकु लगेगी! लोग न समझें न बूझें कुछ भी बक दे.

अभी मोकु किशनगढ़में एक वल्लभपंथी मिले. बोले कि हम खाली महाप्रभुजीकु ही पढ़ें और कोईकु पढ़ें नहीं. तो हमने कही ''महाप्रभुजीकी पंक्तिन्में श्रीगुसांईजीने जो प्रश्लेष कियो हे वो पढ़ो कि नहीं?'' तो बोले ''वो कैसे?'' फिर बोले ''बहु पोलिटिकली वात करे छे. वधारे वात करवानी नहीं.'' मैंने कही कि ''जानवेकेलिये पूछ रह्यो हूं'' कि ''श्रीमहाप्रभुजीनी पंक्तियोंनी वच्चे ज्यां श्रीगुसांईजीनी पंक्ति आवे छे ते वांचो छो के नहीं?'' तो बोले ''मने खबर नथी पड़ती कि क्यां क्यां उमेरी छे.'' फिर बोले ''वधारे बात करवानी नहीं, बहु पोलिटिकली बोले छे बावा.''

कारिका :

अन्तःस्थितो रसः पुष्टो बहिश्चेत् न विनिर्गतः।
तदा पूर्णो नैव भवेदिति वाग्निर्गमः तथा।।

विवरणम् :

(भगवद्भावावेशकी प्रक्रिया)

अग्नि प्रवेश होवेके बाद सारो काष्ठ अग्निमय हो जाये. तद्वत् जब लौकिकभाव भगवद्भावके स्पर्शमें आयेगो, तब वा संपर्कके कारण लौकिकभावमें भगवत्ताप और भगवद्रसको स्वरूप प्रज्ज्वलित होयगो और वो पूरो भड़कवे लग जायेगो.

अब यामें दो प्रक्रिया (प्रोसेस्) हें. बाहरसू भीतर जावेकी और भीतरसू बाहर आवेकी. अपने यहां याही लिये निरोधके दो रूप बताये; भगवान्को भक्तमें निरोध और भक्तको भगवान्में निरोध. याको साधन और फल भाव व्युत्क्रमसु हे. सामान्यतया अपन् बात करें तो ऐसो लगे कि भगवान्को भक्तमें निरुद्ध होनो फलदशा हे. भक्तको भगवान्में निरुद्ध होनो साधनदशा हे. बात तो बिलकुल सच

हे पर क्रम उलटो हे. भगवान्‌को भक्तमें निरोध होनो वैसे तो फलनिरोध होनो चइये; भक्तको भगवान्‌में निरोध साधननिरोध होनो चइये. "**कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिः उच्यते**" (त.दी.नि.३।५।२६) वा न्यायसू यदि भक्त पेहले भगवान्‌में निरुद्ध होवे, तब भगवान् भक्तमें निरुद्ध होय. या तरहकी मर्यादा जो होय तो वो मर्यादा केहलावे. पुष्टिकी डिमान्ड् उल्टी हो जाये. भगवान् पेहले भक्तमें निरुद्ध होवें तब भक्त भगवान्‌में निरुद्ध होवे. याके लिये साधनरूपसु भगवान्‌को भक्तमें निरोध प्रथम होवे हे और यदि पुष्टिलीला हे तो फलरूपसु भक्त भगवान्‌में निरुद्ध होवे हे. यदि मर्यादालीला हे तो भक्त भगवान्‌में निरुद्ध होवे हे, वाके बाद भगवान् भक्तमें निरुद्ध होवें हें.

अब अग्नि और काष्ठ, और अलौकिकभाव/भगवद्भाव और लौकिकभाव इनकी तुलनासु या बातकु कैसे समझनो? पेहले भगवद्भाव बाह्यसु आन्तरिक गति करे हे. मने पेहले भगवान् भक्तमें निरुद्ध होवे हें. भक्तको निरुद्ध होनो क्या हे? **भक्तके लौकिकभावन्‌को पूरो भगवन्मय हो जानो ही भक्तको निरुद्ध होनो हे. जैसे काष्ठको वह्निमय हो जानो.** पेहले वह्नि काष्ठसू सम्पर्क करे, तब काष्ठ वह्निमय होवे, तब काष्ठके अन्दर रही भई ज्वलनसामर्थ्य प्रकट होयगी. पर पेहले वह्नि काष्ठसु सम्पर्क करे. या न्यायसू बाहरसु अन्दर और अन्दरसु बाहर. लीलाके दो पक्ष हें. बाहरसु अन्दर ये सामान्य क्रममें संयोगको पक्ष हे. **अलौकिकभाव जा बखत बाहरसु अन्तर्गति कर रह्यो हे, वो संयोगपक्ष हे. ये ही अलौकिकभाव जा बखत आन्तरसु बाह्यगति करे हे तो वो विप्रयोगपक्ष हो जायेगो.** पेहले तो काष्ठ अग्निको अन्दर ग्रहण करे और जब पूरी तरहसु ग्रहण कर ले, तब वो अग्निकु अपनेमेंसु बाहर फेंकवे लगे. पूरो प्रज्ज्वलित होके काष्ठ अग्निकु बाहर फेंकवे लगे. तो आचार्यचरण हर बखत दो बात ध्यानमें रखें हें कि जा बखत भगवद्संयोगकी अनुभूति हो रही हे, वा बखत भावकी बाह्यसु आन्तरगति माने हें और जा बखत

विप्रयोगमें गुणगान कर रही हें, वा बखत भावकी आन्तरसु बाह्य गति मान रहे हें. आचार्यचरण कहें हें **"शब्दोहि धूमवद् लोके"** (सुबो.का.१०।२७।५). जैसे काष्ठ जलवेसुं पेहले धुआं छोड़े हे, जलवेसुं पेहले सारो धुआं छोड़ दे और फिर जले ऐसे ये सारे गोपीगीतके प्रकरणके शब्द हें. जैसे काष्ठ आर्द्रता होवे तबतक धुंआ छोड़े वैसे लौकिकभावन्की आर्द्रता जबतक शब्दरूपी धुआंके रूपमें बाहर न निकल जाये, तबतक वामें पूर्ण प्रज्ज्वलन आवे नहीं तो तबतक वो शब्दरूपी धुआं छोड़े. तो ये गोपीजनें धुआं छोड़ रही हें. वासूं आचार्यचरण कहे हें **"शब्दोहि धूमवद् लोके"**. ये जो सारे शब्द प्रकट हो रहे हें, ये मानों उनके लौकिकभावन्की आर्द्रता ही या धुआंके रूपमें निकल जा रही हे. **जयति तेऽधिकं... विचिन्वते.** ये धुआं छोड़ रह्यो हे उनको हृदय.

आचार्यचरण बहोत सुन्दर समझावें हें. जबतक गीलो लकड़ा होवे तबतक धुआं छोड़े. जब वो आर्द्रता दूर हो जायेगी तब धुआं पूरो छूट जायेगो और फिर सूखे लकड़ाकी तरहसूं धड़ धड़ धड़... करके जले. तो जबतक लौकिकभावन्की आर्द्रता रहेगी तबतक ये धुआं प्रभु छुड़वाते रहें हें. संयोग प्रदान करें और फिर तिरोहित हो जायें, फिर धुआं छोड़ें, फिर धुआं छोड़वेके कारण वामें लौकिकभावन्की आर्द्रता दूर होके शुष्कता आवे और वा शुष्कताके कारण वो आगकु ज्यादा ग्रहण कर सके, आग ज्यादा बाहर फेंक सके. क्योंकि भ्रमरगीतमें धुआं नहीं छोड़ें हें वामें तो आग छोड़ें हें, ऊष्मा छोड़ रही हे, अग्निको प्रक्षेपण कर रही हे. वो भ्रमरगीतकी स्थिति हे. गोपीगीतकी स्थितिकु आचार्यचरण मानें हें कि यहां धुआं छोड़ रही हें. गोपीगीतकी स्थिति धुआं छोड़वेकी स्थिति हे और भ्रमरगीतकी स्थितिमें तो वामेंसूं आग निकल रही हे. वाकी तुलनामें यहां कहे हें **"लौकिके तु भावेषु यत्रैव हरिवेशनं"** (सुबो.कारि.१०।५।५). ये तो गोपिकान्के प्रसंगमें हे पर जो भी लौकिकभाव द्वेषादिके हें चाहो तो याकु कंसपे भी

घटा लो. कंस भी धुआं छोड़तो थो, एक-एक असुरन्कु भेजके राक्षस भेजके रोज-रोज नई नई आज्ञायें दे कि "याकु मारके लाओ, वाकु मारके लाओ." ये धुआं हे वाके, क्योंकि वाके द्वेषमें हरिको अन्तर्वेशन हो गयो थो. वाके भयमें हरिको अन्तर्वेशन हो गयो, तो धुआं छोड़वे लग्यो थो. तो जहां भी लौकिकभावमें हरिको वेषण भयो, "**निवर्तते तदैवात्र वह्नेः दारुमय यथाः**" (तत्रैव) वो लौकिकभाव अपने आप जलवे लग जायेगो. अपने आप जलके राख हो जायेगो. वाकु जलावेकी कोई जरूरत नहीं पड़ेगी. एक बार जब पूर्णरूपसु प्रज्ज्वलित हो जाये तो अपने आप ही राख बनके खतम हो जायेगो.

"**यावद् बहिःस्थितो वह्निः प्रकटो वा विशेन्न हि. तावद् अन्तःस्थितोऽपि एष न दारुदहनक्षमः. एवं सर्वगतो विष्णुः प्रकटः चेद् न तद् विशेत् तावद् न लीयते सर्वमिति कृष्णसमुद्यमः** (सुबो.कारि.१०।१।१६-१७). विष्णु तो सर्वत्र हे. 'विष्णु' शब्दकी व्युत्पत्तिपे ध्यान दो तो 'विष्णु' मने जो व्यापक होय. व्यापक होय वाकु 'विष्णु' कहें हें. एक 'विष्णु' और दूसरो 'जिष्णु'. एक ही देवके दो नाम हें. 'जिष्णु' जो जयशील होय. 'विष्णु' जो व्यापनशील होय. तो सर्वगत विष्णु प्रकट होके सर्वगत तो हे मने अग्नि लकड़ाके अन्दर तो रहे हे पर प्रकट सम्पर्क जबतक वाको न आ जाये, तबतक लकड़ा अपने आप जलेगो नहीं. प्रभुको प्राकट्य पेहली शर्त हे. सर्वगत्को प्राकट्य होनो पेहली शर्त हे. मने प्रभुको भक्तमें निरुद्ध होनो ये पेहली शर्त हे. "**तावत् न लियते सर्वम्**" जबतक वो खुद निरुद्ध नहीं हो जायेगो, तबतक वाके हृदयके प्रपंचकु वो कैसे लील पायेगो! वाके हृदयकु प्रपंचकी विस्मृति कैसे हो पायेगी! वो नहीं हो पायेगी, याके लिये कृष्ण छिपनो चाहे हे. अब यदि वो छिपके और प्रकट होके दुबारा न छिपे और छिपके दुबारा न प्रकटे, तो छिपके जा बखत तक दुबारा प्रकटे तबतक तो सारो धुआं निकल जायेगो. लौकिकभावन्के आवेश दूर हो जायेंगे और ये फिर एकदम प्रज्ज्वलित

हो जायेगो.

याही बातकु आचार्यचरण दूसरे शब्दन्में यहां भी केह रहे हें :

अन्तःस्थितो रसः पुष्टो बहिश्चेन्न विनिर्गतः।
तदा पूर्णो नैव भवेदिति वाग्निर्गमः तथाः॥

अब आचार्यचरणकी ये कारिकाकी पंक्ति सरलतासू लगेगी. वहां (जन्मप्रकरण-प्रथमाध्यायमें) अग्निके ऊदाहरणसु बात समझाई हे. यहां (गोपीगीतमें) रसके उदाहरणसु समझायो जा रह्यो हे. एक पात्रमें रस डाल रहे हो, अब जितनी वा पात्रकी क्षमता हे उतनी देर तो वो पचातो चल्यो जायेगो वाकु पर जब आपने वामें रस वा हद तक भर दियो कि जहां पात्रकी क्षमता पूरी हो गई तब पात्र ये केह देगो कि अब सहन नहीं हो सके हे. वाही बखत वो रस वा पात्रकु पूरो गीलो कर देगो. रसको स्वभाव हे गीलो करनो. तो वो वा पात्रकु पूरो गीलो कब करेगो? जा बखत पात्रकी क्षमता समाप्त हो जाये. तो भगवद्भाव याही तरहसूं लौकिकभावके पात्रमें जब भर्‌यो जाय तब लौकिकभाव अपनी पात्रता के आधारपे वाको रेजिस्ट् करे हे कि आओ, कितनो भी आओ. अभी हम सूखे हें, अभी और आओ अभी हम सूखे हें पर सूखो कितनी देर सूखो रहेगो? यदि बरसात बरसवे लग गई तो तो तू सूखो नहीं रहेगो. तो वो केह रहे हें **अन्तःस्थितो रसः पुष्टो** अन्तःस्थितरस जब एक बखत भयो तब वो धीरे धीरे पुष्ट होवे लगे. अब वो पुष्ट होवेकी प्रक्रिया क्या हे? वो मैने कल या परसो आपकु बताई हती, 'ताप'. तापसू वाकी पुष्टि हो रही हे. कैसे? तापके कारण वामें उफान आयेगी. जा पात्रमें जितनो रस भर्‌यो, मानो तपेलीमें भर्‌यो और तपनो शुरु भयो, तो वो उफनके बाहर आयेगो. तो ये विप्रयोगके तापसूं वा रसकु उफान दे रहे हें. याके लिये वो रसको उच्छलन वाणीके रूपमें बतायो जा रह्यो हे.

ये बात आचार्यचरणकु क्यों केहनी पड़ी? ये बात या लिये केहनी पड़ रही हे कि ये उपक्रम नहीं हे. ये इनके तामस भाव और राजस भाव जो उच्छलित हो गये हें, उनको जस्टिफिकेशन् हे. ये आवेवालो निर्गुण भाव हे या सात्त्विक भाव हे वाके लिये तो वकालत करवेकी जरूरत नहीं हे. वो केस् तो ऐसो हे कि अपने आप छूटेगो. सामने आयो और वो केस् छूट जायेगो पर ये जो गालियें दी हें कस-कसके वाको जस्टिफिकेशन् हे. तो वाको आचार्यचरण ये जस्टिफिकेशन् दे रहे हें इनकु गालीके रूपमें मत लो, ये अन्तःस्थित रस छलकके बाहर आ गयो हे, बस बात इतनीसी हे. भगवान् प्रकट होवें या लिये इनने प्रार्थना करी हे और प्रार्थना करवेके बजाय गालियां दे रही हें. **'कुहक'** केह दियो, **'कितव'** केह दियो, 'धूर्त' केह दियो 'ठग' केह दियो.

अब वो गालिब कहे हे **"तेरे बेमहर कहनेसे वो तुझपर मेहरबान क्यूं हो?"** 'बेमहर' केहवेसुं तुम पर मेहरबान नहीं हो जायेगो. तुम **'कितव'** केह रही हो, **'कुहक'** केह रही हो और फिर केह रही हो कि प्रकट हो जा. तो क्यों प्रकट हो जाये? तो कहे हें कि प्रकट होयगो और या लिये प्रकट होयगो क्योंकि वो अन्तःस्थित रस छलकके बाहर आ गयो. अपने भगवद्भावसु अब वो पूरे लौकिकभावकु आर्द्र कर देगो. जब आर्द्र कर देगो तो फिर प्रकट होयवेमें कोई तकलीफ नहीं होयगी.

याको सबसु अच्छो प्रमाण ये हे कि जब कुरुक्षेत्रमें गोपीजन ठाकुरजीसु मिले तो न तो गाली दी और ना ही ये आग्रह कियो कि व्रजमें चलो पर इतनो ही कह्यो कि **"आहुश्च ते नलिननाभ! पदारविन्दं...गेहञ्जुषामपि मनसि उदियात् सदा नः"** (भाग.पुरा.१०।७९।४९) कहें हे "हमारो मन आपमें लग्यो भयो रहे." अब सवाल ये रह्यो कि श्रेष्ठ ये तामसता हे श्रेष्ठ वो सात्त्विकता हती? कल हमने

ये बात भी समझी हती कि स्थितिको उत्कर्ष और प्रक्रियाको उत्कर्ष मने जन्म, स्थिति और संहार इन तीनों प्रक्रियान्में उत्कर्षके कारण अन्तर आ जाये. जैसे आपके यहां कीमतको भावको ग्राफ् नहीं बनावें! ग्राफ् यदि बनानो होय, तो उत्पत्तिको ग्राफ्, वाकी स्थिति कहां आई वाकु देखो तो वो फिर डाउन् आयेगो, ऐसे ही स्थिति और संहारको ग्राफ् बनाओगे तो वो एक स्थितिके बाद डाउन् ही आयेगो पर यामें तामस भावको उत्कर्ष स्थितिमें ही फिट्‌ रहेगो. अब याके बाद भी एक स्थिति आयेगी और वो प्रलयकी स्थिति हे, संहारकी स्थिति हे. वो यामें नहीं हे पर वो स्थिति मुक्तिमें फिट्‌ हे. यहां फिट नहीं हे. ये रुद्रलीलामें फिट्‌ हे पर विष्णुलीलामें ये फिट्‌ नहीं हे.

याही लिये आचार्यचरण ऐसे कहे हें **"भगवान् ब्रह्माविष्णू रुद्रश्च भूत्वा पुनः कृष्णएव जात.** (सुबो.१०।२९।२) पेहले ब्रह्मा भये, जा बखत वाने भावसूं संकल्प कर्यो, फिर विष्णु भये, वाको पालन कियो और जा बखत तिरोहित भये, तब रुद्र हो गये हें. फिर प्रकट हो गये हें **"तासाम् आविर्भूत् शौरिः"** (भाग.पुरा.१०।२९।२) तो फिर कृष्ण बन रहे हें, ऐसे आचार्यचरण कहें हें. तो वाकी अलग अलग एक्सिस् हें. वा एक्सिस्‌में वाकी हाईट्‌ नापोगे तो बात समझमें आयेगी, नहीं तो गड़बड़ घोटाला हो जायेगो. मने जो लोकमें प्रभुके प्रकट होवेकी लीला हे, वा लीलामें यासूं और कोई श्रेष्ठ लीला नहीं हे. अब याके बाद कहो कि तिरोहित होवेकी, मथुरा पधारवेकी लीला हे, तो अपन् कहेंगे कि वो उनको डिपार्टमेंट्‌ हे वाकी वो जाने. ये डिपार्टमेंट्‌ अपनेकु पता नहीं हे.

याके लिये कलके प्रसंगमें हमने देख्यो कि व्रजभक्त सब तामस हें, तामसको मतलब हे कि उनमें आग्रह हे. अब महाप्रभुजीको सिद्धान्त हे **"अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम्"** (वि.धै.आ.५) पर

वो सिद्धान्त ब्रह्मवादी सिद्धान्त हे, कोई शुद्धपुष्टिमार्गीय सिद्धान्त नहीं हे. कलकी बातके संदर्भमें मैं ये बात केह रह्यो हूं कि **''अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम्''** मने अपनेकु किसी भी बातको आग्रह नहीं रखनो चइये, या तरहकी मनोवृत्ति प्राणीकी होनी चइये, ये उपदेश महाप्रभुजी ब्रह्मवादके फ्रेमवर्कमें दे रहें हें, पुष्टिमार्गके फ्रेमवर्कमें नहीं. पुष्टिमार्गके फ्रेमवर्कमें तो थोड़ो बहोत आग्रह होनो ही चइये. **''शौके दीदार अगर हे तो तकाजा भी करो.''** ये तकाजा नहीं कियो तो शौके दीदारको मतलब क्या रेह जायेगो? येही भाव अगर वाके खड़े रेह गये और मनमें भयो जो **''तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां द्रुतं त्यजेत्. सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छात: करिष्यति.** (नवरत्न ८) फिर ये ब्रह्मज्ञान तो भयो पर पुष्टिभक्ति तो नहीं भई. भगवान्कु दर्शन देनो होयगो तो देयंगे और नहीं देनो होयगो तो नहीं देयंगे, अब भगवान्सु क्या झगड़ा करनो और क्या प्रार्थना करनी? बिराजो महाराज उपदेश देवेके लिये. तब तो 'मुद्दई तू इश्करा नालायकी' तेंने बराबर ट्रेनिंग् नहीं ली हे. तू नालायक हे. स्नेहके लिये तू नालायक हे. या तरहसु यदि ब्रह्मज्ञान स्फुरित हो जाये तो ''मुद्दई तू इश्करा नालायकी'' हो जाये. वो ब्रह्मज्ञान यहां अपेक्षित नहीं हे. वा ब्रह्मज्ञानकी एक अपनी महत्ता हे, वाकी अपनी गरिमा हे, वाकी अपनी श्रेष्ठता हे, सब कुछ हे.

----*----

॥ श्लोक : ३ ॥

उत्थानिका :

अन्याः पुनः कोमलाः, बहुधा त्वया रक्षिताः इदानीमपि पालय इति आहुः विषजलाप्ययाद् इति.

विवरणम् :

अन्याः पुनः कोमलाः अब देखो भाषा कैसी वापरे हें कि आदमी नहीं भ्रान्त होतो होय तो हो जाये. अब इनकु **'कोमला'** भी कही. जब ये भगवान्‌कु गाली दे रही हें तो महाप्रभुजी भी वही तामसभावसु इनकु गाली दे रहे हें. पर मनको चोर कहां पकड़ावे? उनके लिये इतनो लिख्यो पर इनके लिये दो लाइनें हें. मने सुबोधिनी लिखवेकी भी बहोत युक्ति आचार्यचरणकु जगे नहीं हे. अब गाली नहीं दें तो वाकी क्या व्याख्या लिखें! ठीक हे ब्रह्म ब्रह्म जैसो तो हे ही, अब बोलोगे तो भी गड़बड़ी हो जायेगी. अब नहीं बोलो तो ही अच्छो हे. श्रीशंकराचार्यजीके भाष्यमें आवे हे कि गुरुजीके पास जाके पूछी कि "निर्गुण ब्रह्मको वर्णन करो, निर्गुण ब्रह्मको वर्णन करो." तीसरी बार पूछी कि "क्यों नहीं बोलो हो?" तो वो बोले कि "तीन बखत बोल्यो पर तू नहीं समझे तो मैं क्या करूं!" तो वाने पूछयो कि "क्या बोले?" तो कही कि "ये बात बोलवे लायक नहीं हे." अब जहां निर्गुणभाव हे वहां क्या बोलनो! चुप रेहनो ही अच्छो हे. अब महाप्रभुजी भी दो-चार लाईन् लिखके शान्त हो जायें. पंक्ति तो तब चले कि जब ठाकुरजीकु दो-चार गाली पड़े तब ही पंक्तिमें थोड़ी गति आवे. याके लिये केह रहे हें **अन्याः पुनः कोमलाः, बहुधा त्वया रक्षिताः इदानीमपि पालय इत्याहुः विषजलाप्ययाद् इति.**

श्लोक :

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतो भयाद् ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहु:॥३॥

सुबोधिनी :

विषजलं कालीयह्रदजलं, तत् पीत्वा सर्वएव बालका: गावश्च मृता: ते पुनर्जीविता:. व्याला: सर्पा: कालिय-सुदर्शनादय:, राक्षसा: तृणावर्तादय:, तेषाम् एकवद्भाव:; तस्मादपि रक्षिता:. वर्षमारुताद् इन्द्रकृतात्. तत्रैव वैद्युतानि अनलो दावाग्निश्च, तयोरपि एकवद्भाव:. वृषो योऽयं मयात्मज: व्योमासुर:, तस्मादपि रक्षिता:. न तासां भूतभविष्यद्विषयकपदार्थज्ञाननिर्बन्धो अस्ति, सर्वज्ञत्वात्. किं बहुना, विश्वतएव भयात्. पालने हेतु: ऋषभ इति, भर्ता हि पालयत्येव. अत: सर्वदा पालक इति इदानीमपि पालय इत्यर्थ:. ते च मारका बाह्या:, इदानीन्तनस्तु आन्तर: इति सर्वथा पालनीया:॥३॥

विवरणम् :

ये सात्त्विकगोपी हे. ये गाली नहीं दे पा रही हे. क्यों? भगवान्कु थोड़ीसी याद दिला रही हे कि तेंने हमारी हर बखत रक्षा करी. वो हर बखत हमकु मारवे आवेवाले हेतु सब बाह्य मारक हते. या बखत कोई आन्तर मारकहेतु पैदा भयो हे. जैसे कालीयसु हमकु बचायो. वो बाह्य हतो पर हमकु अब आन्तरसु बचानो चइये. क्यों? यदि कोई बचावे आयो हे हमकु और बचातो आयो हे हमकु तो ये अभिप्रेत हे कि तू हमकु अधिकतर बचानो चाहे हे. हमकु बचानो तोकु अभीष्ठ हे. वा बखत तो बहोत अल्पबाधा हती, बाह्य बाधा हती पर या बखत तो आन्तर बाधा उपस्थित भई हे. सो तू नहीं बचायेगो तो और कौन बचायेगो?

(कालीयविष = विषयासक्तिसु रक्षा)

ये तो लीलापक्ष हे, पर आध्यात्मिकपक्षमें भी देखो एक अन्तर्गर्भित प्रार्थना ऐसी प्रतीत होवे हे. आचार्यचरण वहां कहें हें कि कालीय इन्द्रियन्के दोष हें. भक्तिमार्गमें कितनी कितनी बाधायें हें. उनकु यहां गिना रहे हें. उन सारी बाधान्सु हमकु बचायो. इन्द्रियदोष भक्तिमार्गमें बाधक हे. क्योंकि इन्द्रियन्के द्वारा प्रपंचासक्ति पेहले होवे हे. **''इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः. तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः''** (भग.गीता २।६०-६१) भगवान् आज्ञा करें हें. याके लिये कहें हें **विषजलाप्ययाद्** विषजलसू उनकु बचायो. क्यों विषजलसू बचायो? क्योंकि ये जितनो भी विषय हे प्रपंचको वो विषजलात्मक हे. उनमें जो हमारी इन्द्रियन्की प्रवृत्ति होवे हे, उन इन्द्रियन्की प्रवृत्तिकु हम रोकें, दरअसल ये बात कोई राजसी(गोपी) या तामसी(गोपी) केहती तो वाके मोढ़े अच्छी भी नहीं लगती. गोपीके चरित्रकी संगति हे. ये सात्त्विकी गोपी हे. अब देखियो ये आगे जो निर्गुण गोपी आयेगी वो ब्रह्मज्ञानके शब्द बोलेगी. आचार्यचरण कहें हें कि ये ज्ञानी बन गई. क्योंकि वो निर्गुण गोपी हे. ये सात्त्विकी गोपी हे. **''सत्वात् संजायते ज्ञानम्''** (भग.गीता १४।१७). वा न्यायसू वामें थोड़ी थोड़ी वो बातें आवें हें जो ज्ञानीके लिये केहनी उचित हें. या लिये वो कहे हे कि विषयासक्तिसू हमकु बचायो.

(तृणावर्त = राजसभावसु रक्षा)

राजसभावन्सु हमकु बचायो. तृणावर्त राजसभाव हतो. गये साल मैंने बताई थी कि जितने भी अपने अन्दर रहे भये राजसभाव हें वो ठाकुरजीकु ऊपर उड़ाके ले जावे हें. जैसे तृणावर्त आयो, वा बखतकी लीलाको अनुसंधान करो, तो वा समय क्या भयो? ठाकुरजी गोदमें बिराजे भये हते और भारी लगवे लगे. ठाकुरजी भारी लगवे लगे तो यशोदाजीने जमीनपे पधराये. जमीनपे पधराये और तृणावर्त आयो और ठाकुरजी उड़के ऊपर. जा दिन तुम्हारे माथे बिराज्यो

भयो ठाकुर तुमकु भारी लग्यो, ये तुम्हारे मनमें जो राजसभाव हे वो ये तृणावर्त हे. वो तृणको आवर्तन जहां आयो नहीं, तो ठाकुरजी सीधे ऊपर. यदि तुम वाको वर्णन देखो तो बड़ो सुन्दर वर्णन हे.

कैसी भयंकर स्थिति भई होयगी! "**दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनम् अर्भकम्**" (भाग.पुरा.१०।७।२०). **आसीनम् अर्भकम् जहार.** वो तृणावर्त तुम्हारे घरमें बिराजे भये ठाकुरजीकु उड़ाके ऊपर ले जाये. जा दिन तुम्हारे मनमें ये तृणावर्त शुरु भयो कि सेवा भारी पड़ रही हे, वाही दिन "**जहार आसीनम् अर्भकम्**". तुम्हारे घरमें बिराज्यो भयो प्रभु उड़ जायेगो. "**गोकुलं सर्वम् आवृण्वन् मुष्णंश्चक्षुंषि रेणुभिः पूरयन् सुमहाघोरं शब्देन प्रदिशो दिशः**" (भाग.पुरा.१०।७।२१) और ठाकुरजी ऊपर उड़ गये तो वाके बाद तुम्हारो गोकुल 'गो'=इन्द्रियाणि वाके सारे 'कुल' तुम्हारे धूमिल पड़ जायेंगे. "**मुष्णन् चक्षूंषि रेणुभिः**" और उनकी आँखनूमें इतनी धूल पड़ी कि आँखें बंध हो गई. "**पूरयन् सुमहाघोरं शब्देन प्रदिशो दिशः**" जितनी दिशायें हती, प्रदिशायें हती, उन सबनूमें एक झंझावातको ऐसो घोर शब्द पैदा भयो, "**मुहूर्तम् अभवद् गोष्ठं रजसा तमसावृतम् सुतं यशोदा नापश्यत् स्वयं न्यस्तवती यतः**" (भाग.पुरा.१०।७।२२). एक मुहूर्तके लिये सारो गोष्ठ रज और तम के अन्धकारसू भर गयो. "**सुतं यशोदा न अपश्यत् स्वयं न्यस्तवती यतः**" अपने बेटाकु जहां यशोदाने बिठायो, वहां वाकु नहीं देख्यो कि कृष्ण कहां गयो? क्योंकि वाकु भारी मानके छोड़्यो हतो वहां नही हतो. जब अपनो सुत नहीं दीख्यो, तब कोई कहें हें कि खुद अपनेकु देख लेंगे. तो भागवतकार कहें हें "**न अपश्यत् कश्चन आत्मानं परं च अपि विमोहितः**" और जब आत्मा ही नहीं दीखी तो पर कहांसु दीखेगो?

("अहं ब्रह्मास्मि" तो हे पर "तत्त्वमसि"?)

एक स्वामीजीके यहां हम गये. "**अहं ब्रह्मास्मि**"(बृह.उप.१।४।१०)

को उपदेश चल रह्यो थो. हमारे दादाजीको हॉस्पिटल् चलतो हतो. तो हमने सोची कि "उनके यहांसु एकाध वर्कर् ले लें." दादाजीको आदेश भी हतो सो हम उनके यहां गये. अब वो "**अहं ब्रह्मास्मि**" के उपदेशमें इतने तल्लीन हते कि घण्टा भर खड़े रेहवेके बाद भी उन्होंने हमपे ध्यान नहीं दियो. हमने सोची कि "गरज तो हमारी हे सो खड़े रहो और इन्तजार करो." जब उपदेश पूरो भयो तो हम उनके पास गये और कही कि "आपने छे बजेको समय दियो थो." तो बोले "हां हां दियो हतो, बेठो." तो बेठवेमें कोई हरकत तो नहीं हती पर मैं ये देखनो चाहतो थो कि "**अहम् ब्रह्मास्मि**" ही हे कि कहीं "**तत् त्वम् असि**" भी हे. मैंने कही कि "ठीक हूं खड़ा हुआ ही." अब उनकु चिन्ता भई कि ये कहां बेठनो चाहे हे! अब उन्होंने अपनी पुस्तक-वुस्तक उठाके कही कि "यहां बेठेंगे." मैंने कही कि "आप बेठाओगे तो बेठ जायेंगे." तो जा बखत आत्मा नहीं दीखे, "**अहम् ब्रह्मास्मि**" नहीं दीखे तो "**तत् त्वम् असि**" कहांसु दीखे! या लिये आचार्यचरण "**अहम् ब्रह्मास्मि**" या "**तत् त्वम् असि**" कु प्राधान्य देवेके बजाय "**सर्वं खलु इदं ब्रह्म**" कु प्राधान्य दें हे कि जामें सारे अहम् और तत्त्व आ जायें. उनकु बड़ो कन्फ्युज़न् हो गयो कि "अब ये कहीं बेठ ही नहीं जाये मेरे आसनपे", इतने घबरा गये. मैंने कही कि "आप चिन्ता मत करो, मैं यहीं ठीक हूं." "**अहम् ब्रह्मास्मि**" केहनो तो बहोत सरल हे पर "**तत् त्वम् असि**" केहनो सरल नहीं हे. केहवेमें बड़ो जोर पड़ जाय.

याही लिये भागवत कहें कि "**न अपश्यत् कश्चन आत्मानं परं च अपि विमोहितः तृणावर्तविसृष्टाभिः शर्कराभिर् उपद्रुतः**" (भाग.पुरा.१०।७।२३). तृणावर्तने जो शर्करान्को सृजन कियो, उनसु सबकी आँखें ढक गई. मने 'त्वम्' नहीं दीख्यो, 'अहम्' नहीं दीख्यो तो 'तत्' और 'त्वम्' भी नहीं दीखे, 'आत्मा' नहीं दीखे तो "अयम्

आत्मा'' कहांसु दीखे! या तरहकी स्थिति तृणावर्तके खड़े होवेपे खड़ी हो जाये हे. तो बड़ी सावधानी प्रत्येक पुष्टिमार्गीयकु रखनी चइये कि अपने ठाकुरजीको भार कभी मत मानियो. कई लोग अपरस नहीं निभे या लिये ठाकुरजीकु भाररूप मानें. कई लोग हम सब घरमें बिराजे हें या लिये भाररूप मानें. अरे ''अपरस बड़ी कि ठाकुर बड़ो तुम्हारो!'' ऐसे ऐसे मिथ्या हेतुसू ठाकुरजीकु भाररूप मानें तो गोकुलपे तृणावर्त आ जाये. या प्रकार तृणावर्तरूपी स्थितिसू बचनो प्रत्येक पुष्टिमार्गीयको प्रथम कर्तव्य हे. यदि गोपीगीत समझमें आतो होय तो! श्रीआचार्यचरण कहें हें कि **तेषाम् एकवद्भाव:** क्योंकि ये सब क्या हे? ये सब लौकिक विषयासक्तिके स्वरूप हें. चाहे ऐन्द्रियक दोष चाहे अनैन्द्रियक विषयदोष. अन्त:करणके दोष चाहे अन्त:करणके विषयन्के दोष. ये सबको एकवद्भाव हें.

(साधनदोषसु रक्षा)

अब दूसरो ग्रुप आ रह्यो हे **वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्**. ये सब साधनदोष हें कि हम अपने मर्यादित साधनन्सू प्रभुकु प्रसन्न कर लेंगे, याकी स्तुति कर लेंगे और वाकी स्तुति कर लेंगे. तब तो तुम्हारेपे खूब बिजली गिरवेवाली हे. ''**तस्मात् मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्**'' (भाग.पुरा.१०।२२।१८) भगवान्ने कही हे. कहां तुम भटक रहे हो? ये जो अन्धड़ चली फिर बरसात पड़ी वो सब साधनन्के अभिमानन्की, अन्याश्रय करवेकी, बरसात पड़ी हें. याके लिये उनको एकवद्भाव हे कि लौकिक विषयासक्तिन्के स्वरूप असुर हें, उनको एकवद्भाव हे. जो मार्यादिक साधनन्के अभिमान हें वो भी एक देवको उपद्रव हे. ये असुरन्के उपद्रव हें वो देवके उपद्रव हें.

(ये प्रेमको पंथ कराल महा!)

भक्तिमार्गमें देव भी उपद्रव करें हें और असुर भी उपद्रव करें हें. तासू सबसू बचके चलनो चइये. ''**ये प्रेमको पंथ कराल महा,**

तलवारकी धारपे धावनो हे''. या तरहसू देव और असुर दोनोंन्सू बचके निकले तो भक्तिमार्गपे चल पायेगो. ''**अति क्षीण मृणालके तार हुते तिहिं ऊपर पांव दें धावनो हे**'' कमलकी डांडीको तोड़ दें तो वामेंसु जो अति क्षीण तार निकलें, उनके ऊपर पैर रखके धावनो हे. ''**सुई बेहके द्वार सकै न तहां परतीतिको टांडो लदावनो हे. कवि बोधा अनीघनी नेजहुतें चढ़ि तापे न चित्त डरावनो हे. ये प्रेमको पंथ कराल महा तलवारकी धारपे धावनो हे.**'' तासू यदि तुम देव और असुर दोनोंसू बचके स्नेह निभा पाये, केवल भगवदासक्तिसू तो निभेगो, नहीं तो दोनों बाजु उपद्रव हें. याही लिये आचार्यचरण आज्ञा करें हें कि यदि तुम अपनी सेवाकु रोग उद्वेग और प्रतिबन्ध सू रहित नहीं कर पाये, यदि तुमकु प्रतिबन्ध अनवरत कायम ही रहे, यदि तुम सबसु बड़े रिझवार कृष्णकु नहीं रिझा पाये तो और कौनसे देवताकु रिझा पाओगे! अपनी कौनसी आत्माकु रिझा पाओगे! ''**तदा अन्यसेवातु व्यर्था स्यात्. तदा ज्ञानमार्गे स्थातव्यम्**'' (सेवा.वि.). मने यहां मर्यादाके ज्ञानवालो ज्ञानमार्ग नहीं. ज्ञानमार्ग ये कि अब जो कुछ हे सो तू ही हे. तुम यदि या कृष्णकु नहीं रिझा पाये, तो ज्ञानमार्गमें स्थित रहो.

याके लिये कहें हें **वृषो योऽयं मयात्मजः व्योमासुरः, तस्मादपि रक्षिताः**. व्योमासुरसू भी हमारी रक्षा करी, **न तासां भूतभविष्यद्विषयकपदार्थज्ञाननिर्बन्धो अस्ति, सर्वज्ञत्वात्**. ये सात्त्विकी गोपिकायें हें. इनकु भूत भविष्य और वर्तमान सारी लीलायें दीख रही हें. या लिये ऐसे केह रही हें. पेहले रक्षा करी हे और आगे भी रक्षा करेंगे, वहां तकको उल्लेख कर रही हें. **किं बहुना, विश्वतएव भयात्** विश्वके सारे भयन्सु हमारो पालन कियो हे. क्यों पालन कियो हे? तो बड़ो सात्त्विकभाव केह रही हें **ऋषभ इति, भर्ता हि पालयत्येव.** मने तू हमारो पति हे, तू हमारो भर्ता हे, तू पालन नहीं करेगो तो और कौन करेगो! **अतः सर्वदा पालक इति इदानीमपि पालय**

इत्यर्थः. तू सर्वदा पालन करतो आयो हे, या लिये अब भी पालन कर. **ते च मारका बाह्याः** वे भी मारक हते, ये देवकृत उपद्रव या दानवकृत उपद्रव तो सब बाह्य उपद्रव हते, अब ये उपद्रव तो अन्दरसु बाहर प्रकट होवेके प्रोसेस्को उपद्रव हे, ये उपद्रव भी हमकु मार रह्यो हे. यासू तू नहीं बचावे तो और कौन बचावेगो! ऐसी बड़ी आत्यन्तिक सात्त्विकभावयुक्त भावनासु गोपिका प्रार्थना कर रही हे. कल तक अपनूने राजस तामस भावन् की भाषाको अन्तर देख्यो.

एक ऐसो प्रश्न भयो कि जब **न तासां भूतभविष्यद्विषयकपदार्थज्ञाननिर्बन्धो अस्ति, सर्वज्ञत्वात्**. तो प्रार्थना क्यों कर रही हे? वाको तात्पर्य श्रीगुसांईजीने विज्ञप्तिमें बतायो हे "**अंबुदस्य स्वभावोऽयं समये वारि मुंचति तथापि चातकः खिन्नो रटत्येव न संशयः**". (**विज्ञप्ति १।८**) मेघको तो स्वभाव हे, जा बखत बरसे वा बखत बरसे पर चातक बेठ्यो भयो क्या करे? वो तो बरसवेकी रटन ही लगातो रहे हे कि "बरसो बरसो बरसो...." तासू ये सर्वज्ञ हे और सर्वज्ञ होवेके कारण याकु ये भी पता होनो चइये कि प्रकट होयंगे. वो तो "**समये वारि मुंचति**" पर ये चातककी तरह स्नेहभावसू रटन लगा रही हे.

----✻----

॥श्लोक : ४॥

उत्थानिका :

अन्याः पुनः भगवतो महानुभावत्वं ज्ञात्वा तस्य स्वरूपं कीर्तयन्ति, ततश्च ज्ञानिभ्यो यथा मोक्षं प्रयच्छति तथा अस्मभ्यमपि अस्मदुचितं मोक्षं दास्यति इति. तं स्तुवन्ति न खलु इति.

विवरणम् :

राजस-राजसी तामस-राजसी और सात्त्विक-राजसी या प्रकार तीनों प्रकारकी गोपिकान्के भेद बताये. अब निर्गुणगोपिका प्रार्थना नहीं कर रही हे पर वर्णन कर रही हे. तीन गोपिकान्ने तो प्रार्थना करी, ये निर्गुणगोपिका केवल भगवान्को तत्त्वतः वर्णन कर रही हे पर ऐसो मत समझियो कि प्रार्थनामें तात्पर्य नहीं हे. क्योंकि ये निर्गुण हे, या लिये सारे शब्द इतने संभालके बोले हे कि जामें प्रार्थना नहीं झलके. अब यदि प्रार्थना नहीं होय तो भाव माधुर्य नहीं रेह जायेगो. ये एक बात खास समझवेकी हे.

(पुष्टिभक्तिमें माहात्म्यज्ञानको रोल्/महत्त्व)

आचार्यचरण कहें हें "**प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्. सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च.**" (वि.धै.आ.२) क्योंकि प्रभु सर्वसमर्थ हें सर्वज्ञ हें और सर्वव्यापी हें तो जो सर्वसमर्थ हे सर्वज्ञ हे सर्वव्यापी हे प्रभु हे सर्वस्वामी हे चतुर्गुण विशिष्ठ जो व्यक्तिके होय, वाके सामने प्रार्थना व्यर्थ हो जाये. ये व्यर्थ हो जायवेको नियम कहांको हे? ब्रह्मवादको, ये नियम हे माहात्म्यज्ञानको कि ब्रह्म सर्वव्यापी हे. महाप्रभुजीने भी "**प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्**" ये सब जो कह्यो, वो कौनके लिये कह्यो? जो शरणमार्गीय जीव हें उनके लिये कह्यो. प्रारम्भ दशामें जा बखत अपने अधिकारकी कक्षा स्पष्ट नहीं हे कि अपन् शरणमार्गीय हें

कि भक्तिमार्गीय हें, तो दोनों उपदेश दोनोंकु प्रवृत्त करें हें, वा न्यायसू दोनोंकु उद्दिष्ट करके प्रारम्भिक दशामें कह्यो, पर मूलत: ये उपदेश कह्यो हे माहात्म्यज्ञानपूर्वक. भगवान्के माहात्म्यकु यदि समझे तो भगवान्को माहात्म्यज्ञान क्या हे? प्रभुको माहात्म्य ये हे कि प्रभु सर्वव्यापी हें सर्वस्वामी हें सर्वान्तरात्मा हें सर्वज्ञ हें, सर्वसमर्थ हें. जो भी कुछ अपन् मागेंगे वो उनकु पेहलेसू पता हे. जो भी कुछ अपनेकु जरूरत हे, वो स्वयं ही खुद देंगे सर्वस्वामी होवेके कारण. कौनके सामने मांग्यो जाय? जो मांगवेके पेहले वा वस्तुकु जानतो न होय. सर्वज्ञ होवेके कारण प्रभु तो जाने हें कि अपनेकु क्या चइये हे? मने अपनो हित कायमें हे और अपनी कामना क्या हे? दोनों बातें प्रभु जानें हें. कोई व्यक्ति ऐसो होय कि अपनो हित जानतो होय पर अपनी कामना न जानतो होय. कोई व्यक्ति ऐसो होय कि अपनी कामना जानतो होय पर अपनो हित नहीं जानतो होय. तो हित न जानतो होय और कामना जानतो होय और हित जानतो होय और कामना न जानतो होय, ऐसे सब वरद, वरदायी व्यक्तिन्के सामने फिर मांगवे मंगवावेके चक्करको क्या लाभ! प्रयोजन क्या! अपनो अन्तरात्मा होवेके कारण जो अपनो हित भी जाने हे और अपनी कामनाकु भी जाने हे, वाके सामने क्या मांग सकें हें! अब नहीं मांग सकें, या तरहको भाव हृदयमें सुदृढ़ होय तो या तरहको भाव अपने हृदयमें स्थिर होनो ही चइये.

माहात्म्यज्ञान अपने यहां भवन नहीं हे पर सोपान हे, रूम नहीं हे पर सीढ़ी हे. माहात्म्यज्ञानपे चढ़के कौन बेठ जाये? जो पुष्टिमार्गके भवनमें जावेमें हांफतो होय वो. सीढ़ीपे कौन बेठे? दम हो जाये ना!. अपन् सीढ़ी चढ़ें और हांफ जायें, तो सीढ़ीपे बेठ जायें. सीढ़ी कोई बेठवेके लिये होवे? सीढ़ी बेठवेके लिये नहीं होवे. माहात्म्यज्ञानकी सीढ़ीपे चढ़ते भये जो हांफे, वो माहात्म्यज्ञानकी सीढ़ीपे ही कहीं बेठ जाये. मने वाकु भवनमें पहोंचवेको अधिकार नहीं हे.

वो हांफकर बेठे पर जो भवनमें पहोंचवेमें समर्थ हे, जाकु भवनमें पहोंचवेकी भावना हे, वो क्यों माहात्म्यज्ञानकी सीढ़ीपे बेठेगो! वो माहात्म्यज्ञानकी सीढ़ीपे चढ़के भवनमें पहोंच जायेगो और जब भवनमें पहोंच जायेगो तो फिर माहात्म्यज्ञानपे अपनी जा तरहकी मुद्रा, जा तरहकी अपनी क्रिया जा तरहको अपनो भाव, वो रेहनो कोई अन्याय नहीं हे. क्योंकि जा बखत तुम सीढ़ीपे चढ़के पेहले मालापे आ गये, तो सीढ़ी जितनी ऊंचाई दे सकती थी, तुमकु उतनी ऊंचाई तो मिल गई. सीढ़ी क्या करे? आदमीकु जमीनसू ऊपर लावे. मने अज्ञानको जो अपनो स्तर हे, अज्ञानके स्तरपे अपन् जो कुछ भी भ्रान्ति मानके बेठ जाये हें, माहात्म्यज्ञान क्या करे? तुमकु उन भ्रान्तिन्सू ऊपर उठावे. मने असंभावना विपरीतभावना सू माहात्म्यज्ञान तुमकु ऊपर उठा दे. ऊपर उठाके तुमकु ले जाये. अब तुम जब माहात्म्यज्ञानकी सीढ़ीपे चढ़के वा हाईट्पे पहोंच गये तो वो हाईट् तो तुमकु मिल ही गई. अब सीढ़ीको अपने आपमें कोई प्रयोजन नहीं हे पर हाईट्को प्रयोजन हे. प्रयोजन तो हाईट्को हे सीढ़ीको नहीं हे. तो वा हाईट्पे जा बखत तुम पहोंच गये तो वा बखत सीढ़ीकी पद्धति अनावश्यक हो जाये. या लिये माहात्म्यज्ञानपे **''प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्''** को जो नियम हतो, जो डिसिप्लिन् हती, वो नियम जा बखत तुम सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह पे पहोंच गये, फिर आवश्यक नहीं रेह जाये.

अब तुम कहोगे कि ''हम तो सेवा कर रहे हें, हम तो भक्तिमार्गीय हें हमारे कोई ज्ञानसु क्या लेन-देन! माहात्म्यज्ञान हमकु रुचे नहीं हे''. अब जब ऐसो मानके प्रार्थनायें और दूसरे उपद्रव शुरु कर दें, तब तो तुमकु अभी तक न तो बराबर माहात्म्यज्ञान भयो हे न सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह भयो हे. मात्र माहात्म्यज्ञानके स्नेहके शब्द तुमने सुने हें और पोपटकी तरह बोल रहे हो. माहात्म्यज्ञान या स्नेह होनो एक दूसरी चीज हे और माहात्म्यज्ञान या स्नेह कु व्यक्त करवेवाले शब्दन्कु सुन लेनो और पोपटकी तरह बोल देनो,

एक दूसरी बात हे. अपन् कहें तो हें कि “प्रभु सर्वान्तर्यामी हें सर्वान्तरात्मा हें सर्वव्यापी हें” पर वैसो अपने जीवनके कार्यक्रममें फील होवे? कभी अपनेकु ग्लानि होवे? मने एक सामान्य बात बताऊं कि अपने गुरुजन बेठें होय तो जैसी बातें अपन् न करें, तो वैसी बातनूकु अपन् प्रभुकु सर्वव्यापी समझके करवेसु चूके हें? नहीं. करनो होय सो तो सब कुछ करें ही हें. करें तो करें और ठाकुरजीके सामने भी करें. मने माहात्म्यज्ञान अपनेकु नहीं हें. जो शब्द सुने हें वो अपन् पोपटकी तरह बोले हें. वो तो शब्दनूको व्यापार हे. वो भी अच्छो हे, बुरो नहीं हे पर सचमुचमें माहात्म्यज्ञान अपनेकु भयो नहीं हे, याके लिये वो नियम अपनेपे लागू नहीं हो रह्यो हे. वो नियम लागू हो रह्यो हे उनपे कि जिनपे माहात्म्यज्ञान लागू हो रह्यो हे.

अब ये बात पूछोगे कि व्रजभक्तनूकु माहात्म्यज्ञान कहांसू भयो? निर्गुण भक्त हें उनकु तो माहात्म्यज्ञान हे ही. सात्त्विक भक्त हें उनकु भी थोड़ो बहोत माहात्म्यज्ञान हे. राजस और तामस हें उनकु माहात्म्यज्ञान नहीं हे पर माहात्म्यज्ञान नहीं होवेके बाबजूद भी उनकु भगवान् लिफ्ट्सू घरमें लाये हें. सीढ़ीपे चढ़ाके नहीं लाये. बम्बईमें जाके देखो, सीढ़ी भी होवे और लिफ्ट् भी होवे. कोई सीढ़ीसू आवे और कोई लिफ्ट्सु आवे. अब जो लिफ्ट्सु आ गये हें वो तो आ ही गये हें, उनकु प्रभु खुद लेके आये हें. अब मालिकको तो कोई मालिक हो नहीं सके. हाईट् तो उनकु प्राप्त हो गई. अब वो माहात्म्यज्ञानकी जो डिसिप्लिन् हती, जो शिस्त हती, वो न तो उनने पाली और न उनने समझी. क्योंकि उनकु पता ही नहीं चली. एकाएक समझो पच्चीसमालाकी बिल्डिंग् हे. बन्ध गाड़ीमें कोईकु ले जायें, तो बाहरसु मकान दीखे नहीं. सीधे लिफ्ट्में जायें और लिफ्ट्में खड़े कर दें, लिफ्ट् ऊपर चली जाये तो क्या पता चले कि कितनी हाईट्पे अपन् गये? जब ऊपर जावें और नीचे

देखें तो पता चले कि ओ हो हो इतने ऊंचे आ गये! ऐसे ही व्रजभक्तन्कु भी पता नहीं चल्यो कि उनकु प्रभु कौनसी हाईट्पे ले आये. हाईट् उनकु कहांसु मिली? प्रभु उनके यहां प्रकटे वो हाईट् हती.

आचार्यचरण आज्ञा करें हें "**ज्ञानभक्त्योः तु भगवदाविर्भावार्थम् उपयोगः आविर्भावः चेद् अन्यथासिद्धः**" (सुबो.१०।२६।१३). ज्ञान और भक्ति की आवश्यकता भगवदाविर्भावके लिये हे और वो आविर्भाव यदि अन्यथा सिद्ध हो गयो तो ज्ञान और भक्ति क्या करेंगे? अब सीढ़ी यों तो हल्ला नहीं मचा सके कि लिफ्ट्सू मत जाओ. मकानमें सीढ़ी बनी भई हे याके लिये सीढ़ी हल्ला मचावे कि जावेवाले लिफ्ट्सु मत जाओ. जावेवाले तो लिफ्ट्सु जावें पर जिनकु लिफ्ट् अवेलेबल् नहीं होय, उनकु बिना सीढ़ीके करनो क्या? बहोतसे मकानन्पे लिख्यो भयो होय कि बिल्डिंग्के स्टाफ्के जो नौकर हें, उनकु लिफ्ट् नहीं वापरनी. ऐसे लिख्यो भयो होवे. अब वो बिल्डिंग्के स्टाफ्के लोग बिचारे लिफ्ट् नहीं वापरें. अब नौकरन्के लिये दूसरे खुले ढंगकी कोई नई लिफ्ट् बनावें जासू उनकु हर वक्त दीखतो रहे. नौकरन्की लिफ्ट् जो बने वो जालीवाली खुले ढंगकी बने. आवे-जावेवालेन्के लिये बंध दरवाजान्की अच्छी लिफ्ट् बने. जब वो चढ़ें तो पता ही नहीं चले कि कितनी हाईट्पे जा रहे हें

(ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं)

निर्गुणगोपिकान्कु तो माहात्म्यज्ञान हे, वो स्पष्ट हे. सगुणगोपिकान्कु माहात्म्यज्ञान कैसे भयो? अब प्रश्न ये हे कि निर्गुण और सात्त्विक गोपिकायें तो सीढ़ीसू गई और राजस तामस लिफ्टसू गई. यामें तो राजस और तामस को उत्कर्ष दीखे हे. याकु ऐसो समझनो कि निर्गुणगोपिकान्कु माहात्म्यज्ञान साधनासू नहीं हे पर सिद्ध हे, उनके स्वभावमें हे. राजस तामस में ज्ञानकी साधना नहीं हे. ये अन्तर

हे. फल तो समान ही हे. माहात्म्यज्ञान जा बखत प्रबल होवे, वा बखत भाव थोडोसो खंडन तो होवे ही हे और वो भाव खंडित जो होवे हे, मने जैसे हंसूभाईने अभी संदेह कियो कि तामसन्पे अनुग्रह ज्यादा? तो तामसन्सू भी ज्यादा अनुग्रह इन निर्गुणन्पे हे. वाको एक तात्पर्य ये हे कि ऐसे निर्गुणन्को जो भाव होवे तो **"ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्मात् नास्ति अधिकः परः"** (त.दी.नि.१।१४). जो तामसको भाव होवे तो तामस तो हृदयप्रधान व्यक्ति हे पर निर्गुण हृदयप्रधान नहीं होवे हे, ज्ञानप्रधान होवे हे, भावप्रधान नहीं हे. तामस तो भावप्रधान होवे हे पर निर्गुण तो ज्ञानप्रधान भक्त होवे हे. तो ज्ञानप्रधान भक्तकु भाव होनो ये पुष्टिको परम उत्कर्ष मान्यो जाय हे. **"ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्मात् नास्ति अधिकः परः"** क्योंकि तामसकु तो भाव हो जाये. निर्गुणकु कैसे भाव होवे?

अभी (श्यामदास) जब बम्बईमें हतो तब इनने हमकु कही कि "तुम रसेल्कु और ऐसे ऐसे नास्तिकन्कु बांचके पुष्टिमार्गीय रहो हो, ये हमकु आश्चर्य लगे हे! उनकुं बांचके तुम नास्तिक क्यों नहीं हो जाओ!" तो हमने कही कि "हम नास्तिक नहीं होवे और खूब नास्तिक मत बाचूं, बल्कि आस्तिकसू ज्यादा नास्तिक मत बाचूं. बांच लऊं पर कभी मुझपे असर नहीं होवे." तो मेरे केहवेपे वाने रसेल बांच्यो. अब वो पन्ना पलटते पलटते "नहीं नहीं!" कहे, वाकु इतनो डिस्टर्बन्स् हो गयो. पढ़तो जाये और बेचैन होतो जाये. यों पन्ना बदले और दूसरो बदले और बोलतो जाय कि "ये बात नहीं, ये बात नहीं" घबरा गयो. हमने कही कि "हमकु तो कभी ऐसी घबराहट नहीं होवे." वो बोल्यो कि "हमकु तो बहोत आश्चर्य हे कि नास्तिक मत बांचके पुष्टिमार्गमें आस्था कैसे रेह जाये?" अब कोइकु रेह जाये तो रेह जाये! हमारेकु तो रेह जाये.

ज्ञानप्रधानमें जाको भाव रेह जाये, वो तो परम पुष्टिको उदाहरण हे. यों भी इनकु पुष्टिको महत्त्व कम नहीं हे. या दृष्टिसू यदि आप तामस भक्तनूकु नीचे गिरावे जाओगे तो हम वकालत उनकी भी करेंगे. भावप्रधान व्यक्तिकु कृष्णमें भाव हो जाये, लौकिक विषयमें भाव नहीं होवे, यासू बड़ो अनुग्रह क्या! जो व्यक्ति भावप्रधान ही हे, वाकु तो विषयमें भाव होयगो, वाकु बिना ज्ञान यदि भावके आलम्बनरूपमें कृष्ण मिल जाये तो यासु अधिक अनुग्रहको ऊदाहरण क्या? याके लिये भक्त चाहे तामस होय, चाहे निर्गुण होय, वामें भेद कर पानो बहोत कठिन हे. ये श्रेष्ठ हे कि वो श्रेष्ठ हे, कह्यो नहीं जायेगो.

हम अक्सर उदाहरण दें हें : दो होटलनूमें कोम्पटीशन् भयो. कहें गांवमें सबसु अच्छी होटल्. तो दूसरेने कही कि जिलामें सबसु अच्छी होटल्. उनने कही प्रान्तमें सबसु अच्छी होटल्. वाने कही कि देशमें सबसु अच्छी होटल्. अब उनने कही कि विश्वमें सबसु अच्छी होटल्. अब क्या बच्यो? तो उनने कही कि सामनेवाली होटलसू अच्छी होटल्. कोम्पटीशन् खतम कर दियो.

(अनन्तश्री!)

पुराने जमानामें पत्रनूमें श्री६ लिखते थे. तो इन महाराजनूमें और स्वामीजीनूमें कोम्पटीशन् हो गयो. श्री६ की जगह श्री८ भयो. फिर श्री१०८ भयो. वाके बाद श्री१००८ भयो. वाके बाद वाको श्री११०८ भयो. अब करपात्रीजी और ऐसे कई और व्यक्ति आये तो उन्होंने कही कि लेट् अस् ड्रोप् धीस् टोपिक् और उन्होंने अपने आगे अनन्तश्री और लगा दियो. अब करो कोम्पटीशन्. अरे! थोड़े दिन लाखश्री चलती, फिर करोड़श्री चलती. थोड़ो कोम्पटीशन् और चलती. उन्होंने सीधे अपने पीछे अनन्तश्रीविभूषित करपात्रीजी महाराज लगा दियो. अब भट्टजी जैसो कोई आदमी मिले तो अतिअनन्त करे!

तो कोम्पटीशन् बढ़े, नहीं तो अनन्तश्रीविभूषितके साथ कोम्पटीशन् खतम हो गयो.

ऐसे गोपीनूमें कोम्प्टीशन् हो नहीं सके. क्योंकि एक ही कृपाको या पक्षमें जितनो वैलक्षण्य हे तो वा पक्षमें भी ऊतनो ही वैलक्षण्य हे. कुल मिलाके तामसप्रकरणमें भक्तनूपे जहां भी कृपा भई हे, वो विलक्षण कृपा ही हे. चाहे वो तामस भक्तपे भई होय, चाहे राजस भक्तपे भई होय चाहे सात्त्विक भक्तपे भई होय, चाहे निर्गुण भक्तपे भई होय, क्योंकि यदि एक विरुद्धधर्म यहां हे तो दूसरो विरुद्धधर्म वहां हे. अब वोही बतायो हे कि **"ते नाधीतश्रुतिगणा न उपासितमहत्तमाः अव्रतातप्ततपसः सत्संगात् माम् उपागताः. केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ये अन्ये मूढ़धियो नागाः सिद्धाः मामीयुः अञ्जसा"** (भाग.पुरा.११।१२।७-८). तो कुछ पढ़्यो नहीं, कुछ सुन्यो नहीं, जान्यो नहीं और बिना पढ़े सुने जाने वो चीज उनने कैसे प्राप्त करी? उद्धवजीने भी तो गोपीनूके लिये येही कही हे. **"भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा"** (भाग.पुरा.१०।४७।२५). जो मुनीनूकु भी दुर्लभ भक्ति हे वो तुमकु कैसे प्राप्त भई? कोई कारण नहीं मिले हे. मुनीनूकु प्राप्त भई तो याके लिये तो बहोत सारे कारण मिल जायेंगे कि उनने इतने दिन साधना करी, या तरहसु चित्तकु एकाग्र कियो और सब कुछ करवेके बाद यदि उनको चित्त भगवानूमें एकाग्र हो गयो, तो तो वाकी पूरी लिस्ट् हे, वाकी केस् हिस्ट्री हे. यहां तो कोई केस् हिस्ट्री हे नहीं.

दवाके लिये तुम डॉक्टरके पास जाओ तो डॉक्टर् तुम्हारी केसहिस्ट्री मांगे न! केसहिस्ट्री होय तो बीमारी समझमें आवे. अब यहां कोई केसहिस्ट्री तो हे नहीं पर लाभ तो ऐसो दीख रह्यो हे जो कि मुनीनूकु भी दुर्लभ हे. या अर्थमें कृपा तो हे न वहां! ऐसी भक्तिको लाभ उनकु कैसे भयो? बिना कृपाके तो वो संभव नहीं हे या

लिये वा बाजु भी कृपा हे और या बाजु भी विलक्षण कृपा हे. इतनो जान गये तो उनके भाव अखंडित कैसे रेह पाते. उनके भाव तो खंडित होने ही चइते थे.

(अनेकतन्त्रकान्तारे)

गायकवाड़ सीरीज़में बौद्धग्रंथनूकी बहोत सुन्दर एडिट् करवेवाले एक रामानुज पंडित हते. बौद्ध और नास्तिक ग्रंथनूको बहोत सुन्दर अभ्यास कियो और बहोत सुन्दर एडिट् कियो. वो बौद्धधर्मके बहोत सुन्दर अधिकारी विद्वान हते. बौद्धधर्मकी भूमिका लिखके वाके अन्तमें उनने लिख्यो हे **"अनेकतंत्रकांतारे, विशतो मे अनेकधा विष्णुः अव्याहतपंथाः हृदयात् मापसर्पतु"**. अनेक अनेक दर्शननूके जो गहन जंगल हें, जिनमें कोई भी आदमी सरलतासू भटक सके, उनमें बिना रस्तानूके भी मैं भटकतो रहूं पर मेरे हृदय तक पहोंचवेको जो रस्ता हे वापे विष्णु तू कभी मत भटक जइयो. जो रस्ता मेरे हृदय तक पहोंच रह्यो हे वा रस्तापे विष्णु तू कभी नहीं भटके. बाकी मैं सब जंगलनूमें भटकु पर तेरेकु भटकवेकी छूट नहीं हे. कैसो सुन्दर भाव हे. बड़ो निर्गुण भाव हे सोचो तो. मेरे पंथ भले व्याहत हो सके हें, वामें कोई हरकत नहीं, वामें हम सिर फोड़ेंगे पर तेरो रस्ता तू कभी मत भटकियो. सीधे हृदय तक पहोंच जइयो. उन्होंने बौद्धधर्मपे जो कुछ भी लिख्यो हे, उतनो सुंदर वा कालके बौद्ध भी नहीं लिख पाये. प्राचीनकालके नहीं पर परवर्तीकालके बौद्धधर्मको इतनो सुन्दर खुलासा नहीं लिख पाये जैसो उनने कियो स्वयं रामानुजके वैष्णव होते भये भी इतने अधिकारी विद्वान हते.

तो बस वोही बात हे कि ऐसे निर्गुणभाववाले उद्धवजी जब व्रजमें आये तो घबरा गये. व्रजमें ऐसे निर्गुणभक्त हते कि जिनकु सारे रहस्य मालूम हते पर सारे रहस्य जानके भी चुपचाप बेठे भये हते. व्यवहार भगवानूके साथ ऐसो ही हतो कि जैसो तामसनूको

व्यवहार हे. लीलायें भगवान्की उनके साथ वोही हती जो तामसभक्तन्के साथ हती. जैसे भगवान् अपनी चोरी खुद जानते थे, ऐसे भगवान्की चोरी ये निर्गुणभक्त भी जानते थे.

मैं क्यों केह रह्यो हूं कि यहां शब्दन्में तो केवल वर्णन हे पर तात्पर्यमें प्रार्थना भी हे. शब्दन्में प्रार्थना नहीं हे. वाको कारण ये हे कि वो भगवान्की चोरी खोल रहे हें. अब यदि सर्वथा निर्गुण होय, मने मात्र ज्ञानी होय तो ये चोरी खोलवेकी जरूरत यहां नहीं पड़े. तो थोड़ीसी चोरी खोलके ठाकुरजीके साथ ब्लेकमेलिंग् कर रहे हें. वो क्योंकि **"ज्ञानी चेद् भजते"** (त.दी.नि.१।१४) तो वो **"चेद् भजते"** हे न! वो भजन कर रहे हें, वासू उनसू रह्यो नहीं जाय हे पर स्वभाव निर्गुण हे. याके लिये निर्गुण होवेकी जो भी कुछ मर्यादा हे, डेकोरम् हे वाकी, डीसेन्सी हे, वाकु निभाते भये वो थोड़ी थ्रेटनिंग् कर रही हें और वो इतनी गूढ़ हे कि समझवेवालो समझ जाये बाकी हर आदमीके ख्यालमें नहीं आवे. वो कब उनके ख्यालमें आवे, जब उनको या संदर्भमें जोड़के देखे तब ख्यालमें आ सके. नहीं तो नहीं आ सके, ऐसो ही लगे कि वर्णन कर रही हें और न तो कोई जातको इनके हृदयमें भाव हे, न कोई प्रार्थना ही हे.

(एकसे बढ़कर एक!)

बड़ो विपरीत उदाहरण हे, शायद वाके मूल तात्पर्यकु नहीं पकड़ पाओ तो रसाभास हो जाये ऐसो उदाहरण हे. यदि तात्पर्य पकड़ पाओगे तो बातकु अच्छी तरहसू समझोगे. काठियावाड़में ठाकुरसाबने एक नयो मकान बनायो. नयो मकान बनायो तो गावेवाले लोगन्कु बुलायो. वो गांवमें बड़े एक्स्पर्ट होवें पर अक्कलमें उनकु कम मान्यो जाय. अब कोई वहांकी रबारी जैसी नई जाति हे. अब ठाकुरसाबने नयो मकान बनवायो तो सब गांववालेन्कु बुलायो तो उनकु भी

बुलायो. दोनों भाई आये. तो उन गानेवालेमेंसु छोटे भाईसु पूछ्यो कि ‘‘मकान कैसे लग्यो?’’ अब वासू ठाकुरसाबने पूछ्यो तो कुछ तो मकानकी महत्ता बतानी चइये. तो बोल्यो कि ‘‘आपने ऐसो भव्य इतनो सुन्दर मकान बनायो पर दरवाजा छोटो बनायो. आप मर जाओगे तो यहांसु निकलोगे कैसे?’’ ठाकुरसाबके चेहरापे बल आ गई. भौंहें तन गई. अरे! नयो मकान आज ही बनायो, आज ही अपशकुनकी बात केह दी. अब वो दूसरे बड़े भाईने देखी कि कोई गल्ती हो गई छोटेसू तो वाने तुरन्त कह्यो ‘‘अरे ठाकुरसाब! माफ करियो. ये तो बिलकुल पशु हे. क्या जाने! ये कोई प्रश्न हे! अरे! मर जाओगे तो काट-काटके बाहर ले जायेंगे वामें कोई केहवेकी बात हे ये तो मूरख हे दरवाजा छोटो हे तो क्या भयो!.’’ तो उनने कही ‘‘अरे! ये तो और भी माथेको निकल्यो.’’ देखो हे न एकसु एक उमदा!

(तुमतो ब्रह्म हो!)

तो यापेसू एकसू एक उमदा हें. ऐसे जो गाली दे रही हे, वो तो थोड़ी ठीक हे पर ये निर्गुणा बिना गाली दिये वासू भी उमदा हे. या अर्थमें समझियो कोई दूसरे अर्थमें नहीं. गाली दे रही हती तो वो थोड़ी रसकी मर्यादा हती, वो निभ रही थी और वैसी रसमर्यादामें गाली दे रही थी. ये वा भगवत्सम्बन्धी तथ्यको उद्‌घाटन कर रही हे कि अगर आप प्रकट नहीं होओगे तो रसकी मर्यादा टूट रही हे, क्योंकि शृंगाररसको ऐसो नियम हे कि वाके वर्णनमें वाके वर्णनमें मृत्यु नहीं होवे मूर्छा तक शृंगाररस जावे. मृत्यु हो जाये तो शृंगाररस रसाभास होके करुणरस केहवा जाये. याके लिये प्राचीन अलंकारशास्त्रमें, जहां भी शृंगारको वर्णन हे, या जो काव्य या लीला शृंगारात्मिका मानी जाय, वहां मृत्युको वर्णन निषिद्ध हे. विरह इतनो तीव्र हो रह्यो हे कि सब मरवेके लिये तैयार हें, तो रसाभास तो हो ही रह्यो हे. या बाजु रसाभास हो रह्यो

हे तो वो वा बाजु ठाकुरजीको रसाभास कर रही हे कि तुम तो **न खलु गोपिकानन्दो भवान्** हो. तुम तो ब्रह्म हो. अब यदि कृष्णकु ये समझा दियो जाय कि तुम गोपिकानन्दन नहीं हो, तो कृष्णको रसाभास हो गयो कि नहीं? अभी तक जो गाली दे रही थी, जो **'कितव'** केह रही थी वो रसकी मर्यादामें गाली दे रही थी, जो केह रही थी "कि प्रकट हो जा." वो भी रसकी मर्यादामें गाली दे रही थी, जो केह रही थी कि "प्रकट हो जा." वो भी रसकी मर्यादामें "प्रकट हो जा केह रही थी." ये केह रही हे कि ठीक हे यदि मृत्यु ही होनी हे और रसाभास ही होनो हे तो फिर रहस्यकु पूरो ही अनावृत कर दो. क्योंकि निर्गुण हे, प्रभुके सारे रहस्य जाने हे. जो राजस तामस हती वो तो सीक्रेट्स् नहीं जानती हती, वो बिचारी तो रसकी मर्यादामें गाली दे रही हती पर सोचो तो ये गालीकु रसकी मर्यादामें विचार करो तो यासू भयंकर गाली राजसी या तामसी ने नहीं दी हे. यदि रासलीलामें कोई गोपी यों केह दे **न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिल देहिनाम् अन्तरात्मदृक्. विखन सार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्त्वतां कुले** तो सब चौपट.

ध्यान दो तो तुमकु ख्याल आयेगो कि जितनी पेहलेकी गोपिकायें हें सबने प्रभुकु 'तू' केहके पुकार्‌यो हे और ये **'भवान्'** केह रही हे. **जयति ते..., सुरतनाथ ते..., विषजलाप्ययाद्...** में भी वो केह रही हे "**'ते' वयं रक्षिता मुहुः**". सारी गोपिकायें 'तु'कारासु बोल रही हें और ये विनीत भावसु अंतर खोल रही हे कि महाराज नहीं प्रकट हो रहे हो तो ये सारो कौभाण्ड खुलासासू केह दो कि तुम गोपिकानन्दन नहीं हो. तुम कोई दूसरो ही तथ्य हो. **अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्** हो, बोलो मंजूर हे कि नहीं? यदि या कृष्णलीलामें तुमकु गोपिकानन्दनपनो छोड़नो मंजूर हे?

(वैष्णवीं व्यतनोत् मायाम्)

व्रजमें जा बखत मुंहमें ब्रह्माण्ड दिखायो और वा बखत यशोदाजीकु ये भयो **"अहं मम असौ पतिः एष मे सुतो व्रजेश्वरस्य अखिलवित्तपा सती गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्मायया इत्थं कुमतिः स मे गतिः"** (भाग.पुरा.१०।८।४२). अरे! ये जो मेरो पुत्र हे, ये तो पुत्र नहीं हे. कहे हे कि "मैं मेरो पति मैं यशोदा मेरो पति नन्द मैं जो वाकी सम्पत्तिकी स्वामिनी ये मेरो पुत्र ये सब कुमति हे." जा बखत मुखमें ब्रह्माण्डके दर्शन भये तब यशोदा यों बोली कि "ये सब कुमति हे. जा भगवान्की मायाके कारण ये कुमति पैदा भई वो भगवान् ही अब मेरी रक्षा करें." फिर ख्याल आयो कि भगवान् रक्षा करें कि या बेटामें ही कुछ गड़बड़ी हे! पेहले तो भगवान्पे ध्यान आयो जब मुखारविन्दमें ब्रह्माण्ड दीख्यो. तो वाकी पर्सनालिटीके कारण कितनो शोक् लग्यो होयगो कि जाकु बेटा मानके चल रही हे, जो वाकु पीटवेके लिये तैयार हे, जो वाकु सुधारवेके लिये तैयार हे और वो यदि मुंहमें ब्रह्माण्ड दिखावे लग जाये, तो वाके वात्सल्यकु कितनो बड़ो शोक् हे! कितनो बड़ो धक्का हे! वाके कारण वाकु भयो कि ये विष्णुकी माया ही विचित्र हे कि ये सारी कुमति पैदा भई. पेहली बार यशोदाजीके मुखसु ये उद्गार निकले **"किं स्वप्नम् एतद् उत देवमाया..."** (भाग.पुरा.१०।८।४०). दूसरी बार ये निकल्यो **"अथो अमुष्यैव मम अर्भकस्य यः कश्चन् औत्पत्तिक आत्मयोगः"** (वहीं). शायद ये विष्णुकी माया नहीं हो पर ये सारी माया मेरे बेटाकी भई होय तो? वहां भगवान् गड़बड़ा गये. वहां आवे हे कि **"वैष्णवीं व्यतनोद् मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः"** (भाग.पुरा.१०।८।४३). प्रभुकु वा वैष्णवी मायासू यशोदाजीको सारो ज्ञान विस्मृत करानो पड़्यो. यशोदाजीकु ये निश्चित भयो कि नहीं शायद विष्णुकी माया होयगी पर मेरे बेटाकी ऐसी माया नहीं हो सके हे. ये जो बेटा हे वो तो शुद्ध बेटा ही हे. नहीं तो लीला वाही बखत खतम हो जाती. लीला आगे चलवेको कोई हेतु ही

नहीं रेह जाये. वहां भागवतकार कहे हें **"वैष्णवीं व्यतनोद् मायां..."** वैष्णवी मायाको विस्तार करके और वो जो भी कुछ ज्ञान उत्पन्न भयो, वाकु फिरसु लोप कियो गयो.

(ज्ञानीको उपालंभ/ब्लेकमेइल्)

अब ये जो वैष्णवी मायासू ज्ञानलीला चल रही हे कि कोई उनकु **'कितव'** कहे हे, कोई उनकु 'कुहक' कहे हे, ये सब कोई उनकु 'घातक' कहे हे, अब ये वैष्णवीमायाकी लीला चल रही हे कि **"योगमायाम् उपाश्रितः"** (भाग.पुरा.१०।२९।१). ये जो रासलीला प्रारम्भ भई वाके पेहले कह्यो कि भगवान् योगमायासू समावृत्त हें. तो योगमायासू समावृत्त होके जो लीला कर रह्यो हे और वा लीलामें मायाके परदाकु चीर देवेके लिये कोई गोपिका खड़ी हो जाये, तो भगवान्‌की लीला आज यहां ही ठप्प हो जाये.

तो या तरहकी ब्लेकमेलिंग् कर रही हे, मने भीतर जो गालियें दे रही थी, वो तो थोड़ी माइल्ड् हती पर ये तो पूर्ण रसाभास कर रही हे. फिर वो सारे निर्गुणता ज्ञानके शब्दन्‌की डीसेन्सीकु निकालवेके लिये. इन निर्गुण गोपीकान्‌के शब्दन्‌में, इन ज्ञानीन्‌के शब्दन्‌में धमकी या और कोई जातकी तीव्रता या आवेग या उद्वेग नहीं हे, वो कहे हे **न खलु गोपिकानन्दनो...उदेयिवान् सात्त्वतां कुले**". बोलो तुम गोपिकानन्दन नहीं हो! **भवान् न गोपिकानन्दनो**. भगवान् कहे हें तो कौन हूं? तो कहे हे **"अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्"**. जितने भी देही हें जितने भी देहधारी पुरुष हें, उनकी अन्तरात्माके द्रष्टा तुम हो. **विखनसार्थितो विश्वगुप्तये** और यहां लीला करवेके लिये आये हो अपने स्वार्थसू नहीं, पर ब्रह्माजीने प्रार्थना करी और तुम यहां जगत्‌को उद्धार करवेके लिये आये हो. **सख उदेयिवान् सात्त्वतां कुले** और व्रजमें भी प्रकट नहीं भये हो, यादवकुलमें प्रकट भये हो. बोलो. सारे रहस्य ठाकुरजीके खुले कर दिये. कुछ

रहस्य बाकी बच्यो? कोई रहस्य बाकी नहीं बच्यो, सब रहस्य खोल दिये, याने एक श्लोकमें.

(निगूढ़प्रश्न)

अन्याः पुनः भगवतो महानुभावत्वं ज्ञात्वा तस्य स्वरूपं कीर्तयन्ति. तो कहें हें कि निर्गुणा गोपिका भगवान्‌के महानुभावत्वकु जानके उनको स्वरूप कहे हें **ततश्च ज्ञानिभ्यो यथा मोक्षं प्रयच्छति तथा अस्मभ्यमपि अस्मदुचितं मोक्षं दास्यति इति. तं स्तुवन्ति न खलु इति.**'' बोले अप्रकट रेहके यदि रासलीला नहीं करनी हे और तिरोहित होनो हे, मने ''**पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराक् पश्यति न अन्तरात्मन्. कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुर् अमृतत्वम् इच्छन्**'' (कठो.२।१।१). भगवान्‌ने इन्द्रियन्‌के सारे प्रवाह बाहरकी तरफ मोड़ दिये जासू ये सारी दुनिया बाहर देखे हे, अपनी अन्तरात्मामें कोई देख नहीं सके हे. कोई धीर विद्वान ज्ञानी पुरुष इन प्रवाहन्‌कु समेट-समेटके समाधिमें, योगकी कोई एकाग्रतामें अन्तरात्माकी तरफ मुड़े हे, फिर जाके प्रत्यगात्माकु मने आत्माके अन्दर रही भई प्रत्यगात्माकु देख सके हे. तो वा तरहसु ये गोपिका केह रही हे कि जैसे ज्ञानीकु मोक्ष देनो हे, तो क्या वा तरहको मोक्ष हमकु देनो चाह रहे हो? तो चलो वैसी स्तुति सुन लो. यदि तुमकु रासलीला प्रवृत्त नहीं करनी हे, यदि तुमकु तिरोहित ही रेहनो हे, तो याको मतलब ये हे कि ये देहाध्यास छूट गये हें. तो मुकुन्द हो, मोक्ष देवेवाले तो तुम हो ही और 'विश्वगोप्ता' हो. 'विश्वपालक' हो और 'अन्तरात्मदृक्' हो, सबकी अन्तरात्माकु देखवेवाले हो, द्रष्टा हो और केवल द्रष्टा हो तो दृष्टा तो केवल साक्षी हो सके. एक्सीडेन्ट् भयो होय तो देखवेके लिये जैसे रस्तापे भीड़ खड़ी हो जाये, ऐसे ही नहीं हो, 'सखा' भी हो. मने अन्तरात्मामें रहे भये प्रत्येक आत्माके सखा हो. ''**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोर् अन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति**'' (मुण्ड.उप.३।१।१).

मने या देहरूपी वृक्षमें दो सखायें बेठे भये हें. जिनमेंसु एक शुक या देहके फलनूकु चाखे हे और दूसरो वाको दोस्त चाखे नहीं हे, केवल देखे हे कि ये कैसे चाखे हे? वो परमात्मा अन्तर्यामी हे. तुम सखा हो मने अहित तो नहीं करोगे, उतनी देर तक चखवे दोगे कि जितनी देर तक हमारो वा चखवेमें हित हे. वासू ज्यादा तो चखवे नहीं दोगे. तो अन्तरात्मदृक् हो, हमारे अन्तरसखा हो. तो जैसे ज्ञानीनूकु मोक्ष दो हो तो वैसे हमकु मोक्ष दो और ये लीला यहां समाप्त भई. क्या लीला समाप्त भई? ऐसो एक अन्तर्गूढ़ प्रश्न हे. ये निगूढ़ प्रश्न हे. वैसे तो वर्णन हे पर एक छिप्यो भयो निगूढ़ प्रश्न हे यामें कि क्या ये लीला समाप्त हो रही हे? व्रजभक्तनूमें क्या या तरहकी घोषणा कर दी जाये! **"चलन चहत अब कृपानिधाना"**.

वो कहे हे कि **ततश्च ज्ञानिभ्यो यथा मोक्षं प्रयच्छति तथा अस्मभ्यमपि अस्मदुचितं मोक्षं दास्यतीति**. जैसे प्रभु ज्ञानीकु मोक्ष दे हें ऐसे हमारे लिये उचित मोक्ष हमकु देंगे, याके लिये स्तुति कर रही हे. अब वो क्या केह रही हे? दूसरी गोपीनूकु टोक रही हे. दूसरी गोपीनूने कही **"जयति तेऽधिकं...शश्वद् अत्रहि."** उनकु टोक रही हे, जैसे बड़े गावेवालेने छोटे गावेवालेकु टोक्यो ना वैसे तो कहे हे कि भगवान्पे खोटो उपालम्भ मत करो.

श्लोक :

न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख! उदेयिवान् सात्त्वतां कुले।।४।।

सुबोधिनी :

भगवतो नन्दसूनुत्वे सर्वे उपालम्भा युक्ता भवन्ति, तदेव नास्तीति

सर्वम् अयुक्तम् उपालम्भनम् खलु इति निश्चये. न अत्र तिरोहितमिव. गोपिकायाः यशोदायाः नन्दनः पुत्रः इति न. तथा सति यथा तया स्वाधीनः कृतो ज्ञातो वा तथा गोपिकानामपि भवेत्, गोकुलस्वामिपुत्रत्वात्. तुल्यतायामेव हि विद्यायोनिसम्बन्धः. किञ्च न केवलं भवान् वैकुण्ठाधिपतिः पुरुषोत्तमः किन्तु अखिलदेहिनां सर्वेषामेव अस्मदादीनाम् अन्तरात्मानम् अन्तःकरणं पश्यतीति यदि अस्मद्हृदये तादृशं तापं पश्येत् तदा प्रसन्नएव भवेत्. अतो नास्मिन् वक्तव्यं किञ्चित्. किञ्च आगतश्च अस्मदादीनां पलिपालनार्थमेव. यदि जानीयाद् एताः नश्यन्ति इति तदा परिपालयेत्. रक्षणार्थं च प्रार्थितएव, न तु स्वेच्छया समागतः. तदाह विखनसार्थित इति. विखना ब्रह्मा, विशेषेण खनतीति सर्वथा वेदार्थविचारकः. अतएव वैखानसं मतं ब्रह्मणा कृतं भगवद्भजनप्रतिपादकम्. तेनैव मार्गेण पूजां भगवान् गृह्णातीति वेंकटादौ तथैव पूजा. अतः सर्वेषां पूजामपि ग्रहीतुं ब्रह्मणा प्रार्थितो, विश्वगुप्तये इति मुख्यं प्रयोजनम्. एवम् अन्तरात्मत्वात् सर्वेषामेव जीवानां भवान् सखा. तादृशो लोके सख्यं प्रकटयितुं सात्त्वतां यादवानां वैष्णवानां वा कुले उदेयिवान् प्रादुर्भूतः. अतः एतदर्थमेव आगतः. पूर्वमपि सखा यथेच्छमेव प्रेरयसि, आगतस्य पुनः विशेषो वक्तव्यः. स च आत्मनिवेदनरूपो भवति. अतो वयं किं विज्ञापयामः, यथोचितमेव कर्तव्यम् इति भावः ॥४॥

विवरणम् :

(न खलु गोपिकानन्दनो भवान्!)

निर्गुणा केह रही हे **भगवतो नन्दसूनुत्वे सर्वे उपालम्भा युक्ता भवन्ति.** ये तुम्हारो उपालम्भ कब उचित होतो? कि जब ये नन्दसूनु होतो यदि ये गोपिकानन्दन होतो तो. कौनको तुम उपालम्भ कर रही हो? गलत उपालम्भ दे रही हो. **तदेव नास्ति इति सर्वम् अयुक्तं उपालम्भनम्.** ये गोपिकानन्दन तो हे ही नहीं जो यापे सारे उपालम्भ आवें. व्रजके उद्धारके लिये तुम व्रजमें जन्मे हो. हम व्रजके होते भये, तुमकु खोजवेके लिये या समय भटक रही हें. क्या विचित्रता हे तुम्हारे

अन्दर, व्रजमें तुम जन्मे ही नहीं! **खलु इति निश्चये, न अत्र तिरोहितमिव.** निश्चय ही भगवान् या व्रजमें नहीं प्रकटे हें और ये बात छिपी भई नहीं हे. **गोपिकाया: यशोदाया नन्दन: पुत्र इति न** तो गोपिका यशोदाको नन्दन होय, पुत्र होय ऐसी बात नहीं हे. **तथा सति यथा तया स्वाधीन: कृतो ज्ञातो वा तथा गोपिकानामपि भवेत्, गोकुलस्वामिपुत्रत्वात्** अब कहें कि ठीक हे, पुत्र तो नहीं हे पर यशोदाने इनकु अपनो नन्दन तो बना लियो, वाकु पुत्र बना लियो, अपने आधीन कर लियो, या अपने पुत्रके रूपमें जा तरहसु समझ्यो, तो जो अधिकारकी, जैसे अधिकारकी उत्तमतासू यशोदा याकु अपनो पुत्र बना पाई, ऐसे तुम्हारी अधिकारकी उत्तमता होय तो तुम भी याकु अपनो कान्त बना पाओगी. तो जो कहे हे **''शरदुदाशये साधुजात...नेह किं वध:''. सुरतनाथ!** वाकु बना पाओगी. जा तरहसू यशोदाने, जा तरहके अधिकारसू, जा तरहकी साधनसम्पत्तिसू वाकु अपनो पुत्र बनायो, ऐसे ही तरहकी तुम्हारी कोई तपश्चर्या होयगी और कोई साधन होयगे तो वाकु सुरतनाथ बना पाओगी. नहीं तो ये उपालम्भ भी तुम्हारो खोटो. क्यों? **तुल्यतायामेव हि विद्यायोनिसम्बन्ध:.** विद्यासम्बन्ध या योनिसम्बन्ध कब होवे, जब तुल्यता होय.

(अखिलदेहीनाम् अन्तरात्मदृक्)

किञ्च न केवलं भवान् वैकुण्ठाधिपति: पुरुषोत्तम: किन्तु अखिलदेहिनां सर्वेषामेव अस्मदादीनाम् अन्तरात्मानम् अन्त:करणं पश्तीति. ये वैकुण्ठाधिपति ही नहीं पर ये तो सभी आत्मान्की भी आत्मा सबके अन्त:करणकु देखवेवाले साक्षीवत् परमात्मा सर्वभूतनिवास हें. ये तो निर्गुण परमात्मा हें. या लिये ये निर्गुण परमात्मा तुम सगुणन्के बीचमें क्यों प्रकट होयंगे?

अब जो गोपी कहें हें **विषजलाप्ययाद्...रक्षिता मुहु:.** सारे भयन्सू तेंने हमारी रक्षा करी पर वो सब बाह्य भय हते. अब अन्तरात्माको

भय हमारे सामने उपस्थित भयो हे. पंक्ति जटिल हे, याकु ठीक तरहसु जोड़ेंगे तो अर्थ मिलेगो नहीं तो नहीं मिलेगो. वा बखतबाह्य भय उपस्थित हते और अब आन्तरभय उपस्थित भये हें, तासू अधिक प्रकट होवेकी आवश्यकता हे. तो कहें हें कि तुम्हारे केहवेसु वाकु अन्तरात्माको ज्ञान होयगो ? मने **"सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छात: करिष्यति"** (नवर.२). तुम्हारे केहवेसु तो **"प्रार्थिते वा तत: किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्. सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च"** (वि.धै.आ.२). सर्वव्यापी हे, सर्वभूतान्तरात्मा हे, सर्व सखा हे और सर्वज्ञ हे तब प्रार्थनाकी क्या संगति? क्या औचित्य रेह गयो? प्रार्थना तो वाकु करी जाय जो असर्वज्ञ होवे हे. मने मैं कहूं और आप न जानते होव तो आपके सामने कोई प्रार्थना करूं. जो केहनो हे वो आपकु मालूम हे. मेरो हित क्या हे वो आपकु पता हे. प्रभु कहेंगें "अब कौनसु भय तुम दिखा रहे हो? बाह्य भय कि आन्तर भय? क्या तुम्हारे इन भयनकी हमकु खबर नहीं हे? सब खबर हे." याके लिये इनके सामने ये बात केहनी भी उचित नहीं हे. मने तीनों गोपिकानकी प्रार्थनाको याने खण्डन कर दियो. मानो ये केह रही हे ये भी झूठ बोली, ये भी झूठ बोली और ये भी झूठ बोली. प्रभु ये सब झूठ बोल रही हें. केवल मैं ही झूठ नहीं बोल रही हूं. बोलो हे मंजूर? व्रजमें यह रहस्य नहीं खोलनो होय तो प्रकट हो जाओ.

यदि अस्मद्हृदये तादृशं तापं पश्येत् तदा प्रसन्नएव भवेत्. यदि वो सर्वज्ञ हे और सबके अन्त:करणको दृष्टा हे और यदि तुम्हारे अन्त:करणमें ताप देखिके प्रसन्न होयगो तो क्यों नहीं प्रकट होयगो? **अतो न अस्मिन् वक्तव्यं किञ्चित्.** अब या विषयमें कुछ केहवे जैसी बात हे नहीं. **किञ्च आगतश्च अस्मदादीनां परिपालनार्थमेव.** अरे भई! वा बखत भी तुमने आके हमकु बचायो. तो कहें कि वाने आके कोई अपनी गरजके लिये थोड़े ही बचायो. ब्रह्माजीने प्रार्थना

करी कि 'आओ' और आये. आवेमें कोई इनको स्वार्थ तो हतो नहीं. कोई बुलावे कि 'आओ' तो आ गये. नहीं भातो होय तो भी जानो तो पड़ेगो अगर कोई आग्रह करके बुलावे. ब्रह्माके आग्रहवश आये और काम पूरो हो गयो तो तिरोहित हो गये, वामें क्या बड़ी बात हे! अब क्यों बचावें!

यदि जानीयाद् एताः नश्यन्ति इति तदा परिपालयेत्. यदि नष्ट हो रही होंय तो आके रक्षा करेगो. अब ये कोई नष्ट तो हो नहीं रही हें फिर क्यों आनो चइये वाकु! ठीक हे तिरोहित रेहवे दो. **रक्षणार्थं च प्रार्थितएव, न तु स्वेच्छया समागतः.** रक्षणके लिये भी कोई अपनी इच्छासु तो आयो नहीं कि हर बखत आके यहां बेठ्यो ही रहे. यदि वाकु यहां आनो अच्छो लगतो तो तो बेठवेकी वाकी गरज हती, कामके लिये आयो हतो. ऑफिस्में जैसे आवें, काम पूरो हो जावे ऑफिस्मेंसू तो चल्यो जाये. वहां कोई बेठ्यो तो रहे नहीं. कोई बखत तो काम अधूरो भी छोड़के ऑफिस्मेंसू चल्यो जाये और घरमें जाके बेठे न आदमी! अपने कामसू जो व्यक्ति आयो हे वो ज्यादा देर क्यों तुम्हारे बीचमें प्रकट रहेगो?

(विखनसार्थितः)

तद् आह विखनसार्थितः इति. विखना ब्रह्मा, विशेषेण खनतीति सर्वथा वेदार्थविचारकः. विखन क्यों कहें हें? क्योंकि वेदके अर्थकु खोद खोदके जितनो ब्रह्माजीने निकाल्यो, इतनो और कोईने नहीं निकाल्यो. अब ब्रह्माजीने खोदके निकाल्यो कि अब या तरहसु जरूरत हे भगवान्के प्रकट होवेकी तो वा प्रार्थनासू प्रकट होके, ब्रह्माजीपे प्रसन्न होके आये.

अतएव वैखानसं मतं ब्रह्मणा कृतं भगवद्भजनप्रतिपादकम्. याके लिये ब्रह्माजीने वेदार्थको विचार करके वैखानसमतको निरूपण कियो.

जा वैखानसमतके अनुसार भगवद्भजनकी आखी प्रणाली बताई जा प्रणालीके अनुसार तिरुपति बालाजीमें आज भी पूजाकी प्रणाली चले हे. ये महाप्रभुजी अपनेकु सूचना दे रहे हें. **तेनैव मार्गेण पूजां भगवान् गृह्णातीति वेंकटादौ तथैव पूजा. अतः सर्वेषां पूजामपि ग्रहीतुं ब्रह्मणा प्रार्थितो, विश्वगुप्तये इति मुख्यं प्रयोजनम्.** कोई अलगसु हम व्रजवालेनूकु बचावेके लिये थोड़े ही आयो हे. सारे जगत्कु बचावेके लिये आयो हे. तुम्हारे अकेलेके रोवेसू क्या काम चलेगो? सबकी पूजा ग्रहण करेगो. विश्वकु बचावेके लिये आयो हे. **विश्वगुप्तये इति मुख्यं प्रयोजनम्** अवतारको मुख्य प्रयोजन तो विश्वरक्षा हे तुम्हारी रक्षा नहीं हे. **एवम् अन्तरात्मत्वात् सर्वेषामेव जीवानां भवान् सखा.** अन्तरात्मा होवेके कारण जो जीवमात्र हें, उनके तुम सखा हो. वा तरहको सख्य प्रकट करवेके लिये ही तो तुम यादवनूमें प्रकट भये. अब देखो. वामें थोड़ो कोन्ट्राडिक्शन् दिखा रही हे. यदि **विश्वगुप्तये** हो तो यादवनूमें क्यों प्रकट भये? सबके घरमें प्रकट होनो चइतो थो. घर घरमें प्रकट होनो चइतो थो. यदि थोड़ो पक्षपात यहां कियो तो वो पक्षपात होवे दो. देखो! **'विश्वगुप्तये'** शब्दमें ये बात नहीं हे. सारे शब्द अत्यन्त विनीत शब्द हें. ये बात तो मैं तात्पर्यमें बता रह्यो हूं.

तादृशो लोके सख्यं प्रकटयितुम्. तुम सखा हो मने **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते. तयोर् अन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति"** (मुण्ड.उप.३।१।१). या श्रुतिमें तुम्हारो वर्णन आत्मसखात्वेन हे. तुम्हारे आत्माके सख्यकु प्रकट करवेके लिये यादवनूमें, वैष्णवनूके कुलमें तुम उदित भये हो. **सात्त्वतां यादवानां वैष्णवानां वा कुले उदेयिवान् प्रादुर्भूतः. अतः एतदर्थमेव आगतः** यासू तुम विश्वरक्षाके लिये आये हो. **पूर्वमपि सखा यथेच्छमेव प्रेरयसि, आगतस्य पुनर् विशेषो वक्तव्यः.**

(सात्त्वतां कुले उदेयिवान्)

यहांसू आचार्यचरण थोड़ोसो अलग पक्ष रख रहे हें, कहें हें. **आगतस्य पुनर् विशेषो वक्तव्यः स च आत्मनिवेदनरूपो भवति.** प्राणीमात्रके सखा होवेके बाबजूद, तुम यदि यों समझते हो कि तुम सात्त्वतकुलमें प्रकट भये, तो सात्त्वतनृपे जैसे पक्षपात कियो हे और आये हो तो कुछ वैसी विशेषता सख्यताकी तुमकु यहां भी निभानी चइये. तुम गोपिकानन्दन न होवेपे भी गोपिकानन्दन बनके तो आये हो कि नहीं, ये बताओ? जैसे तुम पुत्र नहीं हो पर सात्त्वतनृके पुत्र तो केहलाओ हो कि नहीं? **"युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन च असकृत् चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम्"** (भाग.पुरा.१०।३।४५). जैसे वसुदेव-देवकीके यहां तुमने पुत्रत्व स्वीकार कियो, तदवत् तुमने गोपिकानन्दनत्व स्वीकार कियो हे कि नहीं? अब आ गये हो तो कुछ तो निभाओगे कि नहीं? **स च आत्मनिवेदनरूपो भवति.**

अब चाहे तुम विश्वसखा हो और आये हो, जैसे हंसूभाई ऐसी धारणा पकड़के बेठ जायें कि "भागवतसू उद्धार होवे पर व्यक्तिकु नहीं सुनाके, गामकु ही सुनावें." यदि आत्मोद्धारकी भावना हे तो, जब गामकु सुना रहे हे तो व्यक्तिकु सुनावेमें क्या आपत्ति हे? भागवत तो आत्मोद्धारक हे ये बात तो पक्की. अब याके लिये कहें कि "गामकु ही सुनाऊंगो, व्यक्तिकु नहीं सुनाऊंगो." अरे भई! गामकु सुना रहे हो तो व्यक्तिकु भी सुना दो. वो भी आत्मा हे कि नहीं गरीब! भागवत सुनके वाको उद्धार नहीं हो जायेगो! ऐसो ही आग्रह क्यों कि गामकु ही सुनाऊंगो, व्यक्तिकु नहीं सुनाऊंगो! **सख उदेयिवान् सात्त्वतां कुले** हमारो भी थोड़ो कछु उद्धार कर दो. जैसे वा कुलमें उदित भये हो, ऐसे ही हमारे यहां भी तो आये हो. जैसे उनको पुत्रत्व निभा रहे हो, वैसे हमारो सखत्व भी निभाओ. **आगतस्य पुनर् विशेषो वक्तव्यः.** हमारे यहां आये हो तो कुछ तो विशेषता जताओ. केवल ये ही आग्रह रखोगे कि

हमतो **विश्वगुप्तये** आये हें, व्यक्तिगुप्तये नहीं हें. अरे! व्यक्तिने क्या पाप कियो तुम्हारो कि व्यक्तिगुप्तये तुम नहीं हो! जैसे विश्वगुप्तये हो ऐसे व्यक्तिगुप्तये भी बनो. **अतो वयं किं विज्ञापयामः!** अब तेरेकु क्या केह सके हें! जैसो भी हे तू हमारो हे. तेरेकु कछु केह तो सकें नहीं. **अतो किं विज्ञापयामः, यथोचितमेव कर्तव्यम् इति भावः.** जैसो रुचे वैसो तू कर भाई! हम तो तेरे हें.

श्रीगुसांईजी बहोत सुन्दर कहें हें विज्ञप्तिमें. "**'यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः' यमवादीदिति श्रुतिः तं प्रपन्नस्य मे अद्यापि कथं दुःखं न वेद तत्**" (विज्ञप्ति १।१५९) सो सर्वज्ञ हे, श्रुति जाकु सर्वविद् बता रही हे और मैं कोई अप्रपन्न नहीं हूं. मैं तेरे आगे प्रपन्न हूं फिर भी तू मेरो दुःख नहीं जान रह्यो हे? ये क्या चक्कर हे? क्या श्रुति गलत केह रही हे? क्या मैं प्रपन्न नहीं हूं? कहां गड़बड़ पड़ रही हे? एक बखत प्रकट होके ये ही बता दे कि इतने अंशमें तुम्हारेमें गड़बड़ी हे. उतनो अंश हम सुधार लेंगे. या बातको कुछ खुलासा तो कर. वाके आगे जब मैं प्रपन्न भयो हूं फिर भी मेरो दुःख जाने नहीं हे, याको कारण क्या? याको कैसो उपाय करनो? तो कहें कि वो तो परमात्मा हे. परमात्माकु प्राप्त करनो सर्वात्मना दुराप हे. परमात्माकु प्राप्त करनो वो बड़ी कठिन बात हे. तो ठीक हे "**सर्वात्मना दुरापत्वं ज्ञात्वाऽपि आशां करोमि यत् भ्रांतो अस्मि अहं न वा इति ईशः न जाने करवाणि किम्.**" (विज्ञप्ति १।४२)तो बता "मैं क्या करूं?" परमात्मासु प्रार्थना किये बिना तो रह्यो जा नहीं सकेगो. परमात्माकु यदि स्नेह नहीं करेंगे तो भी जिन विषयनुकु स्नेह करेंगे तो उन विषयन्में हम परमात्माकु ही खोज रहे हें. यदि परमात्माकी खोज नहीं होय तो विषयसु भी स्नेह नहीं हो सके हे. "**न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति**" (बृह.उप.४।५।६). विषयमें भी जो थोड़ी बहोत आसक्ति हे, वा आसक्तिमें जीव खोज तो परमात्माकु ही

रह्यो हे. पता न हो वाकु, मिले नहीं परमात्मा वाकु, वो बात दूसरी हे, मगर यदि कोई चीजकी खोज हे तो वो परमात्माकी हे. अब वो भ्रांत खोज हे कि वास्तविक खोज हे, ये दूसरी बात हे पर हे तो वाकी ही खोज पर ये सब बात प्रकट हो जाये तब पता चले ना!

शायर नज़ीरने बहोत अच्छी कही हे **"निकलना ना तुम चिलमनसे, कसम हे तुमकु चिलमनकी. लड़ाई आड़से देखा करो, शेखोबिरहमनकी."** मने एक कहे कि "राम हे. एक कहे हे खुदा हे." दोनोंमें छुरा चलें हें. अब बिचारो राम केहवेवालो भी गलत नहीं हे और खुदा केहवेवालो भी गलत नहीं हे. अब राम हे या खुदा हे या जो भी कुछ हे वो चिलमनमें परदाके अन्दर बेठ्यो भयो देख रह्यो हे कि मेरे नामपे झगड़ा चल रह्यो हे और बाहर आ नहीं रह्यो हे. तो कहे कि अब तुमकु ज्यादासू ज्यादा सोंगंद कायकी दिवावें? तो तुमकु परदाकी सोंगंद हे, जाके पीछे तुम बेठे भये हो. यदि तेरेकु याही बातमें मजा आ रह्यो हे, लड़ाई देखवेमें तो चिलमनमेंसु लड़ाई देखतो रेह. हम झगड़ते रहेंगे, वामें क्या हे? यदि तेरेकु रुचि हे तो वो भी करवेकु तैयार हें. झगड़ेंगे, क्यों नहीं झगड़ेंगे, यदि तेरी रुचि हे तो क्या नहीं करवे तैयार हें! **"भ्रांतो अस्मि अहं न वा इति ईशः न जाने करवाणि किम्!"** हम भ्रांत होयंगे शायद पर यदि तोकु पसन्द हे तो भ्रांतिको झगड़ा भी हम चलाते रहेंगे दुनियामें. क्योंकि चिलमनमें तू बेठके ये ही पसन्द कर रह्यो हे कि हम झगड़ते रहें तो चल भई हमकु झगड़नो मंजूर हे. याके लिये वो केह रही हे **न खलु गोपिकानन्दनो...उदेयिवान् सात्त्वतां कुले."**

(कृष्णको प्राकट्य)

यहां दो बातें खास लक्ष्यमें लेवेकी हें. (एकतो) कथापक्षसू अपन् सिद्धान्त पक्षमें आ रहे हें. **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्.** ये

जो गोपिकायें केह रही हें, सिद्धान्तमें अपने यहां गोपिकानन्दनत्व ही मान्यो गयो हे अथवा गोपिकानन्दनत्व भी मान्यो गयो हे. जैसे देवकी-वसुदेवके यहां कृष्णको प्राकट्य मान्यो हे. आचार्यचरण यशोदाजीके यहां भी प्राकट्य मानें हें. ये बात भागवतमें यद्यपि शब्दश: वर्णित नहीं हे, पर उन उन भागवतवचनन्की ध्वनीन्सू और तात्पर्यसू आचार्यचरणने ये बात सिद्ध करके बताई हे कि जैसे देवकीजीके यहां प्राकट्य हे, तद्वत् एक स्वतन्त्र प्राकट्य यशोदाजीके यहां भी भयो हे. क्योंकि दोनोंन्कु पुत्ररूपसू वात्सल्यभावको वरदान हतो.

सामान्य कथामें ऐसो प्रतीत होवे हे कि प्राकट्य वसुदेव-देवकीजीके यहां भयो और गोकुल पधारे. ये तो प्रकट कथा हे. ये कथाको एक गूढ़पक्ष ये हे कि वसुदेव-देवकीजीने पुत्रके लिये आराधन कियो थो. विष्णुने उनके समक्ष प्रकट होके वरदान दियो. विष्णु जब प्रकट भये और कही कि "वर मांगो." तो विष्णुकी शोभा और अपने हृदयमें रही भई पुत्रकामना दोनोंन्को कुछ ऐसो कन्फ्युज़न् हो गयो कि वो समझ नहीं पाये कि क्या मांगनो! उनने कही कि "तेरे जैसो पुत्र चइये." पुत्रकामना हती, वो तो हृदयकी मूल कामना हती, वा कामनामें भगवान्कु पुत्र बनावेकी कोई कामना नहीं हती पर जा बखत भगवान्ने अपनो रूप प्रकट कियो, वा रूपको जो आकर्षण और वा रूपको जो सौन्दर्य हतो, वो बहोत ही प्रबल हतो. जैसे गीज़र् लगा दें और वामें ठण्डो और गरम पानी दोनों मिलके आ जाये वैसे वा बखत जब वाणीमेंसू ये भाव मुखरित भयो, तो एक बाजु मनमें रह्यो भयो जो पुत्रवात्सल्य हतो और बाहरसु भगवान्को जो शीतल रूप हतो, वो मिक्स् होके शब्दन्के रूपमें कामना प्रकट भई कि "तेरे जैसो पुत्र चइये." असलमें तो पुत्र चइतो हतो पर जो शीतल कामना आई थी वो या ढंगसु आई हती कि "तू चइये." जब रूप देख्यो तो ये भयो. असलमें तपस्या शुरु करी हती कि पुत्र चइये. जब रूप प्रकट भयो तो

ये लग्यो कि ये चइये कि पुत्र चइये? तो कन्फ्युज़न् हो गयो. अब जब भगवान् केह रहे थे कि "मांगो मांगो मांगो" तो गड़बड़ीमें मुंहमेंसू ये निकल गयो कि "तेरे जैसो पुत्र चइये." अब तेरे जैसो वो पुत्र नहीं हे और जो पुत्र हे वो तेरे जैसो नहीं हे. तो भगवान्ने कही कि चलो भई ठीक हे, मेरे जैसो तो मैं ही हूं. "**गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः राम-रावणयोः युद्धः रामरावणयोरिव**" (रामा.युद्धका.१०७।५१) वा न्यायसू मेरे जैसो मैं ही हूं या लिये मैं ही पुत्ररूपमें प्रकट होऊंगो. काराग्रहमें जो प्राकट्य भयो, वो चतुर्भुजरूपको प्राकट्य भयो. क्योंकि वा तरीकेके रूपमें ही वसुदेव-देवकीकी निष्ठा हती. वा तरीकेके रूपमें ही वसुदेव-देवकीको मन रम्यो हतो.

नन्द-यशोदाकी कामना वा तरीकेकी चतुर्भुजरूपकी कामना नहीं हती. याके लिये नन्द-यशोदाके यहां मायाके साथ और विभूतिसू प्राकट्य हे. जब माया प्रकटी, मने कृष्णको प्राकट्य पेहले भयो द्विभुजरूपको और माया उनकी अनुजाके रूपमें प्रकट भई. या लिये ही भागवत वहां कहे हे "**अनुजा विष्णोः**" (भाग.पुरा.१०।४।९). कृष्णकी अनुजा प्रकट भई. मायाकु वहां अनुजा कह्यो हे. छोटी बहेनके रूपमें मने यशोदाजीके यहां जुड़वा प्राकट्य हे. वसुदेव-देवकीके यहां जो प्राकट्य भयो और भक्तिभावके आवेगमें देवकीकु दुबारा ये प्रोब्लम् खड़ी हो गई कि या तरहसु चतुर्भुजरूपसू कंसने देख लियो, तब तो मारे बिना छोड़ेगो नहीं. लौकिक बालक होय तो फिर भी छिपायो जा सके हे. ये छिप सके ऐसो बालक नहीं हे. याको क्या इलाज करनो? तो उनने दूसरी प्रार्थना करी. पेहली ये प्रार्थना करी "**रूपं यत् तत् प्राहुर् अव्यक्तम् आद्यं ब्रह्म ज्योतिर् निर्गुणं निर्विकारम् सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद् विष्णुः अध्यात्मदीपः. नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेषु आदिभूतं गतेषु व्यक्ते अव्यक्तं कालवेगेन याते भवान् एकः शिष्येते अशेषसंज्ञः. योऽयं कालस् तस्य ते अव्यक्तबन्धो चेष्टाम् आहुः चेष्टते येन विश्वम् निमेषादिर्**

वत्सरान्तो महीयांन् तं तु ईशानं क्षेमधाम प्रपद्ये. मर्त्यो मृत्युव्यालभीत: पलायन् लोकान् सर्वान् निर्भयं न अध्यगच्छत्. त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थ: शेते मृत्युः अस्माद् अपैति." (भाग.पुरा.१०।३।२४-२७). तुम तो कालके काल हो. फिर वात्सल्यके आवेगमें दुबारा प्रार्थना करी कि मोकु बहोत डर लग रह्यो हे कि या रूपकु कंस पेहचानवेमें कितनी देर लगायेगो? या रूपकु कंसने पेहचान लियो तो क्या होयगो, ये सोचवेकी तो देवकीजीकी हिम्मत ही नहीं हे. ये तो **"मर्त्यो मृत्युव्यालभीत: पलायन्"** हे मने जाकु देखके मृत्यु भग जाये, ऐसो रूप हे, ये तो वो सोचे हे पर कंस क्या करेगो ये सोचवेके लिये देवकी तैयार नहीं हे. जब ये पुत्र प्रकट भयो हे तब वहां तक मन जावे हे कि प्रकट भयो, प्रकट भयो, पर कंस आते ही वो स्टोप् आ जाये. वो विचारशक्ति कुंठित हो जाये. अब सोचनो ही नहीं कि आगे कंस क्या करेगो? जब आगे सोचे ही नहीं तो आन्सर् भी नहीं मिले हे. तब घबराके देवकी कहे हे **"उपसंहर विश्वात्मन् अदो रूपम् अलौकिकम्"** (भाग.पुरा.१०।३।३०). अपनो ये रूप तू तिरोहित कर ले. देवकीकु भगवान्ने कही कि "मैने अपने मनसू ये रूप प्रकट नहीं कियो हे. तेंने मांग्यो हतो कि "तेरे जैसो पुत्र चइये" या लिये ये रूप प्रकट कियो." तो देवकी कहे "जो कछु मांग्यो सो तो गल्ती भई, मोकु ये थोड़े ही पता हती कि या सिच्युएशन्में तुम प्रकट होओगे! हम तो समझे थे कि जंगलमें जैसे तू और हम दोनों, ऐसे तीन हते. ऐसी ही सिच्युएशन्में प्रकट हो जायेगो, जामें खूब मझा आयेगी पर यहां तो कंस एक चोथो कोना और बन रह्यो हे. या स्थितिमें अब तो मुश्किल हे. या रूपकु अब तिरोहित कर. मने जो कुछ प्रकट भयो वाके प्रति अत्यंत वात्सल्य उमड़्यो, तो भी वसुदेव-देवकीने कही कि "या रूपकु तिरोहित करो." या कारणसू वाने प्रार्थना दुबारा करी और वो प्रार्थना कोई भगवान्के अनादरके कारण नहीं करी हे, अत्यन्त भावप्रवणताकी प्रार्थना हती. तो प्रभुने कही कि

"चलो भई! तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार" फिर **"पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः"** (भाग.पुरा.१०।३।४६) प्राकृत शिशु जो नन्दरायजीके घरमें प्रकट भयो हतो, वो अलौकिक सामर्थ्यसू प्रभु मथुरामें प्रकट भये. फिर वो नन्दात्मजकु ही वसुदेवजी वहांसु पधराके ले गये हें. जो वसुदेवात्मज हतो वो तो वहीं वाहीमें समाहित हो गयो. वा स्थितिमें या सैद्धान्तिक स्थितिमें, ये निर्गुणगोपिका जो कहे हे कि **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्** याकी सैद्धान्तिक संगति समझनी चइये. लीलाकी संगति तो अपनूने देखी पर याकी सैद्धान्तिक संगति और विचार लेनी चइये जासू कोई जातको अपनेकु कोई कन्फ्युज़न् नहीं रहे.

(व्याख्याकी तीन प्रणाली)

यामें तीन प्रणालियें अपनाई गई हें. एक लेखकारने, एक श्रीहरिरायजीने और एक श्रीलालूभट्टजीने. यहां पुरुषोत्तमजी ऐसी चुप्पी मार गये हें कि जो पुरुषोत्तमकु ही शोभा दे सके हे ओर कोईकु शोभा नहीं दे सके हे. क्यों चुप्पी मार गये, समझमें नहीं आवे. उनकु हरिरायजीको मत मान्य हतो, कि लालूभट्टजीको मत मान्य हतो कि लेखकारको मत मान्य हतो, या उनकु या प्रश्नको उत्तर देनो ही आवश्यक नहीं लग्यो या अत्यन्त स्फुट समाधान उनके चित्तमें हतो. क्या बात भई ये पता नहीं चले हे. इन तीन व्याख्याकारन्ने तीन प्रणालीसू याके उत्तर दिये हें.

योजना :

न खलु गोपिकानन्दन इत्यत्र यशोदानन्दनत्वनिराकरणन्तु लौकिकभाव-कृतपुत्रभावपरं, "जयति जननिवाशो देवकीजन्मवाद" (भाग.पुरा.१०।८७।-४८) इत्यत्र देवकीनन्दनत्वनिराकरणवत्. अतएव "न माता न पिता तस्य" (भाग.पुरा.१०।४३।३८) इत्यादि संगच्छते. तथाच पुरुषोत्तमस्य जन्माभावेऽपि पुत्रभावेन प्रादुर्भावाद् यशोदानन्दनत्वं वर्ततएव इति उपपादितं

पुरस्तात्. अथवा व्रजसुन्दरीणां शृंगारभाववत्त्वात् कटाक्षोक्त्या यशोदानन्दनत्व-निराकरणं ज्ञेयम्।।४।।

विवरणम् :

संक्षेपमें मेरो वोट् लालूभट्टजीकी ओर जाय हे. उनकी व्याख्याकी प्रणाली बहोत हृदयारूढ़ होवे ऐसी हे. लालूभट्टजी कहे हें कि **न खलु गोपिकानन्दन इत्यत्र यशोदानन्दनत्वनिराकरणन्तु लौकिकभावकृतपुत्र-भावपरम्.** ये जो यशोदानन्दनत्वको गोपिका निराकरण कर रही हे, ये जैसे लौकिकप्रणालीसू पुत्रोत्पत्ति होवे हे, वा प्रणालीके निषेधपे हे. क्योंकि दशमस्कन्धके वसुदेव-देवकीके यहां जन्मप्रणाली अथवा यशोदा-नन्दरायजीके यहां भगवद्जन्मकी जो प्रणाली हे, इन दोनों प्रणालीन्में एक बात स्पष्ट हे कि लौकिकप्रणालीसू प्राकट्य नहीं भयो हे. वहां भी जैसे नालावेष्टित बच्चा जन्में, ऐसे ठाकुरजीको प्राकट्य नहीं भयो. **''तम् अद्भुतं बालकम् अम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधं श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्. महार्हवैडूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् उद्दामकाञ्च्यगंदकंकणादिभिर् विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत''** (भाग.पुरा.१०।३।९-१०). कोई अलौकिकबालक अलौकिकप्रणालीसू प्रकट्यो हे. वस्त्र-आभरणादि सबके सहित, लौकिकप्रणालीसू आँख मींचके नालावेष्टित जैसे बालक प्रकटे हे, ऐसे न तो वसुदेव-देवकीके यहां प्रकट भयो और न ही या प्रकारकी प्रणालीसू बालक नन्द-यशोदाके यहां प्रकट भयो. याकु अपन् अलौकिक या कोई चमत्कारपूर्ण कहो वैसे ढंगसू दोनों ठिकाने बालकको प्राकट्य भयो हे. या अर्थमें ही वाके गोपिकानन्दनत्वको निषेध हे. कोई गम्भीर अर्थमें सैद्धान्तिक क्षति आ जाये, ऐसे अर्थमें गोपिकानन्दनत्वको निषेध नहीं हे. जैसे **''जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो''** (भाग.पुरा.१०।८७।४८) मने यशोदाके यहां कृष्णको पृथक्प्राकट्य हे कि नहीं, यामें कई लोगनूकु विवाद हे. क्योंकि आचार्यचरण या कल्पकु माने हें. ये सर्वमान्य कल्प नहीं हे पर वसुदेव-देवकीके यहां कृष्णको प्राकट्य तो सर्वमान्यकल्प हे.

वा सर्वमान्यकल्पकुभी भागवतने स्वयं ही आखो जन्मप्रकरण केहके वर्णन कियो हे.

(देवकीजन्मवादो)

पर, जब भागवत खुद ही कहे हें "**जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो**" मने देवकीके यहां जन्म्यो, ऐसो केवल वाद हे. देवकीके यहां जन्म नहीं हे. तो देवकीके यहां जन्म हे और देवकीके यहां जन्म नहीं हे! एक ही भागवतकी ये दोनों बातें कैसे संगत हो सके! घटकश्रुति जो सिद्धान्त अपनूने कल सोच्यो हतो, यदि बीचमें लानी होय, तो घटकश्रुति याकी एक मिले हे कि "**अजायमानो बहुधा विजायते तस्य धीरा परिजानन्ति योनिम्**" (तै.आ.३।१३।२।२१). वह अज हे पर बहुधा जन्म ले हे. बहुधा = बहोत प्रकारसू जन्म ले हे. जो धीर पुरुष हें वो समझ जाय हें कि वो विरुद्धधर्माश्रय होवेके कारण तर्कागोचरकार्यको कर्ता हे और जो अधीर पुरुष हें वो यामें समझ ले हें कि यामें कुछ मायिक हे. लेकिन धीर पुरुष जाने हें कि वो अज होते भये भी प्रज क्यों नहीं हो सके हे. याके लिये लालूभट्टजी कहे हें "**जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो**" (भाग.पुरा.१०।८७-।४८) **इत्यत्र देवकीनन्दनत्वनिराकरणवत्. अतएव "न माता न पिता तस्ये"** (भाग.पुरा.१०।४३।३८) इत्यादि संगच्छते. **तथा च पुरुषोत्तमस्य जन्माभावेऽपि पुत्रभावेन प्रादुर्भावाद् यशोदानन्दनत्वं वर्ततएव इति उपपादितं पुरस्तात्.** यासू भगवान्के कोई न माता हे न पिता हे, ये बात भी संगत हो जाये हे. ये बात जन्मप्रकरणमें समझा दी गई हे कि पुरुषोत्तम यद्यपि जन्म नहीं ले हे, लेकिन विरुद्धधर्माश्रय होवेके कारण, भक्तके भावको अनुसरण करवेकी अचिन्त्य सामर्थ्य खुदमें होवेके कारण, वो यशोदानन्दन भी बन सके हे. मने "**नन्दस्तु आत्मज उत्पन्ने**" (भाग.पुरा.१०।५।१) एसे वहां कह्यो हे. एसे नहीं कह्यो हे के नन्दकु आत्मज उत्पन्न होवेकी भ्रांति भई जो "स्वात्मज आगते". वहां भी भागवतकार स्पष्ट कहें हे कि "**नन्दस्तु आत्मज उत्पन्ने**"

मने मोकु आत्मज उत्पन्न भयो. **"आत्मज उत्पन्न इति...अतः आत्मनः सकाशात् जातः पुत्रएव अयम् इति नन्दस्य बुद्धिः"** (सुबो.१०।५।१) तो नन्दकु आत्मज जो उत्पन्न भयो, और वहां अजको भी आत्मजत्व हे वामें. आत्मजत्व कैसे हे? याको लौकिकदृष्टिसू या लौकिकतर्कन्सू समाधान सम्भव नहीं हे. प्रभुकी अचिन्त्य सामर्थ्यसू ही या प्रश्नको समाधान सम्भव हे. याके लिये वहां जैसे यशोदानन्दनत्व बतायो वा तरहको यहां **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्.** में जा गोपिकानन्दनत्वको निषेध हे वाको ये तात्पर्य समझनो चइये.

(शृंगाररसभाववत्त्वात् कटाक्षोक्ति)

दूसरी बात लालूभट्टजी केह रहे हें **अथवा व्रजसुन्दरीणां शृंगाररसभाववत्त्वात् कटाक्षोक्त्या यशोदानन्दनत्वनिराकरणं ज्ञेयम्.** कहें हें कि वो नन्दात्मज हे कि नहीं हे, वो देवकीनन्दन हे कि नहीं हे, या बातकी चर्चा या प्रसंगमें क्यों उपस्थित भई? तो कहें हें कि व्रजसुन्दरीन्के भाव शृंगाररसके भाव हें. वो निर्गुण हें तो क्या भयो! निर्गुण हें या लिये उनकु सब खबर हे. निर्गुण होवेको उनकु ये लाभ भयो कि उनकु ये सीक्रेट् पता चल गई और शृंगाररसभाव भी उनके हें तो यहां कटाक्षोक्तिसू केह रही हें, ये कटाक्ष भगवान्पे कियो जा रह्यो हे कि तुम काहेकु गोपिकानन्दन बनोगे? जब हमारो ख्याल नहीं रखो तो काहेके गोपिकानन्दन! या तरहकी शृंगाररसकी कटाक्षोक्ति हे. वर्णनको अर्थ और वर्णनको प्रयोजन दोनोंन्कु लालूभट्टजीने कितनी सफाईसू समझायो हे. वर्णनको अर्थ और प्रयोजन क्या? वर्णन तो ये हे कि प्रभु अचिन्त्य सामर्थ्यवालो होवेके कारण अज होते भये भी नन्दात्मज हो सके हे और वर्णनको प्रयोजन ये हे कि यहां शृंगाररसभावमें कटाक्ष कर रही हें. वस्तुतः निरूपण या विधान नहीं कर रही हें.

(भवान्!)

याश्लोकसु पेहलेके तीन श्लोकनूमें, राजसी त्रिविध गोपिकानूके राजस तामस और सात्त्विक भावनूको निरूपण कियो. ये राजस तामस और सात्त्विक भाव राजसी गोपिकानूके हते. इनमें कल संक्षेपमें ये बतायो कि ये सब भगवानूकु 'तू' केहके चलें हें. ये पेहली गोपिका निर्गुण आई हे जो भगवानूकु 'तू' नहीं केहके 'आप' केह रही हे. ध्यानसू देखो तो सब जगह तू शब्द आयो हे. **''जयति तेऽधिकं''** **'ते'** मने तेरो, **''सुरतनाथ ते''** यहां भी **'ते'** आयो, **''ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः''** यहां भी **'ते'** आयो हे. ये जितनी भी राजसी गोपिकायें हें ये भगवानूकु 'तू' केहके सारी बात अपनी अपनी बता रही हें. गोपीगीतमें पेहली बार ये गोपिका भगवानूकु **'भवान्'** केह रही हे. अब कोईकु 'तू' केहनो और कोईकु 'आप' केहनो, वामें जो अन्तर हे वह राजसगोपिकाको और निर्गुणगोपिकाको संक्षेपमें पेहलो अन्तर हे. बाकीको जो कुछ कह्यो वो तो सब 'तू' और 'आप' को विस्तार हे. कुछ 'तू' को विस्तार हे और कुछ 'आप' को विस्तार हे. कोई आदमीकु अपन् 'तू' कब केह सकें? जब अति निकटता होय और 'आप' कब बोलेंगे कि जब अति सन्मानकी भावना होय. निर्गुण गोपिका भगवानूकु 'आप' केह रही हे. आपके सारे गुणनूको निरूपण कर रही हे. त्रिविध गोपिकानूने भगवानूकु 'तू' कह्यो और 'तू' को सारो विस्तार उनने कियो.

(स्नेहः पापशंकी)

एक प्रश्न कल संक्षेपमें येभी भयो कि उत्तम गोपिका कौनसी? वापे चर्चा भई. 'तू' केहवेवाली गोपिका उत्तम या भगवानूकु 'आप' केहवेवाली गोपिका उत्तम? उत्तमको विचार करें तो ऐसो लगे कि अपने मनकी स्थिति जा बखत व्याख्या करवे जायें ऐसी हो जाये जैसे संयोगकी और विप्रयोगकी स्थिति हे. भगवानूको संयोग अपनेकु

निरन्तर अनुभवमें आतो होय तो विप्रयोगपे ध्यान चल्यो जाय और भगवान्‌को जा बखत विप्रयोग ध्यानमें आ रह्यो होय, तो संयोगपे ध्यान चल्यो जाय. कैसे? दो तरहसु. एक तो ''स्नेहः पापशंकी'' कह्यो जाय. स्नेह पापशंकी हे. पापशंकी मने कि जितनो अधिक स्नेह, उतनो अधिक वा सम्बन्धके दुःखकी आशंका आपकु बनी रहे. स्नेहके पापशंकी होवेको ठाकुरजीने कितनो लाभ उठायो, याकु अंग्रेजीमें 'एक्स्‌प्लोइटेशन्' कहें हे. स्नेहके पापशंकी स्वभाव होवेको एक्सप्लोइटेशन् ठाकुरजीने कितनो कियो. एक तो स्नेह पेहलेसे ही पापशंकी और वामें हर वक्त असुर आते रहे. सारे व्रजभक्त हमेशा टेन्शन्‌में ही रहे कि जरा भी ठाकुरजीसू ध्यान बट्‌यो नहीं कि कोई न कोई असुर आ जायेगो. हर वक्त एक तो स्नेह और स्नेहमें होती शंकायें कुशंकायें कि कुछ न कुछ हो जायेगो. अब जापे स्नेह नहीं होवे, वाकु कुछ भी हो जावे तो शंका नहीं होवे. जापे स्नेह होवे, वाकु कुछ भी नहीं होवे तो भी अपनेकु वाकी सारी बातन्‌में कुछ होवेकी शंकायें होती रहें. याको मतलब स्नेह पापशंकी. या स्नेहके पापशंकी होवेको लाभ भी ठाकुरजीने कितनो उठायो हे! जब भी जरा स्नेहमें न्यूनता आई तो कोई न कोई असुर आयो. जब भी स्नेहमें थोड़ी भी न्यूनता आई तो कुछ न कुछ उपद्रव भयो. स्नेहको स्वभाव आखो इतनो विचलित हो गयो, कि क्या भयो? फिर पूरी तत्परता आ गई. मने एक मिनिट्‌की मनकु फुरसत नहीं लेवे देनी.

एक तो स्नेह अपने आपमें ही या प्रकारको होवे हे कि मनकु फुरसत नहीं लेवे दे, वापे जो हर वक्त या तरहके असुरन्‌के आवेके कौभाण्ड होते रहें, तो पापशंका कितनी प्रबल रहे? या न्यायसू संयोग जा बखत चल रह्यो होय वा बखत पापशंका बनी रहे. अभी सुबह हो जाये और ठाकुरजी भग जायें तो? अभी आ रहे होंय और बीचमेंसु कोई और भक्त पधराके ले जाये तो?

मने पचास ढंगकी पापशंकायें मनमें चलती रहें.

(मनोरथकी गति)

अब जब जीवकु प्रभुको संयोगानुभव मिल रह्यो हे वा बखत या तरहसु विप्रयोगमें मन जावे, अनजाने जावे, अनियत जावे पर जावे जरूर हे. जा बखत विप्रयोग होवे, वा बखत भगवान्के संयोगपे मन जावे. दो तरहसु जावे. भूतमें भी और भविष्यमें भी. जो लीलायें भई उनकी पुनःचर्वणा होवे. जैसे गाय जुगाली करे. ऐसे अनुभव जो भगवान्के साथ लीलाके भये, उनकु अपन् चर्वण करें. मनोरथके अनुसार भी, वो मनोरथें ऐसे होवें कि वो जब पूरे होवें तब होवें पर विप्रयोगके कारण आसक्तिभ्रमन्यायसू वा मनोरथकु अनुभव करवे लग जाये. भविष्य सम्बन्धी लीलायें हें, उन सम्बन्धी मनोरथ हें, वो आसक्तिभ्रमन्यायसू, अनुभव करवे लग जाये. या तरहसू जीव विप्रयोगमें जब होय तब संयोगमें दोड़े और संयोगमें जब मन होय तब वो विप्रयोगमें दोड़े. ऐसी मनकी स्थिति होवे हे. तो जो 'तू' केह रही हे, वामें एक जातको आप छिप्यो भयो हे. जो 'आप' केह रही हे, वामें एक जातको 'तू' छिप्यो भयो हे. जो प्रभुकु 'तू' कह्यो हे वो कोई असम्मानके लिये नहीं कह्यो हे, स्नेहसू ही कह्यो हे. जो आप प्रभुकु कह्यो हे वो कोई सम्मानके लिये नहीं कह्यो हे, वो भी स्नेहसू कह्यो हे. यहां तक कल बात करी थी. क्योंकि स्नेह समान हे और स्नेहमें सम्मानको प्रश्न इतनो बड़ो नहीं हे गौण हो जाय पर स्वभाव हे और वो स्वभावके अनुरूप सम्मान दे हें पर वो सम्मान देते भये भी वामें भाव 'तू' को ही हे. भाव 'आप' को नहीं हे. गोपीनूमें अन्तरंगतर और अन्तरंगतम के लिये एक बात निश्चित समझो कि जितनी भी गोपिकायें हें इनमें अन्तरंगतर और तम को भेद नहीं हो सके हे. व्रजभक्त, तामसप्रकरणके तामस भक्त जितने भी हें, वो चाहे निर्गुण होंय, चाहे सात्त्विक होंय, चाहे राजस होंय, हें सब अन्तरंगतम ही. प्रकरणकु

तामस या लिये ही कह्यो हे. तमसू जो तामस होय वो 'तामस' केहवावे. तम सम्बन्धी वो 'तामस' केहवावे. ये व्याकरणकी बात नहीं हे पर एक उपहासके रूपमें केह रह्यो हूं. तमसू जो भव हे वो तामस हे. ये जितने भी भक्त हें वो सब भगवान्के अन्तरंगतम हें. तमके दो अर्थ होवें. एक तो सुपरलेटिव् और दूसरो अंधकार अज्ञान आग्रह. यहां वो तामस क्या हे कि वो सब सुपरलेटिव् भक्त हें. कोईभी कम्पेरेटिव् नहीं हे और न ही फर्स्ट डिग्रीके हें. सब सुपरलेटिव् हें. तमसू जो भव हो वो तामस, या अर्थमें लेनो. व्रजके सारे भक्त तामस हें. अब वो चाहे निर्गुण होंय तो भी तामस हें, सात्त्विक होंय तो भी तामस हें, राजस होंय तो भी तामस हें. क्योंकि लीला तामसलीला हे और तमलीला हे.

(परस्पर शोभातिशय)

चैतन्य सम्प्रदायको रूपगोस्वामीको एक श्लोक हे "**हरिः पूर्णः पूर्णतरः पूर्णतमः**" (रूपगोस्वामी) द्वारिकामें भगवान् पूर्ण हें, मथुरामें पूर्णतर हें और व्रजमें वो पूर्णतम हें. पूर्णतमसू सम्बन्धित लीला, वो तामसलीला हे. हरि पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम हें. अब पूर्णकु पूर्णतर और पूर्णतम केहवे जाओगे तो वाको कुछ अर्थ नहीं निकलेगो. पूर्णकु पूर्णतर और पूर्णतम क्या? या अर्थमें गोकुलमें जो हरि हे वो पूर्णतम हे. वो पूर्णतर नहीं हे, वो पूर्ण नहीं हे केवल. ये आप निश्चित समझो. वाके लिये वा अर्थको, वा अर्थमें अपन् कोई जातको भेद नहीं करेंगे.

पर होवे क्या जैसे आलम्बनविभाव और स्थायीभाव की शोभा परस्पर हे. एककु छोड़के दूसरेमें नहीं हो सके हे. जा बखत आलम्बनविभावपे दृष्टि जाये, वा बखत स्थायीभावपे दृष्टि नहीं जाये. जा बखत स्थायीभावपे दृष्टि जाये, वा बखत आलम्बनविभावपे न जाये दृष्टि तो न जाये पर वा मस्तीमें भक्त चाहे जो कुछ भी बोले, वो सब मधुर हे

और वो सारी बातें सत्य हें, जहां तक वो अपने दायरेमें बात कहे हे. जैसे जा बखत आलम्बनविभावको अनुभव हो रह्यो हे, आलम्बनविभाव मने प्रभु, स्थायीभाव मने स्नेह. जा बखत प्रभुको अनुभव हो रह्यो हे, वा बखत स्नेहपे दृष्टि न जाये, वा बखत जीव मान करे. भक्त मान करे जोकि स्नेहके विपरीत भाव हे. रोष करे जोकि स्नेहके विपरीत भाव हे. अब चाहे मान करे चाहे रोष करे चाहे ईर्ष्या करे चाहे जो करे वो सब संगत हे. क्योंकि आलम्बनविभाव सामने हे. भक्त भगवान्‌पे रोष कब कर सके? जब वाकु अपने स्नेहकी परवाह नहीं होय पर स्नेहकी परवाह कितनी देर तक नहीं? जितनी देर तक प्रभु सामने होंय उतनी देर तक. अत्यधिक मान कियो, या अत्यधिक रोष कियो और प्रभु तिरोहित हो जायें तो फिर स्नेहके बिना चारा ही क्या हे? स्नेहसू लापरवाह कितनी देर तक रह्यो जा सके हे? जितनी देर तक प्रभु सामने हें उतनी देर तक. क्योंकि उतनी देर प्रभुके सामने होवेकी मस्ती हे ना! प्रभुके सामने होवेकी मस्ती हे यासू स्नेह उतनी देर प्रभुसू लापरवाह हो सके हे. सामने होवेकी मस्ती जरा भी खण्डित भई तो फिर स्नेहसू लापरवाही चल नहीं सके हे. क्योंकि वाके बाद यदि लापरवाही चली तो रसाभास हो जायेगो.

(सेवामें मनको लगनो/प्रभुमें अखण्डवृत्ति)

अभी कल या परसू कोई पूछ रह्यो थो. “रोज सेवा करें पर कोई दिन मन लगे और कोई दिन मन नहीं लगे.” कारण क्या? क्योंकि ठाकुरजी सामने हें. येही कारण हे. ठाकुरजीकी सेवा तो रोज करनी हे पर कोई दिन मन लगे और कोई दिन मन नहीं भी लगे. कारण क्या? कारण तो ठाकुरजी ही हें. यदि ठाकुरजी सामने नहीं होंय और फिर भी मन (न) लग जातो होय, तो भक्तिको अधिकार नहीं हे. अब सामने हें और सेवा चल रही हे, मन नहीं लग रह्यो हे तो कछु जस्टिफिकेशन् हे वाको. बहोत

जस्टिफिकेशन् नहीं हे पर जबतक ठाकुरजीको सानिध्य हे और जीव जबतक प्रभुके सन्मुख हे, बहिर्मुख नहीं हे, तब तो मन लग्यो तो भी मंजूर और न भी लग्यो तो भी मंजूर. प्रभुके सन्मुख अगर हे तो वो शीतलभाव भी हम कहेंगे कि मंजूर हे. बहिर्मुख भयो प्रभुसू तो फिर तापभाव भी जस्टिफायेबल् नहीं हे.

अभी हम श्रीहरिरायजीके स्कूलकी बात नहीं कर रहे हें. ये स्कूल श्रीगुसांईजीकी स्कूल हे. ये हम श्रीगुसांईजीकी स्कूलमें बोल रहे हें कि शीतलभाव भी मंजूर हे बशर्ते जीव प्रभुके सन्मुख होय तो. एक सामान्य कारण बताऊं कि जहां फलात्मक निरोध सिद्ध हे, वहां प्रभुकी उपेक्षा व्रजभक्तन्ने करी हे. अब व्रजभक्तन्ने प्रभुकी उपेक्षा करी हे तो याको अर्थ ये नहीं लेनो कि अपन्कु भी प्रभुकी उपेक्षा करनी. तब तो महाभारतको तात्पर्य गलत समझोगे. महाभारतकी कथा भई. वामें कोईकु पूछी गई कि "क्या तात्पर्य समझमें आयो?" उनने कही कि "सती द्रोपदीके पांच पति हते, तो कमसू कम दो चार तो हम भी कर सकें." भई! महाभारतको ये तात्पर्य नहीं हे. महाभारतको तात्पर्य ये हे कि पांच पति हते तो महाभारत हो गई. एकाध पति होतो तो महाभारत नहीं होती. तो वैसो तात्पर्य नहीं लेनो पर एक तथ्यपे ध्यान दो.

व्रजभक्तन्कु भी कई बखत प्रभुमें उपेक्षा जागी हे. व्रजभक्तन्कु भी उपेक्षा मान रोष सब भाव जगे हें पर जहां फलात्मक निरोध सिद्ध हे वहां ये लीलायें हें. अब तुम कौनसे सुर्खाबके पर लगाके आ जाओगे कि जो अभीसे डिमान्ड् कर रहे हो! तुम्हारो फलात्मक निरोध तो सिद्ध हे नहीं और तुम सोच रहे हो कि तुम्हारेमें ऐसी अखण्डित वृत्ति स्थापित हो जाये कि अहर्निश "**विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति**" (भाग.पुरा.११।१४।२४). या तरहकी भगवद्भावात्मिका अखण्ड वृत्ति स्थापित हो जाये! ये करोगे

तो अनधिकार चेष्ठा होगी. होनी तो येही चइये. वाको ऐसो तात्पर्य मत लीजियो नहीं तो जैसे महाभारतको खोटो तात्पर्य लियो वैसी बात होयगी, पर या तथ्यकु भी जीवनमें कभी मत भूलियो कि जिन व्रजभक्तनूकु फलात्मक निरोध सिद्ध हे, उनके साथ भी ये लीला भई हे तो तुम कौनसे सुर्खाबके पर लगाये भये आ गये कि तुमकु अखण्डवृत्ति भगवानूमें स्थापित हो जायेगी!

(प्रभुसन्मुखता)

अरे! ये कोई कम बात हे कि तुम प्रभुके सन्मुख हो. अगर आचार्यचरण प्रकट नहीं भये होते तो वस्तुतः ये सन्मुख होवेको लाभ कोई कालमें कोईकु मिल ही नहीं सकतो थो. या अर्थमें मैं अपने घरमें ठाकुरजीकी सन्मुखताकु मानूं हूं, मन्दिरनूमें दर्शननूमें मैं सन्मुखता नहीं मानूं हूं. वो तो भगवान् अपने सन्मुख होवें हें. अपन् भगवानूके सन्मुख नहीं होवें हें. अपने घरमें अपन् ठाकुरजीके सन्मुख होवें हें. भगवानूके सन्मुख होवेको मतलब क्या कि अपनी देहन्द्रियादिकनूकी वृत्तिनूकु भगवानूमें लगानी. ये अपनो भगवानूके सन्मुख होनो हे. जब अपन् भगवानूकु एक रुपिया भेंट धर रहे हें और वाके अनुरूप भगवान् हमकु एक लड्डू या मठड़ी दे रहें होंय या भगवानूकु हम दो रुपिया भेंट धर रहे होंय और भगवान् हमकु वाके अनुरूप दो लड्डू या मठड़ी दे रहें होंय तो भगवान् हमकु आरोगा रहे हें, हम भगवानूकु नहीं आरोगा रहे हें. वामें तो फिर दूसरो क्रम आ जाये. इन क्रमनूमें भेद हे. भगवानूको अपने सन्मुख होनो और अपनो भगवानूके सन्मुख होनो, दोनोंमें भेद हे पर अपने यहां प्रभुके सन्मुख होनो जा अर्थमें बतायो गयो हे वा अर्थमें प्रभुके सन्मुख होनो कोई साधारण बात नहीं हे. इतनी सन्मुखता जो अपनी प्रभुसू निभे, तो आपको संसारावेश नहीं होनो चइये, नहीं होनो चइये और नहीं होनो चइये और यदि हो जायेगो तो क्षम्य हे, क्षम्य हे और क्षम्य हे. अक्षम्य नहीं हे. ये बात कभी मत भूलियो

पर ये बात याद रखियो कि वो क्षम्य हे पर जस्टिफायेबल् नहीं हे. जस्टिफायेबल् होनो और क्षम्य होनो, दोनों बातनूमें थोड़ो अन्तर हे. ये क्षम्य अपराध हें, क्योंकि व्रजभक्तन्को जो ये भाव भयो हे, वा भावमें अपने हृदयको दोष, दीनतावश, बुरो माननो ही चइये.

(आशाको भी आस्वादन!)

पर, यदि मनमें सात्त्विकभाव नहीं होय, तामसभाव होय तो थोड़ो कह्यो जा सके कि आधो दोष तो प्रभुको भी हे. यदि थोड़ी तामसकी भाषा अपन् अपना लें तो निश्चित वामें ये कह्यो जा सके कि वामें थोड़ो दोष प्रभुको भी हे. अब वो दोष प्रभु नहीं रखें तो विप्रियोगानुभवको तो अपने जीवनमें कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं होयगो. जैसो विप्रयोग, जैसो विरह इन व्रजभक्तनूकु भयो, ऐसो तो अपनो हृदय ही कहां हे कि अपनेकु विप्रयोग हो सके? मगर एक सामान्य बात समझो कि कभी ठाकुरजीके बिना ही आप पहोंच गये और दिलमें आपकु और कछु नहीं पर सूनोपन ही लग्यो, भले आँखमें आंसू नहीं आये, भले आपके चित्तमें विगलितभाव नहीं आयो, आर्द्रता नहीं आई, थोड़ोसो कन्टाला भी आयो कि आज मन नहीं लग रह्यो हे, तो याकु जीवनकी सबसू बड़ी उपलब्धि समझियो. एक बखतकी सेवा छूटवेमें मनमें थोड़ोसो कण्टाला आयो कि मन नहीं लग रह्यो हे, सेवाको जो टाईमटेबल् हतो वो छूट गयो हे आज, ये भी कम चीज नहीं हे. हर जीवकु नहीं मिल सके हे. ये एक बहोत बड़ी उपलब्धि हे.

जैसे हमने वहां शेर सुनायो थो, **“गुन्चे तेरी जिन्दगीपे रश्क होता हे. तू एक तब्बसुमके लिये खिलता हे. गुन्चेने कहा हसकर, ऐ बाबा! एक तब्बसुम भी किसे मिलता हे?”** (जोश मलीहाबादी) हरेककु तो नहीं मिले. ये जो एक स्माईल् हे, जा स्माईल्के लिये फूल खिले हे, वो हरेककु तो नहीं मिले हे. इतनो जो अपनेकु

सूनोपन मेहसूस होवे पर जब अपने माजना देखो तो वो एक बहोत बड़ो एचीवमेंट् हे ऐसो लगे. याको महाभारतकी तरह उलटो अर्थ मत लीजियो. इतनेसू ही संतुष्ट नहीं हो जानो. संतुष्ट हो जाते होंय तो ये समझियो कि ये पुष्टि नहीं हे, पर जो उपलब्धि हे वाकु इन्कारवेकी वृत्ति भी खराब हे. उपलब्धिकु रेलिश् करनो सीखो. मने अपनो जो भी छोटो बड़ो एचीवमेंट् हे वाकु रेलिश् करनो आनो चइये. आगे और मनोरथ करने चइयें. एक मनोरथ पूरो भयो तो दस मनोरथ पैदा होने चइयें पर एक मनोरथ जो पूरो भयो और वाकी आपने उपेक्षा करी तो फिर आपके नौ मनोरथ पूर्ण नहीं होयगे. एक मनोरथ जो आपको पूर्ण भयो वाकु आपने रेलिश् नहीं कियो, वाकु आपने मान्यो नहीं, अपने हृदयसू वाकु बंधायो नहीं, तो आगे क्या चलेगो?

याही लिये अपने यहां ठाकुरजीके जन्मसू पेहले ही बधाई बेठ जाये. जब अपनेकु आशा बंध जाये कि फल प्रकट होवेवालो हे तबसु बधाई शुरु होवे हे. ये बात याद दिलावेके लिये कि क्या चीज होवेवाली हे. आशासु बधाई शुरु होवे और फलसु तो लीला शुरु हो जावे हे. जन्माष्टमीके दिन अपने यहां थाली जो बजे, वो पंद्रह दिन पेहलेसु बजनी शुरु हो जाये. क्योंकि आशा हे, ये क्या कम बात हे! वा थाली बजवेको नियम कुछ ऐसो हे कि जब पुत्र जन्में तब थाली बजे पर अपन् पुत्रजन्मकी आशामें थाली बजावें. पुत्रजन्मकी आशा भई ये क्या कम साधारण बात हे? कौनकु होवे आशा? रोते रहें लोग उनकु आशा नहीं होवे. ये क्या कम एचीवमेंट् हे कि आशा भई? अपने मनमें जो सूनोपन आयो कि आज सेवा नहीं मिली, आज टाईमटेबल्में कुछ मिस् हो रह्यो हे. इतनो अधिकार तो बहोत बड़ो अधिकार हे. इतनो अधिकार मिल्यो तो वाको आनन्द लो, खूब आनन्द मानो. आगे बढ़वेकी कोशिश करो. वाको ढीलो मत कर दो कि ये क्षुद्र अधिकार हे. यदि समझ पाओ तो ये क्षुद्र अधिकार नहीं हे बहोत बड़ो अधिकार हे.

(भगवद्भावन्कु तोल नहीं सके)

या तरहसू भगवद्भावमें, तामस अथवा निर्गुण भाव तो अपने अपने स्वभावके कारण प्रकट हो रहे हे. मने अपने सगुणभाव जाके अन्दर तामस राजस सात्त्विक भाव हें, वो तो स्वभावके कारण प्रकट हो रहे हें. ऐसेही निर्गुणभाव भी स्वभावके कारण प्रकट हो रह्यो हे. इन सारे सगुण और निर्गुण भावके बीचमें पुर्‌यो भयो एक स्नेहभाव तो सबको समान हे, सबको अखंडित हे और वा स्नेहमें कोई जातको अन्तर नहीं हे. अब इनकी यदि पारस्परिक तुलना करवे जायेंगे तो कौनसो भाव भारी, तो स्थिति ऐसी होयगी कि जैसे संयोगमें अपनेकु विप्रयोग अच्छो लगे और विप्रयोगमें अपनेकु संयोग अच्छो लगे. मने मीठो खा रहे होंय तो खारो तीखो नमकीन अच्छो लगे. खारो तीखो मीठो खा रहे होंय तो फीको अच्छो लगे. हर बखत जो खाओ वाके विपरीत ही अच्छो लगे. मीठो खानो शुरु करो तो खारो तीखो खावेकी इच्छा हो जाये मनमें. जो कछु खाओ पर जीभ कोई दूसरो स्वाद मांगवेकी इच्छा करवे लगेगी. तुम चाहो कि नहीं चाहो पर जीभ अपने आप मांगवे लग जायेगी. ऐसे ही खारो तीखो फीको कुछ खाओ तो जीभ अपने आप मांगवे लग जायेगी कि "कुछ मीठो लाओ." वामें एक विपरीत भाव छिप्यो भयो हे, तद्वत् वा तामसभावमें निहित एक निर्गुणभाव छिप्यो भयो हे. निर्गुणभावमें एक सगुणभाव छिप्यो भयो हे. जब तोलवे जाओगे तो तोल हो नहीं पायेगी. क्योंकि जा बखत जा भावकु तोलवे जाओगे तो ये लगेगो कि ये भाव भारी हे कि वो भाव भारी हे. वा न्यायसू इनकी पारस्परिक तुलना नहीं हो सके हे. इन सारे भावन्कु क्रमशः चाहो तो रेलिश् कर सको हो. अब वकालत कौनसे भावकी करनी? तो प्रत्येक भक्त अपने अपने भावकी वकालत तो करेगो ही और जा बखत भक्त अपने भावकी वकालत करेगो तो वो अपने स्वभावके अनुरूप करेगो. तुम्हारो हृदय भी तुम्हारे भावकी वकालत करेगो. अब जा बखत तुम्हारो हृदय

तुम्हारे भावकी वकालत करेगो, तो वाके कारण वोही भाव तुमकु अच्छो लगेगो. जबतक तुम अपने भावकी वकालत कर रहे हो, तबतक तो कोई गड़बड़ी नहीं हे पर जा बखत तुम दूसरेके भावकी वकालत नहीं करके खण्डन करो, तो गड़बड़ी आ जाये. जबतक तुम अपने भावकी वकालत करोगे कि "मेरो भाव निर्गुण हे और निर्गुणभाव सर्वश्रेष्ठ." तो कोई गड़बड़ी नहीं हे पर निर्गुणभाव सर्वश्रेष्ठ नहीं केहके यों केहवे जाओ कि "तामसभाव अश्रेष्ठ" तो गड़बड़ी हो जाये. क्योंकि तब तुम्हारो ध्यान अपने भावकी वकालतपे नहीं हे, दूसरेके खण्डनपे हे. ऐसे ही संयोग परमफल कि विप्रयोग परमफल? जाको हृदय संयोगको परमफल मानतो होय, वो यदि यों कहे कि संयोग परमफल तो कोई गड़बड़ी नहीं हे पर वो यदि यों कहे कि "विप्रयोग परमफल नहीं" तो गड़बड़ हे. जाको हृदय यों केहतो होय कि "विप्रयोग परमफल" तो कोई गड़बड़ी नहीं, विप्रयोग परमफल हे. पर यदि वो यों केहवे लग जाये कि "संयोग परमफल नहीं प्रभुके साथ" तो गड़बड़ हो जाये. परमफल दोनों हें. इनकु तोल्यो नहीं जा सकेगो. एक दूसरेकु तोलोगे तो गड़बड़ होयगी. जब तुम एककु नापोगे तो ये ज्यादा दीखेगो और जब दूसरेकु नापोगे तो वो ज्यादा दिखाई देगो. ऐसे तुमकु ये नापनो ही नहीं आयेगो कि कौन कौनसू ज्यादा? जब तुम एक एक भावकु उत्तरोत्तर अपने हृदयमें तोलते चले जाओगे तो तुमकु एक एक भावकी उत्कृष्टता समझमें आती चली जायेगी.

या न्यायसू कल हमने थोड़ी ये बात बताई हंसूभाईके प्रश्नपे कि निर्गुणभाव श्रेष्ठ क्यों हे. निर्गुणभाव श्रेष्ठ या लिये हे कि जामें ज्ञानीके जैसो निर्गुणभाव हे वामें स्नेह कैसे हो सके हे? हमने एक उदाहरण दियो. श्यामदास हमारे यहां आयो और वाकु घबराहट हो गई कि रसेल्कु बांचके श्यामूबाबा आस्तिक क्यों (कैसे)? वाकु ये घबराहट हो गई कि एक बाजु रसेल् बांचें और दूसरी बाजु

आस्तिक! क्योंकि दोनों विरोधी चीज हें. ऐसे ही जामें ज्ञानीके सदृश निर्गुणभाव हे वामें स्नेह क्यों (कैसे)? यदि स्नेह हो रह्यो हे तो वो ज्ञानके स्वभावसू तो नहीं हो रह्यो हे, केवल भगवत्कृपासू ही हो रह्यो हे. तामसभावमें हमने कल एक बात बताई हती. ज्ञानीको दो तरहसू इलाज करनो पड़े. क्योंकि जो संसारी जीव हे, वाके तो सिर्फ संसारको ही इलाज करनो पड़े. भक्तिरसको इलाज नहीं करनो पड़े. संसारीको मतलब क्या कि "जाकी संसारमें भक्ति हे." तो वाकु संसारको ही ओपरेट् करनो पड़े. वाकी भक्ति तो ठीक ही हे, मात्र वाके संसारकु ओपरेट् करके भगवान् बेठावे पड़ें. बाकी ज्ञानीके तो दो इलाज करवे पड़ें. क्योंकि वाने ज्ञानाग्निके कारण तपा-तपाके अपनो भक्तिरस सूखा लियो हे और संसार भी छोड़ दियो हे. अब एक तो वाकु भगवान् सप्लाई करने पड़ें और एक भक्तिरस सप्लाई करनो पड़े. तो वाकु दो-दो रस सप्लाई करने पड़ें. जो संसारी हे वाकु खाली एक भगवान् ही सप्लाई करनो पड़े. भक्तिरस तो वाके हृदयमें मौजूद हे ही, तो यहां वाकु दो सप्लाई करने पड़ें. या दृष्टिसू ज्ञानीको भक्त होनो बहोत कठिन बात हे. या लिये आचार्यचरण कहें हें "**ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्मात् नास्ति अधिकः परः**" (त.दी.नि.१।१४) वासू ज्यादा अनुग्रहको उदाहरण मिलनो बहोत मुश्किल हे कि ज्ञानी होते भये भी कृष्णको भजन कर रह्यो हे. मने यदि ज्ञानी हे तो कृष्णभजन नहीं हो सके हे. यदि कृष्णभजन कर रह्यो हे तो मानो ज्ञानी नहीं हे. पर ऐसी बात नहीं हे. ज्ञानी भी कृष्णभजन कर सके हे. कर सके हे तो वाकु परमकृपाको विषय मान्यो गयो हे. तो ये निर्गुणगोपिकायें ज्ञानी हें फिरभी इनको (निर्गुणगोपिकान्को) भगवान्में स्नेहभाव उतनो ही दृढ़ हे जितनो कि तामसगोपिकान्को. अब वो बेलेन्स् कैसे हो पा रह्यो हे? "वो थू जाण और थारो राम जाणे." वो अपन् नहीं केह सकें कि ये बेलेन्स् क्यों हो पा रह्यो हे? कैसे हो पा रह्यो हे? ये उनके ज्ञानके स्वभावसू तो नहीं हो पा रह्यो हे.

(हठेन दासीकृता)

जैसे गोपिकान्के वयके स्वभावसू तो रासलीला सम्भव नहीं हती. वयके स्वभावको विवेचन करो तो रासलीला सम्भव हती क्या! कोई तो पांच सालकी हती, कोई छे सालकी हती. तो रासलीलाको प्रसंग ही उपस्थित नहीं होवे हे. तो वयके स्वभावसू तो रासलीला संभव नहीं हे. भगवान्की कृपा या भगवान्की शृंगारात्मिका दृष्टि वाके कारण वो रासलीला संभव भई. वहां भगवान्की रसात्मिका दृष्टिके कारण रासलीला संभव हे, वयके कारण रासलीला नहीं हे. ऐसे ही इन निर्गुणगोपिकान्कु ज्ञानके कारण स्नेह नहीं हे पर ये ज्ञानी हें तबभी भगवान् इनकु लूट रहे हें. इनके ज्ञानकु लूटके इनमें स्नेह पैदा कर रहे हें.

जैसे मधुसूदन सरस्वती कहे हें "**अद्वैतवीथिपथिकै: उपास्या: स्वाराज्यसिंहासनरत्नभूता: शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन.**" (मधुसूदनसरस्वती). अद्वैतवीथि मोनीज़म्की जो लेन् हे, वामें दोड़ दोड़के आवेवाले 'पथिक'=वामें चलवेवाले जो यात्री हें, वो जहां पहोंचनो चाहें हें, उनकी डेस्टिनी टोटल् इन्डिपेन्डेन्स् हे, इट् इज़् नोट् रिलाईंग् ईवन् ओन् गॉड्. "**अहं ब्रह्म अस्मि**" (बृह.उप.१।४।१०). अद्वैतपथके पथीक जाकु अपनो अन्तिम लक्ष्य माने हे वैसो जो स्वाराज्यसिंहासन वाके तो हम स्वयं हीरा जैसे हें, कहे रहें हें "आई एम् लाईक् एन् डायमन्ड् ओन् द् थ्रोन्." (मने उत्कृष्टतम फलोपभोग करवेवाले हें). पर क्या करें! कोई एक बदमाश ऐसो हे कि जाने जबरदस्ती हमकु अपनो गुलाम बना लियो हे. अब क्या कियो जा सके हे! वो बदमाश स्वयं पाछो गोपवधूनके पीछे पीछे घूमवेवालो खुद उनको गुलाम हे.

(इत्थंभूतगुणो हरि:)

अब ये ज्ञानी हे भागवत कहें हे "**आत्मारामश्च मुनय: निर्ग्रन्थाअपि**

उरुक्रमे कुर्वन्ति अहेतुकीं भक्तिम् इत्थम्भूतगुणो हरिः" (भाग.पुरा.१।७।१०). जो मुनि हें और निर्ग्रन्थ हें मने उनके अन्दर किसी वासनाकी या कर्मकी कोई ग्रंथि नहीं हें, पर **"कुर्वन्ति अहेतुकी भक्तिम्"** भगवान्‌की अहेतुकी भक्ति करें हें. क्यों करें हें? ये अगर उनसूं पूछोगे तो वे केह नहीं पायेंगे (धे वोन्ट् बी एबल् टू गिव् एनी एक्स्प्लेनेशन् एज़् टू व्हाय् धे आर् डुईंग् धीस् भक्ति यट् धे आर् डिवोटेड्.) वाको कारण हे **"इत्थम्भूतगुणो हरिः"** या तरहके हरिमें गुण होवेके कारण भक्ति ज्ञानमें भी सम्भव हे. ज्ञानके स्वभावके कारण नहीं पर हरिके गुणन्‌के कारण. प्रभुके स्वभावके कारण प्रभुमें भक्ति सम्भव हे. ज्ञानमें या तरीकेकी कोई पोटेन्शियलीटी नहीं हे कि जो आपकु भगवान्‌को भक्त बना सके. देखो! ये निर्गुणगोपिकापे कितनी महती कृपा हे, वाकी बात कही थी.

(भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा)

परन्तु यदि आप ये सोचो कि निर्गुणगोपिका ही परम कृपाभाजन हे तो ऐसी बात नहीं हे. वा बाजु सामर्थ्यपे दृष्टि दोगे तो आश्चर्य होयगो कि अरे ये तामस हे! **"भगवति उत्तमश्लोके भवतीभिर् अनुत्तमा भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा...सर्वात्मभावो अधिकृतो भवतीनाम् अधोक्षजे विरहेण महाभागा महान् मे अनुग्रहः कृतः"** (भाग.पुरा.१०।४४।२५-२७) मने अक्षजज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान, वाकी जहां पहोंच नहीं हे, ऐसे विषयन्‌में तुमने केवल भक्ति करी या श्रद्धा करी होती तो तो और बात हती, पर तुमने वाकु देख्यो सुन्यो सूंघ्यो पकड़्यो नचायो पीट्यो. क्या क्या नहीं कियो वा अधोक्षजके साथ! जो अधोक्षज हे, जो देख्यो नहीं जा सके हे, वाके साथ इन तामसवती गोपिकान्‌ने क्या क्या व्यवहार नहीं कियो! सर्वात्मभावसु सब कछु कियो. ऐसो भाव ज्ञानमें तो सम्भव ही नहीं हो सके हे. सचमुचमें ये कार्य ज्ञानवाली गोपिका कर भी नहीं पायेगी. सारो स्नेह होते भये भी कुछ न कुछ बाधा तो वामें आ ही जायेगी.

निर्गुणगोपिकामें कुछ ड्रोबेक् अपनी निर्गुणताके कारण रहेगो पर स्नेहके कारण ड्रोबेक् नहीं हे. वो ड्रोबेक् निर्गुणताके कारण हे वो भगवान्कु पकड़के पीट नहीं पायेगी, हाथ पकड़के नचा नहीं पायेगी.

कहें हें जा बखत होरीकी धमाल चल रही हती और ठाकुरजी वहां पधारे तो सब गोपीन्ने उनकु पकड़ लियो. पकड़के साड़ी पेहराई चोली पेहराई काजल आंजे टीकी लगाई सारे शृंगार किये गुलाल लपेटी गोल गोल घुमायो मुंहपे गुलाल लगायो और कह्यो कि ''फिर आईयो या तरफ होरी खेलवे. **''नैन नचाय कह्यो मुसकाय लला फिर आइयो खेलन होरी''**. अब इतनी दुर्गतिन्के बाद फिर कौन होरी खेलवे जाये पर ठाकुरजी जावें हें. तो ये लीला तामसभक्त कर सकें हें पर निर्गुणभक्त ठाकुरजीकी ये फजीहत नहीं कर सकें. ये लीलाको अधिकार केवल तामसभक्तन्को ही हे. ऐसो अधिकार ठाकुरजी तामसभक्तन्कु ही देवे हें. अब तामस बड़ो कि निर्गुण बड़ो? कुछ कह्यो नहीं जा सके हे. अपने बलसु तो इतनो सोचनो कि दोनों ही बड़े और दोनों ही छोटे. निर्गुणतामें तामसताकी प्रधानता दीखेगी और तामसतामें निर्गुणताकी प्रधानता दीखेगी. यामें छोटे बड़ेको प्रश्न नहीं हे. ये सब प्रकरण संक्षेपमें कल हमने देख्यो.

टिप्पणी :

सख उदेयिवान् इत्यत्र, पूर्वमपि सखा यथेच्छम् इत्यादि. ''सुपर्णावेतौ सयुजौ सखायौ'' इति श्रुतेः अन्तरात्मा जीवस्य सखा भवति. प्रकृते च स्वरमणेच्छाम् अनतिक्रम्य तदनुरूपमेव अस्मान् प्रेरयसि इत्यर्थः. अतएव अस्माकं नायिकाभावएव सार्वदिक इति भावः. एतादृशस्य आगमनं नायिकायै स्वसमर्पणार्थमेव भवतीति तदेव कर्तुम् उचितम् इति भावः इति आशयेन आहुः आगतस्य इत्यादि.

विवरणम् :

(सख उदेयिवान्)

चोथे श्लोककी टिप्पणीमें श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें **सख उदेयिवान् इत्यत्र, पूर्वमपि सखा यथेच्छम् इत्यादि...अतएव अस्माकं नायिकाभावएव सार्वदिक इति भाव:. एतादृशस्य आगमनं नायिकायै स्वसमर्पणार्थमेव भवतीति तदेव कर्तुम् उचितम् इति भावः इति आशयेन आहुः आगतस्य इत्यादि.''** निर्गुणगोपिका होवेके कारण याकु ये रहस्य पता हे कि प्रभु अन्तरात्मा हें, अन्तर्यामी हें, अन्तर्दृष्टा हें और सखा हें. अन्तरात्माके (आत्माके) भी अन्तरात्मा हें, अन्तर्दृष्टा हें, प्रत्यग्दृष्टा हें, प्रत्यगात्मा हें और सखा हें. **''द्वासुपर्णोवेतो सयुजौ सखायौ/द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोर् अन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति''** (मुण्डकोप.३।१।१). श्रुतिमें ये बात बताई और ये गुणरूप बताये होवेके कारण, **श्रुतेः अन्तरात्मा जीवस्य सखा भवति.** भगवान् जीवके सखा हें क्योंकि आत्माके साथ प्रभु अन्तर्यामीके रूपमें बिराजे भये हें. **''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन! तिष्ठति भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत! तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्''** (भग.गीता १८।६१-६२). जा प्रकारको अन्तर्यामीको स्वरूप हे ईश्वरको, मने ऐसो अन्तर्यामी, निर्गुणगोपिका अब ये युक्ति दे रही हे कि हम यहां तक आये. हमने जो कुछ संवाद कियो और वा हमारे संवादको जवाब तू नहीं दे पायो तो ''मौनं सम्मति लक्षणम्.'' एक बात मैं कहूं और एक बात आप कहो और वाके बाद आप चुप हो गये. आपने जवाब ही नहीं दियो, वाको मतलब हे कि आपकी सम्मति हे. यदि आपको विरोध हे तो खण्डन-वण्डन करनो चइये. खण्डन-वण्डन नहीं कर रहे हो तो आपकी सम्मति हे.

(आत्मारामोऽपि अरीरमत्)

जब आपने कही कि चले जाओ! तो हमने वाको खण्डन कियो.

"मैवं विभो! अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलं प्राप्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यज अस्मान् देवो यथा आदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्" (भाग.पुरा.१०।२९।३१). जब हमने वाको खण्डन कियो और वाको जवाब आप नहीं दे पाये, आपने वामें मौन धारण कर लियो, तो ये "मौनं सम्मति लक्षणम्". एक तो हमकु प्रेरित करके अन्तर्यामी रूपसू यहां बुलायो तो वामें प्रेरक तो आप ही हते. जो हमने कह्यो तो वोभी तुम्हारी प्रेरणावश कह्यो होयगो. **"यो अन्तः प्रविश्य मम वाचम् इमां प्रसुप्तां संजीवयति अखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्"** (भाग.पुरा.४।९।६). जब सब कछु हस्त पाद शिर हृदय इत्यादिकूं प्रेरणा दे रह्यो हे तो आपके वचननूको खण्डन भी हमनें आपकी प्रेरणासूं ही कियो होयगो. कछु अपने बलबूतेपे तो कियो नहीं होयगो. राजकी प्रेरणासू राजके वचननूको खण्डन कियो. अब जब सारे काम आपकी प्रेरणासूं भये तो सिद्ध भयो कि **प्रकृते च स्वरमणेच्छाम् अनतिक्रम्य तदनुरूपमेव अस्मान् प्रेरयसि इत्यर्थः**. यदि तुमकु स्वरमणकी इच्छा होती तो अब अप्रकट होवेको, तिरोहित होवेको मतलब क्या कि तुमकु आत्मरमणकी इच्छा हे! मने **"आत्मारामोऽपि अरीरमत्"** (भाग.पुरा.१०।२९।४२). ये जो बतायो कि तुम आत्माराम हो, वामें तो हमारे कोई इन्कार नहीं हे. पर आत्माराम होते भये भी तुम ये रमण करनो चाहते हते वा कारणसू तो हम यहां तक आई. तुम रमण करनो चाहते हते तब तो हम तुम्हारी बातको खण्डन कर पाईं, नहीं तो ईश्वरकी वाणीको कोई खण्डन करे! अरे ज्यादासू ज्यादा खण्डन हो जातो पर यदि भगवदिच्छा नहीं होती तो यहां खड़े रेह पाते क्या! भगवदिच्छा नहीं होती तो उनके पुत्र उनके पिता उनके पति उनके भाई उनकूं खोजते खोजते यहां तक नहीं आ जाते क्या? क्या गड़बड़ी हो गई कि कोई नहीं आयो? कुछ न कुछ भगवदिच्छा तो नियामक ही हती और जा बखत भगवदिच्छा नियामक हती वा बखत हमारी बात टिकी. वाणीमें ही टिकी केवल

इतनो ही नहीं, अर्थ तकमें टिकी. तो सिद्ध भयो कि तुम्हारी इच्छा आत्मरमणकी इच्छा नहीं हे पर रासरमणकी हे.

जा बखत रासरमणकी इच्छा हे तब तुमने तदनुरूप हमकु प्रेरणा दी. अब बीचमें ये क्या गड़बड़ हो रही हे? याको एक्स्प्लेनेशन् लाओ. ये गोपिका एक्स्प्लेनेशन् मांग रही हे कि अन्तर्ध्यान होवेको प्रयोजन क्या? क्यों अन्तर्हित भये? निर्गुण हे यासूं भगवान्के सारे रास्ते जाने हे यासूं वो भगवान्सूं एक्स्प्लेनेशन् पूछ रही हे. **अतएव अस्माकं नायिकाभावएव सार्वदिक इति भावः**. यदि तुम्हारी आत्मरमणकी इच्छा होती तो हमारेमें नायिकात्व आतो कैसे? हम तो ऋषि हते या तो श्रुति हते. थोड़ी गोपिकायें अपने स्वरूपमें ऋषि हें. थोड़ी गोपिकायें अपने स्वरूपमें वेदकी श्रुतियां हें. श्रुति हें और ऋषि हें तो उनमे नायिकात्व आयो कैसे? यदि भगवान्की आत्मरमणकी इच्छा न होय तो इनमें नायिकात्व तो आ ही नहीं सके. **"यह सुख रमा तनिक नहीं पायो जदपि पलोटत पाय. अरी चल नवल किशोरी भोरी होरी खेलन जांय"** (नंददास). तो इनमें नायिकात्व इनके सामर्थ्यसूं नहीं आयो, इनके स्वभावसूं नहीं आयो, भगवान्की आत्मरमणकी इच्छा थोड़ी क्षीण भई या न्यून भई या तिरोहित भई, जैसी भी व्याख्या करो, आत्मरमणकी इच्छा गौण भई, तावता इनमें नायिकात्व आयो. **"स इममेव आत्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्"** (बृह.उप.१।४।३). वो परमात्मा अपने आप पत्नी और पति में बंट गयो. या लिये द्विरूपपनो नायिकात्व और नायकत्व आयो. जब नायिकात्व आयो तो वाके आवेके बाद नायक तिरोहित हो जाये, तो फिर नायिका आत्मरमण क्या करेगी? ऐसे वो अपनो स्ट्रोंग् केस् अपनो प्लीड् कर रही हे.

(आगमनं स्वसमर्पणार्थमेव)

एतादृशस्य आगमनं नायिकायै स्वसमर्पणार्थमेव भवतीति तदेव कर्तुम्

उचितम् इतिभावः इति आशयेन आहुः आगतस्य इत्यादि. अब कहें हें कि जा बखत हमारेमें नायिकात्व आयो और जा बखत तुमने अपने आत्मारामत्वको गौण बनायो तो वाके बाद भी तुम प्रकट भये. तो अब हमारे समर्पणको प्रश्न थोड़े ही हे अब तो तुम समर्पित हो जाओ. अब हमारे समर्पणको प्रश्न तो लेट् हो गयो क्योंकि जा दिन तुमने अपने आत्मारामत्वकु गौण कियो. जा बखत हमारे भीतर नायिकात्वकी स्थापना करी वाही दिन हमारो आत्मसमर्पण तो हो गयो. मने हमारे अस्तित्वको, हमारी सत्ताको अर्थ तो वोही हो गयो. अब हमारी सत्ताके समर्पणको तो प्रश्न ही नहीं उठे. अब सेकण्ड् स्टेप् ये हे कि तुम समर्पित हो जाओ. चलो. अपनो आत्मनिवेदन हमारे सामने करो. तुलसीपत्र लेके तुम यहां आओ और कहो ''दासो अहं तव अस्मि'' अब तुम अपनो आत्मनिवेदन कर दो.

स्वसमर्पणार्थमेव भवतीति तदेव कर्तुम् उचितम्. यदि कोई औचित्यको प्रश्न हे, तब तो ये करनो चइये और अनुचित कुछ करनो होय, तो मालिक हो, चाहो सो करो. तुम स्वामी हो, तुम नायक हो, चाहे अनुचित करो चाहे उचित करो. वामें तो फिर येही कि जो करे सो ठीक. सो तो निर्गुणगोपिकायें हें सो संतोष तो करनो ही पड़ेगो. बाकी यदि कोई औचित्यको प्रश्न हे तो तो तुमकु आत्मनिवेदन करनो चइये. अब हमारे आत्मनिवेदनको प्रश्न नहीं हे. औचित्यको यदि कोई प्रश्न हे कि हमने कोई गड़बड़ घोटाला मानादिके किये सो ठीक हे. सो तुम आत्मनिवेदन करोगे तो हमारे मान छूट जायेंगे. यदि तुम आत्मनिवेदन नहीं करोगे तो हमारे मान छूटवेसूं रहे. तुम्हारे आत्मनिवेदनसूं हमारे मान छूटेंगे. क्यों ? वहां जयदेवजी कहें हें **''स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं धेहि पदपल्लवम् उदारम्.''** (जयदेव.) ठाकुरजी स्वामिनीजीकु केह रहे हें कि तुम्हारे पदपल्लव मेरे माथे पे पधराओ. तुम अपने चरण मेरे मस्तकपे पधरा दो पर कथंचित् मान छोड़ो. यदि मान छुड़वानो हे तो सच्ची प्रक्रिया तो ये हे. हमारेमें यदि

मान आयो और यदि मान दोष हे, तो तुम अपनो आत्मनिवेदन करो. या शब्दनूमें **“स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं धेहि पदपल्लवम् उदारम्”** फिर देखो कि हम मान छोड़ें कि नहीं? जा तरहकी लीला तुमने प्रारम्भ करी हे, वा तरहकी लीलाको निर्वाह तुमकु यदि करनो होय तो प्रकट हो जाओ. पर यदि कछु अनुचित काम करनो होय तो मन फावे सो करो. वाको तो कोई प्रश्न हे नहीं.

सच्चो आत्मनिवेदन तो ये हे. जबतक तुम प्रकट नहीं भये थे, तबतक तो हमारे अन्दर आत्मनिवेदनको भाव होनो आवश्यक हतो. जब हम प्रकट हो गये और तुम प्रकट हो गये, तब हमारे अन्दर आत्मनिवेदनको भाव अपेक्षित नहीं रह्यो. हमारेमें नायिकात्व तो आ ही गयो. जब हम आ गये और तुमने पेहले ही अपनो आत्मरमण सरेन्डर् कर दियो और जब आत्मरमण सरेन्डर् कियो और आत्मरमण छोड़्यो तो अब तुमकु अपनो आत्मनिवेदन करनो पड़ेगो. अब बोलो कि तुम आत्मरमण करनो चाह रहे हो या आत्मनिवेदन करनो चाह रहे हो? यामें कोई बीचको रस्ता नहीं हे. या तो आत्मरमण करो या फिर आत्मनिवेदन. जैसे मैंने कल ही बताई कि दूसरी तो बिचारी रहस्य नहीं जाने पर ये तो निर्गुणगोपिका हे. दुसरीतो अपने स्वभावके कारण बोले सो बोले पर जाकु सीक्रेट्र पता होय वो कोई छोड़े? वो तो पूरो ब्लेककमेल् करे. जाकु सीक्रेट्र नहीं पता होंय वो थोड़ो संकोच या संतोष करे. जाकु प्रभुकी सीक्रेट्र पता हे कि प्रभु आत्मरमण नहीं करनो चाह रहे हें, वो तो वाको पूरो कल्मिनेशन्पे ले जा रही हे कि यदि आत्मरमण नहीं तो दूसरो कल्प केवल आत्मनिवेदनको हे. यदि आत्मनिवेदन नहीं करनो हे तो जा फिर करो आत्मरमण. फिर हमारे नायिकात्वसूं तोकूं मतलब क्या? क्योंकि ये निर्गुण हे, तो भाव तो ये सारे स्नेहवश हें पर शब्दनूमें ये बात कही भी नहीं हे. शब्दनूमें तो इतनो ही केह रही हें **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्...उदेयिवान्सात्त्वतां कुले.** जो

शब्द हें वो निर्गुणतासूं आ रहे हें और या निर्गुणताके पीछे छिप्यो भयो स्नेहको सर्वगुणभाव हे. सगुणभाव नहीं सर्वगुणभाव हे ये बात ध्यानमें रखियो तो निर्गुणगोपिकाकी दृष्टिको और भावको जो तात्पर्य हे वो सारो समझमें आयेगो.

----*----

॥श्लोक : ५॥

उत्थानिका :

अन्या: पुन: सात्त्विक-सात्त्विक्य:, राजसप्रधानाभ्यो विशिष्टा:, अप्रार्थितं च भगवान् न दास्यतीति भगवत्करस्य स्वशिर: सम्बन्धं प्रार्थयन्ति विरचिताभयम् इति.

विवरणम् :

(अप्रार्थितं न दास्यतीति...प्रार्थयन्ति)

ये गोपिका सात्त्विक-गोपिका हे. या गोपिकाके भाव सात्त्विक हें. याके लिये ये सात्त्विकसात्त्विकी कही जा रही हे.

कल जैसे मैंने आपकु वो कथा सुनाई, दो गावेवालेन्की. ऐसे हर गोपिका दूसरी गोपिकाकी प्रार्थना या वर्णनकु सुनके घबरा जाये और कुछ अपनो वर्णन कर दे. क्योंकि वाकु अपने स्वभावके अनुरूप वो बात फिट् नहीं लगे और फिट् नहीं लगे तो वो अपने स्वभावके अनुरूप वर्णन करे और वो दूसरो वर्णन वासु एक कदम और आगे हो जाये. ये सारे राजसराजसी भावन्के वर्णन सुनके या सात्त्विकी बिचारीकु घबराहट हो रही हे. ये प्रकट होवे जा रहे होंयगे तो ऐसे ऐसे वर्णन करके अप्रकट कर देंगे. तो वो खुलासा दे रही हे कि ये सब गलत केह रही हें, जरा मेरी बात सुनो. क्यो जो सबकी अपनी अपनी बात हे न!

जैसे दादाजी कोल्हापूर पधारते नहीं थे. कई बार यहां कोल्हापुरसूं दादाजीकु आमन्त्रण भी गये और पत्र भी गये. अब नहीं पधारते थे तो दादाजीके बचपनके एक मित्र नटवरभाई हें, उनकु लेके गये. नटवरभाईने दरवाजा बन्ध करके दादाजीकु कही कि "क्या हमकु कोई और गोस्वामी नहीं मिलता हे कि जो हम तुम्हारी आजीजी

करते हें? तुम्हारेकु इतनी रिक्वेस्ट् कर रहे हें कोल्हापुर आवेकी. क्या हमारेकु कोई दूसरा गोस्वामी अवेलेबल् नहीं हे?" हंसूभाईका परिचय उसी वक्त हुआ था. अब हंसूभाई तो घबरा गये कि ऐसे केहवेपे तो आते होंगे तो भी नहीं आयेंगे. पर उसका उलटा हुआ. दादाजीने कहा कि "चलो आ रहा हूं." क्योंकि वो दादाजीके बचपनके दोस्त हते. बहोत ब्लन्ट् बात कही तो दादाजीने कही "चलो टाईम् फिक्स् कर लो, आ रहे हें कोल्हापुर." अब हंसूभाई केहते तो शायद एक बार बात फिर पोस्टपोन्ड् हो जाती. वो तो अपनी अपनी बात हे ना! जाको जैसो अधिकार. कोईकी ब्लन्टनेस् भी काम आ जावे और कोईकी विनय भी काम नहीं आवे. ये तो अपने-अपने सम्बन्धकी बात हे.

"अल्लाह तो सबकी सुनता हे जुर्रत हे शकील अपनी अपनी. हालीने जुबांसे उफ भी न की खैयाम शिकायत कर बैठे..". शकील कहे हे कि अल्लाह तो सबकी प्रार्थना सुने हे पर किसी किसीकी अपनी अपनी जुर्रत हे. हाली जो कि एक भक्त भयो हे, वाने तो उफ तक नहीं की और खैयाम जो कि भगवान्कु हमेशा गाली देके ही बात करतो थो वाने भगवान्सु शिकायत भी कर दी. खैयाम कहे हे कि जितने भी पाप मैंने करे हें उन सबकी जिम्मेदारी तेरी हे. क्योंकि तेंने मुझे ऐसो बनायो. यदि तेंने मुझे ऐसो नहीं बनायो होतो तो मैं क्यों पाप करतो? कोई अगर गल्ती हे तो तेरी हे क्योंकि तेंने गलत ढंगसु मोकु बनायो हे. प्रोडक्शन्में तेरी गड़बड़ी हे. मेरेमें तो कोई गड़बड़ी नहीं हे. मैं तो वैसेको वैसो हूं जैसो तूने बनायो हतो. तो पाप भी कियो हे तो तेरी गल्तीके कारण. यदि पेहलो पापी हे तो वो तू हे और वाके बाद मैं दूसरो पापी. अब ये तो वाको गटस् हे केहवेको. हाली अपनेकु पापी माने हे कि मैं बहोत पापी हूं. तू क्षमा नहीं करेगो तो कौन क्षमा करेगो? तू ही एक क्षमा करवेवालो हे, हाली ये बात

कहे हे. पापी तो दोनों ही हें और क्षमा भी दोनोंकु मिलेगी पर केहवेको तरीका तो अपनो अलग अलग हे ना!

या तरहसूं वो केह रहे हें, ये क्योंकि सात्त्विकसात्त्विकी हे, तो राजसप्रधान गोपिकान्‌की भाषाकु ये समझ नहीं पा रही हे. राजसप्रधान गोपियोंके भाव याके पल्ले पड़े नहीं पर एक बात याके पल्ले पड़ी कि निर्गुणगोपिकाने कोई प्रार्थना तो करी नहीं. **"न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरादृक् विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख! उदेयिवान् सात्त्वतांकुले"** तो यामें प्रार्थना तो करी ही नहीं. गुण तो सच्चे बता दिये पर कुछ बोलनो तो चइतो थो ना वा बखत! अब भाव तो हें वाके अपने, निर्गुणगोपिकाके भी अपने भाव हें पर शब्दन्‌में वाने कुछ प्रार्थना तो की नहीं. अब याकु लग्यो कि चाहे कितने भी बड़े गुण होंय पर प्रार्थना नहीं की तो मिलेंगे कैसे? मने माँ भी जबतक बच्चा नहीं रोवे तबतक दूध नहीं पिवावे. तो बिना प्रार्थना किये भगवान् कैसे प्रकट हो जायेंगे प्रकट होवेकी प्रार्थना नहीं करेंगे तो प्रकट होंयगे नहीं. या लिये निर्गुणगोपिकाने बात कही वो तो ठीक करी पर वामें एक कमी क्या रेह गई? जैसे राजसगोपिकान्‌ने तो बड़ी भयंकर बात कही, ये क्या कि कोईने गाली दे दी, कोईने कुछ केह दियो! याके सात्त्विक स्वभावके कारण याकु वो भाषा तो समझमें आई नहीं. निर्गुणकी कुछ भाषा समझमें आ रही हे पर वामें कमी क्या लग रही हे? भाषा तो ठीक हे पर यामें प्रार्थना तो कुछ करी नहीं. कुछ तो मांगनो चइतो थो! इन पंक्तिमें आचार्यचरण बड़ी अस्पष्टपंक्ति केह रहे हें, ध्यान दो तो स्फुट हो सके नहीं तो नहीं हो सके. **अन्याः पुनः सात्त्विकसात्त्विक्यः, राजसप्रधानाभ्यो विशिष्टाः.** मने जितनी राजसप्रधान गोपिकायें थी कोईने जो 'तू' केहके भगवान्‌के साथ प्रार्थना करी और जो गालियें दे देके प्रार्थना करी, वो तो याके समझमें नहीं आई, निर्गुणकी बात थोड़ीसी समझमें आई. क्योंकि सात्त्विक-सात्त्विक हे पर वामें याको

एक कमी ये लगी कि मांग्यो तो कछु नहीं? केवल गुणवर्णन कर दियो और भगवान् कहें कि चलो ठीक हे जो तुमने कह्यो **"न खलु गोपिकानन्दनो... उदेयिवान् सात्त्वतांकुले"** अब भगवान् स्वीकार करें कि चलो मैं ऐसो हूं तो फिर? अब आगे क्या होयगो? कुछ तो कबूल करवा ले. जा कबूलातके कारण आपकु प्रकट होनो पड़े तब तो ये गावेको कुछ प्रयोजन हे. इतनी दीनता भी क्या कामकी जामें कोई प्रार्थना ही नहीं करी! याके लिये कहें हें **अप्रार्थितं च भगवान् न दास्यतीति.** अप्रार्थित तो भगवान् कुछ देंगे नहीं. अब अप्रार्थित भगवान् नहीं देंगे ऐसो याकु क्यों लग रह्यो हे? अपने सात्त्विक स्वभावके कारण.

निर्गुणकु प्रार्थनाकी आवश्यकता क्यों नहीं लगी? क्योंकि वाकु अपनी निर्गुणताके कारण सारो रहस्य वाकु पता हे. जैसे **"प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्. सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्व सामर्थ्यमेव च"** (वि.धै.आ.२). जो सर्वज्ञ हे, जो सर्वव्यापी हे, सर्वभूतान्तरात्मा हे, सब कछु जाने हे, सब कछु देवेमें समर्थ हे और सर्वसखा हे, तो वासु प्रार्थना करके अपन् क्या हासिल कर लेंगे! प्रार्थना कौनसू की जाये? जो नहीं जानतो होय, जाकु खबर नहीं होय. माँकु खबर नहीं होवे हे कि बच्चाकु भूख लगी हे. या लिये ही तो बच्चा रो रोके दूध मांगे हे ना! जैसे होस्पिटल्में नर्सकु खबर होवे कि इतने बजेसू इतने बजे तक ये देनो हे और इतने बजेसू इतने बजे तक ये देनो हे. तो बच्चाके रोवेसू पेहले ही वो मुंहमें बोटल् लगा देगी. क्योंकि वाको टाईमटेबल् बंध्यो भयो हे. तो जाकु खबर हे सब बात, वाकु तो बतावेकी जरूरत नहीं हे. जाकु खबर नहीं होय तो वाकु बतावेकी जरूरत पड़े. भगवान्सू प्रार्थनाकी आवश्यकता तब होय जब भगवान्कु खबर नहीं होय. निर्गुणगोपिकाको यह भाव सुदृढ़ हे कि भगवान्कु सब कछु खबर हे तो प्रार्थना क्यों करनी?

सात्त्विकजु ऐसो नहीं लग रह्यो हे कि भगवान्‌कु सब कछु खबर हे. याकु भगवान्‌की खबर हे पर सात्त्विकताके कारण मनमें ये थोड़ो संदेह हो रह्यो हे कि प्रभुसु विनीत शब्दन्‌में कुछ तो प्रार्थना करनी ही चइये, क्योंकि निर्गुणता नहीं हे. यासू याकु लगे कि थोड़े विनीत शब्दन्‌में जासू प्रभु प्रसन्न हो जायें अपनी सात्त्विकतापे, अपने सात्त्विकभावमें, ऐसे भावन्‌सु प्रभुकी प्रार्थना करनी चइये. याके लिये बहोत सात्त्विकभावसू मांग रही हे कि प्रभु प्रसन्न हो जाओ या ढंगसू और हमारे माथेपे एक बार आशीर्वाद रख दो. आशीर्वाद रखवेके लिये प्रकट तो होनो ही पड़ेगो. यदि एक ऐसो वरदान मांग लें कि हमारे माथेपे आशीर्वादको हाथ रख दो. बिना प्रकट भये हाथ रखवेको तो पता ही कैसे चले? यदि भगवान् कहें कि "चलो मैं प्रछन्नरूपसू माथेपे हाथ धरूं" तो हमकु कैसे पता चले? तो केह रही हें कि ऐसे ढंगसू हमारे माथेपे हाथ रखो कि हमकु पता चल जाये. अब हाथ कैसो? देखो अब अपने जालायें बुन रही हे, तानाबाना. हाथ कैसो? **विरचिताभयम्**. वाके लिये ऐसे विशेषण केह रही हे कि जाके लिये भगवान्‌कु प्रकट होनो ही पड़े. अब खाली यों केह दे कि माथेपे हाथ धर दो और भगवान् केह दें कि चलो मैं अप्रकट रूपसू सबके माथेपे हाथ धरूं, तो तो प्रार्थना फेल् हो जाये. तो हाथ कैसो? वाकी सारी शर्तें घड़ रही हे. कैसो हाथ माथेपे धरो? **विरचिताभयं** ऐसो हाथ माथेपे धरो जा हाथके धरवेसू हमारे मनको भय निवृत्त हो जाये. ऐसो हाथ माथेपे धरो जासू हमारी कामनायें पूरी हो जायें. हाथ तुम्हारो वरद हाथ मान्यो जाय वरकु देवेवालो हाथ मान्यो जाय. वा वरकु देवेवालो हाथ हमारे सिरपे रखो जासू हमारे मनमें रह्यो भयो भय निवृत्त हो जाये. अपने हाथकी या क्वोलिटीको विचार करो और हमारे माथेपे वो हाथ धर दो बस. हमारी प्रोब्लम् सोल्व् हो गई और हमारे कोई दूसरी प्रार्थना नहीं करनी. अपने हाथके गुणन्‌को स्वभावको विचार करो कि तुम्हारो हाथ कैसो हे? भक्तमनोरथपूरक

हाथ हे. भक्तके भयको भंजक हाथ हे. ऐसो तुम्हारो हाथ वो थोड़ोसो हमारे सिरपे धर दो और हमकु कुछ नहीं चइये. बाकी फिर हम सब संभाल लेंगे. ऐसे बहोत सरल सात्त्विक प्रार्थना वो कर रही हे.

श्लोक :

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य! ते शरणमीयुषां संसृतेर् भयात्।
करसरोरुहं कान्त! कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥५॥

सुबोधिनी :

हे स्वामिन्! हृदयं स्फुटति. अतः यथा सर्वांगे आप्यायनं भवति तथा शिरसि करसरोरुहं धेहि. शीतलं हि कमलं भवति, तत्रापि सरसि जातम्. तत्रापि करएव सरःस्थानं सरसिजस्थानं च, अतः उद्धरणादिना न रसालतापगमः. कान्त! इति सम्बोधनं प्रथमतः शिरसि हस्तस्थापनेन स्वाधीनीकरणं द्योतितम्. किञ्च न केवलं हस्तः तापमेव दूरीकरोति किन्तु कामदं च, अभिलषितं कामं प्रयच्छति. ननु भगवान् पुरुषोत्तमो योगिध्येयः, कथं स्त्रीणां स्पर्शं करिष्यति इति चेत्, तत्र आह श्रीकरग्रहम् इति, श्रियाः करस्य ग्रहो ग्रहणं येन. अतो भगवान् गृहस्थइति यत्र लक्ष्म्या हस्तं गृह्णाति तत्र अस्मच्छिरोग्रहणे किं भविष्यति! इति भावः. ननु लक्ष्मीः विवाहितेति विधिवशात् तस्या हस्तग्रहणम्, भवतीनां ग्रहणे को हेतुः? इति चेत्, तत्र आहुः संसृतेः भयात् शरणमीयुषां विरचिताभयम् इति. यथा विधिः विवाहे तथैव शरणागतपालनेऽपि. विवाहापेक्षया शरणागतरक्षा महती, स साधारणधर्मो अयम् ईश्वरधर्मः इति. ननु अयं निषिद्धः प्रकारः इति कथं पालनम् इति चेत्, तत्र आहुः हे वृष्णिधुर्य! इति. वृष्णिः हि यदुवंशोद्भवः बहुस्त्रीकः बहुवंशकर्ता. तद्वंशेऽपि भवान् धुर्यः श्रेष्ठः. तत्रापि स्त्रियः संसारभयात् समागताः, न हि संसारः स्वभावतएव दुष्टः किन्तु असह्यदुःखहेतुरिति. तथा वयमपि महद्दुःखं प्राप्नुम इति दृष्टादृष्टद्वारा भवान् तन्निवर्तक इति. अनेनैव निर्भयतापि

सूचिता. अतः 'कान्त' सम्बोधनाद् भवानेव भर्ता. अतः स्त्रीणां व्रतम् अनुस्मरन्, वाञ्छितं कुरु इत्यर्थः ॥५॥

विवरणम् :

(शिरसि करसरोरुहं धेहि)

हे स्वामिन्! हृदयं स्फुटति. हे स्वामी! हमारो हृदय भयके कारण फूटवेकी तैयारीमें हे. क्योंकि इतनी देरसू तुम प्रकट नहीं हो रहे हो. अब हृदयमें भय बहोत बढ़ गयो हे. इतनी गोपिकान्ने स्तुति कर ली, जगह जगह खोज लियो. वाके बाद भी तुम प्रकट नहीं भये, तो क्या घटित होवे जा रह्यो हे? या भयके कारण हमारो हृदय फूटवेकी तैयारीमें हे.

अतः यथा सर्वांगे आप्यायनं भवति तथा शिरसि करसरोरुहं धेहि. हमारे अंग प्रत्यंग शान्त आप्यायित हो जाये, ऐसो शीतल कमल जैसो तेरो हाथ हमारे मस्तकपे रख दे. **शीतलं हि कमलं भवति तत्रापि सरसि जातम्** कमल शीतल होवे ही हे. अब कमलकु तोड़के बाहर ले आवो तो वाको टेम्प्रेचर् बदल जाये पर सरसिज = सरोवरमें कमल क्योंकि जलके साथ लग्यो भयो हे, वाकी नाली जुड़ी भई हे, तो वो तो नितान्त शीतल ही होवे हे. **तत्रापि करएव सरःस्थानं सरसिजस्थानं च.** यहां कहें हें कि तुम्हारो श्रीहस्त सरसिज जैसो हे, कमल जैसो हे. तो सर क्या हे? तो कहें हें कि तुम्हारो श्रीहस्त एक साथ दोनों काम कर रह्यो हे. सरोवरस्थानीय भी हे और सरसिजस्थानीय भी हे. **अतः उद्धरणादिना न रसालतापगमः.** सरसिज कैसे हे? "सरसि जले सरोवरे जायते इति सरसिजः कमलः" जलमें पैदा होवे वाकु सरसिज कहें. तो कमलकी उपमा दे रही हे. कमलकु रूपक बता रही हे. कैसे? श्रीहस्त कमल जैसो हे. कमल जैसो हे तो सरःस्थानीय क्या हे? श्रीहस्त जा बखत कमल जैसो हे तो सरोवर क्या हे? तो कहें हें कि श्रीहस्तमें दोनों गुण हें. सरता भी हे और सरसिजता भी हे.

भागवतमें जहां ध्यान बतायो हे, वहां बहोत सुन्दर बतायो हे. **"शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम्. कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वम् अमलं मणिम् अस्य कण्ठे"** (भाग.पुरा.३।२८।२७-२८). श्रीहस्तमें शंख कैसो लगे हे? शंखको पकड़ रख्यो हे वो ऐसो लगे हे कि जैसो कोई राजहंस कमलनूमें घिर्‌यो भयो बेठो होय. 'शंखम्' शंख भी सफेद हे और राजहंस जैसो श्वेत हे. श्रीहस्त कैसो हे? वो नीलकमलके जैसो श्याम हे तो नीलकमलमें जैसे कोई राजहंस जाके बेठ गयो होय.

क्योंकि यदि खाली कमलरूप होय और कमलकु यदि सरोवरमेंसू तोड़ दियो, तो वाकी खिलेपनकी ताजगी नहीं रेह जाये पर सरस्थान और सरसिजस्थानीय दोनोंके साथ तू यदि हमारे मस्तकपे श्रीहस्त धर देगो तो तेरी रसालतामें कछु अपगम नहीं होयगो. अपने श्रीहस्तकु उठाके तेंने हमारे सिर पर रख दियो, मने तालाबमेंसू उठाके कमलकु कहीं ले जाओ तो वाकी रसालता कम हो जाये, वाकी ताजगी कम हो जाये पर हमारे मस्तकपे अपनो श्रीहस्त उठाके धर भी दोगे तो वामें वाकी रसालतामें कछु कमी नहीं हो जायेगी. तेरो श्रीहस्त तेरे पास रहे या हमारे मस्तकपे रहे. तेरो श्रीहस्त उद्धरणके कारण, सरस्थानीय और सरसिजस्थानीय (दोनों हे) याके लिये कमल नहीं केहके **'करसरोरुहम्'** कह्यो. करकमल नहीं कह्यो, करपद्म भी नहीं कह्यो और सरोरुह क्यों कह्यो? वो सरस्थानीय भी हे और सरोरुहस्थानीय भी हे. दोनों स्थानीय हें तासू हर सूरतमें वाकी ताजगी उतनी ही रहेगी जितनी रेहनी चइये. तेरो श्रीहस्त केवल कमलरूप होतो और हमारे मस्तकपे रखतो तो शायद वाकी रसालतामें, ताजगीमें कोई कमी आ जाती पर तेरो उभयस्थानीय श्रीहस्त तेरे साथ रहे या हमारे मस्तकपे रहे, वाकी ताजगी उतनीकी उतनी ही रहेगी.

अतः उद्धरणादिना न रसालतापगमः. कान्त! इति संबोधनम्,

प्रथमतः शिरसि हस्तस्थापनेन स्वाधीनीकरणं द्योतितम्. अब कान्त क्यो कह्यो? एक बखत हमारे माथेपे हाथ यों धर दो, तो हमकु आश्वासन हो जायेगो कि तुम हमारे आधीन हो गये. वैसे माथेपे हाथ धरवेपे हम तो आधीन हें ही, याको तो कोई प्रश्न हे ही नहीं पर हमारी आधीनताके आधीन तुम भये कि नहीं? **"अहं भक्तपराधीनो हि अस्वतन्त्रइव द्विज! साधुभिर् ग्रस्तहृदयो भक्तैः भक्तजनप्रियः** (भाग.पुरा.९।५।-६३). हम तो तुम्हारे आधीन हें, हमारी आधीनता तुमने स्वीकार करी, वाको द्योतक क्या होवे? जा बखत तुम हमारे आधीन होके हमारे मस्तकपे हाथ धर दो तो हमारी आधीनताकु तुमने स्वीकार्यो. वाको मतलब क्या कि हमारी आधीनताके आधीन तुम भये. ये हमारे माथेपे तेरो हाथ स्थापित करनो, हमारे स्वाधीनीकरणके द्योतनके लिये होयगो. वाके लिये एक बखत वा करसरोरुहकु हमारे माथेपे तू धर दे. मने एक बखत माथेपे हाथ धर देगो तो हमारे मनके सारे भय दूर हो जायेंगे और तेरो श्रीहस्त कामद तो हे ही. तेरो श्रीहस्त कामद नहीं होय ऐसी बात तो हे नहीं, वो तो तोकु अपने श्रीहस्तके गुण पता ही हें.

(कान्त! कामदं विरचिताभयम्)

किञ्च न केवलं हस्तः तापमेव दूरी करोति किन्तु कामदं च, अभिलषितं कामं प्रयच्छति. हाथ धरवेसू केवल ताप दूर होयगे, ऐसी बात नहीं हे. वाके अलावा भी दो गुण हें. कामद हे और कामफलप्रद हे. जैसे अपन् भोजन करें, तो दो तरहके भोजन करें. एक भोजन तो ऐसे होवें कि भोजन करें और क्षुधाकु शान्त करे. कुछ भोजन ऐसे होवें जैसे चटनी हे, वासू भूख बढ़ाते भी जाओ और खाते भी जाओ. जैसे चटनीमें अदरक मिलायो जाय, हींग मिलाई जाय, नींबू हे, वो खाते जाओ और भूख बढ़ाते जाओ. ये प्रभुको श्रीहस्त केवल कामनानुसारी फलदेवेवालो हे इतनो ही नहीं पर भगवत्काम बढ़ावेवालो भी हे. कामद भी हे और कामके फलकु देवेवालो भी

हे. मने **विरचिताभयं** भयकु दूर करवेवालो हे, काम बढ़ावेवालो हे और कामको फल देवेवालो हे. केवल काम बढ़ा दे, भूख बढ़ा दे और भूखकु शान्त नहीं करे, ऐसो नहीं. ये गुजरातमें मैंने कहीं कहीं देख्यो कि वो दूधमें सूंठ मिलाके देवें. वाके दोनों लाभ हो जायें. दूधको भारीपन दूर हो जाये हे. दूधके कारण क्षुधाशामकता होवे और सूंठके कारण क्षुधावर्धकता होवे. अब एक दूध दो गुण करे. सूंठ मिल्यो भयो दूध भूख मिटावे भी और भूख बढ़ावे भी, एक साथ दोनों काम करे. या तरहको प्रभुको श्रीहस्त हे. **कान्त कामदं** ऐसो कामद श्रीहस्त हमारे मस्तकपे रख. मने केवल फलप्रद ही नहीं पर काम बढ़ावेवालो और कामपूरक, दोनों एट् ए टाईम् होंय, ऐसो श्रीहस्त हमारे माथेपे धर.

ननु भगवान् पुरुषोत्तमो योगिध्येयः, कथं स्त्रीणां स्पर्शं करिष्यतीति चेत्. अरे वो योगिध्येय भगवान्! अब ये गोपी सात्त्विक हे करके याकु ऐसी ही बातें सूझें. गोपीके माथेपे क्यों हाथ धरेगो? **तत्राह श्रीकरग्रहम् इति.** अरे लक्ष्मीको हाथ पकड़े हे कि नहीं! हाथ न पकड़े तो मत पकड़ पर कमसू कम माथेपे हाथ तो धर दे. उचित तो ये बात हती कि हमारो हाथ भी आके पकड़ ले. न पकड़तो होय हाथ तो मत पकड़ पर शिरपे धरवेमें तेरो क्या जाय!

श्रियाः करस्य ग्रहो ग्रहणं येन. अतो भगवान् गृहस्थः इति. अरे योगीन्को ध्येय होयगो पर गृहस्थ हे कि नहीं? ब्रह्मचारी रेहवेकी कोई सोगंद तो नहीं खाई हे. जैसे कुछ संप्रदायके साधु स्त्रीको मुंह ही नहीं देखें. इनके एक स्वामी अमेरिका गये थे तो प्लेनमें आखो पड़दा लगायो. दो लाख रुपियाको खर्चा आयो. तो प्लेन्में कोई स्त्री दीख नहीं जाये. वो एअरहोस्टेस् दीख नहीं जाये वाके लिये एक स्पेशयल् प्रोवीज़न् टेरा लगवाके करवायो अमुक सीट्में कि कोई स्त्री दीख नहीं जाये. तो उतनी सीट्पे जो टेरा लग्यो

वाके लिये कोई दो लाखको खर्चा आ गयो अकेले एक आदमीके जावेको. अब अमेरिकामें न जाने क्या कियो होयगो. अब गृहस्थ होते तो न जाने कितनो डर जाते. अकेले एक आदमीके जावेको इतना खर्चा आयो हतो. आजसु आठ नौ वर्ष पेहलेकी बात हे. तो केह रही हे कि या तरहको तु कोई स्वामीनारायण साधु तो हे नहीं. तुम तो **श्रीकरग्रह** हो. केवल स्वामीनारायण साधु होते तब तो बात ठीक हती पर आप तो श्रीपतिनारायण हो. श्रीपतिनारायण होके जब हाथमें हाथ डालके घूम रहे हो, तो माथेपे हाथ धरवेमें तुम्हारो क्या जा रह्यो हे? गजबकी प्रार्थना करी हे. जब तू गृहस्थ हे तो तेरे लिये ये नियम तो लागू नहीं होवे कि स्त्रीकु छूनो नहीं. ये नियम तो योगीन्के लिये होवें. गृहस्थ होवेपे तोकु ऐसो कौनसे नियमको बाध आ रह्यो हे?

यत्र लक्ष्म्या हस्तं गृह्णाति तत्र अस्मच्छिरोग्रहणे किं भविष्यति इति भावः. जब लक्ष्मीको हाथ पकड़वेमें तुमकु कोई बाधा नहीं आई, तो हमारे सिरपे हाथ धरवेमें तुम्हारेकु क्या बाधा आ रही हे? तो वापे कहे हें अरे तुम गलत इन्टरप्रीटेशन् कर रही हो. **ननु लक्ष्मीः विवाहितेति विधिवशात् तस्या हस्तग्रहणम्, भवतीनां ग्रहणे को हेतुः इति चेत्**. अरे भई! लक्ष्मीके साथ तो हमने ब्याह कियो हे. लॉफुली हमने वाको हाथ पकड़्यो हे. तुम्हारे सिरपे हाथ कैसे धर सके हें? तो कहें हें ठीक हे यदि तुमने ये शपथ खाई हे कि विवाहित स्त्रीके अलावा कोई स्त्रीको स्पर्श नहीं करनो.

(शरणागतपालनं तु ईश्वरधर्मः)

तो वहां कहें हें **तत्र आहुः संसृतेः भयात् शरणमीयुषां विरचिताभयम् इति**. जो भी व्यक्ति संसारसू डर्‍यो भयो हे वाकु अभय देवेकी तुम्हारी पोलिसी/तुम्हारो व्रत हे कि नहीं? जो संसारसू डरे भये भक्त हें, उनकु अभय देवेको गुण भी तुम्हारे हाथमें हे कि नहीं? वो अभय

तुम कौनसे हाथसु दे रहे हो? तो चलो वो हाथ हमारे माथेपे धर दो. जा हाथसु तुमने लक्ष्मीको हाथ पकड़्यो हे, वो हाथ चलो हमारे माथेपे मत धरो. अब वा हाथकु एग्ज़म्पट् कर रही हे. कोई एक ऐसो हाथ खाली तो हे ना कि जा हाथसु तुम संसारभीतव्यक्तिनूकु अभय दे रहे हो. तो लाओ वो हाथ हमारे माथेपे धर दो. हमकु चलेगो.

यथा विधिः विवाहे तथैव शरणागतपालनेऽपि. अब अगर तुम कानूनकी बात कर रहे हो तो हमारो कानूनी सवाल सुनो. जैसे विवाहमें स्त्रीको हाथ पकड़वेकी विधि हे, वैसे शरणागतके पालनकी विधि हे कि नहीं? शरणागतके पालनकी विधि हे और शरणागतको पालन तुम करो हो. **विवाहापेक्षया शरणागतरक्षा महती स साधारण धर्मो अयम् ईश्वरधर्मेति.** और विवाहमें लक्ष्मी मने पत्नीको हाथ पकड़नो जितनो बड़ो आवश्यक कर्तव्य हे, वासू कहीं ज्यादा और आवश्यक शरणागतको पालन मान्यो गयो हे क्योंकि विवाहमें पत्नीको हाथ तो विधि होवेके कारण सभी पकड़ें हें. वो तो सभी मनुष्यन्में सामान्य हे पर शरणागतकी रक्षा तो कोई ईश्वर ही कर सके, सभी नहीं कर सकें. रक्षा करनो तो बड़ो अलौकिक धर्म हे. चलो ठीक हे तुमने विवाहित स्त्रीको हाथ पकड़्यो. ये श्रीहस्त चलो विवाहित स्त्रीको हाथ पकड़वेके लिये हे, पर शरणागतकी रक्षा करवेको तो तुम्हारो श्रीहस्त हे वो हमारे माथे पर रखो.

ननु अयं निषिद्धः प्रकार इति कथं पालनम् इति चेत्, तत्र आहुः. तो कहे हें कि ये निषिद्ध प्रकार हे. पालन कर लेंगे पर माथेपे हाथ क्यों रखें? ये पालनको प्रकार नहीं हे. तो कहें कि निषिद्ध प्रकारकी चर्चा करो हो, तो तुम **वृष्णिधुर्य** हो. वृष्णि जात बहुपत्नी जात हती. अलग अलग जातिमें, जैसे केरलमें लड़की घरमें रहे और पति बाहरसु आवे. ऐसे अलग अलग जातमें अलग अलग नियम अपने यहां हते. जो जाति वृष्णि हती, जा जातमें प्रभुको

जन्म भयो, वहां बहुपत्नीकी प्रथा हती. तो वो कहें हें कि यदि तुम ये कहो हो कि निषिद्ध प्रकार हे तो आप वृष्णिधुर्य हो कि नहीं हो? अब आप काहे बातको विचार करो हो? यदि शरणागतवालो हाथ नहीं धरनो चाहो हो, तो फिर लक्ष्मीवालो ही हाथ तुमकु धरनो पड़ेगो. क्योंकि यदुवंशमें आप प्रकट भये हो और यादवन्में बहुपत्नीप्रथा हती. **वृष्णिः हि यदुवंशोद्भवः बहुस्त्रीकः बहुवंशकर्ता. तद्वंशेऽपि भवान् धुर्यः श्रेष्ठः.** तुम यदुवंशमें श्रेष्ठ माने जाओ हो, तो चलो कमसू कम वाही हेतुसू हमारे माथेपे हाथ धरो. वो नियम तुमपे लागू नहीं पड़े. तुमकु तुम्हारे कुलको नियम लागू पड़ें. **तत्रापि स्त्रियः संसारभयात् समागताः** और हम स्त्री हें तासू हमारे भयके स्थान ज्यादा हें. शरणागत पुरुष होय तो शायद अपने आप भी रक्षा कर ले पर हमतो स्त्री शरणागत हें. हमारी रक्षाको भार ज्यादा पड़ेगो. याके लिये कहें हें **संसारभयात् समागताः** यदि तुमने अपनो हाथ हमकु नहीं दियो तो हमारी गति क्या होयगी? संसारकी गति होयगी और सांसारिक गति भई तो वाको हमकु महान भय हे.

प्रकाश :

विरचिताभयम् इत्यत्र. ननु भवतीनां संसारभयं क्व अस्ति येन संसृतेः भयाद् इति उच्यते इति आकांक्षायां तत्तात्पर्यम् आहुः न हि इत्यादि. अनेन इति संसारनिवर्तकत्वकथनेन इत्यर्थः. तथा च अनया प्रार्थनया दुःखनिवृत्तिरेव प्रार्थिता इति भावः ।।५।।

विवरणम् :

यहां पुरुषोत्तमजीने बहोत सुन्दर अर्थ कियो हे. **ननु भवतीनां संसारभयं क्व अस्ति येन संसृतेर् भयाद् इति उच्यते.** कहें हें कि संसारभय तुमकु कहांसु आ गयो? तो कहें हें कि संसार (अपने)आपमें दुःख थोड़े ही हे. संसारको परिणाम दुःख हे. संसारतो दुःख नहीं हे पर अन्ततः संसार दुःखरूपमें परिणत हो जाये हे. **''विषयेन्द्रिय-संयोगाद्**

यत् तद् अग्रे अमृतोपमम् परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्" (भग.गीता १८।३८). कहे हें कि पेहले तो अमृत जैसो लगे और परिणाममें विषकी तरह फूटे. ऐसे सारे सुख राजससुख हें. याही तरहसू संसार शुरुआतमें तो मीठो लगे, जैसे एलोपेथीकी गोली. वापे एक मिठासकी कोट् चढ़ी भई होय. वो मिठास हे तबतक निगल गये तो ठीक हे पर जैसे ही मिठासकी कोट् उतरी तो कड़वी. ये होमियोपेथीकी गोली नहीं हे कि चाखते(खाते) रहो और मिठास बनी रहे. संसार कोटेड्विष हे. शुरुआतमें तो बड़ो मीठो लगे पर बादमें आके सारे दु:ख प्रकट होवें. तो संसार भी अपने आपमें दु:खद नहीं हे पर परिणाममें दु:खद हे. वा न्यायसू केह रहे हें **न हि संसार: स्वभावतएव दुष्ट: किन्तु असह्यदु:खहेतु: इति.** संसार स्वभावत: दुष्ट नहीं हे पर असह्यदु:खको हेतु हे. **तथा वयमपि महद्दु:खं प्राप्नुम इति दृष्टादृष्टद्वारा भवान् तन्निवर्तक इति.** यदि तुम प्रकट नहीं होओगे तो तुम्हारो अप्रकट रेहनो हमारे लिये संसारसू भी अधिक दु:खको हेतु होयगो. संसारको दु:ख भी यदि तुम निवर्तन करते होव तो वासू भी अधिक दु:ख हमकु हे. तासू वा बातको विचार करके भी तुमकु प्रकट होनो चइये.

अनेनैव निर्भयतापि सूचिता. क्योंकि जा बखत तुम अपनो अभयप्रद और कामप्रद हाथ हमारे मस्तकपे धरोगे, तो हमकु निर्भयता भी होयगी. **अत: 'कान्त'सम्बोधनाद् भवानेव भर्ता. अत: स्त्रीणां व्रतम् अनुस्मरन् वाञ्छितं कुरु इत्यर्थ:.** याके लिये जब तुम **कान्त** हो, तो वाके लिये तुम्हारो परम कर्तव्य हे कि अपनो हाथ हमारे माथेपे धरो. तुम भर्ता हो तासू तुम्हारो हाथ हमारे मस्तकपे धरनो चइये और वाके लिये अब आप प्रकट हो जाओ.

राजसगोपीन्के भाव और भाषा, जा ढंगसु वो बोले वा ढंगसु, सात्त्विकगोपीन्कु समझमें नहीं आवे. निर्गुणगोपीकी भाषा याकु समझमें

आवे पर निर्गुणगोपिकाकी भाषामें कोई तरहकी प्रार्थना नहीं और प्रार्थनारहित केवल प्रभुको वर्णन याके समझमें नहीं आवे. राजसगोपिकान्में तो प्रत्येकने प्रार्थना करी हे. निर्गुणकी भाषामें कोई प्रार्थना नहीं की गई हे **''न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक् विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्त्वतां कुले''**. निगूढ़तया भावमें तो याके भी प्रार्थना हे पर भाषामें याके प्रार्थना नहीं हे केवल वर्णन भयो हे. तो ये बात सात्त्विकगोपिकाकु समझमें नहीं आई. ऐसो वर्णन करके क्या लाभ जामें कछु मांग्यो नहीं? अरे जब मनावे बेठें हें तो मनावेकी कोई बात केहनी चइये ना! समझो कि मनावे बेठें हें और वो मन(मान) गये. अपनी बात मान ली, प्रसन्न हो गये और कछु वर नहीं दियो या कछु वर नहीं मांग्यो, तो ऐसी प्रसन्नताको लाभ क्या होयगो! ये बात सोचके याकु फिरसु घबराहट कायम रही. यासू अपने भावकु अपनी भाषामें व्यक्त करवेकी याकु आतुरता हो रही हे. क्योंकि कोईके भाव समझमें आ रहे हें तो भाषा समझमें नहीं आ रही हे. कोईकी भाषा समझमें आ रही हे तो भाव समझमें नहीं आ रहे हें. तो अपने स्वभावके अनुसार अपनी भाषामें बांधके वाने प्रार्थना करी **विरचिताभयं वृष्णिधुर्य... न श्रीकरग्रहम्.**

(ज्ञानमार्गीय और भक्तिमार्गीय भाषा)

ये सात्त्विकगोपिका हे, स्वयं सात्त्विक हे और भाव भी याके सात्त्विक हें. याके कारण याके भाव और भाषा दोनोंमें सात्त्विकता झलक रही हे. जैसे निर्गुणगोपिकाने एकदम ब्रह्मतत्त्वको प्रकाशन कर दियो. ऐसो प्रतीत भयो कि जैसे भक्तिमार्गकी भाषा एकदम ज्ञानमार्गीय भाषा हो गई. भक्तिमार्गके प्रकरणमें भाषा एकदम ज्ञानमार्गीय हो जाये तो बड़ी मुश्किल हो जाये. अक्सर क्या होवे, जो भक्तिमार्गके मर्मकु नहीं समझें और भगवल्लीलाके जितने भी आध्यात्मिक अर्थ हें, उनकु देखें तो दो तरहकी भावना होवें हें, वक्ताके हृदयमें भी और श्रोताके

हृदयमें भी. अब पता कैसे चले कि कैसो भाव हे? आधिदैविक लीलाको आध्यात्मिक अर्थ घटायवेसु चेहरापे प्रसन्नता आ जाये तो समझ लो कि ज्ञानमार्गीय हे. आध्यात्मिक लीलाको आधिदैविक अर्थ घटायवेसु चेहरापे प्रसन्नता आ जाये तो समझो कि भक्तिमार्गीय हे. प्रभुकी लीलाके तो दोनों ही पक्ष हें, बल्कि सभी पक्ष हें. प्रभुकी लीलाको आधिभौतिक पक्ष भी हे, आध्यात्मिक पक्ष भी हे और आधिदैविक पक्ष भी हे. सभी पक्षनूमें आनन्द ले सके वो तो सर्वाङ्ग हे. पर जो एकांग हें उनकी चर्चा हे. सर्वांगीण जिनकी भक्ति हे, जिनकु प्रभुकी कोई लीलासू परहेज नहीं हे. आदमीके अपने अपने परहेज होवें. आदमीके अपने अपने हार्दिक, मानसिक और बौद्धिक कुछ कुछ परहेज होवें. वो परहेज वाके व्यवहारमें वाके भावमें वाके विचारमें व्यक्त हुवे बिना रहें नहीं. तो जिनकु ऐसे परहेज हो जायें हार्दिक, मानसिक या बौद्धिक तो क्या होवे, वाकु प्रभुकी लीलाको एक पक्ष बतायो तो उनको परहेज व्यक्त होवे. उनकु जो परहेज लगतो होय तो वासू उनकी एकांगिता व्यक्त होवे पर जिनकी सर्वांगिता हे, उनकु परहेज नहीं होवे. जिनकी एकांगिता हे उनको बीजभाव कैसे पता चले? उनके भावानुसार जा बखत वर्णन होवे, तब ही उनकु प्रसन्नता होवे, सारी उबासियां गायब हो जायें. नहीं तो उबासी आती ही रहें. आधिदैविक लीला चल रही हे और आध्यात्मिक पक्षको वर्णन कर दो, तो अद्भुत निद्रा आई मंडलीमें हो जाये. तो ये अपने अपने हृदयको बीजभाव और अपने अपने बीजभावानुपाती श्रवणनूमें जैसे रुची हे. ऐसे ही चिन्तनमें रुची, ऐसे ही मननमें रुची, ऐसे ही सर्वविध रुची. वो अपने अपने बीजानुभावके अनुसार प्रकट होवे.

(रसावेगमें रसोच्छलन)

तदनुसार या गोपिकाके हृदयकु वो भाषा और वो भाव छुयें नहीं हें. याकु घबराहट हो जाये कि ये क्या बात निकल रही

हे? भाव ठीक हे पर भाषा ऐसी क्यों निकल रही हे? कभी यों हो जाये और निर्गुणकी बात सुने तो लगेके चलो भई भाव भी ठीक हे और भाषा भी ठीक हे पर मुख्य बात तो कही ही नहीं. भाव व्यक्त करवेमें गड़बड़ा गई. भई इतनी भी कितनी सात्त्विकता! मने सात्त्विकगोपीकु यों लगे कि बहोत शीतल हे. बड़ी शीतलतासू बोल रही हे. इतनी शीतलता भी क्या कामकी जीवनमें! **''न खलु गोपिकानन्दनो भवान्... सात्त्वतांकुले''**. इतनी शीतलता!! भाव व्यक्त करवेमें गरमी चइये. कुछ गरमी चइये भावमें. तो वो गरमी लावेके लिये प्रार्थना कर रही हे, कुछ तकाजा कर रही हे. वाके लिये वाने तकाजा किये **विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते... नः श्रीकरग्रहम्.** या न्यायसू मने प्रभुकु प्रार्थना तो कर रही हे और साथ साथमें इन चारों गोपीकान्कु समझा भी रही हे कि ऐसे मांगो यदि मांगनो होय तो, ये क्या गलत ढंगसु मांग लियो. प्रकट होवेके जो थोड़े बहोत चान्स् हे वामें भी तुम गलत प्रार्थना करके विघ्न डाल रही हो. आदमीमें जा बखत रसको उच्छलन हो रह्यो हे तो अपने अपने भावके पात्रमें वो रसको उच्छलन होयगो. वा उच्छलन होवेको द्वार तो भाषा ही हे. वाणी हे तो वो उच्छलन भी वाही आकारमें प्रकट होयगो. अब वो एक वाणी, एक द्वार, एक पात्र तो वाके पल्ले तो पड़ी नहीं. तो हर बखत वाकु विपरीतभावना असंभावना हो जाये कि यामें तो गड़बड़ फैल गई.

अक्सर क्या होवे? भीड़ इक्ट्ठी होवे तो ऐसो कन्फ्युज़न् हो जावे, कोई कुछ बोले, कोई कुछ बोले, कोई कुछ बोले तो समझ नहीं पड़े. याही लिये कहें हें कि जो अच्छो विद्यार्थी तैयार करनो होय तो वो भीड़में नहीं हो सके. एक क्लास्की कुछ लिमिट् होवे. कह्यो जाय कि क्लास्में एक व्यक्तिके माथे पन्द्रेहसू ज्यादा बच्चा नहीं होने चइयें. जा विषयमें व्यक्तिगत एटेन्शन्की जरूरत नहीं पड़े, तो वो चालीस पचास तक जावें तो हरकत नहीं आवे. जैसे एम.ए.के

लेवल्पे हमारी फिलोसिफीकी क्लास्में बहत्तर सीट् हती. अब वो न तो प्रोफेसर्कु खबर पड़ती कि कौन समझ्यो और कौन नहीं समझ्यो और न लड़कान्कु समझ पड़ती. अन्तमें ये होतो कि वो लेक्चर् देतो रेहतो और लड़का क्रिकेट्की कोमेन्ट्री सुनते रेहते. क्योंकि लड़कान्कु पता चल जाती कि प्रोफेसर् बेहरो हे. अब विद्यार्थी भी कम तो नहीं होवें. अब उनकु पता चल गई कि प्रोफेसर् बेहरो हे हमारे तो याको पूरो एक्सप्लोइटेशन् करनो. बहोत गम्भीर चेहरा बनाके बेठते और क्रिकेट् कमेन्ट्री सुनते रेहते. एक दिन वा प्रोफेसर्कु पता चल गई और चालू लेक्चर्में वाने पूछ्यो कि “क्या स्कोर् भयो?” तब सबकु पता चली कि बेहरो हे पर मूरख नहीं हे. बेहरो तो हे पर समझ जाये हे कि चालू क्लासमें रनिंग् कमेन्ट्री सुनी जा रही हे. अब बहत्तर स्टूडन्टस्में क्या पता चले कि कौन क्या कर रह्यो हे? वामें पर्सनल एटेन्शन् तो नहीं हो सके. तो ऐसे ऐसे वाके लिमिटेशन् होवें. फिलोसिफी जैसे गम्भीर विषयकी क्लास्में अगर इतनी भीड़ इक्ठ्ठी हो गई तो बड़ी मुश्किल हो जाये.

अब याही तरहसू ठाकुरजीकु प्रकट करनो हे. ये तो फिलोसिफीकी भी बड़ी फिलोसिफी हे. अब वामें भाषा और भाव की गड़बड़सू सबकु घबराहट होवे लगे कि अब क्या होयगो? अब ये प्रयोग विफल हो जाये कहीं तो मुश्किल हो जाये. अब तिरोहित भये प्रभु कथञ्चित् जा तरहसु भी प्रकट हो सकते होंय! अब छेल्लो साधन खोजको तो खोजभी पूरी हो गई. अब खोजसु तो कहीं मिले नहीं यासू बात समझमें आई कि साधनके अभिमानसू, इन साधनाचरणसू मिलवेकी सम्भावना नहीं हे. जब साधनसु नहीं मिलेंगे तो दैन्यसु मिलेंगे. अब दीनतामें क्या करें? जो ज्ञानमार्गीय दीनता होती, जो मर्यादामार्गीय दीनता होती तो “**सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छात: करिष्यति**” करके बेठ जाते. अब कोई ध्यान लगाती, कोई समाधि

लगाती पर ये दीनता भी तो भक्तिमार्गीय दीनता आई हे. रसमार्गकी दीनता आई हे. तो वो न तो घर जावे दे और न ध्यान लगावे दे, न समाधि लगावे दे, न चुप बेठवे दे. यासू चारों ओरसू इनके भावपे इनके मनपे एक तरहको आवेग हे. भावावेग ऐसो हे कि वो मनके चारों ओरसू हे. या बाजुसु दीनताको भावावेग हे. वा बाजुसु रसभावको आवेग हे. या बाजुसु भक्तिको आवेग हे. वा बाजुसु अपने दोषन्की स्फुरणा भई उनको आवेग हे. या बाजुसु प्रभुके सौन्दर्यकी स्मृतियें जग रही हें. अपने अपने स्वभावके अनुसार, प्रभुके रूप, प्रभुके गुण याद आ रहे हें. उन स्मृतीन्को आवेग हे. इन सबन्के आवेगन्में कोई भी आदमी अपन्पेमें (खुदमे) रेह नहीं सके हे.

ये तो श्लोक हें जो या क्रममें लिखे गये होंयगे पर बोलते बखत उन्होंने कोई इतनी धीरज रखी होयगी कि एक अपनो वर्णन पूरो करे तब दूसरो शुरु करे! जैसे अपने यहां एक आदमी बोले फिर वाके बाद दूसरो बोले पर जब जोश आ जाये तो एक बोले तो दूसरो इन्ट्रप्ट् करे. फिर तीसरो इन्ट्रप्ट् करे. जब चक्र प्रवर्तन हो जाये तब फिर शास्त्रको नियमन नियामक नहीं रेह जाये. वा स्थितिमें अब एक एक श्लोकमें टोकनो शुरु कर रही हें. अब तक तो क्रमसु निरूपण भयो पर याके आगे ध्यान दो तो आचार्यचरण बतावें कि एक एक गोपी ठाकुरजीसू प्रार्थना तो कर रही हे पर साथमें दूसरेकु टोकती भी जा रही हे. वो टोक क्यों रही हे? भावके प्रबल आवेगके कारण. इन भावन्के आवेगमें.

अब ये गोपिका सात्त्विक-सात्त्विक हे, याके मनमें सबसु पेहले ब्रह्मात्मक तथ्यपे जाने ध्यान दिलायो **"न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्"** तो वासू ऐसो प्रतीत भयो कि भगवान् सब देहीन्के अन्तर्द्रष्टा हें और ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके कारण प्रकट

भये हें. मने ऐसो प्रतीत भयो कि भगवान्सु कोई सम्बन्ध होवे ही नहीं या तरहसु आप्तकाम, आत्माराम ठाकुरजी प्रकट भये हें जिनकु गोपिकान्की कछु पड़ी ही नहीं होय. अब अपने दीन स्वभावके कारण, अपने निर्गुण स्वभावके कारण वाकु प्रभुको ऐसो स्वरूप दीखे हे. तदनुसार प्रभुकी प्रार्थना वाने करी और ज्ञानके भी कुछ रहस्य मालूम हें और भक्तिके भी कुछ रहस्य मालूम हें, दोनों साईड्के रहस्य मालूम हें. तो वो केह रही हे कि ब्रह्मके दो पक्ष. ब्रह्मको एक पक्ष तो ये कि जहां निर्गुण निराकार नि:धर्मक निर्विशेष हे वो पक्ष निरपेक्षपक्ष हे. श्रुतिमें ब्रह्मके बारेमें उपपत्ति और उत्पत्ति पक्ष दोनों ही पक्ष बताये गये हें. निर्गुण प्रतिपादिका निर्गुणगोपिका वो भगवान्के उत्पत्तिपक्षकु लेके व्याख्या कर रही हे. अब याकु चिंता भई कि भई! क्या एक ही पक्ष हे प्रार्थना करवेको? वा पक्षकु क्यों इतनो ग्लोरिफाई कर रही हो तुम?

श्रीगुसांईजीकु भी ऐसो ही हो गयो हे. आप लिख रहे हें और जहां उत्पत्तिकु प्रस्तावित कियो वहां लिखते लिखते कंटाला आ गयो. वहां लिखें हें कि याके अलावा उपपत्तिपक्ष भी हे. सम्प्रदायके सिद्धान्तके हिसाबसू उपपत्ति श्रेष्ठ हे यद्यपि उत्पत्तिपक्ष प्रामाणिक हे. अब याको मतलब क्या? तत्त्वमें श्रेष्ठताको अन्तर क्यों आयो? श्रुतिमें तो श्रेष्ठताको अन्तर आवे. जैसे मैं आपकु कहूं कि "सुपारी भी आप खा सको हो. याके बदले इलायची हे. सो आप इलायची भी खा सको हो पर सुपारी खावेके बजाय इलायची खानो श्रेष्ठ हे." या तरहसू इलायची खावेकी श्रेष्ठता मैं बता दऊं तो याको मतलब कि आप सुपारी नहीं खाओगे और इलायची खा लोगे. (तो बीड़ा पक्षमें तो श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ बतावेको अन्तर करें हें पर मैं अगर कहूं कि "ये बीड़ा हे." ये श्रेष्ठ पक्ष हे और ये कहूं कि "ये बीड़ा नहीं पान हे" ये अश्रेष्ठ पक्ष हे, तो ये क्या सवाल हे कि बीड़ा हे कि पान हे? अब वामें तो कोई पक्ष

हे ही नहीं. यदि ये बीड़ा हे और मैं याकु बीड़ा केह रह्यो हूं तो ये सच्ची बात हे. यदि बीड़ाकु आलू कहूं तो अश्रेष्ठ पक्ष हे.) श्रेष्ठताको निर्धारण तथ्यमें नहीं होवे पर कृतिमें होवे ऐसो नियम हे. ये ऑप्शन् हे. ये ऑप्शन् जब कोई काम करनो होय तो दियो जाय. ज्ञानमें तो आप चाहे याकु बीड़ा समझ जाओ, चाहे पान समझ जाओ पर जहां ऑप्शन् नहीं हे वहां श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ कैसे बनेंगे? जब तुमकु पेपर लिखनो हे तो चाहे ये लो चाहे तो वो लो. जैसे साइकोलोजी या सोशियोलोजी इन विषयनूमेंसू कोई एक लेनो होय तब तो क्रियामें ऑप्शन् आवे. इनमें केवल एक होय तो वामें ऑप्शन् नहीं आवे पर जब दो हों तो ऑप्शन् आवे. तो श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ को प्रश्न कब आवे जब कर्म होय तब. जैसे एककालसंध्या करनी या त्रिकालसंध्या करनी. तो अपन् कहें कि त्रिकालसंध्या करनी श्रेष्ठ हे. तो जहां ज्ञान हे वहां श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ को प्रश्न नहीं आवे. ज्ञानको सिद्धान्त कैसो? अब जैसे शतप्रतिशत मार्कस् हिसाबमें मिलें. अब यामें श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ को प्रश्न नहीं हे. अब हिन्दीमें शतप्रतिशत नम्बर् नहीं मिलें. यामें तो कुछ संभावनायें हे कि ग्रामर् ठीक नहीं हती, शब्दविन्यास ठीक नहीं हतो, पेराग्राफिंग् ठीक नहीं हती, तो यामें श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता आयेगी पर हिसाबमें श्रेष्ठता या अश्रेष्ठता नहीं हे. पास् या फेल्. वहां श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता को प्रश्न नहीं उठे.

अब वहां श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें कि उत्पत्तिपक्ष प्रमाण हे पर उपपत्तिपक्ष हे वो श्रेष्ठ हे. ये श्रेष्ठ कैसे हो गयो? मने प्रभु पेहले निर्गुण निःधर्मक निराकार ब्रह्म हते और फिर प्रभुने अपनेमें अलौकिक गुण धर्म और आकार प्रकट किये. तो आकार बादमें प्रकट हुवे तो उत्पत्तिपक्ष. प्रभुमें पेहलेसू ही दिव्य गुण धर्म आकार मौजूद हते और सृष्टि केवल बादमें प्रकट हुई. तो ये उपपत्तिपक्ष. अब दोनों पक्षनूको प्रतिपादन श्रुतिनूने कियो हे. दोनों पक्षको प्रतिपादन

करके श्रीमहाप्रभुजी कहें हें कि दोनों पक्ष प्रामाणिक हें, और दोनों पक्ष प्रामाणिक केहते केहते गुसांईजीको मूड खराब हो जाये (और कहें हें) कि उपपत्ति श्रेष्ठ हे. अब प्रामाणिक हे तो अश्रेष्ठ कैसे भयो और अप्रामाणिक हे तो श्रेष्ठ कैसे भयो? अब अश्रेष्ठ हे तो प्रामाणिक कैसे रेह गयो? भाव रुके नहीं हे कैसे भी. तत्त्वको निरूपण तो करें पर जब तत्त्व स्वयं भावानुसारी हो, तो भावके अनुसार वस्तुमें श्रेष्ठता और अश्रेष्ठता आवे. ज्ञान श्रेष्ठ और अश्रेष्ठता में विभाजित नहीं हो सके हे, फिर भी भाव वाकु दबा दे. ऐसे ही ये सात्त्विक ये सुनके घबरा जाये कि बाततो प्रामाणिक हे पर ऐसो वर्णन क्या कामको अगर प्रामाणिक भी होय तो?

थोड़ो विपरीत उदाहरण हे. जब हमारे ससुरजी चले गये, तो हम सब बेठवे गये. हमारे साढुभाई भी गये. हमारे साला रो रहे थे. तो उनकु साढुभाईने समझानो शुरु कियो कि "यामें रोवेकी क्या बात हे! ससुरजी गये अब तुम्हारी भी बारी आयेगी." अब ऐसे तरीकेसु समझानो वाकु! अब गलत बात तो नहीं हे. अप्रामाणिक भी नहीं हे. हर आदमीकी बारी एक न एक दिन आवेवाली ही हे. हर रोज आदमी जा रहे हें. हर रोज जावेवाले हें. कोई रुकवेवालो तो हे नहीं. फिर भी जो रुके भये हें वो तो योंही चाहें न कि रुके रहें. अब वो बिचारो रो रह्यो हे तो वाकु ऐसो आश्वासन देके समझाओ कि "अरे! भई चले गये तो तू चिन्ता मत करियो" कि "ऐसे समझानो कि वो चले गये अब तुम्हारी बारी भी आयेगी." आप गये सो गये, बेटाकी बारी और लगा गये. ऐसी सान्त्वना भी क्या कामकी!

प्रामाणिक बात तो हो सके हे पर प्रामाणिक होते भये भी अश्रेष्ठ हो जाये. "**न खलु गोपिकानन्दनो...उदेयिवान् सात्त्वतां कुले**". ऐसे बात तो सच्ची हे, प्रामाणिक हे पर सात्त्विकगोपिकानूकु श्रेष्ठ

नहीं लग रही हे वाकु लग रह्यो है कि या बातमें कहीं गड़बड़ हे. प्रामाणिक होते भये भी ये मजेदार बात नहीं हे. जब या बातकु खाली सात्त्विक दृष्टिसू देखवे जाओगे तो बात ठीक हे पर यदि थोड़ोसोभी हृदयमें भावको संचार हे, तो पता चलेगी कि प्रामाणिक होते भये भी बात अश्रेष्ठ कैसे हो जाये? वा न्यायसू ये दिखानो चाह रही हे सारे ब्रह्मवादकु सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका. मने उपपत्तिको इन्टरप्रीटेशन् जो निर्गुणगोपीको हे, वाकु खींच-तानके उत्पत्तिपक्षमें लानो चाह रही हे.

(शुद्धाद्वैतदर्शनके विकासके दो बीजरूपभाव : निर्भयता और रमण)

सारे शुद्धाद्वैतदर्शनको जो विकास हे वाके बीजमें दो भाव हें. निर्भयता और रमण. अपनी आखी जगत्की व्याख्यामें कुछ लोग यों समझें हें कि जगत्की उत्पत्ति प्रभुने जीवके कर्मन्के फलभोगके लिये करी. कुछ लोग यों समझें हें कि जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मने करी ही नहीं, मायाने कर दी. मायाके कारण जगत् उत्पन्न हो गयो. कुछ लोग यों समझें कि यापे तो कन्ट्रोल् ही नहीं हे. जैसे दूधमें दहींको जामन न भी मिलाओ तो पड़े पड़े भी फट जाये. वाको स्वभाव ही ऐसो हे. या जैसे पहाड़पेसू पत्थर डालो तो वो लुढ़क जायेगो. वाको स्वभाव ही ऐसो हे. जल बहे क्यों जो वाको स्वभाव ही ऐसो हे. ऐसे केवल स्वभाववश सृष्टि उत्पन्न हो रही हे कुछ लोग ऐसे समझें. सृष्टिके उत्पन्न होवेके बीजभावमें अपनी अपनी मान्यतानुसार अलग-अलग दार्शनिक अपने अपने विचार रखें हें.

औपनिषदिक दृष्टि तो वास्तवमें ये हे कि सृष्टिके बीजभाव निर्भयता और रमण में रहे भये हें. कुछ और भी केहनो होय तो केह सकें हें कि निर्भय-रमण.

(निर्भयताको कारण)

निर्भयता कैसे सम्पादित होवे हे? **“द्वितीयाद् वै भयं भवति”** (बृह.उप.१।४।२). जहां भी द्वैत आ जायेगो वहां भय हो जायेगो. जहां एकता आ जायेगी वहां अरमण हो जायेगो. यदि एकता हे, एक ही आदमी बेठ्यो होय तो रमण कैसे? **“एकाकी न रमते”** (बृह.उप.१।४।३) और दो आदमी बेठे हें तो भय पैदा हो जाये. **“भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद्”** (भाग.पुरा.११।२।३७). जा बखत तुमकु द्वितीयको अभिनिवेश हे, मने कोई तुमकु चइये हे, ऐसो जा बखत तुम्हारो आग्रह हे तो तुमकु भय हे. जा बखत तुमकु ऐसो आग्रह तूट जाये तो तुम्हारो भय खतम हो जाये. जानवर तुमसू कबतक डरे? जबतक वो तुमकु मनुष्य समझे. जा बखत तुम जानवरमें जानवरकी तरह लिप्त हो जाओ तो जानवर तुमसू डरनो छोड़ दे. क्योंकि भय द्वितीयसू हे. जबतक तुमकु द्वितीयाभिनिवेश हे तबतक तुमकु भय हे. जब द्वितीयाभिनिवेश नहीं रहेगो तो तुमकु भय नहीं रेह जायेगो. जबतक अपन् कोईकु दूसरो माने, तबतक भय हे. जहां दूसरेकी भावना हटी, अरे भई! ये तो अपनो हे! तो भय भी हट जाये. हर भय एकक़ु दूसरेसू हो रह्यो हे. जहां अपन्ने अपनो मान लियो, जहां द्वितीयाभिनिवेश हट गयो वहीं भय खतम हो जायेगो.

जब हम छोटे हते तब भूतसू बहोत डरते. भूत न जाने क्या हे? न जाने भूत खायगो कि मारेगो? भूतके बारेमें बड़ो द्वितीयाभिनिवेश हतो. एक शास्त्रीजी आये हते तो वो बोले “अरे! भूतसू क्यों डरो? भूत तो तुम्हारे शरीरमें ही हे पंचमहाभूत.” हमने कही कि “हमारो शरीर भूत हे?” वो बोले “हां तुम्हारे शरीरमें भूत हे.” हमने कही कि “चलो यामें डरवेकी क्या बात हे?” क्योंकि द्वितीयाभिनिवेश हट गयो. तो बच्चा डराते रेहते कि “गलीमें जाओगे तो वहां भूत हे”, यहां भूत हे तो डर लगतो रेहतो. क्योंकि द्वितीयाभिनिवेश हतो पर जब अपनेकु भूत समझमें आ जाये

कि अपन् ही ये भूत हें तो फिर डरवेकी कोई बात रेह नहीं जाये. तो जितनो भी भय हे वो द्वितीयाभिनिवेशमूलक भय हे.

(निर्भयता कभी अरमणको कारण भी)

जहां द्वितीयको अभिनिवेश खतम भयो वहां भय तूट जाये. मगर द्वितीयका अभिनिवेश तूटे, तो शायद बहोत एक्स्ट्रीम् पोइन्ट्पे तूट गयो तो रमण भी खतम हो जायेगो. कारण क्या? अपने घरमें बेठवेपे मन क्यों नहीं लगे? क्यों तुम्हारेमें पिकनिक करवेके लिये बाहरगाम जावेकी इच्छा होय? द्वितीयाभिनिवेश हे हमारे मनमें कि जो स्थल नहीं देखें होंय वाकु देखवेकी इच्छा होय.

("कितनो सुन्दर!" v/s 'यहां क्या धर्‌यो हे!")

अभी हम काश्मीर गये तो पेहलगांवमें एक काश्मीरी हमकु मिल्यो. वाने हमसू पूछ्यो कि "कहांसू आये हो?" हमने कही "बम्बईसू." तो बोल्यो "बम्बई बड़ी अच्छी हे." हम बोले कि "हम यहां बम्बईसू घूमवे आये और तू केह रह्यो हे कि 'बम्बई बड़ी अच्छी हे." तो बोल्यो कि "यहां कुछ भी नहीं धर्‌यो हे. हमकु बम्बई ले चलो." हम तो ये समझे थे कि बम्बईमें कछु नहीं धर्‌यो हे. यहां घूमवे आये. तो बोल्यो कि "यहां सब बेकार हे." हम बोले कि "कितनो सुन्दर हे" तो बोल्यो कि "क्या सुन्दर हे बरफ ही बरफ हे चारों तरफ." अब वाके और मेरे बीचमें एक ऐसी दीवार खड़ी हो गई कि वाकी बात मोकु समझमें नहीं आई और मेरी बात वाकु समझमें नहीं आई. बोले "बरफ ही बरफ हे, चारों तरफ पहाड़ हें. यहां कुछ नहीं धर्‌यो हे." क्योकि द्वितीयाभिनिवेश ही नहीं हतो. अब हमकु द्वितीयाभिनिवेश हे. अब हम बम्बईवाले तो रमणकी भावनासू काश्मीर घूमवे गये पर जब वहां जाके बस ही जाओ तो द्वितीयाभिनिवेश खतम हो जाये तो रमणकी भावना खतम हो गई. हंसूभाई कोईकु पहाड़पे घुमावे ले गये. तो वो बोले

"यहां कांई धर्‌यो हे! ऊपर एक मोटो भाटो नीचे एक खाडो. यामें कांई धर्‌यो हे!" क्योंकि जब द्वितीयाभिनिवेश खतम हो जाये तो ऐसी ही स्थिति हो जाये. द्वितीयाभिनिवेश होनो चइये और नहीं होनो चइये. यदि रमणकी दृष्टिसू सोचो तो होनो चइये, यदि भयकी दृष्टिसू देखो तो नहीं होनो चइये.

श्रुतिने ब्रह्ममें याही तरहसू समाधान सोच्यो. "**एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय**" (छान्दो.उप.६।२।३) एक मैं यदि अनेक हो जाऊंगो तो द्वितीयाभिनिवेश रहेगो भी और नहीं भी रहेगो. एकके अनेक होवेमें द्वितीयाद् भयं नास्ति. ब्रह्मने सोच्यो मैं कौनसूं डरूं "**यन्मदन्यद् न अस्ति कस्माद् नु बिभेमि...द्वितीयाद् वै भयं भवति**' (बृह.उप.१।४।२) एक व्यक्ति अन्यव्यक्तिसू डरे. तो मैं कौनसूं डरूं? जब मैं ही हूं तो कौनसूं डरूं? आजकी भी स्थिति हे कि दूसरेसू भय लगे, पर एकाकी रमण नहीं होवे या लिये वो एक अनेक हो गयो. "**स वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न रमते स द्वितीयं ऐच्छत्**" (बृह.उप.१।४।३) वाने द्वितीयकी इच्छा करी. तो एकके अनेक होवेकी प्रक्रियामें, एकसू दो होवेकी प्रक्रियामें इन दोनों बातनूको समाधान मिल जाये हे. भयको भी और अरमणको भी. समस्या दो हें ना! यदि दो हें तो भयके स्थान आयेंगे. यदि एक हे तो अरमणकी स्थिति आयेगी. अभय होके रमण करनो. उपनिषद् याको समाधान यों करे हे कि एक यदि अनेक हो जाये हे तो वो अनेक होते भये भी अनेक नहीं हे एक ही हे. अद्वितीय होते भये भी द्वितीय होनो भयजनक नहीं द्वैत नहीं हे. अरमणजनक अद्वैत भी नहीं रेह जायेगो. भयजनक द्वैत नहीं रेहनो चइये और अरमणजनक अद्वैत नहीं रेहनो चइये. कुछ एक ऐसो द्वैत होनो चइये जामें निर्भय-रमण होनो चइये.

याके लिये रासपंचाध्यायीके पेहले ही वेणुगीतमें ही आचार्यचरण कहें हें "**इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना न्यविशद् वायुना वातं**

सगोगोपालको अच्युतः'' (भाग.पुरा.१०।१८।१) **''सगोगोपालको अच्युतः''** याकी व्याख्या करते भये कहें हें **''नायकोत्कर्षार्थम् 'अच्युत' इति आह, तत्रापि गावोनुभाविका गोपालाः सेवकाः, शक्तीनां निर्भयत्वाय एते देवाः साक्षिणः''** (सुबो.१०।१८।१) यदि रमण हे तो निर्भयता होनी चइये. ये प्रमेयप्रकरण हे. यह फल फलित हे गोपीगीतमें. जब निर्भय-रमणकी स्थिति आयेगी तब शुद्धाद्वैतको अनुभव जाके घटित होयगो. यदि सभय-रमण रह्यो तो शुद्धाद्वैतको अनुभव घटित नहीं होयगो. यदि निर्भय-अरमण रह्यो तो शुद्धाद्वैतको अनुभव घटित नहीं होयगो. निर्भय-रमणमें शुद्धाद्वैतको अनुभव चरितार्थ होवे हे.

ननु भगवान् पुरुषोत्तमो योगिध्येयः, कथं स्त्रीणां स्पर्शं करिष्यतीति चेत्. अरे वो योगिध्येय भगवान्! अब ये गोपी सात्त्विक हे करके याकु ऐसी ही बातें सूझें. गोपीके माथेपे क्यों हाथ धरेगो? **तत्र आह श्रीकरग्रहम् इति.** अरे लक्ष्मीको हाथ पकड़े हे कि नहीं! हाथ न पकड़े तो मत पकड़ पर कमसू कम माथेपे हाथ तो धर दे. उचित तो ये बात हती कि हमारो हाथ भी आके पकड़ ले. हाथ न पकड़तो होय तो मत पकड़ पर शिरपे धरवेमें तेरो क्या जाय!

श्रियाः करस्य ग्रहो ग्रहणं येन. अतो भगवान् गृहस्थ इति. अरे योगीन्‌को ध्येय होयगो पर गृहस्थ हे कि नहीं? ब्रह्मचारी रेहवेकी कोई सोगंद तो नहीं खाई हे. जैसे स्वामीनारायणके साधु स्त्रीको मुंह ही नहीं देखें. अब ध्यान देके देखो तो सात्त्विकसात्त्विक गोपी ये केह रही हे **कर सरोरुहं कान्त कामदं** भगवान्‌के श्रीहस्तमें दो गुण हें. अभय देवेको और काम देवेको. श्रीहस्त रमणप्रद और अभयप्रद हे. ये जो बात केहनी हे तो जा प्रकारको ब्रह्मको उपपत्तिको पक्ष हे, जो स्वतः सगुण साकार और सधर्मक हे, वो स्वयं शुद्धाद्वैतरूप हे. स्वयं निर्भय-रमणरूप हे. तो निर्भय-रमणरूप यदि वाको श्रीहस्त

हे तो निर्भय-रमणरूप श्रीहस्तको वरदान क्यों नहीं मांग रही हो? बेकारमें बेठे बेठे ज्ञानमार्गमें डायग्रेशन् कर रही हो. **"न खलु गोपिका.."**. ये डायग्रेशन्के प्रसंगकी यहां क्या आवश्यकता हे? सीधे बात करो. ज्ञानको जो निरूपण करनो हे तो शुद्धाद्वैतके संदर्भमें करो जितनो कियो जा सकतो होय उतनो तो कर लो. अरे ब्रह्मके तो पचास आस्पेक्ट्स् हें. उन आस्पेक्ट्स्की स्तुति करके क्या फायदा होयगो जो अपने काम न आतो होय! अरे स्तुति भी करो तो ऐसे आस्पेक्ट्स्की गर्भस्तुति करो जो अपने तत्कालमें काम चल जाये.

"एक ही अनंग साधि साध सब सधत नाहिं अपर अनंग साधि साध सरि हें कहा" (उद्धवशतक). अब एक और निराकारकी साधना बताके तुम क्या केहनो चाह रहे हो? कौनसो निर्भय-रमण सिद्ध हो जायेगो वा अनंग साधनासू और अपर अनंग साधनासू! वाके लिये हमारी प्रोब्लेम् हे शुद्धाद्वैत निर्भय-रमणकी. मने निर्भय-रमणकी प्रोब्लेम् हे, भयजनक द्वैत नहीं होनो चइये. अरमणजनक अद्वैत नहीं होनो चइये. द्वैत ऐसो होनो चइये कि जो अभयप्रद होय. अद्वैत ऐसो होनो चइये जो रमणप्रद होय. तो ऐसो श्रीहस्त हमारे शिरपे धरवेकी जो तुम मांग करो, तो कुछ शुद्धाद्वैत तुमने पढ़्यो पढ़ायो. नहीं तो बात प्रामाणिक हे पर श्रेष्ठ नहीं हे. प्रामाणिक होते भये भी बात श्रेष्ठ नहीं हे. वाको कारण ये कि तुमने मांगवेमें ऐसे पक्षको वर्णन कियो कि जाको यहां कोई प्रसंग ही नहीं हे. जैसे पेहले कह्यो हतो के उन्होंने कही "पिता गये तुम्हारी भी बारी आयेगी" बात तो ठीक कही, पर यहां वाको प्रसंग क्या उचित हे? अभी बिचारो रो रह्यो हे गरीब तो वाकु रोवे दो. यदि ठीक तरहसू समझा सकते हो तो समझाओ अन्यथा रो लेवे दो. ऐसी बात केहके समझानो तो बड़ी कठोर बात हो जाये ना! या तरहसू या सात्त्विकसात्त्विक गोपिकाकु लग रह्यो हे कि गोपिकानन्दनत्वको निराकरण कर देनो और वाको या समय **"अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्"**

केहवेको यहां क्या लाभ! प्रकृत प्रसंगमें या समय वृन्दावनमें भगवान् अखिलदेहीन्को अन्तरात्मा होय अन्तर्दृष्टा होय अन्तर्यामी होय तो वाकु यहां केहवेको क्या लाभ! वृन्दावनमें कोई लाभ नहीं, प्रामाणिक निरूपण होते भये भी प्रसंगोपात्त नहीं हे और अप्रासंगिक निरूपण हे. यों केहके टोक रही हे.

याके लिये आचार्यचरण कहें हें **अन्या: पुन: सात्त्विकसात्त्विक्य:, राजसप्रधानाभ्यो विशिष्टा:.** राजसप्रधानसू तो विशिष्ट हे, राजसने जो कुछ मांगे करी, वाकी भाषा सुनके ही ये घबरा गई. याकु समझमें नहीं आई कि ऐसी भाषा भगवान्सू कैसे कही जाय! जो निर्गुणने प्रार्थनाहीन वर्णन कियो, वा बातमें याको भाव रुचे नहीं कि जब तेंने वर्णन कियो तो कछु मांगके वर्णन करो. इतनी दीनता भी क्या कामकी कि कछु मांग्यो ही नहीं और वर्णन कर दियो. कुछ तो तकाजा होनो चइये कि नहीं! **"शौके दीदार हे तो तकाजा भी करो"** कुछ तो तकाजा होनो चइये कि नहीं? बिना तकाजाके साक्षीवत् वर्णन कर देवेसू या लीलाके प्रसंगमें क्या लाभ होयगो! यदि लाभ नहीं भयो तो ऐसो वर्णन क्यों करनो चइये! याके लिये वाने टोक दियो. **"विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते"** और श्रीहस्त हमारे माथेपे रख जो अभय देवेवालो होय.

अब ऐसो श्रीहस्त हमारे माथे पे रख जो कामद होय. अब प्रभु कहें कि अभयप्रद और कामद श्रीहस्त हम तुम्हारे मस्तकपे क्यों धरें? तो कहें हें कि तेंरे उपपत्तिको पक्ष हे कि तू **श्रीकरग्रह** हे. अभी तक तू श्रीको कर पकड़के आयो हे. अब ये वा श्रीकी बात नहीं हे पर ये श्री नित्यलीलामें तेरे साथ नित्य वामभागमें बिराजमान हे. **"स इममेव आत्मानं द्वेधापातयत् तत: पतिश्च पत्नी च अभवताम्"** (बृह.उप.१।४।३). जब नित्यलीलामें ये नित्य श्रीकरग्रहिता हे, तो अब तोकु वो शुद्धाद्वैत एडोप्ट् करवेमें क्या जोर पड़ रह्यो

हे? जब तू शुद्धाद्वैतस्वरूप हे तो हम कोई गैरशुद्धाद्वैती मांग तो कर नहीं रही हें. शुद्धाद्वैतकी ही मांग कर रही हें कि रमण निर्भय होनो चइये, द्वैतमें अद्वैत और अद्वैतमें द्वैत होनो चइये.

श्रीकरग्रहिताके उपपत्तिपक्षमें हमने ये देख्यो हे और वोही हम मांग कर रही हें कि कुछ ऐसो हाथ हमारे माथेपे धर दे कि जासू ये निर्भय-रमण हमारो चलतो रहे. हमारे भय दूर हो जायें और ये अरमणकी स्थिति भी नहीं आये. याने बड़ी सात्त्विक भाषासू निर्गुणसू एक कदम आगे जाके बात कही हे. श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें **"त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं यद् अस्ति मे तदेव फलम् इति आत्मशास्त्रतः प्रमिणोमि अहम्"**. (विज्ञप्ति.४४) देखो सात्त्विकभाव कैसो हे, "मैं तेरो हूं" "मैं तेरो हूं" "मैं तेरो हूं" येही मेरे लिये फल हे. ये आत्मशास्त्र जब मैं निर्गुणके लेवलूपे देखूं हूं तब तो बात समझमें आवे ऐसी हे. क्योंकि "मैं तेरो हूं" बस येही मेरे लिये फल हे. यासू ज्यादा और क्या फल होयगो?

(ज्ञानदृष्टि और भक्तिदृष्टि)

तेरो हूं यामें कोई संदेह नहीं हे क्योंकि **"एको अहं बहुस्याम्"** हे. हर व्यक्ति तेरो हे जब तू **"अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्"** तो मैं तेरो क्यों नहीं हूं? मने "कोना छोड़के भाईयों और बेहनों." तो ब्रह्माण्डको कोई ऐसा कोना तो नहीं हे कि जा कोनामें ठाकुरजीकु ये केहनो पड़े कि "ये मेरो नहीं हे." एक सरदारजी प्रवचन कर रहे थे और उनकी पत्नी वहां बेठी भई हती. एक जोक हे. अब उनकु "भाईयों और बेहनों" केहनो हतो पर कहें तो कैसे कहें? तो उन्होंने कही "कोना छोड़के भाईयों और बेहनों" तो सबन्ने देख्यो तो कोनेमें उनकी पत्नी बेठी भई हती. ब्रह्मकु तो ऐसो कोना छोड़वेकी कोई आवश्यकता नहीं हे कि तुमकु छोड़के सब मेरे मदीय हें. ऐसा तो कोई नहीं हे. चाहे तो तामसभाव होय

चाहे तो राजसभाव होय चाहे सात्त्विकभाव होय चाहे तो निर्गुणभाव होय पुष्टिजीव होय के मर्यादाजीव होय के प्रवाहीजीव होय दैवीसृष्टि होय चाहे आसुरीसृष्टि होय जड़ होय के चेतन होय, सब कछु ब्रह्मको हे, ब्रह्मात्मक हे. प्रभुको लियो भयो रूप हे. ब्रह्मको अपने निर्भय-रमणके लिये लियो भयो रूप हे. **''त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं यद् अस्ति मे तदेव फलम् इति आत्मशास्त्रत: प्रमिणोम्यहम्''** (विज्ञप्ति १।४४). यामें तो कोई सन्देह नहीं हे कि निर्गुण सात्त्विक दृष्टिसू यदि विचार करें पर मेरे कोई सात्त्विकभाव हें, ये भी सुनेगो कि नहीं? मैं तामसभाव ना बोलूं क्योंकि मोकु अभी विप्रयोग हे यासू, पर सात्त्विकभावकु सुनेगो कि नहीं? तो कहें हें **''तथापि मन्नेत्रवपु:प्रभृतीनां व्रजाधिप! साक्षात्त्वयि उपभोगं मे मन: कामयतेतराम्''**. (विज्ञप्ति १।४५).

मैं तेरो तो हूं. विज्ञप्तिमें श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हें. ''तेरो हूं'' वामें संदेह नहीं हे पर ''तेरो हूं'' या बातको रियलाइज़ेशन् ही अपने यहां फल हे. यासू ज्यादा और कोई फल नहीं हे. ज्ञानकी यहां तक पहोंच हे. भक्तिकी पहोंच यहां तक ही नहीं हे. भक्तिकी दीक्षा यहांसू हे. अपने यहां याहीके लिये **''भगवदीयत्वेन परिसमाप्तसर्वार्था''** (भाग.पुरा.५।६।१७). भगवदीयता अपने यहां परममोक्ष सिद्ध होवे हे. भगवदीयतामें ही अपनो परमधर्म भी निहित हे. परमधर्म भी भगवदीयतासू प्रारम्भ होवे हे. परममोक्ष भी अपने यहां भगवदीयतामें जाके चरितार्थ हो जाये हे. ये तो स्नेहकी दृष्टिसू हे.

(सर्वात्मभाव)

ज्ञानकी दृष्टिसू यदि विचार करो, तो भगवान्के अपन् अंश हें, येही अपनी प्रथम कक्षाके ज्ञानमार्गीय साधनकी साधना हे. भगवान्के अंश हें वा तरहसू अनुभूत होवे लग जाये तो येही ज्ञानमार्गको साक्षात्कार हे. याके अलावा अपने यहां शुद्धाद्वैतमें कोई जीव खुद

ही ब्रह्म बन जाये, अंशी बन जाये, वो स्थिति तो हो नहीं सके. अंशीसू अभिन्न तो हो सके पर अंशी तो नहीं बन सके हे. अंशीको अंश हे याको समझ लेनो ये ज्ञानकी प्रथम साधना हे. अंशिताको भान जिज्ञासा हे और अंशिताको साक्षात्कार ज्ञानकी सिद्धि हे. आरुरुक्षु और आरूढ़योगी जैसे होवें हें वैसे ही ज्ञानमें भी जिज्ञासु और विद्वत्दशा ऐसे दो भेद हें. यामें "अंशी हूं" ये श्रवण मनन कियो निदिध्यासन कियो तो ये जिज्ञासु. अंशिताको जब भान होवे लग जाये, "**एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः**" (बृह.उप.३।७।३) यों उपनिषद् कहे हे. "अरे वो तेरी आत्मा हे. वो अन्तर्यामी हे. वो अमृत हे. तेरी आत्मा वो हे." याको मतलब ये नहीं कि तेरे देहकी आत्मा वो हे. आत्माकु संबोधित करके ही आत्मा कह्यो जा रह्यो हे कि "तेरी आत्माकी भी वो आत्मा हे. जैसे तेरे देहकी तू आत्मा हे, वैसे तेरे देहकी आत्माकी भी वो परम आत्मा हे." अपने यहां ज्ञानमें प्रभुको आत्मनात्मत्वं मने प्रभुको परमात्मत्व ही अनुभूत होयगो. वा ज्ञानकी अनुभूति होवेके बाद जाकु "ज्ञानमार्गीय सर्वात्मभाव" कहें हें ऐसो सर्वत्र ब्रह्मको भान हो जाये और सर्वत्र ब्रह्मके भान होवेके अन्तर्गत अपनेमें भी ब्रह्मको भान होवे और वो यों कहे "**अहं मनुरभवं सूर्यश्च**" (बृह.उप.१।४।१०) मेरेमें जगत् स्थित हे. मेरेमें जगत् लीन हो रह्यो हे. वो वाको ज्ञानमार्गीय सर्वात्मभाव हे.

ऐसे ही भक्त भक्तिमार्गीय सर्वात्मभावमें कहे हे "**कृष्णो अहं पश्य गतिं**" (भाग.पुरा.१०।२७।१९). वो भी वाकी एकरसता हे, तन्मयता हे. अरे अपनो आसिस्टन्ट् अपनी सही करे. जैसे आपको सेक्रेटरी आपके सारे पत्रनूकु जवाब दे दे. वो पत्र पढ़के आपके सारे जवाब दे दे, तो वैसे अंश अंशीके बिहाफ़्पे क्यों नहीं जवाब दे सके हे! ब्रह्मकी ओरसू वो क्यों नहीं साईन् कर सके! याही अर्थमें वो "**अहं ब्रह्म अस्मि**" साईन् करे हे. याही अर्थमें अपन् वाकु

साईन् करवेकी छूट भी देवें हें कि **"तत् त्वम् असि"** वोही अर्थ **"सर्वं खलु इदं ब्रह्म"** को हे. **"सर्वं खलु इदं ब्रह्म"** हे याही लिये वाकु छूट दी गई हे **"तत् त्वम् असि"** केहके कि तुम **"अहं ब्रह्म अस्मि"** के सिग्नेचर् कर दो. वो सिग्नेचर् करे हे वामें कोई अप्रामाणिक नहीं हे. वो वा दी भई छूटकु प्रयोगमें ला रह्यो हे. जैसे पॉवर् ऑफ् एटर्नी होवे हे ना! वैसे **"तत् त्वम् असि"** सु वो ओथोरिटी दी गई हे, **"तत् त्वम् असि"** केहके. **"एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतम्"** केहके कि तुम **"अहं ब्रह्म अस्मि** के सिग्नेचर् कर दो. अब सिग्नेचर् कर रह्यो हे याको मतलब ये नहीं कि सारी सत्ता ही वाके हाथमें आ गई. वाको माल ही बेचके खा जावे. ओथोरिटी दी जाये वो वेलिड् कबतक मानी जाय, जबतक ब्रीच् ऑफ् ट्रस्ट् न करे. वो खुद ब्रह्म न बन जाये. जब जनरल् पॉवर् ऑफ् ओथोरिटी दी जाये, जाके तहेत वो मालिकके तरफसू वो सब कछु कर सके जो मालिक कर सके पर याको मतलब ये नहीं कि वो याकी ओनरशिप् ही क्लेम् कर ले. पॉवर ऑफ् ओथोरिटीमें भस्मासुरी वृत्ति नहीं हे. भस्मासुरी वृत्ति नहीं हे कि जासू वर मांग्यो वाहीके सिरपे सबसू पेहले हाथ धरो.

(विमुक्तमानिनः)

भागवत याके लिये स्पष्ट कहे हे **"ये अन्ये अरविन्दाक्ष! विमुक्तमानिनः त्वयि अस्तभावाद् अविशुद्धबुद्धयः आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति अधो अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः. तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः"** (भाग.पुरा.१०।२।३२-३३). जो मुक्त हो गये हें उनकु ब्रह्मके साथ अभेदता स्पष्ट दीखवे लगे हे क्योंकि मुक्त हो गये. संसारमें अपनेकु ब्रह्मसु जो भेद दीखतो हतो वो भेद दीखनो बन्ध हो जाये. ब्रह्मके साथ सो अभेद दीखवे लग्यो, ब्रह्मके साथ जो घनिष्टता भई, वा घनिष्टताके कारण (क्या होवे कि) उनकुं अपनेमें विमुक्तताको बोध होवे हे. विमुक्तताको बोध

और विमुक्तमानिता.

(पण्डितमन्यता)

मने एक विद्वान होय और एक पंडितमन्य होय. पंडितमन्य मने जो अपने आपकु पंडित माने. पंडित नहीं हे या लिये पंडितमन्य. अगर पंडित होतो तो मानवेकी जरूरत क्या हती? अपनेकु पंडित कौन माने जो पंडित नहीं होय. जो पंडित हे सो तो हे ही. वाकु मानवेकी जरूरत पड़ेगी क्या? अपने आपकु वोही पंडित माने जो पंडित नहीं होय. जो होय तो मानवेकी जरूरत ही नहीं पड़े. क्योंकि वाकु फिर रुचेगो नहीं. बम्बईमें एक बखत ऐसो भयो कि एक नये कलाकारके लिये ओरगेनाईजर्ने प्रोग्राम् कियो. तो वो जो सोवेनियर् छपे वामें वा कलाकारके नामके आगे पंडित नहीं लग्यो तो वो कलाकार नाराज हो गये. वाने कही कि "सोवेनियर्में हमारो नाम छाप्यो और नामके आगे पंडित नहीं छाप्यो?" ओरगेनाईजर्ने कही कि "गल्ती हो गई महाराज! या बखत खाली पंडित रेह गयो, आगेसू नाम भी नहीं छापेंगे." यदि पंडित होव वस्तुतः तो पंडित नहीं छपवेको झगड़ा क्यों होनो चइये! अरे भई जा बखत तुम गाओगे, वा बखत दुनिया मानेगी, पंडित छपे कि नहीं छपे. पर जब इतनो उद्वेग हो रह्यो हे कि पंडित नाम नहीं छप्यो. तो वा ओरगेनाईजर्ने कही कि "आवते बखत हम नाम भी नहीं छापेंगे." क्योंकि पंडितमन्यता एक दूसरी चीज हे और पंडित होनो दूसरी चीज हे.

(सितारवादनके सर्टीफिकेट्स् देखो!)

किशनगढ़में हमारे पास अशोकराय करके एक सितारवादक आये और हमसू कही कि "महाराज सितार सुनो." हमने कही "सितार जरूर सुनेंगे." अब वाने कही कि "मेरे सर्टीफिकेट्स् देखो." हमने कही "अशोकरायजी सर्टीफिकेट्स् देखवेकी क्या जरूरत हे. सितार

तो शामकु सुनवे ही वाले हें.'' फिर भी कहे कि ''सर्टीफिकेट्स् देखो.'' तो मैंने कही कि ''सर्टीफिकेट्स् देखवेसू मोकु कोई लाभ नहीं होयगो.'' फिर भी वाने कही कि ''आप देखो ही देखो.'' अब मोकु क्रोध आ गयो. मैंने कही कि ''एक शर्तपे कि यातो सर्टीफिकेट्स् देखूंगो या फिर सितार सुनूंगो. दोमेंसू एक बात नक्की कर लो.'' फिर भी वाने कही कि ''सर्टीफिकेट्स् देख लो.'' कुछ कॉलेजनूके सर्टीफिकेट्स्, कुछ बच्चानूके स्कूलनूके सर्टीफिकेट्, कुछ हायर सेकन्ड्री स्कूलनूके सर्टीफिकेट् कि अशोकरायजी हमारे स्कूलमें अच्छी सितार बजा गये. अब मैंने कही ''वचन दियो हे तो सो डेढ़सो सर्टीफिकेट्स् देखें.'' जब सर्टीफिकेट्स् देख लिये तो मैंने कही कि ''अब सर्टीफिकेट्स् देख लिये, अब सितार नहीं सुनूंगो. मैंने अपनी शर्त पूरी कर दी.'' सब सर्टीफिकेट्स् देख लिये अब सितार सुनवेकी क्या जरूरत हे! जब सर्टीफिकेट्स्को इतनो आग्रह हे तो कहीं न कहीं कुछ कौभाण्ड हे.

ऐसे ही जो ज्ञानी हें वा ज्ञानीकु विमुक्तमानिता नहीं होयगी वाकु तो विमुक्तता होयगी. वाकी मस्ती वो मुक्तिकी मस्ती ही होयगी पर जो अपने आपकु विमुक्तमानी कहे **''ये अन्ये अरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनः त्वयि अस्तभावाद् अविशुद्धबुद्धयः. आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति अधो अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः''** (भाग.पुरा.१०।२।३२)वा विमुक्तमानिताके कारण क्या हो जाये कि उनकु प्रभुमें भाव अस्त हो जाये.

(विमुक्तमानिता और विमुक्तता)

जो मुक्त हे वाकु तो सामान्यसू सामान्य क्षुद्र वस्तुमें भी भावको स्फुरण होयगो. प्रभुकी बात तो दूर रही पर जो क्षुद्र वस्तु हे वा सामान्य वस्तुमें भी मुक्तको भाव असंगत नहीं होवे हे क्योंकि वो मुक्त हें. वाको भाव कहीं पर भी पड़े पर वाकु कोई भी फर्क नहीं पड़े पर जो विमुक्तमानी हें, वामें भस्मासुरकी वृत्ति जगे हे.

वो कहे हे ''ब्रह्म कौन? ब्रह्म तो मैं.'' या तरहसू जा बखत ''ब्रह्म कौन?'' हो जाये? तब वो ब्रह्ममें भाव अस्त हो गयो. वो भावके अस्त होवेके कारण वो बुद्धि अशुद्ध हो जाये और **''आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति अधो अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः''** . जा बखत रेहटमें पानी ऊपर चढ़तो जाये पर जब उलटे तब सारो पानी रिक्त हो जाये. कालीदास कहे हे **''नीचैर् गच्छति उपरि च दशाः चक्रनेमिक्रमेण''** (मेघदूतम्.उ.४९). ऊपर जावे हे साधनान्सू भर्यो भयो पर जब एक ऐसो सेच्युरेशन् पॉइन्ट् आयो नहीं और वो उलटी नहीं तो वो एक दम रिक्त होके नीचे आ जाये.

(माधव! तावकाः...त्वयिबद्धसौहृदाः)

''तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो'' (भाग.पुरा.१०।२।३३). जो त्वदीय हें, जिनको तेरेमें भाव अस्त नहीं भयो, वो विमुक्त हो जायेंगे, उनमें अभेदभान भी आ जायेगो कि मैं ब्रह्म हूं पर उनकु ब्रह्ममें भाव अस्त नहीं होयगो. **''प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः''** (भाग.पुरा.११।२।५५). जो प्रणयरशना तेरे चरणमें बांधके रखे हें उनको निर्भय-रमण संसारमें भी होवे हे यदि जीवनमुक्त होवें तो और यदि मुक्त हो जायें, विदेहमुक्त हो जायें तो भी वो आपकु प्राप्त होवें हें. ब्रह्मभावमें भी उनको निर्भय-रमण होवे हे.

ये निर्भय-रमण जो शुद्धाद्वैतकी मुख्य समस्या हे, वा शुद्धाद्वैतकी मुख्य समस्याके अनुरूप यहां गोपिकाने प्रार्थना करी हे. ''तथापि मन्नेत्रवपुःप्रभृतीनां व्रजाधिप! साक्षात्त्वयि उपभोगं मे मनः कामयतेतराम्.'' (विज्ञप्ति.१।४५) बस इतनीसी बात हे और **''मनः कामयते''** वो मेरे मनमें कामना हे कि मेरी आँखको तेरेमें कछु उपयोग होवे, मेरे देहको तेरेमें कछु उपयोग होवे और जबतक अभयप्रद श्रीहस्त कामप्रद श्रीहस्त मेरे माथेपे

नहीं धरेगो, तबतक केवल त्वदीयतासू वा अनंगकी साधनाके लिये सारी साध या प्रकारसू सधवेवाली नहीं हें. ये बात सात्त्विकगोपिकाने कही.

----*----

॥ श्लोक : ६ ॥

उत्थानिका :

ततः तामसी किञ्चिद्वैलक्षण्येन धाष्टर्येन तमेव अर्थं प्रार्थयति व्रजजनार्तिहन् इति.

विवरणम् :

(पूर्वश्लोकसंगति)

पूर्वश्लोकमें सात्त्विकसात्त्विक गोपिकाने प्रभुसू अभय मांग्यो और काम मांग्यो. 'काम' मने कामना. वैसे सामान्यतया तो 'कामद' को अर्थ ऐसे करें हें कि कामनाकु पूरो करतो होय वो 'कामद' कह्यो जाये, पर 'कामद' को अर्थ ऐसो भी कर सकें कि जो कामना बढ़ातो होय वो भी 'कामद' कह्यो जाय. धन देतो होय वो 'धनद', यश देती होय वो 'यशोदा', काम देतो होय वो 'कामद'. जब काम हे, जब भगवद्विषयक काम हे, भगवान्के बारेमें, प्रभुके बारेमें कुछ मनोरथ हें, यदि वो पूर्ण नहीं भये तो भय उपस्थित हो जायेगो. मनोरथ हे और पूर्ण नहीं भयो तो भय हो गयो. तो अभयकाम कैसे होयगो? सफलकाम ही अभयकाम होयगो. निष्फलकाम होयगो सो तो सभयकाम होयगो. या लिये या गोपिकाने प्रभुके हस्तमें दो गुण माने. प्रभुको अभयप्रद हस्त हे और कामप्रद हस्त हे. तो कामकी पूर्ति नहीं मांगके काम मांग्यो. वाको मुख्य कारण हे कि जासू प्रभु श्रीहस्त धरें और श्रीहस्त धरवेकी प्रक्रियामें प्रभु बंध जायें. याही लिये आचार्यचरणने वहां कही "**प्रथमतः शिरसि हस्तस्थापनेन स्वाधीनीकरणं द्योतितम्**". एक बखत हमारे माथेपे हाथ धर दें तो हम तेरे आधीन हें, ये द्योतित हो गयो. तेंने कह्यो हे "**अहं भक्तपराधीनः**" (भाग.पुरा.९।४।६३) मैं भक्तके पराधीन हूं तो तेरी भी हमारेमें आधीनता द्योतित हो जायेगी, पर ये बात वो स्पष्टतया केह क्यों नहीं पाई क्योंकि भाव सात्त्विक हतो.

(धाष्टर्येन)

इतनो जब याने मांग्यो तब सात्त्विकगोपिकाकु अनुसरती तामसीगोपिकाकु वाको भाव तो योग्य लग्यो पर भाषा थोड़ी आड़ी टेढ़ी लगी. या लिये ये वा भावकु अपनी भाषामें बांधके केह रही हे. अब याके तामसभाव हें. तामसभाव हें तो बात वोही केह रही हे पर थोड़ी धृष्टतासू. आचार्यचरणने जब **'धाष्टर्येन'** शब्द कह्यो होयगो तो बड़े रम गये होयंगे यहां लिखते लिखते. बड़े प्यारसू लिख्यो हे ये शब्द **'धाष्टर्येन'** = धृष्टतासू बात वो केह रही हे. तो कहें हें कि जब छिप गयो हे और हाथ तो माथेपे रखनो, ठीक हे तेरो श्रीहस्त अभयदान करवेवालो हे, भय दूर करवेवालो हे. ठीक हे कामप्रद हे अभयप्रद हे, पर अभय और कामप्रद श्रीहस्तसू भी ज्यादा समस्या या बखत ये हे कि तू प्रकट हो जा. मने पेहले यों केहनो अभय होनो चइये, काम होनो चइये और फिर कामकी अभयता यामें हे कि तू प्रकट होवे. इतनी परम्परासू मांगवेकी क्या जरूरत हे? सीधे ही क्यों नहीं मांग लें? क्योंकि जब परम्परासू मांगे तो कुछ अर्थको अनर्थ हो जाये.

एक नियम हे कि जितनी बात तुम सरलतासू कहो, उतनी बात वो सीधी आवे हे. जितनी बात तुम घुमा-फिराके कहो तो उतनो ही घुमा-फिराके वाको अर्थ निकाल्यो जा सके हे. जा बखत तुम घुमा-फिराके बोलोगे, तो उतने ही घुमा-फिराके वाके अर्थ निकाले जा सके हें. जितनी बात तुम सीधी कहोगे उतने ही सीधे अर्थ वाके आयेंगे.

बिहारीने एक दोहा बनायो और वाके कोई छे या सात अर्थ समझाये. कोईकु कही कि कवि सम्मेलनमें जाके सुनाइयो. अब बिहारीकु बात घुमा-फिराके केहवेकी आदत. जब वा दोहाकु सुनायवे कवि सम्मेलनमें गयो तो वाके पीछे चुपचाप बिहारी भी गयो. तो वहां

लोगन्ने जो जो वाके अर्थ निकाले वे अर्थ तो बिहारीकु भी पता नहीं हते. वाको कारण क्या? जितनी घुमा-फिराके बात कहोगे उतने वाके अर्थ भी घूम-फिरके ही निकलेंगे ना! अब जामें जैसी सामर्थ्य वैसे वो घुमा-फिराके अर्थ निकाल दे. तो इतनी घुमा-फिराके अपन् बात करें और भगवान् वाको घुमा-फिराके अर्थ काढ़ें और फिर प्रकट नहीं होवें तो? याके बजाय सीधी बात क्यों नहीं करनी! जो बात चुभ रही हे वोही बात सीधे सीधे क्यों नहीं मांग लेनो? इतनी सात्त्विकताकी क्या आवश्यकता कि जाके कारण इतनी घुमा-फिराके बात केहनी पड़ती होय.

श्लोक :

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित।
भज सखे! भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय॥६॥

सुबोधिनी :

हे भगवन्! एता वक्तुं न जानन्ति, मया तु निर्धारितम् उच्यते. हे सखे! इति अप्रतारणार्थं संबोधनम्. नः अस्मान् भज इति हितोपदेशः. ननु कथमेवं धाष्टर्च्यं निषिद्धं च बोध्यते. तत्र आहुः 'भवत्किंकरीः' इति. ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते'' इति हि तव प्रतिज्ञा. अतो यथा किंकर्यो वयं भवन्तं भजामः तथा भवानपि भजतु. किंकरीत्वं तव प्रतिज्ञा च प्रसिद्धा इति आहुः 'स्म' इति. न केवलम् अस्मद्भजने तव सैवैका प्रतिज्ञा हेतुः किन्तु अन्येऽपि हेतवः सन्ति. प्रथमम् अवतारप्रयोजनं व्रजजनार्तिहन् इति. व्रजजनानां आर्तिं हन्तीति तथा. न अतः परम् अन्या आर्तिः अस्ति. सामान्यप्रयोजनम् एतत्, विशेषप्रयोजनम् आहुः योषितां वीर! इति. कृष्णो भगवान्. वीरैः हि शूरा निराकरणीयाः अन्यगतकामादयः. तत्र मुख्यः कामः. सच बहुविधः; अन्तर्बहिः पदार्थेन पूर्णेन पूरयित्वा आश्रयाभावात् निवारणीयः. अतएव लोके दातारः कीर्तिमन्तो

भवन्ति वीरेभ्यः. अतो भवान् महावीरः अन्तःस्थितेन आनन्देन अतिदरिद्राणां ब्रह्मणापि पूरयितुम् अशक्यानाम् इच्छापूरकः. अयं च अर्थः तव सर्वजनीनः, अतः 'योषितां वीर!' इति सम्बोधनम्. न हि कृष्णाद् अन्यो जगति कश्चिद् एवं सम्बोधनम् अर्हति, अपूर्णकामत्वात्. अतो अवतार-सामान्य-विशेषप्रयोजनाभ्यां च नो भज. ननु सत्यं, तथापि भवतीनाम् अभिमानदोषनिवृत्त्यर्थं भजनं न क्रियते इति चेत्, तत्र आह निजजनस्मयध्वंसनस्मित् इति. निजजनाः सेवकाः तेषां स्मयो गर्वः तस्य ध्वंसनार्थं स्मितं यस्य, निजजनानां स्मयदूरीकरणार्थं परित्यागो न उपायः किन्तुः तदर्थं स्मितमेव कर्तव्यम्. स्मितं हि मन्दहासः. "हासो जनोन्मादकरी च माया" (भाग.पुरा.२।१।३१), तस्या मन्दत्वं भक्तेषु अप्रवर्तनम्. नहि मायामोहव्यतिरेकेण कस्यचित् स्मयो भवति. अतएव हास्यसंकोचएव साधनम्. निजजनानामपि धर्मएव दुष्टः नतु धर्मी, अन्यथा निजजनत्वमेव न स्यात् इति अलौकिकोपायः. लौकिकेऽपि तव हास्येन ता अपि आत्मानं तुल्यं मन्यन्ते, यदा पुनः हास्ये संकोचः तदैव तासां गर्वो निवर्तते. किञ्च अभिमानो हि दोषः, स तावदेव तिष्ठति यावत् तव स्मितयुक्तम् आननं न पश्यति. नहि काचित् तादृशमपि आननं दृष्ट्वा स्वाभिमानं पालयितुं शक्ता. ननु एतद् लोके अप्रसिद्धं साधनत्वेनेति कथं ज्ञातुं शक्यते इति आशंक्य आहुः जलरुहाननं चारु दर्शय इति. जलरुहं कमलं, तत्सदृशम् आननम् अमृतस्रावि; नहि अमृते पीते कस्यचिद् दोषः तिष्ठति इति युक्तिः. साधनत्वे चेत् संदेहः, एकवारं प्रदर्श्य पश्यतु इत्यर्थः. किञ्च अभिमानो हि मनोधर्मः, तव आननं तु चारु मनोहरम्. नहि धर्मिणि हृते धर्मः तिष्ठति. सख्युः सखिभजनं युक्तमेव।।६।।

विवरणम् :

ये गोपी वाही भावकु थोड़ी धृष्टताके साथ मने ब्लन्ट् होके वाही बातकु केह रही हे. **हे भगवन्! एता वक्तुं न जानन्ति, मया तु निर्धारितम् उच्यते.** हे भगवन् ये सब जो बोल रही हें, उनके भाव तो ठीक हें पर उनकु ठीक तरहसू बोलनो नहीं आ

रह्यो हे. इनने जा तरहसू अपनो केस् डील कियो हे वो ठीक नहीं कियो हे. एक जज् हमकु बता रह्यो थो कि "जो जज् सीधे सीधे ढंगसू अपनो जजमेंट् देवे हें, उनकी रूलिंग् बड़ी सीधे ढंगसू आवे हे. जो घुमा-फिराके जजमेंट् देवें हें, उनकी रूलिंग्में कई कई अर्थ छिपे भये होवें हें क्योंकि सारी केल्क्युलेशन् उन्होंने पेहले ही कर रखी होवें हें." तो वो गोपी केह रही हे कि आप उनकी बातपे मत जाओ. जैसे हिरण्यकशिपुने वर मांग्यो. "जलमें नहीं मरूं थलमें नहीं मरूं आदमीसू नहीं मरूं पशुसू नहीं मरूं यासू नहीं मरूं वासू नहीं मरूं" बहोत घुमा-फिराके वरदान मांग्यो और भगवान्ने नृसिंहको रूप लेके घुमा-फिराके वाकु मार दियो. जो न जलमें हतो न थलमें हतो न रातमें हतो न दिनमें हतो न आदमीमें हतो न पशुमें हतो. नृसिंहको रूप धरके देहलीपे बेठके गोदीमें रखके संध्या समे वाकु अपने नखन्सू फाड़के मार दियो. "**न अयं मृगो नापि नरो विचित्रम् अहो किम् एतद् नृमृगेन्द्ररूपम्!!**" (भाग.पुरा.७।८।१९). तो जो बात घुमा-फिराके पूछी जाय वाको फल भी ऐसे ही घूम-फिरके आवे, सीधेसादो नहीं आवे. अब वाके न जाने क्या अर्थ निकल जायें!

अब यामें भी हम क्यों वा भयानक रसपे जावें. घुमा-फिराके राधासहचरीजीने कही "**न पारये अहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः**" (भाग.पुरा.१०।२७।३८). यदि सीधे ढंगसू कही होती तो ठाकुरजी भी शायद गोदीमें पधराके ले गये होते, वामें क्या बड़ी बात हती! नहीं चल्यो जातो होय, थक जाये, गोदीमें उठाके ले जावेमें कोई बड़ी बात नहीं हती. पर गोदीमें जावेकी इच्छा नहीं हती. घुमा-फिराके ये बात केहनो चाह रही हती कि जैसे तुम तिरोहित भये सबसू ऐसे मैं अब तिरोहित होनो चाहूं हूं. अगर यही बात सीधे ढंगसू कही होती तो प्रभुने भी सीधे ढंगसू उत्तर दे दियो होतो पर प्रभुने भी घुमा-फिराके उत्तर दियो "**स्कन्धम् आरुह्यताम्**" (भाग.पुरा.१०।२७।-३९). आचार्यचरणकु अर्थ करनो पड़्यो कि स्कन्धम् आरुह्यतां नाम

"स्वस्कन्धमेव आरुह्यताम्." स्वस्कन्धारुह्यताम् ऐसो अर्थ कियो. प्रभुने कही कि **स्कन्धम् आरुह्यताम्** तो उनकुं लगी कि "पेड़पे जो चढ़ो तो स्कन्धपे उठाऊं". अब वो चढ़के लटकी तो प्रभु वहांसू गायब. डालसू लटकती रेह गई. तो या तरहसू कोई बात घुमा-फिराके करी जाय तो वाको उत्तर भी घुमा-फिराके होवे और फल भी घुमा-फिराके होवे हे. सीधी बातको उत्तर सीधो दियो जाय और समझ्यो भी सीधो जाय. क्यों इतनी बात घुमा-फिराके केहनी, वाकु ये बात समझमें नहीं आवे! थोड़ीसी धृष्टताकी तो जरूरत हे. अगर वो धृष्टता हे तो हे वो धृष्टता. तेरेसू धृष्टता नहीं करें तो कौनसू करें? और कहां धृष्टता करें तेरे साथ नहीं करें तो? अब हे तो हे धृष्टता पर बात तो सीधी करें. टेढ़ी बात क्यों करनी? या लिये ये कहे हे **हे भगवन्! एता वक्तुं न जानन्ति**. हे भगवन्! इनकु बोलनो नहीं आवे हे. बात बिचारीन्‌की सीधी हे पर बोलनो नहीं आ रह्यो हे घुमा-फिराके बात कर रही हें.

मयातु निर्धारितम् उच्यते सीधीसी बात मैं नक्की करके बताऊं. **हे सखे! इति अप्रतारणार्थं सम्बोधनम्.** अब ये शुद्ध भाषाके प्रयोगको अधिकार हमकु सखात्वके कारण मिल्यो हे. तू सखा हे हमारो और तेरे सामने सीधी सादी बात नहीं करें तो आखिर और कौनके सामने करेंगे? सीधी वाणीको प्रयोग कहां करनो यदि अपने मित्रके सामने ना करी जा सकती होय! या लिये जब तू सखा हे तो हम सीधी वाणी केह रहे हें. हमारी सीधी वाणीकु तू सीधे अर्थमें ही लेयगो क्योंकि तू सखा हे. अब सीधी बात क्या हे? **नः अस्मान् भज इति हितोपदेशः.** हम तोकु भजवेके लिये या जंगलमें वनमें ढूंढ रही हें डोल रही हें भटक रही हें गा रही हें तो तू हमारो भजन क्यों नहीं कर रह्यो हे? तू हमारो भजन कर. ये सीधी बात हे और कुछ नहीं हे. चाहे हाथ माथे पर धर चाहे मत धर चाहे या तरहसू चाहे वा तरहसू, बात सीधीसी इतनी

हे कि तू हमारो भजन कर. भजन करवेको मतलब क्या? भजनको सीधोसादो मतलब हे "तत्सुखको विचार". जैसे हमारो सुख होतो होय वैसो काम तू कर. कोई और शब्दकी या भावकी अपेक्षा नहीं हे. सारे सरलतम शब्दनूमें सरलतम भाषामें ये बात समझ जा.

(भवत्किंकरीः)

ननु कथम् एवं धाष्टर्य निषिद्धं च बोध्यते! तत्र आहुः भवत् किंकरीः इति. अरे तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम मोकु उपदेश दे रही हो कि हमारो भजन कर! तो केह रहे हें हम तेरी किंकरी हें कि नहीं? यदि हम तेरी किंकरी हें, सेविकायें हें, तो तोकु हमारो सेवक होनो चइये. **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजामि अहम्"** (भग.गीता ४।१०). यदि हम तेरो सेवन करवे तैयार हें, यदि हम तेरी सेवा करवे तैयार हें, तेरेकु जैसो जो भजे हे वाकु तू वैसे भजे हे, या नियमके अनुसार तोकु हमारो भजन करनो चइये. हमारो अनुसरण करनो चइये.

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते" इति तव प्रतिज्ञा. अतो यथा किंकर्यो वयं भवन्तं भजामः तथा भवानपि भजतु. किंकरीत्वं तव प्रतिज्ञा च प्रसिद्धा. अब कहें हें कि हम किंकरी हें ये तो तोसू छिप्यो नहीं हे और तेरो स्वभाव भी छिप्यो भयो नहीं हे. **"ये यथा... भजाम्यहम्"** तो यामें हम क्या बतावें? हम अपने केस्को क्या प्लीड् करें? सारी बातें स्पष्ट हें. खुली भई हें. अब वामें घुमा-फिराके क्या बात केहनी! सीधीसी बात इतनी हे कि तुम प्रकट हो जाओ.

(अवतारप्रयोजन)

न केवलम् अस्मद्भजने तव सैव एका प्रतिज्ञा हेतुः किन्तु अन्येऽपि हेतवः सन्तिः. केवल हमारो भजन करनो, हमारे सुखको विचार करनो, क्योंकि हम तेरे सुखके विचारसू तेरो अनुसरण करे हें, तो हमारे

सुखको विचार करनो तेरो कर्तव्य हे. यामें **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते"** तेंने ये प्रतिज्ञा ले ली वाके तहत हम तेरेसू जबरदस्ती कबूल करवानो चाहते होंय, ऐसी बात नहीं हे. **अन्येऽपि हेतवः सन्ति** और भी कई हेतु हें. वो कौनसे हेतु हें? **प्रथमम् अवतारप्रयोजनं व्रजजनार्तिहन् इति, व्रजजनानां आर्तिं हन्तीति तथा.** तू व्रजके लोगन्की आर्ति दुःखकु हरण करवेवालो हे. **"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन! आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ!"** (भग.गीता७।१६). हम आर्त हें, जो ज्ञानी हें उन गोपिकानूने ज्ञानीकी तरहसू बात कही, ज्ञानीने ज्ञानीकी तरह बात करी. हम तो सीधी बात कर रही हें क्योंकि हम आर्त हें. कुछ अर्थार्थी गोपिकायें हें. कुछ जिज्ञासु गोपिकायें हें. कुछ ज्ञानी गोपिकायें हें जो निर्गुण गोपिकायें हें. इन सबको परिचय मिलेगो शनैः शनैः. यहां चतुर्विध भजन हे. ये आर्त गोपिका हे. ये केह रही हे कि हम आर्त हें. दुःख या बातको हे कि हमारी आर्तिकु देखके तू क्यों नहीं आर्त हो रह्यो हे. यदि **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते"** वाली बात हे तो?

व्रजजनानां आर्तिं हन्तीति तथा. न अतः परम् अन्या आर्तिः अस्ति. हमारी आर्ति यासू ज्यादा क्या होयगी कि तू हमारे बीचमेंसू अप्रकट हो गयो? अभी हमारे साथ बोल रह्यो थो, खेल रह्यो थो, लीला कर रह्यो थो और एकाएक तिरोहित हो गयो. यासू बड़ी आर्ति हमारे लिये और क्या हो सके हे? **सामान्यप्रयोजनम् एतत्, विशेषप्रयोजनम् आहुः योषितां वीर इति, कृष्णो भगवान्. वीरैः हि शूरा निराकरणीयाः अन्यगतकामादयः.** ये तो सामान्य प्रयोजनकी बात हे. आचार्यचरण आज्ञा करें हें. वीर कौनकु कहें? जामें वीरता होय. शूर कौनकु कहें हें जामें शूरता होय. शूरता कब होय? जो शत्रुको निराकरण कर सकतो होय. वीर दो प्रकारके माने जायें. एक 'युद्धवीर' और एक 'दानवीर'. आदमीके सबसू बड़े छे शत्रु माने जायें. काम क्रोध लोभ मोह मद और मात्सर्य. युद्धवीर कायको

विजय करे हे क्रोध मोह और मद. दानवीर कायपे विजय करे हे काम लोभ और मात्सर्य. आदमीके ये छे शत्रु सबसू बड़े माने जायें.

दानवीर किन किनको निराकरण करे? मात्सर्यको. मानो कोईके पास बहोत पैसा हे. दूसरेके पास नहीं हे. तो वाकु मात्सर्य आवे. तो दानवीर क्या करे? दानवीर कर्णकी बात करें. कर्णके पास अभेद्य कवच हतो. अर्जुनकु मात्सर्य भयो. भगवान्‌ने कही कि ‘‘कर्ण तो दानवीर हे. चलो मांग लेते हें मिल जायेगो.’’ जब मांग्यो तो वाने कही कि ‘‘ले जाओ.’’ फिर दूसरो मांग्यो कि ‘‘मारियो मत.’’ तब वाने कही कि ‘‘ये सम्भव नहीं हे. और पाण्डवन्‌कु नहीं मारूंगो पर अर्जुन और मेरो परस्पर विशेष मात्सर्य हे, मारूंगो तो जरूर. ये अभेद्य कवच चाहो तो तुम ले जाओ पर अर्जुनके साथ लड़ाई तो बन्ध नहीं हो सकेगी.’’ तो मात्सर्य, अर्जुनकु जो मात्सर्य हतो वा मात्सर्यकु तो कर्णने पेहले ही मार दियो. जैसे भीष्म, वाके पास जाके पूछ्यो कि ‘‘कैसे मरोगे बताओ.’’ वाने कही कि ‘‘मेरे सामने शिखण्डी खड़ो कर दो.’’ इतनो मारवेको मात्सर्य क्यों करो हो? मारनो ही हे तो मार दीजो. अब एक शिखण्डी खड़ो कर दियो, वाके पीछेसू अर्जुनने तीर छोड़े. भीष्मने कही कि ‘‘मैं तो पुरुषपे तीर चलाऊं हूं. शिखण्डीपे तीर कैसे चलाऊं?’’ अर्जुनके सारे तीर शरीरपे सहे और गिर गये बिचारे! पर इनके भीतर रहे भये मात्सर्यकु तो मार दियो ना भीष्मने! क्यों? दानवीर हें. अपनी मृत्युके रहस्यकु वाने दान कर दियो. तो दानसू मात्सर्य नष्ट हो जाये.

कोईकु लोभ हे और वो दे दियो तो लोभ नष्ट हो जायेगो. यदि काम हे और काम दे दियो तो काम नष्ट हो जायेगो. ऐसे ही युद्धवीर क्या करे? बहोत तनतनाके कोई सामने आ गयो, एक

लगा दी तो सारो क्रोध गायब हो जाये. ऐसे ही कोईमें मद बहोत हे तो युद्धवीर वाके मदकु तोड़े हे. कोई मोहवश अपने आपकु वीर मान बेठे, तो युद्धवीर युद्ध करे हे और वाके मोहकु तोड़ दे हे. जैसे अर्जुनकु बड़ो मोह हतो कि "मैं बहोत बड़ो योद्धा हूं." अब ये बात भगवान्‌कु पता चल गई. प्रभुने कही कि देखें, कर्णसू युद्ध भयो और अर्जुन जब तीर छोड़तो थो तो कर्णको रथ काफी पीछे सरक जातो. जब कर्ण तीर छोड़तो थो अर्जुनको रथ एक-दो हाथ पीछे सरकतो. जब सरकतो तब भगवान् "वाह वाह!" केहते. अब अर्जुनकु ये बात बड़ी नागवार गुजरे कि मेरे तीरसू कर्णको रथ इतनो इतनो सरके हे तब तो भगवान् 'वाह' नहीं कहें हें और मेरो रथ थोड़ोसो सरके हे तो भगवान् "वाह वाह!" कहें हें. अब ये बात भगवान्‌कु पता चल गई कि ये तो मोह हे. तो भगवान्‌ने कही कि "आज हम रथपे नहीं बेठेंगे. आज हनुमानजीकु भी ऊपर मत बिरजवाओ." कर्णको एक तीर लग्यो तो अर्जुनको रथ मैदानकी हदसू बाहर हो गयो. कर्णके धनुषके तीरको जो आघात हतो वो इतनो जबरदस्त हतो. जब सारो ब्रह्माण्डनायक तेरे रथमें बेठ्यो भयो हे, गाण्डीव तेरे हाथमें हे, हनुमानजी तेरे रथके ऊपर बिराजे भये हें और वो रथ यदि एक इंच भी सरका रह्यो हे तो वाह हे वाकी! वाके साथ तो कोई भी नहीं बेठ्यो और तू कितनो भी सरका दे तो वाकी क्या वाह? आदमी ऐसे मोह पाल ले हे. अब ये पता नहीं चले कि वो जो मोह पाल रह्यो हे वो कितनी देर काम आयेंगे? ये सब आदमीके शत्रु हें.

अब ये दानवीर और युद्धवीर, ये आदमीके शत्रुन्‌कु तोड़ें हें. जो क्षुद्र योद्धा होवे हें वाके लिये क्षुद्र दाता होवें हें. वो क्षुद्र काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य को निराकरण करें हें. प्रकृष्ट दातायें प्रचण्ड योद्धायें, व्यक्तिको निराकरण नहीं करें, व्यक्तिगत दोषन्‌को निराकरण करें हें. व्यक्तिगत दोषन्‌के निराकरणमें महत्ता हे. ऐसे बड़े

बड़े दातायें हें, बड़े बड़े योद्धायें हें, उनकु या बातकी श्रद्धा नहीं होवे कि मेरो शत्रु मरे कि नहीं मरे पर या बातकी श्रद्धा जरूर होवे कि मद तोड़नो चइये भले वो जिन्दो रहे. वाको मात्सर्य तो तोड़नो ही चइये भले फिर वो जिन्दो रहे. काम क्रोध मोह मद मात्सर्य तूटनो चइये. जो बड़े बड़े दानवीर हें तो उन्होंने दान दियो और वामें मात्सर्य कायम रेह गयो, ऐसो दानवीर कि वाके कामको दान देवेके बाद काम कायम रेह गयो, ऐसो दान दियो कि वाको लोभ मिट्यो नहीं, तो ऐसे दानको लाभ क्या? ऐसो दान देनो चइये कि वाकी झोली फट जाये. वाको लोभ मिट जाये. वाको नाम दान. आदमीकु मारवेसू क्या फायदा? वाके मदकु मार दियो वाके क्रोधकु मार दियो, तो तो मार्‍यो आदमी.

जा बखत अश्वत्थामाने पाण्डवनूके बच्चानूकु मार दियो तो अर्जुनने कही कि ''बदला लऊंगो.'' अर्जुन और श्रीकृष्ण वाकु पकड़वेके लिये गये. जब पकड़वे गये तो वाने ब्रह्मास्त्र चलायो. ब्रह्मास्त्र चलायवेके बाद बड़ी विकट स्थिति हो गई. वाने तो बदलेकी भावनासू ब्रह्मास्त्र चलायो. वाके जवाबमें अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्र चलायो. अब तो और भी विकट स्थिति हो गई. तब अश्वत्थामाकु कही कि ''ब्रह्मास्त्रकु लौटाओ.'' अब वाकु ब्रह्मास्त्रकु लौटायवेकी विधि मालूम नहीं हती. तब श्रीकृष्णके केहवेसू अर्जुनने दोनों ब्रह्मास्त्र प्रार्थना करके लौटाये और अश्वत्थामाकु पकड़के लाये. द्रोपदीके सामने उपस्थित कियो. बच्चानूके मरवेपे द्रोपदीने सौगन्ध खाई हती कि ''वाके खूनसू अपने केश सींचूंगी.'' जैसे तेल नाखें हें ना! अब देखो द्रोपदीकी भी कैसी बीभत्स प्रतिज्ञा हती, जरा सोचो. वाकु मात्सर्य हतो. वा बिचारीके बच्चायें गये थे. तो भगवान् वाकी प्रतिज्ञा पूरी करायवेके लिये अश्वत्थामाकु चोटीसू पकड़के खींचते भये वाकु लाये. तब वाको सच्चो मातृत्व जो हतो सो जाग गयो. तब वाने कही कि ''मेरे बच्चा मरे सो तो मर गये पर ये भी तो कोई माँको बच्चा

हे! अब वाके खूनसू स्नान करवेको मतलब नहीं हे. याके अन्दर रह्यो भयो जो अहंकार हे वासू मैं स्नान कर लऊं." तब ब्राह्मण और गुरुपुत्र होयवेके कारण वाकु माऱ्यो नहीं पर वाके सिरमें मणि हती सो निकाल ली, बाल मूंड दिये और वाकु छोड़ दियो. सब खुश हो गये. पेहले ऐसे ऐसे लोग हते.

जैसे हमारे किशनगढ़में राजा नागरीदासजी हते, जो संत कवि भये हें. उनकी कथामें आवे हे कि जब वो दिल्ली दरबार गये तब उनके पीछे छोटे भाईने विद्रोह कर दियो. जब विद्रोह कर दियो तो उनकु खबर मिली वहां. बादशाहसू कही कि "मोकु थोड़ी सेना दो, मोकु कछु संभालनो हे." सेना लेके आये, युद्ध कियो, युद्ध करके छोटे भाईकु अरेस्ट् कियो. अरेस्ट् करके राज्यसिंहासनपे ले जाके राज्य-तिलक कर दियो कि "जा राज्य कर. ऐसो राज्य नहीं लियो जाये कि हम चले जायें और हमारी गैरहाजिरीमें तुम विद्रोह करके राज्य ले लो. राज्य लेनो होय तो लेनो सीखो कि बड़े भाईसू राज्य कैसे लियो जाय?" युद्धमें हराके अरेस्ट् करके राज्यसिंहासनपे बिठाके तिलक करके वृन्दावन चले गये. **"कृष्णकृपागुण जात न गायो गृहव्यौहार भुरटको भारो, सिर पर ते उतरायो नागरियाको श्रीवृन्दावन भक्तितख्त बेठायो"** (नागरीदास). तुम किशनगढ़तख्त सम्भालो, आजसे हम भक्तितख्त संभालेंगे. राज्य देवेकु तैयार हें पर एक विद्रोहीकु नहीं, भाईकु देवे तैयार हें. बहादुरीसू लेनो होय तो युद्ध करके लो. युद्ध करके जीतो तो ले लो पर बहादुर सिंह होयके लेनो होय तो राज्य बिना युद्धके दियो नहीं जा सके पर छोटे भाईकु तो जब चाहे तब दियो जाय क्योंकि वो भाई हे.

तो वा न्यायसू जो बड़ो योद्धा हे वाको मतलब बड़ो योद्धा हे. छोटो योद्धा नहीं हे. बड़ो योद्धा व्यक्तिकु नहीं मारे पर वाके शत्रु मदकु मारे. तुम चाणक्यको नाटक बांचो 'मुद्राराक्षस'. राक्षसकु

मारवेमें चाणक्यकी जीत नहीं हे. सब लोग भयभीत हें कि चाणक्य राक्षसकु मारेगो. चाणक्यकी गिनती ऐसी नहीं हे. वाकी गिनती ऐसी हे कि राक्षसके मदकु तोड़के वाकु चन्द्रगुप्तकी सेवामें हाजिर कर देनो. वाकु ऐसी स्थितिमें लानो कि वाकु चन्द्रगुप्तसू द्वेष खतम हो जाये और वो चन्द्रगुप्तको एक ईमानदार नौकर बन जाये. यद्यपि युद्ध खतम हो गयो हतो. वा स्थितिपे ड्रामा नहीं हे. ड्रामा या स्थितिपे हे कि चाणक्य राक्षसकु अपने पक्षमें लायो और कैसी कैसी स्थिति निर्माण करी कि राक्षसको मन तूट गयो. जाकी शत्रुतामें जा राक्षसको व्यक्तित्व निखर्‍यो वा राक्षसको वा चन्द्रगुप्तको अनुचर बननो पड़्यो.

ऐसे ही ये केह रही हे **''वीर योषितां''** तुम वीर हो. तुम महावीर हो. यदि हमने कोई अपराध कियो हे तो हमकु मार डालवेसू क्या लाभ होयगो? यदि युद्धवीर हो तो हमारे दोषन्‌कु मार दो. हमने मद कियो तो हमारे मदकु मार दो. यदि युद्धवीर हो तो हमारे मोहन्‌कु मार दो. यदि युद्धवीर हो तो हमारे जो क्रोध प्रकट भये हें उनकु मार दो. देखो कोई 'कुहक' केह रही हे, कोई 'कितव' केह रही हे, सबमें कितनो क्रोध हे, अब तुम इनकु जानसू मारोगे क्या? यदि सचमुचमें अच्छे वीर सच्चे वीर हो तुम तो प्रकट हो जाओ और इनके क्रोधकु खतम कर दो. लो प्रकट हो जाओ और इनके मोहकु खतम कर दो. लो प्रकट हो जाओ और इनके मदकु खतम कर दो. यदि सचमुचमें युद्धवीर हो तो. तो बोले युद्धवीर नहीं हें, दानवीर हें. तो चलो हमारे कामकु खतम कर दो. हमारे लोभकु खतम कर दो. ऐसो दर्शन दे दो कि आगेसू ये लोभ रेह ही नहीं जाये, तृप्त हो जायें. अपने स्वरूपानंदको ऐसो दान करो कि हमारी कामनायें **''मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः''** (भाग.पुरा.१०।२९।१३) पूरी हो जायें. ऐसो वरदान हमकु दे दो, ऐसो स्वरूपानंदको दान हमकु दे दो कि ये जो मात्सर्य हो गयो

थो थोड़ी देर पेहले, जब राधासहचरीजीकु लेके तुम गये, तब बड़ो मात्सर्य गोपिकान्में प्रकट भयो. यहां तक मात्सर्य प्रकट भयो कि जहां ठाकुरजीने बेठके राधासहचरीजीकी चोटी गूंथी हे, वहां बेठके गोपीने कही कि "यहां कोई ज्ञानोपदेशकी मुद्रामें बेठके ज्ञानोपदेश थोड़े ही कियो होयगो?" यहां दोनों बेठे हें. ऐसी ऐसी बातें करी हें वहां, इतनो मात्सर्य वहां प्रकट हो रह्यो हे. अब ये जो सारे दुर्गुण प्रकट भये हें यहां और तुम यदि सचमुचमें दानवीर हो, तो प्रकट होके हमारे इन दुर्गुणनुकु खतम कर दो चलो.

तामस हे न! धृष्टतासू ठाकुरजीकु चेलेन्ज् दे रही हे. दिखाओ अपनी वीरता! कैसे वीर हो देखें तो! सचमुचमें यदि दानवीर हो तो अपने स्वरूपानंदको दान दो! यदि युद्धवीर हो तो चलो ये जो हमारे दोष हें कामके क्रोधके मदके मोहके, प्रकट होके उनकु काटो यदि हिम्मत हे तो! युद्धवीर कायके यदि तुम हमारे इन दोषनुकु नहीं काट पाये तो? ये हे धृष्टता.

विशेषप्रयोजनमाहुः योषितां वीर इति. कृष्णो भगवान्. भगवान् कृष्ण वीरयोषित हो सकें हें. क्योंकि ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य छेहों गुण इनमें हें कि जिनसू मनुष्यमें रहे भये छेहों दोषनुको निवारण हो सकें. ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य छे गुणसू छे दोषनुको निवारण हो सके हे. तू कृष्ण हे, तू भगवान् हे.

वीरैर्हि शूरा निराकरणीयाः अन्यगतकामादयः. श्रीहर्षके पिताकु उदयनाचार्यने शास्त्रार्थमें हराके मार दियो थो. शास्त्रार्थ भयो हतो ये शर्त बदके कि जो हारे सो जलके मर जाये. उदयन तार्किक हतो और श्रीहर्ष सामान्य अद्वैती वेदान्ती हतो. तो पिताने श्रीहर्षसू कही कि "या बातको तू उदयानाचार्यसू बदला जरूर लीजो." श्रीहर्ष पेहले मात्र कवि हतो, तार्किक नहीं हतो. तब वाने अपनी कवित्व

शक्तिसू तर्कशास्त्रको अध्ययन कियो. बड़े बड़े तार्किकनूकु जो कल्पनायें नहीं आवें वैसी वैसी कल्पनायें वाकु तर्कशास्त्रमें आई. उन कल्पनान्के कारण वाने तर्कशास्त्रको एक भी नियम तर्कसिद्ध नहीं हे, ये सिद्ध कर दियो. वाके बाद वाने जाके उदयनाचार्यकु शास्त्रार्थके लिये ललकार्यो कि "तेरो तर्कशास्त्र नियमबद्ध नहीं हे." अब जब जबरदस्त शास्त्रार्थ भयो तो या शर्तके साथ कि "जो शर्त हारे सो जलके मरे." उदयनाचार्यकी ये हालत भई कि वो अब मरे. तो श्रीहर्ष तो कवि हतो और उदयन कवि नहीं हतो. तो वाने वाके पिताकु मरवे दियो. तो श्रीहर्षने कही कि "यदि मैं तोकु आगमें जलकर मरवे दूं तो ये आग तो तोकु एक क्षणमें जीम जायेगी. प्राण निकलते ही तेरी आग भी बुझ जायेगी. तासू तू सदा जलतो रहे. यामें आग जली नहीं केहवोयगी. अब तू मर मत पर जबतक जिये तबतक जलतो रहे और ये तर्कशास्त्रके तेरे नियम अतार्किक हें. बस यासू ज्यादा अब मेरे बापकु तेरेसू बदला लेवेको कछु नहीं हे." वाने वाकु मुक्त कर दियो. क्योंकि ये जो आग तेरेमें जलेगी वो जिन्दगी भर तेरो पीछा नहीं छोड़ेगी. जब भी तू तर्कको प्रवचन करेगो तो तोकु मेरे ये तर्क याद आयेंगे. ऐसो वाने वस्तुत: सिद्ध करके बतायो. एक भी तर्कको नियम तर्कसिद्ध नहीं हे और अपनी कवित्वकी युक्तिसू वाकी सब युक्तीनूकु वाने अतार्किक सिद्ध कियो. क्योंकि कवि हतो ना! जब कवि विफर जाये तो पूरो ब्रह्माण्ड बना दे. तर्ककी क्या चले कवि तो एक ब्रह्माण्ड खड़ो कर दे.

उदयनाचार्यको जो घमण्ड हतो "**वयम् इह पदविद्यां तर्कम् आन्वीक्षिकीं वा यदि पथि विपथे वा वर्तयाम: स पन्था:. उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा न हि तरणिर् उदेति दिक्पराधीनवृत्ति:**" (न्यायकु.भू.पृ.६६) मैं जा दिशामें जो बात कहूं वो सच्ची, उदयनकु ऐसो गर्व हतो. क्योंकि जा दिशामें सूर्य उगे वा दिशामें पूर्व दिशाको निर्धारण होवे. तुम अपने मनसू निर्धारण कर लो वा दिशासू सूर्य

नहीं उगे. वो जो पूर्व दिशाको निर्धारण होवे हे वा पूर्व दिशाके निर्धारणसू सूर्य नहीं उगे, वो यों केहतो थो. याके लिये श्रीहर्षने उदयनकु कही कि "तू जो अपनी प्रशंसा करे हे पर तेरी बुद्धि तेरे आधीन नहीं हे. मेरी बुद्धि तो पतिव्रता हे. तेरी बुद्धि पतिव्रता नहीं हे. अगर मैं तर्कके बीहड़ जंगलमें भटकूं तो वो मेरे पीछे चले हे. यदि कविताके सुन्दर मेहलमें रहूं तो मेरे साथ रहे हे. तेरी बुद्धि हर बखत तेरो साथ नहीं देवे हे." काव्य भी लिख्यो तो ऐसो लिख्यो कि सबके माथेपे आये और तर्क भी लिख्यो तो ऐसो लिख्यो कि सबकी खोपड़ीकु खा जाये.

या तरहसू व्यक्तिकु मारवेसू मजा नहीं आवे पर वाके दोषनूकु मारवेपे मजा आवे. व्यक्तिमें दोष हे और वाकु मार रहे हें तो तो बहोत क्षुद्रता हे. यदि कोईको कोईसू द्वेष हे और सचमुचमें द्वेष करनो हे, तो वाके दोषनूसू आनंदसू द्वेष करो. द्वेषको आनन्द भी लेनो आनो चइये. मोहको क्रोधको लोभको आनन्द लियो जा सके हे यदि लेनो आतो होय तो. क्योंकि यामेंसू भी लीला प्रकट होयगी, पर यदि व्यक्तिकु ही मार दियो तो बात खतम हो जायेगी. लीलाको सुख हे वो प्रकट नहीं होयगो.

या लिये वो कहे हें **वीरैर्हि शूरा निराकरणीयाः अन्यगतकामादयः. तत्र मुख्य कामः.** अन्यगतकामादि निराकरण करवे चइयें. अभी काम सबसू बड़ी शत्रुता हमारे साथ कर रह्यो हे. **स च बहुविधः; अन्तर्बहिः पदार्थेन पूर्णेन पूरयित्वा आश्रयाभावात् निवारणीयः.** काम कई प्रकारके हें. कई प्रकारकी कामनायें हें. कीर्तिकामना हे यशकामना हे धनकामना हे अनेक प्रकारकी कामनायें हें. बालबोधकी व्याख्यामें श्रीपुरुषोत्तमजीने लिख्यो हे "**कामोऽपि तत्तद्-इन्द्रिय-विषय-भोगात्मा अनन्तविधः**" (बालबो.विवृत्ति.२). कामनायें तो अनेक विध होवें हें पर हमारी कामना पूर्ण हो जाये ये कामना हे. सबसू बड़ी कामना हमारी

ये हे कि तू प्रकट हो जा. **तत्र मुख्यः कामः**. हमारे काम मुख्य काम हें क्योंकि बाकी सारी कामनायें, धनकी कामना पुत्रकी कामना पतिकी कामना कीर्तिकी कामना ये सब भगवद्कामनाके आगे क्षुद्र कामनायें हें. उन सब विषयनूमें भी जो आनन्द दिखे हे वो भी मुख्य आनन्द नहीं हे पर वाको रिफलेक्शन् हे. मुख्य प्रकाशन होतो तो आनन्दकी बात हती पर मुख्य प्रकाशन ही नहीं हे खाली रिफलेक्शन् हे.

जैसे दो तारायें होवें. एक तारा तो ऐसो होवे हे कि जामें खुदको प्रकाश होवे हे. एक तारा (ग्रह) ऐसो होवे जामें खुदको प्रकाश नहीं होवे. जैसे चन्द्रमा. चन्द्रमा सूर्यसू प्रकाश लेवे और सूर्यसू लौटके फिर तारानूमें प्रकाश आवे जाके कारण वो चमके हे. तो ऐसे वाको खुद प्रकाश नहीं हे. कोई लाइट्र रिफलेक्ट् हो रही हे. याही तरहसू अन्य भी जहां जहां अपनेकु आकर्षण हो रह्यो हे, जहां जहां अपनेकु प्रकाश मिल रह्यो हे, वो केवल ब्रह्मके आनन्दको प्रकाश कहीं कहीं रिफलेक्ट् होके आ रह्यो हे. कोईके लिये पुत्रके रूपमें रिफलेक्ट् होके आ रह्यो हे, कोईके लिये धनके रूपमें रिफलेक्ट् होके मिल रह्यो हे. वो वाको प्रकाशक, रोचक और अच्छो लगे. वस्तुतः वो वाको खुदको प्रकाश नहीं हे, वो उधार लियो भयो प्रकाश हे. चन्द्रमाने जैसे सूर्यको प्रकाश उधार लियो. वो प्रकाश रिफलेक्शन् हे. वा प्रकाश रिफलेक्शन्कु यहां '**मात्रा**' कह्यो जाय हे. ''**अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति**'' (बृह.उप.४।३।३२). अब ये मात्रा जो जीवमें स्थित हे, मात्रा जो जीवको काम हे, उनकी कामना भी मात्राकी हे. उनकु वो मात्रा मिल भी गई तो वो तुष्ट हो जायेंगे. ऐसो क्षुद्र काम और ऐसो क्षुद्र संतोष वैसो हमारो काम नहीं हे. हमारे तो सूर्यकी कामना हे. और ये सूर्यकी कामना बिना सूर्योदयके, ''जनार्तिहन्' के प्रकट हुवे बिना, हमारी मुख्य कामना युक्त नहीं हो सकेगी. याके लिये

केह रहे हें. **अन्तर्बहिः पदार्थेन पूर्णेन पूरयित्वाश्रयाभावात् निवारणीयः.** मने ये कामना, ऐसी बात नहीं हे कि हमारी तेरे बारेमें ये देहसंबंधी कामना हे, हमारी तो भक्तिमार्गीय कामना हे जो **अन्तर्बहिः** सर्वत्र हम तेरेकु और सिर्फ तेरेकु ही चाहें. जो लौकिक व्यक्ति होय तो वाकी लौकिक कामनायें होंय. जो लोकोत्तर व्यक्ति होवें हें उनकी लोकोत्तर कामनायें होवें हें.

जैसे भगवान् गीतामें कहे हें कि जितनी भी कामनायें हें वो जैसे समुद्रमें लेहर आवे, वो लेहराती रहें पर वो लेहर कभी किनारापे नहीं आवें, मने समुद्रकी सीमाके बाहर नहीं जावें, वा किनारापे पहोंचके फिर वापिस समुद्रमें चली जाये. वो लेहर जब आवे तब अपनेकु ऐसी भयंकर लगे कि अपने ऊपर ही आ जायेगी क्या! समुद्रकी कोई लेहर अपनी सीमाके बाहर नहीं आवे. केवल घुड़के. किनारापे पहोंचते पहोंचते वापिस फिर समुद्रके भीतर चली जाये. ऐसे ही जीवकी कोई कामना देहके बाहर नहीं जायेगी, पैदा होयगी और मनमें ही उनको शमन हो जायेगो. ये प्रथम कक्षाके ज्ञानीकी बात हे. अब सफल योगी वो कामनारहित नहीं हो जायेगो. वाके लिये उपनिषद्ने कई कई उपासनान्में देखोगे तो वर्णन आवे **“संकल्पादेव कामा समुतिष्ठन्ते”** (छान्दो.उप.८।२।१०) वाको उपभोग इतनो ही हे कि काम भयो और संतोष हो जाये. वाकु कामकी लेहर कभी कभी छलकके देखवेकी इच्छा होय हे पर वो देखवेकी इच्छा आँख तक नहीं आवे हे. देखवेकी इच्छा मनमें आयेगी और समुद्रमें लेहरकी तरह, मनमें ही चली जायेगी. वो लेहर दोड़के आँख तक नहीं आयेगी. सुनवेकी इच्छा हे पर सुनवेकी इच्छाकी लेहर कान तक नहीं आयेगी. मनमें उभरेगी और फिर जैसे समुद्रकी लेहर उठके समुद्रमें पाछी चली जाये हे, वाही तरहसू मनमें डूब जायेगी. अब अन्तर केवल इतनो ही हे कि केवल अन्तर कामना रहे हे, बाह्य कामना कोई रहे ही नहीं हे. ऐसे हमारी कामना केवल आन्तरिक

नहीं हे. हमारी कामना लौकिककी तरह बाह्य नहीं हे. लौकिक व्यक्तिकी आन्तरिक कामना कछु होवे ही नहीं हे. वामें केवल बाह्य कामना ही होवे हे.

अब देखो जैसी अपनी नयी जीवनपद्धति आ गयी वामें ऐसी विचित्र स्थिति हो गई कि अच्छीसू अच्छी रसोई बने पर ऑफिस् जानो हे, तो खाली मुंहमें कथञ्चित् डालो और पेट भरो. वाको स्वाद लेवेकी फुरसत नहीं हे. अब अच्छी रसोई बनी तो जीभपे रखके थोड़ी देर वाको बाह्य स्वाद ले लें, इतनी भी फुरसत नहीं. मने ढोकला आये तो पेटमें डालो. जीभपे रखवेकी फुरसत नहीं हे. अब अपनूमें बाह्यता कितनी बढ़ती जा रही हे. नये जीवनकी पद्धति जो अपन् अपनाते जा रहे हें, वामें बाह्यता या बहिर्मुखता, अब भगवद्संदर्भमें लो चाहे लौकिक कामके संदर्भमें लो, कितनी बढ़ती जा रही हे? हर व्यक्ति केवल इतनो ही चाहे और रिफलेक्टेड् प्रकाशको भी रेलिश् नहीं करनो चाहे. बस कथञ्चित् कोई काम करवेसू फुरसत नहीं हे. अपनी ये स्थिति हो गई हे.

तो गोपी केह रही हे कि हमारी कोई ऐसी बहिर्कामना भी नहीं हे. न योगीनूके जैसी हमारी कोई केवल आन्तरिक कामना हे. हम तो हर पगपे, हर इन्द्रियसू हरेक सामर्थ्यसू तोकु रेलिश् करनो चाहें हें, जो सामर्थ्य तूने दी हे. जो आँख तेंने दी हे वासू पूर्णतया देखनो चाहें हें. मने **"पिबन्तइव चक्षुर्भ्यां लिहन्तइव जिह्वया जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्तइव बाहुभिः"** (भाग.पुरा.१०।७०।५-६). जा बखत ठाकुरजी द्वारिका पधारे हें वा बखत द्वारिकावासीनूको बहोत सुन्दर वर्णन कर्‍यो हे कि आँखसू उनकु पीते भये कानसू उनकु सूनते भये. जब भगवान् पधार रहे थे और सब उनकी जयजयकार बोल रहे थे, तो जयजयकार बोलवेपे उनकी जीभपे ऐसो स्वाद हतो जैसे कोई रसगुल्ला जीभपे रख्यो भयो होय. या तरहसू प्रत्येक इन्द्रियसू भगवानूकु माणते भये, रेलिश् करते भये, वा तरहसू **अन्तर्बहिः पदार्थेन**

पूर्णेन पूरयित्वा. वा बखत केवल बाह्य इन्द्रियपे ही ध्यान हे ऐसो ही नहीं, आन्तरिक भगवदनुभूतिको भी इतनो ही महत्त्व हे कि जितनो बाह्यको. जैसे योगीन्कु होवे हे **आश्रयाभावाद् निवारणीयः.** मनमें इतनो रम जा कि हमारो मन तेरेमें रम जाये. मन हमारेमें न रेह जाये. यदि हमारो मन हमारेमें रेह गयो तो तो वा मनमें काम रहेगो, क्योंकि मनमें काम रेहवे हे. इतनो प्रकट हो जा कि हमारो मन हमारो नहीं रहे. हमारो मन सर्वदा केलिये तेरेमें रेहवे लग जाये. आश्रय ही जब नहीं रह्यो तो काम कहा रहेगो?

घरमें कोई आवे और वाके लिये आसन बिछाओ तो तो वो बेठे ना! आसन कामको पड़्यो भयो हे वहां जाके बेठो. गामकी सारी पंचायत तेरेकु. सात्त्विकगोपिका केह रही हे कि **'कामदं'** कामप्रद हस्त दे. कामप्रद हस्त क्यों दे? भगवत्प्रद हस्त दे. अरे! सारे गामकी पंचायतसू हमारेकु क्या लेनो, वो तू जाने! ये दे. हम गामकु कहां माथेपे धरके घूमें? काम तू रख, गाम तू रख. हमें तो तू मिल जा! कामप्रदकी पंचायत "तू जाने और थारो राम जाने." तामसी हे ना! संयोग मांग रही हे. **अतएव लोके दातारः कीर्तिमन्तो भवन्ति वीरेभ्यः.** हम तो यों कहें कि तू युद्धवीर हे, तू दानवीर हे यदि या प्रकारसू हस्त देतो होय. अपने हाथको ऐसो उपयोग कर कि तू अपने हाथसू खुदकु हमकु दे दे. यदि ऐसो तेरो हाथ होय, जा हाथसू तू हमकु मिल जातो होय, आत्मार्पण कर देतो होय, तो वा हाथकी महिमा हे, नहीं तो क्या अभय दियो? काम मिल्यो तो क्या? ये इतनी बड़ी प्रोब्लमकु सात्त्विक-सात्त्विकको केहते नहीं आयो. **अतो भवान् महावीरः** यदि ऐसो जो अपनो खुदको तू दान कर सकतो होय, आत्मदान यदि तू कर सकतो होय, तो हम मानें कि तू महावीर हे. बोल करे दान अपनो कि नहीं? करे तो तेरो महावीरत्वको टाईटल् स्थिर हे नहीं तो तेरो ये टाईटल् खतम.

अन्तःस्थितेन आनन्देन अतिदरिद्राणां ब्रह्मणापि पूरयितुम् अशक्यानाम् इच्छापूरकः. अयञ्च अर्थः तव सर्वजनीनः'' पंक्ति बड़ी विकट हे. **अन्तःस्थितेन आनन्देन अतिदरिद्राणाम्** यों भी अन्वय हो सके हे और **अन्तःस्थितेन आनन्देन इच्छापूरकः** यों भी अन्वय हो सके हे. यदि तेरो स्वरूपानन्द केवल हृदयमें स्थित रह्यो तो तो अतिदारिद्रय हो जायेगो. जमीनमें दब्यो भयो घरको पैसा हे, वाकु वापर नहीं सके. दब्यो भयो पैसा और जाके पास पैसा नहीं हे, ऐसो पैसा, उन दोनोंन्के जीवनमें उनकी दरिद्रतामें, क्या अन्तर होयगो? घरमें एक खजाना दब्यो भयो हे और अपन्कु समझो पता भी नहीं हे, अपन् चाहें तो वाकु निकालके वापर भी नहीं सकें. जैसे बेंकमें आपको खाता और वाकु सरकार सील् कर दे, तो आप चाहो तो भी वापर नहीं सको. अब ऐसे सीज़् भये खातेसू क्या आप लखपति माने जा सको हो? जा पैसाकु आप खरच नहीं सको हो, वा पैसासू आप पैसावाले नहीं माने जा सकोगे.

अन्तःस्थितेन आनन्देन अतिदरिद्राणाम् ऐसो भी अर्थ लग सके. एक ऐसो भी अर्थ लग सके कि **अतिदरिद्राणां ब्रह्मणापि पूरयितुम् अशक्यानाम् अन्तःस्थितेन आनन्देन इच्छापूरकः**. हमारे मनमें ऐसे आनन्दको संचार कर कि जासू हमारी इच्छायें पूरी हो जायें. वा आनन्दको संचार तेरे प्रकट हुवे बिना तो हो ही नहीं सके हे. वा तरहसू यों अन्वय होयगो. यदि **अन्तःस्थितेन आनन्देन अतिदरिद्राणाम्**. ये आनन्द अन्तःस्थित हो गयो, बाहर प्रकट नहीं भयो और केवल मन ही मनमें ध्यान धरके तोकु रेलिश् करनो होय, तो या दारिद्रयकु तो ब्रह्मा भी दूर नहीं कर पायेगो जाने हमकु बनायो हे. तेरे स्वरूपानन्दकी अनुभूति यदि हमें अपने मनसू ही करनी होय, जामें तो तू रोक भी नहीं सकेगो. सूरदासजी कहे हें ना कि **''हाथ छुड़ाये जात हो निबल जानके मोय. हृदयते जब जाओगे सबल बदूंगो तोय''** आँखसू ओझल हो सको हो, मनसू तो ओझल नहीं हो सको

हो. अन्त:स्थित आनन्द तो हे ही पर अन्त:स्थितिके कारण जो दारिद्रय हे, ये शायद निर्गुणगोपिकाकु जवाब दे रही हे, **'अन्तरात्मदृक्'**. अरे कायको **अन्तरात्मदृक्! अन्तरात्मदृक्** तो महादारिद्रय हे. वाकु केहते नहीं आयो. यदि कृष्ण केवल अन्तरात्मदृक् हे, सो तो जीवनको महादारिद्रय हे. अरे! हमकु आँख चइये ही नहीं हें. हमकु तो दृश्य चइये. हमकु दृष्टा नहीं चइये. यासू दृश्यकी मांग हे, दृष्टाकी मांग नहीं हे. अन्तरात्मक दृष्टा हमकु नहीं चइये. हम वाकु हमारी अन्तरात्मासू बहिरात्मासू और अपनी सब इन्द्रियन्सू पकड़ सकें देख सकें छू सकें सुन सकें. **"धन्यास्ता: व्रजगोपिकाहि परमं देवाधिदेवं विभुं आलिंगति समालपन्ति शतधातु कर्षन्ति चुम्बन्ति च."** (   ). इतनो सब जो हम कर सकते होंय तो चलेगो अन्यथा अन्त:स्थित आनन्द तो घोर दारिद्रय हे. क्या अन्तर्दृष्टाकी बात कही! ये निर्गुणगोपीको जवाब दे रही हे, याकु बराबर केहनो नहीं आयो. इनकी बात मत सुन, मेरी बात सुन.

व्यासजीने गणपतिजीसू महाभारत लिखवाई. कोई बातपे गणपतिजी प्रसन्न हो गये. गणपतिजीने व्यासजीसू कही कि "कछु मांग लो, हम प्रसन्न भये हें." व्यासजीने सोची कि "गणपतिजी प्रसन्न भये हें तो मांग लेनो चइये." कही "महाराज! प्रसन्न भये हो तो ऐसो करो कि ये जो क्षेत्र हे जहां बेठके हमने महाभारत लिखवाई लिखी हे, याको माहात्म्य काशीजी जैसो हो जाये. जो यहां मरे वो मुक्त हो जाये." अब या बाजु उनके मित्र व्यासजी और वा बाजु उनके पिता शंकरजी. ये रचना कैसे आ सके? गणपतिजीने कही बड़ी मुश्किल हे! गणपतिजीने कही "क्या मांग्यो?" व्यासजीने फिर कही की "जो यहां मरे वाकी काशीमें मरवे जैसी मुक्ति होनी चइये." गणेशजीने फिर पूछ्यो कि "क्या मांग्यो?" व्यासजीने कही "जो यहां मरे वाकी काशीमें मरे जैसी मुक्ति होनी चइये." गणपतिजीने फिर पूछी "क्या मांग्यो?" अब व्यासजीकु क्रोध आ गयो सो बोले

"जो यहां मरे सो गधा बने." गणेशजीने कही "तथास्तु." व्यासजी जब झल्ला गये तो क्रोधवश कछु मुंहसू निकल गयो. बात तो वही केहनी थी पर क्रोधवशात् निकल गयो. अब व्यासजीकु भी वहां कोईके मरके गधा बनवेमें महानता दिखती होयगी! या लिये गणपतिजीने केह दी कि "तथास्तु."

तो केह तो रही हे **अन्तरात्मदृक् अन्तरात्मदृक्...** और भगवान् केह दें कि "तथास्तु" तो बनतो काम बिगड़ जाये न हमारो! ऐसी प्रार्थना क्या कामकी! कोई ऐसी प्रार्थना करो कि बाहर प्रकट हो जाये. वहां बेठी बेठी केह रही हे **"न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्"** और भगवान् केह दें "तथास्तु", तो बनतो काम बिगड़ जाये. ऐसो काम मत करो. ऐसी प्रार्थना या ऐसो वर्णन मत करो कि जहां भगवान्कु तथास्तु केहवेको मौका मिल जाये. तथास्तु कहें तो ऐसी बातपे कहें कि बाहर प्रकट होनो ही पड़े. ऐसी कोई प्रार्थना करो. तू अन्त:स्थित आनन्द हे. तू इच्छापूरक हे. जब अन्त:स्थित आनन्दकी दरिद्रता आयेगी तो वाकु तो ब्रह्मा भी दूर नहीं कर सके हे जाने सारे ब्रह्माण्डकु बनायो. या दारिद्रयकु तो तू ही दूर कर सके हे.

अपने जो अवतारवादकी चर्चा चल रही हती, मौलवीजीके साथकी चर्चा जो हमने आपकु बताई, वा संदर्भमें आप या पंक्तिकु देखो. **अन्त:स्थितेन आनन्देन अतिदरिद्राणां ब्रह्मणाऽपि पूरयितुम् अशक्यानाम् इच्छापूरक:.** पैगम्बरके आवेसू ये प्रोब्लम् कहां सोल्व् हो रही हे! पैगम्बर आवेसू धर्मप्रवर्तन हो जायेगो, पैगम्बर आवेसू धर्मप्रवर्तन हो जायेगो, पैगम्बर आवेसू लोग धर्ममार्गपे चले जायेंगे, सज्जनन्को काम हो जायेगो, असुरन्को संहार कर देयगो परन्तु **अन्त:स्थित आनन्देन अतिदरिद्राणाम्** को दारिद्रय कहां दूर होयगो अगर पैगम्बर आयेंगे तो? वो तो जबतक खुद न आवे तबतक वो अन्त:स्थितको दारिद्रय

दूर नहीं हो सके. ये पुष्टिअवतारको परम प्रयोजन हे. वो दारिद्रय कौन दूर करेगो यदि तू बाहर प्रकट नहीं होयगो?

अरे! गुसांईजीकी टिप्पणी होती तो हमारो स्टेण्ड् बेठ जातो और निर्भय-रमण करते. गुसांईजीको स्टेण्ड् मिले नहीं वो तो सभय-रमणको हे. क्या करें? दो-चार बालक यहां चुप्पी मार गये हें. अकेलो श्यामबावा बोले तो वाकी कीमत क्या! **अयं च अर्थः तव सर्वजनीनः** ये जो तेरो अर्थ हे, देखो या पंक्तिमें क्या केह रहे हें **अयञ्च अर्थः तव** तेरे स्वरूपको ये जो अर्थ वासू तेरो अन्तर्बहि सर्व आनन्द होनो चइये. ये सर्वजनीन हे. सारे ब्राह्मणनूकु न्यौता हे. या न्यायसू ये तेरे रूपकु पेहचाने हें. तू भी इनसू पूछके देख ले, भले वो निर्गुणगोपिका प्रार्थना कर रही हे, तू वाकु पूछके देख कि मेरो अन्तरात्मदृक् होनो पसन्द हे कि बाहर दृश्य होनो पसन्द हे? पूछोगे तो वो भी यही कहेगी कि नहीं, नहीं केहवेकु आत्मदृक् कह्यो पर पसन्द तो येही हे कि तू दृष्टा बनवेके बजाय दृश्य बन जा पर वो केह नहीं रही हे वाको कारण वाकी निर्गुणता हे. अब इनने केह दियो कि हममें हिम्मत हे. हमकु अपनी बात सीधे सीधे शब्दनूमें केहनी आवे हे. वाकु केहनी नहीं आ रही हे तो वो घुमा-फिराके केह रही हे. बाकी यदि तेरो कोई अर्थ हे, यदि कृष्णपदार्थको कोई अर्थ हे तो वाको अर्थ प्राकट्य ही हे. केवल अन्तर या बहिः ही नहीं पर अन्तर्बहिः सर्वत्र प्राकट्य अर्थ हे. ‘‘अतः योषितां वीरेति सम्बोधनम्’’ याके लिये हम योषितां वीर केह रहे हें. द्वितीय प्रार्थना करवेवाले चाहे सात्त्विकभावसू चाहे राजसभावसू चाहे तामसभावसू चाहे निर्गुणभावसू, उनकु पूछ तो वो भी येही कहेंगे.

ये तो फलप्रकरण हे याकु पेहले ही सारी गोपिकायें केह चुकी हें. **‘‘अक्षण्वतां फलम् इदं न परं विदामः सख्यः पशून् अनुविवेशयतोः वयस्यैः वक्त्रं व्रजेशसुतयोर् अनुवेणुजुष्टं यैर् वा निपीतम् अनुरक्तकटाक्षमोक्षम्’’**

(भाग.पुरा.१०।१८।७) "**पिबन्तइव चक्षुर्भ्यां लिहन्तइव जिह्वया. जिघ्रन्तइव नासाभ्यां श्लिष्यन्तइव बाहुभिः**" (भाग.पुरा.१०।७०।५). प्रत्येक इन्द्रियको जो आस्वादन हे, मनसू अन्तर्बहिः सर्वत्र जहां भी भगवान्को अनुभव करवेकी सामर्थ्य हे, जो भी इन्द्रियमें अनुभव करवेकी सामर्थ्य हे, उन सबसू यदि भगवदनुभव न होतो होय, तो वो कृष्णपदार्थको अर्थ नहीं हे. वो कोई और पदार्थको अर्थ हो सके हे. 'कृष्' व्यापक अर्थमें हे और 'ण' आनन्दके अर्थमें हे. परम व्यापक आनन्दकी परम व्यापक अनुभूति नहीं भई, तो वो कृष्णपदार्थको अर्थ नहीं रेह जायेगो. **अतः योषितां वीर! इति सम्बोधनम्**" अब जितनी भी याचिकायें खड़ी भई हें इनसू पूछ लें कि येही मांगनो चाह रही हें कि नहीं? हम केह रही हें पर ये नहीं केह पा रही हें. हें बराबर सारी याचिका कृष्णकी ही. कृष्णको जो हम अर्थ कर रही हें वो अर्थ व्यापक आनन्द ही हे.

न हि कृष्णात् अन्यो जगति कश्चिद् एवं सम्बोधनम् अर्हति, अपूर्णकामत्वात्. वीर योषिताम्!" मने ये जो वीर योषितायें हें, इनकी कामनानूकु पूर्ण कर सके, ऐसे कृष्णकु छोड़के ब्रह्मासू लेके चींटी पर्यन्त कोई पदार्थ हे ही नहीं. **अतो अवतार सामान्य-विशेष-प्रयोजनाभ्यां च नो भज.** ये सारे पदार्थनूके निरूपणको निष्कर्ष क्या? तेरे स्वरूपको विचार हमारे स्वरूपको विचार हमारी याचनाके स्वरूपको विचार तेरे दाताके स्वरूपको विचार हमारे याचकत्वके स्वरूपको विचार और जो दान हमकु अपेक्षित हे वो दे दे.

ननु सत्यं, तथापि भवतीनाम् अभिमानदोषनिवृत्त्यर्थं भजनं न क्रियत इति चेत्. तो कहे हें कि हम तुम्हारे कामकु निवृत्त कर दें पर तुम्हारेमें तो दोष हें. अब वीरको दूसरो अर्थ, दाताको अर्थ तो हो गयो. अब युद्धवीरके अर्थमें, कहें हें कि यदि तुम याचक हो तो याचकनूमें कोई ऐसे बढ़ चढ़के मांगे? याचकमें तो विनय

होनी चइये. तुम तो ऐसे ढंगसू मांग रही हो जैसे कि कर्जदारसू लेनदार झगड़ा करें हें. याचक कोई ऐसे लेनदारकी तरह थोड़े ही मांगे? तो कहें हें कि यदि हमारे या प्रकारके तकाजासू तेरेकु हमपें क्रोध आतो होय और हमारेमें कोई दोषबुद्धि तेरेकु हो रही होय तो चल अब हमारे साथ युद्धवीरको सम्बन्ध रख. हम तेरी शत्रु और तू हमारो युद्धवीर. अब तू युद्धवीरता बता कि हमकु खतम करेगो कि हमारे दोषन्कु खतम करेगो? यदि साधारण योद्धा हे तो हमकु खतम करेगो बिना प्रकट हुवे और यदि असाधारण योद्धा हे तो हमारे दोषन्कु खतम करेगो. हमारे दोष क्या हें? कि तुममें अभिमान हो गयो. अरे! अभिमान हो गयो तो तेरे पास अभिमानकु काटवेको बड़ो अच्छो शस्त्र हे, **निजजनस्मयध्वंसनस्मित इति.** निजजनको स्मयको जो दोष हे, मदरूपी जो दोषकु काटवेके लिये तो तेरो स्मित पर्याप्त हे. एक स्मित दे और ये दोष मिट जायेगो, कितनी देर टिक सके

निजजना: सेवका: तेषां स्मयो गर्व:'' निजजन तो तेरे सेवक हें, देखो पेहलेसू ही बांध रही हें, ये बड़ी चतुर हे. तो कहें कि हम दोषकु नहीं मारके दोषीकु मारें. तो कहें कि तो निजजनकु मारवेको अपराध लगेगो. निजजन जा बखत दोष करे, वा बखत अपन् निजजनकु नहीं मारें, वा बखत वाके दोषकु ही मारें हें. परजन कोई अपराध करे तो अपराधीकु मार्‍यो जाये और निजजन अपराध करे तो अपराधकु मार्‍यो जाये. अपराधीकु नहीं मार्‍यो जाये. जब तुम्हारो बच्चा कोई गल्ती करे, तो तुमकु क्या लगे? अरे! बिचारो भूल गयो. समझ नहीं पा रह्यो हे. ऊधमी हे. दूसरेको बच्चा कोई गल्ती करे, तो लगे अरे! कैसे बच्चायें पैदा भये हें? कभी अपने बच्चापे ऐसो प्रश्न पैदा होवे हें? तो लगे कि बिचारो भूल जाय. गल्ती सबसू ही होवे हे. यासू भी हो गई. अपने बच्चाको हर बखत अपनेकु यदि थोड़ी भी निजजनत्वकी बुद्धि हे,

तो हर बखत दोष दीखेंगे पर साथमें वो जो निजत्व चमक रह्यो हे वाके कारण वाकी वकालत ही सूझती रहे. जहां अपनो बच्चा नहीं सूझे वहां केवल दोष ही दीखे हे. वा बखत दोषनिरसनकी इच्छा नहीं होवे हे बल्कि दोषीके निरसनकी इच्छा होवे हे.

एक सामान्य बात बताऊं. अपनो बच्चा घरमें हल्ला मचातो होय तो अपन् वाकु कहेंगे कि ‘‘चुप रहो.’’ पड़ोसीको बच्चा घरमें हल्ला मचातो होय तो अपन् वाकु कहेंगे कि ‘‘गेटआउट्.’’ खुदके बच्चाकु कैसे गेटआउट् करोगे? हल्ला तो दोनों ही मचावें. पड़ोसीके बच्चाकु गेटआउट् करेंगे क्योंकि वामें निजजनता नहीं हे, निजता नहीं हे.

तो गोपी केह रही हे कि तू निजजन समझ ले. यदि तेरेकु युद्धवीर बननो हे, यदि तेरेकु हमारे दोष दीख रहे हें, कैसे दोष? क्रोधके मोहके मदके जो युद्धवीरके लिये निरसनके लिये उचित हें. वामें दो ही सम्भावनायें हें. या तो तू दोषीको निरसन करे या दोषको निरसन करे. तो पेहले समझ ले कि दोषी कौन हे? निजजन तेरे दोषी हें और दोष क्या हे? **स्मयदूरीकरणार्थं परित्यागो न उपायः**. अपने बच्चाकु तो गेटआउट् नहीं कियो जा सकेगो. वाकु तो चुप कराके बिठानो ही पड़ेगो. या डांट डपटके केहनो पड़ेगो कि ‘‘चुप रेह.’’ खुदके बच्चाकु तो घरसू बाहर नहीं निकाल्यो जा सकेगो घरको बच्चा हे तो. **किन्तु तदर्थं स्मितमेव कर्तव्यम्**. थोड़ोसो स्मित कर. केहवेकु तो बात बड़ी सरल लगे पर स्मित कर पोज़िटिव् अर्थमें नहीं हे. नेगेटिव् अर्थमें हे.

संस्कृत भाषामें कई प्रभेद करे गये हें. ‘‘**ज्येष्ठानाम् स्मित-हसिते मध्यानां विहसितावहसिते च. नीचानाम् अपहसितं तथातिहसितं तदेव षड्विधो हासः**.’’ (साहित्यदर्पण.सू.३।२१७) छे प्रकारके हंसवेके तरीका होवें हें. जो उच्च कोटिके पुरुष होवें हें, जिनकु डिगनिफाइड् लोग

कहें, उनको हंसवेको कहां तक जावे स्मित और हास. मध्यकोटिके पुरुष होवे वो विहास और अवहास तक जावे. निम्न कोटिके पुरुष अपहास और अतिहास तक जावें. उनको ऐसे ढंगसू हंसनो कि पड़ोसी सुने तो सुने पर पूरो मौहल्ला सुने. वो ‘‘अतिहास या अपहास’’ केहवावे. कोई भी सम्मानीय पुरुष इतनो नहीं हंसे. सम्मानीय पुरुषके हंसवेकी मर्यादा ज्यादासू ज्यादा स्मितसू लेकर विहसन तक होवे. वो अवहास तक भी नहीं जावें. अवहासको मध्यमें यदि दो भेद करो, तो विहास भी कब आ सके कि जब अत्यन्त घनिष्ठता होय कोईके साथ. तो उत्तम सम्मानीय पुरुष अवहासके लेवल तक जावें हें. ये नाटकमें इन्स्ट्रक्शन्स् दिये जायें. नाटकमें यदि कोई उत्तम पुरुषको हंसानो होय तो वो ऐसो हा हा करके नहीं हंसे. अब यदि जानकार डायरेक्टर् हे तो वो स्मित और हास सू ज्यादा वाकु नहीं जावे देयगो. यदि कोई अत्यन्त घनिष्ठताको सम्बन्ध हे तो वो विहास तक जा सके पर अवहास तक नोबल् आदमी नहीं जा सके. मध्यस्तरके लोगन्की रेन्ज् स्मितसू लेके अवहास तककी हे. जो अत्यन्त निम्न कोटिके, विलन् टाईपके, या राक्षस टाइप्के चरित्र होवें हें वो अपहास और अतिहास तक जावें. तो जब या प्रकारके चरित्रकु हंसवेको होय तो डायरेक्टर् उनकु अपहास और अतिहास के स्तर पर हंसवेकी इन्स्ट्रक्शन् देवे हे. ऐसे जैसे मर्जी हंस देनो वैसे नहीं.

तो वा तरीकेसू बतावे हें कि स्मित और हास में थोड़ो अन्तर होवे हे. ध्यान दोगे तो पता चलेगो कि स्मित श्रव्य नहीं हे केवल दृश्य हे. हास दृश्य भी हे और श्रव्य भी हे. बिना दृश्य भये हास्य श्रव्य भी हो सके हे पर श्रेष्ठ पुरुषकु जब घनिष्ठता व्यक्त करनी होय तब हास करें हें. बाकी व्यवहार व्यक्त करनो होय तो स्मित करें हे. वैसे सामान्य अर्थमें स्मितको अर्थ अच्छो मान्यो जाय पर स्मितमें एक तरहकी फोरमेलिटी भी हे. अब याकु

तामसप्रकरणके रूपमें समझो. नाटकके प्रकरणमें तो याको अलग रूप हे पर तामसप्रकरणमें याको व्युत्क्रम चलेगो ना! नाटकप्रकरणमें स्मित उत्तम मान्यो जाय और हास थोड़ो कनिष्ट मान्यो जाय पर तामसप्रकरणमें याकी गति वाम हो जाये, उल्टी हो जाय हे. हास घनिष्टताको द्योतक होवे और स्मित फोरमेलिटी हो जाये.

तो दो तरहसू केह रही हे. यदि तेंने हास कियो तो सम्भव हे कि खाली सुनाई पड़े. यदि भगवान् प्रकट हो गये और हास कर दें और केह दें कि "चलो अब तो तुम खुश हो." या बातकु केह दें तो मुश्किल. तो एक वाके पोज़िटिव् अर्थमें केह रही हे कि स्मित ही चइये. ऐसो हास नहीं चइये कि जो केवल सुनाई ही पड़े और दिखाई ही नहीं दे. अब पेड़पे चढ़के तो स्मित हो नहीं सकेगो. स्मितके लिये तो प्रकट होनो ही पड़ेगो. एक या अर्थमें लोगे और दूसरे अर्थमें लोगे तो ये बात हे कि हाससू जो तेरी घनिष्टता प्रकट हो रही हे, स्मितकी फोरमेलिटी बरत ले पर तू प्रकट तो हो जा. हमारो काम अभी तत्कालमें तो चल जायेगो. फिर हम प्रसन्न करके तोकु हंसा लेंगे. अभी स्मित करतो भयो प्रकट हो जा. फिर तोकु हंसानो हमारो काम हे. वो घनिष्टता जो निवृत्त भई हे, जाके कारण तेरो हास स्मितमें प्रकट होनो चइये, तो फिर वा स्मितकु हासमें परिवर्तित करवेको प्रयत्न करेंगी पर एक बार स्मित तो प्रकट कर.

कथञ्चित् निजजना: सेवका: तेषां स्मयो गर्व: तस्य ध्वंसनार्थं स्मितं यस्य. निजजन जो सेवक हें, उन सेवकन्को जो गर्व, वा गर्वको वा मदको यदि निवारण करनो हे बहोत युद्धवीर बनके वा गर्वको वारण करनो हे निरसन करनो हे तो तेरे स्मितकी कृपाणसू वाकु काट दे तो गर्व कट जायेगो कृपाणसू. क्यों? **निजजनानां स्मयदूरीकरणार्थं परित्यागो न उपाय:.** तो जो निजजन हें उनको यदि स्मय दूर करनो

हे वासू उनकु ही छोड़ देनो, ये निजजनको उपाय तो नहीं हे. जो परजनको तो उपाय हो सके हे कि स्मित बहोत हो गयो तो अपन्ने सम्बन्ध ही तोड़ दियो पर निजजनको तो ये उपाय नहीं हे. तो कहें कि फिर उपाय क्या? तो कहें हें **किन्तु तदर्थं स्मितमेव कर्तव्यम्.** हमकु दीखतो रेह. हमारी आँखसू ओझल मत हो जा पर जा घनिष्टतासू तू आज तक हमारे साथ हास विहास करतो रह्यो, वैसो हास विहास मत कर, स्मित कर, पर कमसू कम प्रकट तो हो. "**स्मितं हि मन्दहासः**" स्मितकु कहें हें कि हासकी मन्दता हे.

"**हासो जनोन्मादकारी च माया**" (भाग.पुरा.२।१।३१). तस्याः मन्दत्वं भक्तेषु अप्रवर्तनम्. हासकी परिभाषा विराटस्वरूपमें यों कही गई हे. भगवान् जा जा वस्तुके जो जो स्थान हें और जो स्थान बतायें हें वामें मायाको कौनसो स्थान हे? मायाको स्थान भगवान्‌को हास हे. प्रभु दो तरहसू हंसे. शायद मायासू मोहित होके जो जीव प्रवाहमें पड़ गये हें, उनकु देखके प्रभु विहास करते होंयगे. यदि रौद्ररूपमें सोचो तो शायद अट्टहास भी करते होंयगे जो कि अपहास या अतिहास के रूप हें. तो जो प्रवाही आसुरी जीव हें उनके लिये अपहास या अतिहास होतो होयगो, क्योंकि "माया हासो जनोन्मादकारी" मायाको स्थान प्रभुके हासमें हे. पर सबके प्रति एक तरहको हास तो नहीं हे ना! कोईके प्रति अट्टहास हे, कोईके प्रति विहास हे, कोईके प्रति अवहास हे, कोईके प्रति केवल हास हे. पर भक्तन्‌के साथ प्रभुके हासको कछु सम्बन्ध हे. वो हासको सम्बन्ध उनमें भी उन्माद पैदा करे हे. माया भगवान्‌को हासरूप हे पर इनमें प्रवाहको उन्माद उत्पन्न करे हे, जा उन्मादमें, प्रवाहमें अधिक रत हो जायें पर भक्तमें प्रभुको हास भक्तिको उन्माद उत्पन्न करे हे. याके लिये भक्तके साथ भी भगवान्‌के हासको सम्बन्ध हे. मर्यादामें भी भगवान्‌के हासको सम्बन्ध हे. भक्तिको "**हासो जनोन्मादकारी च माया**" हास

जन उन्मादकार भी हे और मायारूप भी हे. **तस्या मन्दत्वं भक्तेषु अप्रवर्तनम्.**

जैसे घरमें तुम्हारे एक मित्र आवे और जा मित्रके आते ही तुम्हारो उल्हास प्रकट हो जाये. उल्हास प्रकट नहीं भयो, केवल स्मितसू मित्रको स्वागत कियो, तो जरूर कुछ न कुछ कौभाण्ड हे. जाके आवेसू उल्हास प्रकट होनो चइये, वो उल्हास प्रकट नहीं होके केवल स्मित प्रकट भयो! ये फोरमेलिटी आज क्यों हो गई? तो भक्तमें हासको अप्रवर्तन! वासू बड़ो दण्ड भक्तके लिये और कुछ नहीं हो सके. तू हमारे साथ हंसे नहीं हे और केवल स्मित करे, ये बस दण्ड हो गयो, हमारो घमण्ड चूर हो जायेगो. यासू ज्यादा हमारे मनकु दण्ड देवेको अन्य कोई कठोर उपायकी आवश्यकता नहीं हे कि तू हंसतो भयो स्मित करतो हो गयो! इतनेमें तो चित्त पिघल जायेगो कि क्या बात हे, यदि मैत्री सच्ची हे तो! जाके साथ हास-परिहासको सम्बन्ध हे और हास-परिहासवालेने कभी स्मितसू स्वागत कियो तो वहीं मनमें एक खटका बेठ जाये कि क्या गड़बड़ भई? भयो क्या? वो हास-परिहासको सम्बन्ध कहां गयो? वो क्यों नहीं हे? वो शंकायें वाही बखत हृदयकी धड़कन बढ़ा देंगी. वा तरहसू केह रहे हें **तस्या मन्दत्वं भक्तेषु अप्रवर्तनम्.** हासकी मन्दता क्या? भक्त जब तेरे सामने आयो और तू उल्हासके साथ वाके सामने दोड़तो भयो नहीं आयो और स्मित करके एकदम ऑफिशियल्-वेमें आयो फिर तो बात खतम हो जायेगी.

या लिये केह रहे हें **नहि मायामोहव्यतिरेकेण कस्यचित् स्मयो भवति.** घमण्ड जबतक मायासू मोहित नहीं होवे हे तबतक तो होवे ही नहीं. अब हमकु घमण्ड तेरे हास्यके कारण भयो हे. तेंने हंस-हंसके हमारे साथ हमारेमें ये गर्व पैदा कियो. क्योंकि तेरो हास माया हे और उन्माद करे हे. हमारेमें जब उन्माद प्रकट भयो तो मद

तो वामें ही छिप्यो भयो हे ना! उन्मादमें मद तो छिप्यो भयो हे. हममें मद प्रकट भयो वाको हेतु हम थोड़े ही हें पर तेरो हास हे. तू अपने हासको संकोच कर ले तो हमारो मद अपने आप खतम हो जायेगो. यदि हमारे मदकु तू बुरो मानतो होय तो अपने हासकु संकुचित कर ले. अब हमारी या दीनतापे तू छिप्यो भयो हंस रह्यो हे! अरे हंस क्यों रह्यो हे स्मित कर दे ना प्रकट होके! हमारो मद टूट जायेगो. क्योंकि हमारो मद तेरे हासके अलावा और कुछ नहीं हे. ये मद हममें तेंने हंस-हंसके पैदा कियो हे. चल अब हम कन्सेशन् दे रही हें. हंसियो मत पर स्मित करतो आ जा. देख हमारो मद भी खतम. तेंने तेरे हासको संकोच कियो तो देखियो कि हमारे मदको संकोच हो जाये कि नहीं? जितने प्रपोर्शन्में तेंने हास कम कियो उतने प्रपोर्शन्में हमारो मद टूटतो चल्यो जायेगो. इनको बराबर या रेशियोमें सम्बन्ध हे. तेरे हासको और हमारे मदको. जितनो तू हंसतो चल्यो जायेगो, उतनो हमारे मनमें मद बढ़तो चल्यो जायेगो कि हमारी घनिष्टता इतनी कि प्रभु ऐसे ऐसे हंसके भी हमारे साथ बात कर रहे हें! मने भरी सभामें कोई अट्टहास कर सके? कोई चाहे कितनो भी सभ्य आदमी होय तो भी घरमें कोई लंगोटिया यार आ गयो होय तो घरमें अट्टहास भी करे हे. बड़ोसू बड़ो आदमी भी कोई बचपनको दोस्त घरमें आ गयो तो अट्टहास भी करे हे. अट्टहास करे तो वासू वाकु नीच नहीं मान्यो जाय. ऐसे नियम जो नाटककारने परिभाषा कर दी. “**अपहासं अट्टहासं च नीचानाम्**” वाके अनुसार लेबल् लगा दियो जायेगो कि अट्टहास करी तो नीच हे. घरमें ये नियम जरूरी नहीं हें कि लागू होंय. ये सब नियम नाटककारके नाटकीय नियम हें. जीवनके नियम यासू ज्यादा लचीले हें. ऐसो कोई बचपनको घनिष्ट मित्र आवे तो वाके साथ अट्टहास तो करनो पड़े, करनो पड़े और करनो पड़े. चल हमारे साथ अट्टहास मत कर, हमारे साथ खुलके मत हंस, थोड़ो सो अपने हासको संकोच कर और

देख हमारो गर्व टूट जाये कि नहीं? हमकु कोई शंका हो जायेगी कि हमारी मैत्रीमें कहां आंच आ गई? तू हमारे साथ इतनो खुलके हंस क्यों नहीं रह्यो हे?

अतएव हास्यसंकोचएव साधनम्. अतएव कोई साधन हे तो वो केवल हास्यको संकोच हे. **निजजनानामपि धर्मएव दुष्टः न तु धर्मी** और निजजनको जो कोई भी दोष हे, उनमें धर्ममें दोष हे. गुणमें दोष हे, व्यक्तिमें तो दोष हे नहीं. यदि निजजन दोषी हें तो तू ऐसे व्यक्तिकु पाले हे क्या? हम तो ऐसी बात कहेंगे नहीं कि तेरे निजजन दोषी हें. हां तेरे निजजनमें कुछ गुण दोषरूप हो सके हें पर ऐसी बात हम अपने मुंहसू कैसे कहें? ऐसे तो तेरे निजजन हो नहीं सकें. हां उनके कुछ गुण दोषरूप हो सकें हें. तो वो भी सच्ची बात तो ये हे कि वो भी तेरे हासके कारण पैदा भयो हे. हासको संकोच करे तो वो भी निवृत्त हो जायेगो. **अन्यथा निजजनत्वमेव न स्यात् इति अलौकिकोपायः** यदि व्यक्ति दोषी होय तो वो तेरो निजजन कैसे केहलातो? तो गुण वामें थोड़ो दोष हे. हमारे मदकु दूर करवेको अलौकिक उपाय तो ये हे.

लौकिकेऽपि तव हास्येन ता अपि आत्मानं तुल्यं मन्यन्ते, यदा पुनः हास्ये संकोचः तदैव तासां गर्वो निवर्तते. विराटके अभिप्रायसू यहां लौकिक अभिप्राय आधिदैविक अभिप्रायसू आध्यात्मिक लीलामें अलौकिक अभिप्राय बतायो हे और आधिदैविक लीलामें लौकिक अभिप्राय बतायो हे.

किञ्च अभिमानोहि दोषः, स तावदेव तिष्ठति यावत् तव स्मितयुक्तम् आननं न पश्यति. न हि काचित् तादृशमपि आननं दृष्टवा स्वाभिमानं पालयितुं शक्ता. ये दो स्मितके नेगेटिव् अर्थ हते वो बताये. अब याको जो पोज़िटिव् अर्थ हे वो बता रहे हें. अभिमानदोष कितनी

देर तक टिक सके? वो इतनी देर टिक सके, जितनी देर कोईने तेरो स्मित नहीं देख्यो हे. स्मितमें भी पोज़िटिव् क्वोलिटीस् तो हें ना! जैसे हासके संकोचमें नेगेटिव् क्वोलिटी आवे हे, ऐसे ही स्मितकी अपनी पोज़िटिव् क्वोलिटी भी तो हें ना! मुखारविंदपे स्मितको एक सौन्दर्य, देखो यहां बहोत सुंदर बतायो हे. "**तस्यावलोकमधिकं कृपया अतिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टम् अक्ष्णोः**" (भाग.पुरा.३।२८।३१) भगवान् देखें, केवल देखनो और स्मितपूर्वक कोईकु देखनो, वामें कितनो अन्तर हे? 'विपुलप्रसादम्' वा अवलोकनमें भगवान्‌को विपुल प्रसाद कब प्रकट होवे? जा बखत सस्मित अवलोकन होवे तब. सस्मित अवलोकनमें प्रभु अपनी तरफ देखें ना पर स्मितहीन यदि अवलोकन कियो तब कटाक्ष प्रकट नहीं होयगो. अवलोकनमें ये सामर्थ्य हे कि जो तापत्रय हें, तेंने अपनी दृष्टिसू एक बखत उनकु देख्यो, तो तापत्रय दूर हो जायेंगे. मने दुःखाभाव तो होयगो पर सुखप्राप्ति नहीं होयगी. जबतक तेंने देखवेमें वाकु स्मितसू अनुगुणित नहीं कियो. देखवेको अवलोकनको स्मितसू अनुगुणन करे तो "**विपुल प्रसादः**" तब विपुल प्रसाद प्रकट होयगो. "**स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेद् चिरं विततभावनया गुहायाम्**" (भाग.पुरा.३।२८।३१) और अपने हृदयकु इतनो विस्तृत करे कि वामें निरन्तर भगवान्‌को स्मितानुगुणित अवलोकन अपनेकु दीखतो रहे.

ठाकुरजीके दर्शन करवेको मुख्य लाभ क्या? जा दिन ठाकुरजीके प्रभुके दर्शन करें अपन् और कोई भी स्मितानुगुणित अवलोकन प्रभुकी दृष्टिमें दर्शन भयो, तो वो अच्छे फोटोस्टेट्‌की तरह अपने हृदयमें छप जानो चइये. जब आँख मींचे तो वो स्मितानुगुणित अवलोकनवाले मुखको अपनेकु दर्शन होतो रहे. जो सेवा करें तो ये बात समझमें आयेगी. ठाकुरजीके मन्दिरमें जाके आँख मींचके खड़े हो जायें, "**ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति**" (भग.गीता १३।२५). हम कहें कि "जंगल ही क्या खोटो थो? मन्दिरमें जाके कुलकर्णीजी आँख मींचके खड़े हो जायें."

अरे देखो, वा स्वरूपकु पी जाओ. मन्दिरमें आके आँख मींचके खड़े हो गये. मैं आपसे मिलवे आऊं और आप आँख मींचके खड़े हो जाओ तो कैसो विचित्र व्यवहार लगे! ठाकुरजीसू भक्तिसूं मिलवे गये हो, आँख क्यों मींच रहे हो? खोलो. कई लोग क्या करें? वो आधी आधी बात कर लें. थोड़ी ज्ञानकी थोड़ी भक्तिकी खिचड़ी पकावेके चक्करमें और जावें मन्दिरमें और आँख मींचके खड़े हो जायें. अब वो आँख मींचके क्या देख रहे हें, हमारेकु समझमें नहीं आवे! क्यों आँख मींचके खड़े हो जायें? जब मन्दिरमें गये प्रभुके दर्शन करवे तो आँख क्यों मिंची? आँख इतनी अपलक कर दो कि अपलक नेत्रसू वो स्वरूप अनवरत तुम्हारे हृदयमें छप जाये. **"ध्यायेत् चिरं विततभावनया गुहायाम्"** (भाग.पुरा.३।२८।३१) अब वहां आँख मींचके खड़े हो गये तो वहां क्या मिलेगो! घर क्या खोटो हतो! कोईसू मिलवे जाये और आँख मीचके खड़े हो जायें, पांच-दस मिनिट्में घबराहट होवे लग जाये. शायद आदमी पागल भी लगे. कोईसू मिलवे जायें और आँख मींचके खड़े हो जायें. सीधी इच्छा हो जाये कि याकु पागलखाने पहोंचाओ, क्यों आ गयो यहां! अरे कोई आयो हे तब तो आँख खोल दे. जब तू यहांसू बाहर निकले तो आँख मींचके जइयो कि वो रूप तेरी आँखमेंसू निकल न जाये. मन्दिरमेंसू बाहर निकले और आँख मींच ले तो तो वाकी शोभा हे पर जब ठाकुरजीके सामने खड़ो हे तो कायकी आँख मींच रह्यो हे! **"अटति यद्भवान् अह्नि काननं त्रुटिर् युगायते त्वाम् अपश्यताम्"** (गोपीगीत.१५) आगे जाके गोपिकायें कहेंगी. **"कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्"** अरे वो ब्रह्मा जड़ हे. वाकु समझ नहीं पड़ी. या रूपकु देखवेके लिये ऐसी पलक गिरवेवाली आँख बनानी नहीं चइती थी. **"त्रुटिः युगायते त्वाम् अपश्यताम्"** तो वहां आँख मींचके "त्वमेव माता च पिता त्वमेव" अरे क्या माता पिता कर रह्यो हे आँख मींचके! पिता हे तो वाको सौन्दर्य देख. माता हे तो वामें वाको वात्सल्य

देख. सखा मानतो होय तो सखाकी स्नेह भरी दृष्टिसू वा स्वरूपकु देख. आँख मींचके तोकु क्या दीखेगो सिवाय अपनी मिंची आँखके अंधेराके. कुछ नहीं दीखे वहां. हमारे तो कभी समझमें नहीं आवे कि ऐसो व्यवहार क्यों करे आदमी! तुम अश्वत्थ वृक्षके नीचे बेठे भये होव, पद्मासन लगायो होय, प्राणायाम चढ़ायो भयो होय और आँख मिंची भई होंय तो देखवेमें भी भव्य दर्शन होवें. आदमीकु भी इच्छा होवे कि सचमुच साधना कर रह्यो हे. कुछ प्रयत्न चल रहे हें पर मन्दिरमें ये क्या विचित्र व्यवहार! अलग अलग बातके सौन्दर्य अलग अलग समझनो चइये.

एक बखत हम जनार्दन गये तो उनने ऐसो ही कियो कि ठाकुरजीके सामने बेठके गीताको पाठ करवे लगे "**न हि असंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन**" (भग.गीता ६।२) तो हंसूभाई बोले कि "ये उपदेश तू भगवान्कु दे रह्यो हे कि कर क्या रह्यो हे?" भगवान्कु गीता सुनावेसू क्या लाभ? अब भगवान्ने तुमकु गीता सुना दी.. अब पलटके तुम भगवान्कु गीता सुनाओ. अब तुमने घण्टा भर बेठके भगवान्कु गीता सुनाई. तो क्या भगवान् गीता भूल गये जो तुम उनकु रिमाइन्ड् करवा रहे हो? अब या गीताके पाठको क्या लाभ? अरे! जब सामने प्रभु नहीं बिराजे होंय तब गीता पाठ करो अपने आत्मबोधके लिये पाठ करो, अपनी बुद्धिके लिये पाठ करो, अपने हृदयके लिये अपने भावविकासके लिये सबके लिये पाठ करो. गीतापाठ तो बड़ो उत्तम साधन हे. जरूर करनो चइये पर प्रभुके सामने पाठ करवेसू तो प्रभु भी कंटाल जाते होंयगे कि "ये मेरो दियो भयो उपदेश मोकु ही क्यों सुनाये जा रह्यो हे यहां मोकु सुनावेसू क्या लाभ!" तो प्रभुके साथ ऐसो विचित्र व्यवहार आदमी कर दे.

"**हासं हरेः अवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणम् अत्युदारम्।**

सम्मोहनाय रचितं निजमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य''॥
(भाग.पुरा.३।२८।३२)

यासू ज्यादा काव्य क्या श्रेष्ठ हो सके! हासमें तेरे दोनों गुण हें. **अवनताखिललोकशोकाश्रुसागरविशोषणम्,** हम जो तेरे सामने झुके भये हें, उनके शोक और अश्रु के सागरनूकु सुखावेकी ताकत भी तेरे हासमें हे. अत्यन्त दु:खी होके आये. एक बखत प्रभुने हंसके अपनो सामनो कर लियो, स्वागत कर लियो तो सारे शोकके सागर वाही क्षण सूख जायेंगे. छलकते सागर सूख जायेंगे. **''सम्मोहनाय रचितं निजमायया''** इनमें सम्मोहन भी हे, इनमें प्रावाहिक सम्मोहन भी हे, पुष्टिमार्गीय सम्मोहन भी हे.

सब तरहको सम्मोहन हासमें हे. याके लिये वो केह रही हें, **स तावदेव तिष्ठति यावत् तव स्मितयुक्तम् आननं न पश्यति. नहि काचित् तादृशमपि आननं दृष्ट्वा स्वाभिमानं पालयितुं शक्ता.** ऐसो तेरो स्वरूप, ऐसो तेरो मुखारविन्द जामें स्मितसहित अवलोकन हो रह्यो हे, वाकु देखके कोई अपने अभिमानकु पाल सकेगी क्या? **ननु एतद् लोके अप्रसिद्धं साधनत्वेनेति कथं ज्ञातुं शक्यते इति आशंक्य आहुः''** अब कहें कि ये बात तुमकु क्यों और कैसे पता चली कि हमारे स्मितमें ये गुण हें? तो कहें हें **जलरुहाननं चारुदर्शय इति.** मुख तो दिखाके देख!. एक बखत अपने मुखकु दिखा तो सही फिर हम झूठ केहती होंय तो कहियो. यदि वा सस्मित अवलोकनमें तेरे ये गुण न होंय, फिर अप्रकट हो जइयो पर एक बखत प्रकट होके दिखा तो सही. खुद टेस्ट् कर ले कि तेरे स्मितमें ये गुण हें कि नहीं?

जलरुहं कमलं, तत्सदृशम् आननम् अमृतस्राावि. नहि अमृते पीते कस्यचिद् दोषः तिष्ठति इति युक्तिः. जामें अमृत बरस रह्यो

हे. वामें ये मरणशील धर्म मद जैसो रेह जायेगो क्या? जा बखत स्मितयुक्त आनन, जलरुह आनन जैसो मुखारविन्द हे, वामेंसू स्मितरूप अमृत बरस रह्यो होयगो, वा समय मरणशील धर्मरूप मद टिक पायेंगे कहा! **साधनत्वे चेत् संदेहः, एकवारं प्रदर्श्य पश्य इत्यर्थः.** तेरेकु सन्देह होय कि तेरे स्मितमें ये सामर्थ्य हे कि नहीं तो एक बार एक्सपरीमेन्ट् कर ले तो वामें सारे सोल्युशन्स् निकल आयेंगे कि तेरे स्मितमें ऐसी सामर्थ्य हे कि नहीं.

किञ्च अभिमानो हि मनोधर्मः तव आननं तु चारु मनोहरम्. दूसरी बात ये हे कि अभिमान कायको धर्म हे? मनको धर्म हे और तेरो मुखारविन्द तो चारु हे. चारुको मतलब मनोहर. जब मनकु ही हरण कर लेगो तो अभिमान कैसे बचेगो? तेरे मुखारविन्दमें ये सामर्थ्य हे कि तू अभी प्रकट होके दिखा दे, तो हमारे सबके मन हर जायेंगे और जब मन ही हर जायेंगे तो उनको धर्म अभिमान कहां बच जायेगो?

गालिब कहे हे "**किसीको देके दिल कोई नवासंजेफुगा क्यों हो? न हो जब दिल ही सीनेमें तो मुंहमें जुबां क्यों हो?** अरे ये घमण्डकी बातें जो हमारे मुंहसू निकल गई वो या लिये निकल गई महाराज कि मन यहां हतो. एक बार प्रकट होके मन जब तू ले जायेगो तो घमण्ड सब निकल जायेगो. वो तो मनके साथ ही निकल जायेगो. "**न हो जब दिल ही सीनेमें तो मुंहमें जुबां क्यों हो?**" जुबां तो तब आवे ना कि जब दिल होय? सीनामें दिल होय तो मुंहमें जुबां आ सके ना? दिल तू ले जा. फिर मुंहमें घमण्डकी जुबां रेह ही नहीं जायेगी हमारे. "**किसीको देके दिल कोई नवासंजेफुगा क्यों हो?**" जब दिल ले गयो कोई अपनो फिर क्या करेगो कोई? आक्षेप घमण्ड या मान करेगो कैसे? जब दिल ही वहां चल्यो गयो. ये तो सारे दिलके धर्म हें. एक बखत

यदि ये मनकु ले जाये तो ये बातें कहां रेह जायेंगी?

तो वो कहें हें **किञ्च अभिमानो हि मनोधर्मः, तव आननं तु चारु मनोहरम्; नहि धर्मिणि हृते धर्मः तिष्ठति.** धर्मीकु कोई उठाके ले जाये तो धर्म कोई अपने आप तो टिक्यो नहीं रेह जायेगो? जब मटकाकी सारी मट्टी हटा लो तब मटकाकी आकृति रेह जायेगी क्या? जा मट्टीसु घड़ा बन्यो हे वाकु तुम हटा लोगे तब घड़ाकी आकृति फिर तो नही रेह जायेगी. **सख्युः सखिभजनं युक्तमेव.** याके लिये जो हमने प्रार्थना करी **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहम्"** तदनुसार तू प्रकट हो जा. हमारेमें यदि कोई गड़बड़ हे, वा मदकु वा गर्वकु सब दोषन्कु भूलके प्रकट हो जा.

श्रीगुसांईजी विज्ञप्तिमें आज्ञा करें हें **"बलिष्ठा अपि मद्दोषाः त्वत्क्षमाग्रे अतिदुर्बलाः तस्याः ईश्वरधर्मत्वात् दोषाणां जीवधर्मतः" (विज्ञप्ति.१।६६.)** यदि मेरे दोष बलवान हें तो तेरी क्षमासू ज्यादा बलवान थोड़े ही हें? अन्तमें तू जो क्षमा करेगो वो तू ईश्वरसामर्थ्यसू करेगो और मैंने जो थोड़े बहोत दोष किये हें, वा जीवकी सामर्थ्यसू दोष किये हें. तू परम व्यापक परमात्मा सर्वज्ञ परम शक्तिमान, मैं एक अशक्त अज्ञ जीव दोष कर-करके भी कितनो दोष करूंगो! थोड़े मेरे दोषन्की अपनी क्षमासू तुलना तो कर. तो तोकु पता चल जायेगो कि मेरे दोष कितने हें और तेरी क्षमा कितनी हे!

याके लिये यदि मेरो मद हे तो वो कितनो होयगो! थोड़ो बहोत मद होयगो भी जीव स्वभावके अनुरूप तो वो मद तेरे हासके विस्तारमें कहां टिक पायेगो! एक तेरो हास भयो तो सारो मद वाही क्षण क्षीण हो जायेगो. या आननके दर्शनके बाद कौनको मद टिक्यो हे! न कोईको टिक्यो हे और न कोईको टिक सके हे.

----*----

॥ श्लोक : ७ ॥

उत्थानिका :

राजसीतु ततः उत्तमा तमेव अर्थं प्रकारान्तरेण प्रार्थयते प्रणतदेहिनाम् इति :

विवरणम् :

ये राजसी गोपिकाने प्रभुके द्वारा अपने भजनकी प्रार्थना करी. मने प्रभु मेरो भजन करें. क्यों? **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहम्"** (भग.गीता ४।११). यदि ये प्रतिज्ञा सत्य हे. दो तरहके सेवक होवें. वैसे नीतिमें तीन तरहके सेवक बताये गये हें. प्रथम सेवकको ये गुण बतायो गयो हे कि जो बिना कहे काम करे वो उत्तम सेवक. केहवेपे करे वो मध्यम सेवक. केहवेपे भी नहीं करे तो अधम सेवक बतायो गयो हे. तो तीन प्रकारके सेवक बताये गये हें पर 'किंकर' कौनकु कह्यो जाय? जामें यह तत्परता होय जो क्या करूं, क्या करूं! अब 'किं' शब्द प्रश्नार्थक भी हो सके हें और उत्कंठाके अर्थमें भी हो सके. शब्द तो एक ही हे 'किं' पर बोलवेवालो वाकु प्रश्नमें भी पूछ सके हे और उत्कंठासू भी पूछ सके हे. मने माथेपे आके खड़ो हो जाये, बताओ क्या करूं? वाकु कोई न कोई काम बताते रहो नहीं तो...?

हमारे यहां हरिचन्द करके एक दुर्वासाको अवतार हतो. वाकु तीन दिन बिना झगड़े रह्यो नहीं जाये. चोथे दिन कोई झगड़वेके लिये चइये. अब कोई और झगड़वेवालो नहीं मिले तो हमसू झगड़वे आ जाये. हमारे साथ किशनगढ़ आ गयो, तब हर बखत केहतो "बताओ क्या करूं, क्या करूं?" अब मेरे अकेलेको इतनो काम तो हतो नहीं, तो मैं केहतो कि "चल बुहारी (सफाई) काढ़" वो करके फिर आके केहतो "बताओ और क्या करूं?" अब

माथेपे चढ़्यो ही रेहतो तो आखो घर साफ करवायो. कोई रेहवेवालो नहीं हतो, कोई आवेवालो नहीं हतो, कोई जावेवालो नहीं हतो पर फिर भी. अब एक 'किं' उत्कंठामें भी होवे कि क्या करूं? क्या करूं? मने एक काम करवेसु वाकु संतोष नहीं होवे, वाको कामसु दिल भरे नहीं. ऐसो जो सारे सुखकु सोचे वो उत्तम सेवक हे. जो बिना कहे ही ''किं कर किं'' क्या क्या करूं? अब कोई पूछवे आये कि ''क्या करूं?'' बताओ तो कुछ करे नहीं बेठ्यो ही रहे. एक वो भी किंकर होवे हे पर उत्तमताके अर्थमें हर वक्त वाको ये भाव बन्यो रहे कि और क्या करूं? क्या करूं? तो ऐसो जो स्वामीके सुखको विचार करे वो 'किंकर' कह्यो जाय. माथेपे चढ़तो ही आवे. जा दिन हरिचन्द आतो तो दादाजीकी हर डायरीमें लिख्यो भयो होतो कि ''आज हरिचन्द आ गयो'', दो-चार गाली एकसाथ दे. जब झगड़ा करके पगार लेके चल्यो जाय तो वा दिन लिखें कि ''आज झगड़ा करके पगार लेके पाछो गयो.'' वो जब भी आतो वाकु रख लेते और जब जातो तो दो-चार गाली देके पगार देके भेज देते. ये क्रम नियमित चलतो. वाकु कोई न कोई झगड़वे लिये चइये ही. खाली बेठे और वाकु दुर्वासाको आवेश आ जाये. नहीं तो काम बताओ.

एकाध ऐसे किंकर आ जायें तो मुश्किल हो जाये पर जो उत्कंठासू किंकर होवें कि जिनमें निरन्तर उत्कंठा बनी रहे कि ''और क्या क्या कार्य करूं?'' तो कहे हें कि हम तेरी वा प्रकारकी किंकरी हें. जो तोकु सुख मिले वासू अधिक सुख देनो चाहें हें. ये तो पेहले ही श्लोकमें बता दियो **''त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते''** अपने सुखके लिये नहीं, तेरे सुखको विचार करके हमने प्राण धारण करे हें. यदि तेरे सुखको विचार न होय तो प्राण धारणकी भी अपेक्षा नहीं हे. या प्रकारकी उत्कंठासू हम सेवामें, तेरे सुखके सम्पादनमें, प्रवृत्त होनो चाहें. यहां तक तो निर्गुणभक्तिको भाव हे. वामें तामसत्व

फिर यहांसू आ रह्यो हे कि हम जब तेरी किंकरी हें, तो तू हमारो किंकर क्यों नहीं हे? अरे भई! उत्कंठाके अर्थमें नहीं, क्योंकि 'किं' को एक अर्थ ये भी होवे हे "किमपि करोति इति किंकर" कुछ तो कर. या तरहके अर्थमें किंकर नहीं, पर "किमपि करोति" कुछ भी जो करे, हमारो कुछ तो काम कर! बहोत थोड़ीसी डिमान्ड् हे कि "प्रकट हो जा." और कुछ नहीं चइये. यासु ज्यादा सेवा लेवेकी अपेक्षा हमारेकु नहीं हे. हमारी इतनी सेवा कर कि प्रकट हो जा. हमारी प्रार्थनासू प्रसन्न होके प्रकट होतो होय तो वैसे प्रसन्न हो जा और यदि किंकर भावसू हमारी आज्ञा मानके शिरोधार्य करके प्रकट होतो होय तो वैसे हो जा. जैसो भाव होय वैसो. हम जो किंकरी हें, तो तू अपनो कैंकर्य क्यों नहीं निभावे हे? ये भाव तामसीने कह्यो.

अब राजसी भी येही भाव अपनी मर्यादामें बता रही हे कि तू हमारो भजन कर. तो वामें अब दूसरो भाव निवेदित कर रही हे "**प्रणतदेहिनां..**

श्लोक :

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्।।७।।

सुबोधिनी :

ते पदाम्बुजं नः कुचेषु कृणु कृणुष्व, छान्दसो लोपः, स्थापय. तस्य प्रयोजनं कृन्धि हृच्छयम् इति. हृदये चौरवत् स्थितं कामं कृन्धि. कुचेषु इति समुदायाभिप्रायेण बहुवचनम्, विरहेण भिन्नान् वा मन्यन्ते. शिरसि हस्तदानेन निकटे समानयनम् उक्तम्, ततो भजनेन सम्बन्धः उक्तः. अनेन विपरीतरसः उच्यते, बन्धविशेषो वा तिर्यग्भेदः, एकवचनात्.

तावता हि हृदयस्थितः कामो गच्छति. स्त्रीणां समूहे लीलाशयने परितः स्थितानां तथासम्बन्धो भवति इति वा. ननु कर्कशेषु स्तनेषु कथं कोमलचरणस्थापनम् इति चेत्, तत्र आहुः फणिफणार्पितम् इति. नहि कालियफणात् क्रूराः अस्मत्स्तनाः. तत्र यथा चरणस्थापनं कृत्वा तदन्तर्गतो दोषो दूरीकृतः एवम् अत्रापि कर्तव्यः. 'अम्बुज' पदेन च प्रत्यक्षतः तापहारकत्वम्. ननु तथापि स्त्रीणां वक्षसि चरणस्थापनम् अयुक्तम् इति चेत्, तत्र आहुः श्रीनिकेतनम् इति, लक्ष्म्याः स्थानं तत्. लक्ष्मीः किल तत्र स्पर्शम् अर्हति अन्यासु कः संदेह इति. ननु भवत्यो मूढाः कथं भवतीनां हितं कर्तव्यम् इति चेत्, तत्र आहुः तृणचरानुगम् इति. तृणचरा गावः, तेषामपि अनुगं पश्चाद् गच्छति तद्हितार्थं, ते किं भगवता प्रेर्यमाणा इति तृणं परित्यज्य अमृतं भक्षयन्ति! तेषाम् तृणमेव अमृतं तथा अस्माकमपि कामएव अमृतम्. न एतावता परमकृपालोः कश्चन अर्थः क्षीयते. ननु भवतीनां जितेन्द्रियत्वाद्यभावात् पापम् अस्ति, तदपगमे पश्चात् पदं स्थापयिष्यामि इति चेत्, तत्र आहुः प्रणतदेहिनां पापकर्षणम् इति. वयं प्रकर्षेण नताः, न अस्माभिः प्रकारान्तरेण निवर्तयितुं शक्यते किन्तु तव चरणप्रसादादेव नम्राणां पापं गच्छति, तत्रापि देहिनः. प्रकर्षेण नतत्वेन धर्ममार्गादिपरित्यागः उक्तः. देहाभिमानस्य विद्यमानत्वाद् न ज्ञानमपि. प्रणतानां हि नापि अधोगतिः. अतः तव पदमेव तेषां पापनाशकं, चिन्तितं दृष्टं स्पृष्टम् आलिंगितं वा।।७।।

विवरणम् :

ते पदाम्बुजं नः कुचेषु कृणु कृणुष्व, छान्दसो लोपः, स्थापय. तस्य प्रयोजनं कृन्धि हृच्छयम् इति, हृदये चौरवत् स्थितं कामं कृन्धि'' क्या कहे हें कि हम एक आज्ञा दे रही हें. जैसे रक्षकमें एक पालक रक्षक भी होवे हे और एक किंकर रक्षक भी होवे हे. तो अब हम तोकु आज्ञा दे रही हें कि हमारे घरमें एक चोर घुस गयो हे. वो चोर हमारो सत्यानाश करनो चाहे हे. तासू हम तोकु आज्ञा दे रही हें कि तू वा चोरकु पकड़के खतम कर दे.

किंकर रक्षक भी तो हो सके हे ना! जैसे सिपाही होवे. राजाको अंगरक्षक होवे. राजाके साथ जो होवें अंगरक्षक, राजाके साथ चलें. ऐसे केह रही हें कि तू हमारे लिये ये सेवा कर.

समुदायाभिप्रायेण बहुवचनम्, विरहेण भिन्नान् वा मन्यते. कहें कि हमारे वक्षमें एक हृच्छय हे, हृदयको शूल काम घुस्यो भयो हे, वाकु तू मार. **'कृन्धि'** खतम कर दे बहुवचन क्यों कह्यो वक्षके लिये? समुदायाभिप्रायसु. एक घरमें चोर घुस्यो हे ऐसी बात नहीं हे. हर घरमें ये एक चोर घुस्यो भयो हे. अथवा आचार्यचरण कहें हें **भिन्नान् वा मन्यते** विरहके तीव्र तापके कारण वाकु ऐसो बोध हो रह्यो हे कि यदि याने रक्षा नहीं करी, तो विरहके तापके कारण जल जलके तूट न जाये. याके लिये **विरहेण भिन्नान् वा मन्यन्ते.**

यहां पुरुषोत्तमजी थोड़ोसो भिन्न अभिप्राय बतावें हें. वो अभिप्राय जरा क्लिष्ट लगे हे. 'भिन्नान्' के अर्थमें पुरुषोत्तमजीको भाव तो बहोत सुन्दर हे पर **'भिन्नान्'** को बहुवचनको जो तात्पर्य हे, वामें थोड़ी क्लिष्टता आवे हे. तो कहें हें कि जा बखत भगवत्संयोगानुभूति हे, वा बखत तो वाके लिये श्रीयत्वको अभिमान हे, भगवदुपयोग नहीं हे. तो वाके लिये श्रीयत्वको अभिमान भी नहीं हे. या अर्थमें भाव तो बहोत उत्कृष्ट हे, आधिदैविक हे. सब तरह पर व्याकरणकी दृष्टिसू विचार करवेपे श्रीमदाचार्यचरणको **'भिन्नान्'** को जो तात्पर्य हे, वो यों अधिक सरल लगे हे. क्योंकि विरहतापसु वो भिन्न हो रहे हें, छिन्न भिन्न हो रहे हें या अर्थमें आचार्यचरण **'भिन्नान्'** केह रहे हें.

शिरसि हस्तदानेन निकटे समानयनम् उक्तम्, ततो भजनेन सम्बन्धः उक्तः. अब क्या हे कि एक एक की प्रार्थना उत्तरोत्तर बठती चली

जाय है. जैसे एक एक बात मनवाते चले जायें और मांग बढ़ती चली जाये, ऐसे कि जब भाव प्रकट होते जा रहे हें, वैसे वैसे मांग उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही हे. प्रथम गोपिकाकी केहवेकी इतनी हिम्मत पड़ी कि हमारे मस्तकपे हाथ धर, हमकु अभय दे. तो दूसरीने ये सोच्यो कि जब ये बात कही जा सके हे, तो दूसरीकी हिम्मत थोड़ी और खुली. वाने कही कि नहीं, नहीं! ''शिरसि.. उक्त:''. समझो कि प्रभु इतनी बात मानवे तैयार हो जायें कि माथेपे हाथ धरके कहीं पधारते होंय तो हाथ धरके पधार जायें, तो वाकी थोड़ी हिम्मत खुली तो प्रार्थना करी कि हमारो भजन क्यों नहीं करो? जब पास आ सकते हो हमारे तो जैसे हम तेरो भजन करें हें, ऐसे तोकु हमारे आज्ञावर्ती होवेमें क्या आपत्ति हे? ये जो और याने अधिक कही कि आज्ञावर्ती हो रहे हें, तो या गोपिकामें आज्ञावर्ती होवेके कारण तिर्यग्‌भाव जाग गयो. (तिर्यग्‌भाव जाग्यो) तो वाके कारण भगवान्‌को भोग्यभाव सोचे हे और कहे हे **अनेन विपरीतरस: उच्यते बंधविशेषो वा तिर्यग्भेद:, एकवचनात्. तावता हि हृदयस्थित: कामो गच्छति. स्त्रीणां समूहे लीलाशयने परित: स्थितानां तथासम्बन्धो भवतीति वा.** या लिये यदि तू अपने शीतल चरणकमल हमारे वक्षपे रखे तो तेरे चरणकमलकी भक्तिरूपताके माहात्म्यके कारण हमारो हृदयस्थित काम नष्ट हो जायेगो.

आगे कहें हें **ननु कर्कशेषु स्तनेषु कथं कोमलचरणस्थापनम् इति चेत्, तत्र आहु: फणिफणार्पितम् इति. नहि कालियफणात् क्रूरा अस्मत्स्तना:; तत्र यथा चरणस्थापनं कृत्वा तदन्तर्गतो दोषो दूरीकृत: एवम् अत्रापि कर्तव्य:.** कहें हें कि जब तेंने कालीयके फणनूपे चरण रख दिये और वहां तोकु दोषभाव नहीं जाग्यो, दोषबुद्धि नहीं जगी तो हमारे वक्षपे चरण रखवेमें तोकु क्यों दोषभाव जगे हे? कालियके फलनूसु ज्यादा कर्कषता नहीं, वासु ज्यादा कुदृश्यता नहीं, फिर जब कालीयको तू दमन कर सके हे तो हमारे वक्षपे चरण क्यों नहीं

धर सके हे!

अम्बुजपदेन च प्रत्यक्षतः तापहारकत्वम्. अब चरणाम्बुज कह्यो तो वा अम्बुजसू प्रत्यक्षतः तापहारकता बताई. **ननु तथापि स्त्रीणां वक्षसि चरणस्थापनम् अयुक्तम् इति चेत्, तत्र आहुः श्रीनिकेतनम् इति.** यद्यपि स्पष्ट नहीं हे पर यहां लक्ष्मीको प्रादुर्भाव हे. अक्षरब्रह्मके आनन्दमेंसू लक्ष्मीको प्राकट्य हे और अक्षरब्रह्म चरणारविन्दपर्यवसायी हे. याहीके लिये लक्ष्मी चरणसेवामें अनुरक्त हे. क्योंकि **"यो यदंशः स तं भजेत्"** ( ). भगवच्चरणारविन्द अक्षरब्रह्मको रूप हें. भगवच्चरणारविन्द अक्षररूप नहीं हे. अक्षर भगवच्चरणारविन्द रूप हे.

यामें थोड़ोसो अन्तर समझ लेनो जरूरी हे. जैसे **"नर्मदा सागरो अभवत्"**. जैसे नर्मदा सागरमें मिल जाये, तो मिलवेके बाद वो सागर केहलावे कि सागर नर्मदा केहलावे?. सागरमें नर्मदाको पानी हे तो सही ना! ऐसे अक्षरब्रह्म भगवच्चरणारविन्द पर्यवसायी हे. तावता अक्षरब्रह्म तो चरणरूप हे पर चरणारविन्द अक्षररूप नहीं हे. या लिये अपने यहां चरणारविन्दमें तुलसी समर्पे तो अक्षरब्रह्ममें तुलसी समर्पी ऐसो भाव नहीं होवे. वो चरणारविन्दमें तुलसी नहीं समर्पी, पुरुषोत्तमके ही चरणारविन्दमें (तुलसी) समर्पी हे, अक्षरब्रह्मके चरणारविन्दमें (तुलसी)नहीं समर्पी. लक्ष्मी चरणकी सेवामें रत रहे हे, सेवनमें रत रहे हे वाको मुख्य तात्पर्य ये हे कि चरणमें जो अक्षरब्रह्म हे वहांसू वाको प्रादुर्भाव हे. वहांसु प्रादुर्भाव होवेके कारण चरणसेवामें ही अनुरक्त रहे हे.

श्रीनिकेतनम् इति, लक्ष्म्याः स्थानं तत्. चरणारविन्द लक्ष्मीके स्थान हें. लक्ष्मीके स्थान हें सब अर्थमें. अक्षरांशके रूपमें, लक्ष्मी भगवच्चरणन्की सेवनपर हे या अर्थमें, और वाको चरणारविन्दमें अनुराग हे या अर्थमें भी.

लक्ष्मीः किल तत्र स्पर्शम् अर्हति अन्यासु कः संदेहः इति. जब लक्ष्मी स्पर्श कर सके हे, तो तेरे चरणारविन्दको स्पर्श ओरकु क्यों नहीं मिल सके हें? **ननु भवत्यो मूढाः, कथं भवतीनां हितं कर्तव्यम् इति चेत्.** तो कहें हें कि अरे! तुम बड़ी मूढ़ हो. लक्ष्मीके साथ अपनी तुलना कर रही हो. कहां लक्ष्मी और कहां तुम! अब ये तो राजसी हे ना! स्मेश् रिटर्न करे हे पूरो, केह रही हे **तृणचरानुगम् इति. जो तेरो चरण श्रीनिकेतन** हे वाकी व्रजमें क्या गति हे? तृणकु खावेवाले पशून्के पीछे भटकतो फिरे. ऐसो चरण हे. उनसू हम क्या बुरे हें? राजसी हे तो कभी उत्तमता ख्यालमें आवे और कभी कुछ ख्यालमें आवे. क्योंकि राजसतामें मन चलायमान हो जाये. चलायमान हो जाये तो कभी गुण ख्यालमें आवे तो कभी अवगुण ख्यालमें आवें. पेहले तो लग्यो कि **ये चरण श्रीनिकेतन** हे पर फिर मनने चक्कर मार्‍यो तो यों लग्यो कि **तृणचरानुगम्.** इन् चरणन्सू पशून्के पीछे फिरतो फिरे तो हमकु स्पर्श करावेमें तोकु क्या जोर पड़े!

तृणचराः गावः, तेषामपि अनुगं पश्चात् गच्छति तद्धितार्थं, ताः किं भगवता प्रेर्यमाणा इति तृणं परितज्य अमृतं भक्षयन्ति? वो तृण छोड़के क्या अमृत पीवें हें? जब उनके पीछे तेरो चरण जा सके हे तो हमारो अनुसरण क्यों नहीं करे? दरअसल तो जैसे तू तृण चरवेवाली गायन्के पीछे पीछे डोले हे वैसे ही जब हम छिप जायें तो तोकु हमारे पीछे डोलनो चइये. वो तो डोले नहीं और फिर बातें करे श्रीनिकेतनताकी. ये कैसो लोचा हे!

तेषां तृणमेव अमृतं, तथा अस्माकमपि कामएव अमृतम्. न एतावता परमकृपालोः कश्चन अर्थः क्षीयते. अथवा कहें हें कि गायें तृणचर क्यों हें? क्योंकि प्रभु अपने चरणारविन्दमें कोई तरहकी पादुका धारण नहीं करें हें. उन तृणन्को चरणारविन्दसु स्पर्श करके प्रभु

अमृतरूपा बना दे हें. वाके लिये वो गायें तृणकु खावें हें. क्योंकि उन तृणन्के साथ प्रभुके चरणन्को स्पर्श हे. तो ऐसो तृण खानो तो कौनकु मिले? सब गायन्कु तो ऐसो तृण मिले नहीं. वा भावसु अब या योनिमें गायें हें, वा योनिमें उनकु या तरहके तृणको मिलनो भी देवदुर्लभ वस्तु हे. तो जैसे उनकु वहां तृणन्में अमृत निहित हे. तेरे चरणारविन्दकी महिमाके कारण, उन तेरे ही चरणारविन्दमें हमारो भी अमृत निहित हे. जैसे उनकु तेरे चरणारविंदके स्पर्शसू तृणमें अमृत निहित हे, ऐसे ही तेरे चरणारविन्दके स्पर्शसू अमृत तद्विषयक हमारे काममें निहित हे.

न एतावता परमकृपालोः कश्चन अर्थः क्षीयते. और तू परम कृपालु हे. जैसे गायन्के अमृतको गायन्कु लाभ मिले, या लिये उनको अनुचरण कर करके उनके पीछे चल चलके भी उनकु तृणको लाभ करावे हे, तद्वत् हमारो भी अनुसरण करके जहां हमारो अमृत लाभ निहित हे, वो हमकु क्यों नहीं करावे?

कहें हें कि भई अन्तर हे ये **ननु भवतीनां जितेन्द्रियत्वाद्यभावात् पापम् अस्ति, तदपगमे पश्चात् पदं स्थापयिष्यामि इति चेत्.** पशु तो पशु हें निरीह हें और लक्ष्मी निर्गुणस्वरूप हे. वहां तो पापकी कोई संभावना ही नहीं हे पर तुमतो जितेन्द्रिय नहीं हो. जाके लिये पापकी संभावना हे. वा स्थितिमें भक्तिस्वरूप चरणारविन्दको स्थापन पापात्मक अंगनूपे कैसे हो सके हे!

कहें हें **प्रणतदेहिनां पापकर्षणम् इति. वयं प्रकर्षेण नताः, न अस्माभिः प्रकारान्तरेण निवर्तयितुं शक्यते किन्तु तव चरणप्रसादादेव नम्राणां पापं गच्छति, तत्रापि देहिनः. प्रकर्षेण नतत्वेन धर्ममार्गादिपरित्याग उक्तः. देहाभिमानस्य विद्यमानत्वाद् न ज्ञानमपि. प्रणतानांहि नापि अधोगतिः. अतः तव पदमेव तेषां पापनाशकं, चिन्तितं दृष्टं स्पृष्टम् आलिंगितं**

वा. कहें हें कि यदि अपने चरणस्थापनके लिये तू निष्पापताकी कामना करे तो फिर तेरे चरणस्थापनको प्रयोजन ही व्यर्थ हो जाये. जैसे डॉक्टर् यों कहे कि "स्वस्थ हो जाओ तो मैं दवाई दऊं." तो दवाईको प्रयोजन क्या! यदि स्वस्थ होवेके बाद डॉक्टर् दवाई देवेकी शर्त लगावे तो कौन डॉक्टर्के पास जायेगो! कौन दवाई लेगो! स्वस्थ होवेके बाद कौनकु दवाई चइये! दवाई चइये ही या लिये हे कि कोई बीमारी हे. तेरे चरणारविन्दको माहात्म्य ये हे कि **प्रणतदेहिनां पापकर्षणम्.** जो भी प्रणतदेही हें, उनके पापको कर्षण करे. आचार्यचरण बहोत सुन्दर समझावें हें **प्रणतदेहिनां पापकर्षणम्.** जो अप्रणत हें और देही हें, उनको पापकर्षण चरणारविन्द नहीं करेगो. जो प्रणत हें और देही नहीं हें, उनको भी क्या पापकर्षण करेगो! क्योंकि पाप तो देहमें होवें हें. तेरे चरणारविन्दके स्थापनको सचमुचमें यदि कहीं माहात्म्य हे तो वो प्रणत तथा देही जो होंय उनमें ही हे. देही मने देहाभिमान जिनकु होय, तब तो पापकी संभावना हे. जहां अतिज्ञानके कारण देहाभिमान ही नहीं हे, "**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते** (भग.गीता ४।३७). जिनने ज्ञानाग्निसू अपने सारे कर्मनूकु भस्मसात् कर दियो हे. जिनको देहाभिमान छूट गयो हे, वहां तेरे चरणारविन्दकी क्या स्थापना हे!

"**चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस् तरति दुष्कृतानि. तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अति पाप्मानम् अरातिं तरेम**" (महानारा.उप.१।११). जो अतिपाप्मा हें उनकु भी पवित्र कर सके हें. या प्रसंगमें अतिपाप्मा क्या हे? जो कुछ भी हमारे वक्षमें रहे भये आवेग हें, मदके कामके उन सब आवेगनूकु यदि तू अपनी चरणौषधिसू उपशमन न करे, तो वो कैसे उपशान्त हो सकेंगे! क्योंकि हम तो प्रणत हें, अन्याश्रय तो हम करें नहीं. अन्याश्रय करें तब तो कोई और उपायसू हमारे रोग निवृत्त हो सकें. प्रणत होवेके कारण हमारी तो अनन्याश्रयकी वृत्ति हे. कोई और उपाय तो हम करें नहीं. तेरे चरणके प्रसादसू

जो भी नम्र हें, विनीत हें, उनके पाप तो नष्ट होवें ही हें. जो देही हें उनके पाप तो नष्ट होवें ही हें. हम प्रणत हें तावता **"सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज. अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"** (भग.गीता१८।६६). ये जो तेरी प्रतिज्ञा हे वा प्रतिज्ञाके अनुसार धर्मादिमार्गनूसू यदि हमारे पापनूको क्षालन होवेवालो होय तब तो प्रोसेस् लेट् हो जायेगी. प्रणत हें, तेरे चरणसू पापको क्षालन नहीं भयो और धर्मसू क्षालन भयो, तब तो चरणारविन्दको माहात्म्य ही गौण हो जायेगो. कर्ममार्गसू हमारे पाप क्षालन होंयगे नहीं और देहाभिमान तो हे ही हमारो और ज्ञान तो हमें हे नहीं कि जा ज्ञानके कारण हमारे पाप क्षीण हो जायें. तो कहें हें कि न तुममें कर्म हें, न तुममें ज्ञान हे, तो चलो तुम्हारी अधोगति होयगी. तो कहें हें कि तू अपने चरणको माहात्म्य विचार. तेरे चरणनूमें प्रणतनूको ज्ञान कर्म होवेके कारण अधोगति होती होय तो कर दे. जो तेरे चरणमें प्रणत हें, उनकु यदि या बातसू डिस्क्वोलिफाई कियो जातो होय कि तुममें ज्ञान कर्म नहीं हे तो तू हमकु डिस्क्वोलिफाई कर. हमारी अधोगति कर दे. हमारी या बातपे कि हमने ज्ञान हासिल नहीं कियो, हमने कर्म हासिल नहीं कियो. ठीक हे भई! हम प्रणत तो हें अब करनी होय अधोगति तो कर दे अधोगति. अब यामें हमारी बुरी लगेगी कि तेरे चरणारविन्दकी बुरी लगेगी! ये तो देख ले. अब ये हमारो विषय थोड़े ही रेह गयो. याके लिये यदि प्रणत और देही हें, जो अप्रणत देही हें, उनको शायद ज्ञानमार्गसू पापनाश होतो होय तो होय, कर्ममार्गसू उनके पापनूको नाश होतो होय तो होय, जो प्रणत अदेही हें उनमें तो पापको कोई प्रश्न ही नहीं उठे. या अप्रणत अदेही हें, उनकी तू जाने और वो जाने पर हमतो प्रणत देही हें. प्रणतदेहीनूकु तो तेरे चरणारविन्दके अलावा पापनाशकी कोई औषधि हे ही नहीं. यदि तू ये शर्त लगा दे कि पाप नाश होवें तो चरणारविन्दको दान मिले, तब तो बड़ी उल्टी शर्त आ गई. मने जो चरणारविन्दके दानसू ही पाप नाश

होवेवालो हे, मने डॉक्टर यों कहे कि “स्वस्थ हो जाओ तो दवाई मिले”, बटन् जोड़के ही तो अन्धकार दूर होयगो! पर अब कोई कहे कि “अन्धकार दूर करो तो बटन् जुड़े”, तो बटन् कैसे जुड़ेगो? या लिये यदि हमारेमें कोई तरहके पाप हें, यदि हम अजितेन्द्रिय हें, यदि इनको विचार करके अपने भक्तिरूपी चरणारविन्दनूकु हमपे स्थापित नहीं करनो चाहे, तो तो तोकु या बातको विचार करनो पड़ेगो कि आखिर तेरे चरणारविन्दको माहात्म्य कहां निरूपित हो पायेगो! यदि प्रणतदेहीकु तेरे चरणारविन्दको माहात्म्य निरूपित नहीं भयो! तेरो चरणारविन्द ही चिन्तित होके चाहे दृष्ट होके चाहे स्पृष्ट होके चाहे आलिंगित होके वो पापनाशक होवे हे. तो कहें कि चलो चिंतन कर लो. **दृष्टं स्पृष्टम् आलिंगितं** तककी क्या जरूरत हे? यदि पाप केवल हृदयवर्ती होतो तब तो बात ठीक हे पर पाप देहवर्ती भी हे और हृदयवर्ती भी हे. वाहीके लिये कहें हें “**फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्**” मने हृच्छय भी दूर करनो हे और देहके जो क्षय हें, उनकु भी दूर करनो हे. याके लिये **अतः तव पदमेव तेषां पापनाशकं चिन्तितं दृष्टं स्पृष्टम् आलिंगितं वा**”.

श्रीगुसांईजीकी याही भावकी विज्ञप्ति हे “**एके कर्मप्रवृत्ताः सततम् इह परे भक्तिपूर्णार्द्रचित्ताः. केचित् ज्ञानैकवित्ताः प्रभुचरणनमस्यार्तवृतौघवित्ताः. तत्तन्निष्ठाविहीनं जगदुदधिपयसंसृतौ दीनमीनं मा कश्चित् कृष्णहेतुः कृपयितुमिह ते वल्लभीया ममेति**” (प्रभु.विज्ञ.५।२) होंयगे कोई धर्मप्रवृत्त या भक्तिपूर्णार्द्रचित्त निर्गुण जैसे “**न खलु गोपिकानन्दनो भवान्**” केहवेवाली गोपी जैसे, सात्त्विक चित्त जैसे, कईके पास ज्ञानको वित्त होयगो, अरे कुछ ऐसे भी होंयगे कि जो चरणारविन्दकु शिरपे धरवेकी, श्रीहस्तकु मस्तकपे धरवेकी प्रार्थना कर रहे हें “**प्रभुचरणनमस्य आर्तवृत्तौघवित्ताः**” पर उनमेंसू कोईमें भी निष्ठा बराबर नहीं हो पाई हे और ये जगत्रूपी समुद्रके जलमें तैरवेवाली मैं एक दीन मछली हूं. तू मोकु अपनो

वल्लभीय मानके अथवा प्रिय मानके, यदि तू अपने चरणारविन्दके बलसू मेरो उद्धार करे, यदि तू अपने चरणारविन्दके प्राकट्यसू मेरो हाथ पकड़े, तो अन्य कौन हे जो हाथ पकड़ सके! वाके लिये कहें हें **अतः तव पदमेव तेषां पापनाशकं चिन्तितं दृष्टं स्पृष्टम् आलिंगितं वा.**

----*----

॥ श्लोक : ८॥

उत्थानिका :

इममेव अर्थं ततोऽपि उत्तमा प्रकारान्तरेण प्रार्थयते मधुरया गिरेति.

श्लोक :

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण!॥
विधिकरीरिमा वीर! मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥८॥

सुबोधिनीकारिका :

हस्तेन च स्वरूपेण पदा च उपकृतिर् मता॥
मुखेन च उपकारो हि कर्तव्य इति ता जगुः॥१२॥
पूर्वोक्तमपि सर्वं हि यावत् स्पष्टं न भाषते॥
तावत् सरसतां याति न कदाचिद् इति स्थितिः॥१३॥

विवरणम् :

याकु भयो कि जितनी गोपीजनें हें वो सब घोटाला कर रही हें. क्योंकि **हस्तेन च स्वरूपेण पदा च उपकृतिः मता. मुखेन च उपकारो हि कर्तव्य इति ता जगुः.** कोईने भगवान्के हस्तकी उपकृति मांगी. कोईने प्रभुके स्वरूपको उपकार मांग्यो. कोईने चरणारविन्दनूसु अपनो उपकार मांग्यो. ये भगवान्के मुखारविन्दसु अपनो उपकार मांग रही हे. क्योंकि प्राकट्यको मतलब मुखारविन्दको दर्शन. या लिये जबतक सीधी बात नहीं कही जाय, तबतक याकु लग रह्यो हे कि बात ठीक हो नहीं पायेगी. ये जो सब बातें पेहले कही गई हें वो मान्य तो हें पर उनकु छेल्ले निष्कर्ष तक केहनी चइये. या निष्कर्ष तक केहवेके लिये वो केह रही हे **यावत् स्पष्टं न**

भाषते तावत् सरसतां याति न कदाचिद् इति स्थितिः. तबतक बातको रस स्पष्ट नहीं होवे हे.

यासू पेहलेकी त्रिविध गोपिकान्ने प्रभुके प्राकट्यकी प्रार्थनामें त्रिविध उपकारन्को वर्णन कियो. आचार्यचरण कहें हें कि "**विरचिताभयं वृष्णिधुर्य.... नः श्रीकरग्रहम्**", या प्रार्थनामें प्रभुके श्रीहस्तके द्वारा अपने उपकारकी प्रार्थना करी कि तेरो श्रीहस्त हमारे मस्तकपे धर. वा श्रीहस्तके मस्तकपे धरवेके जो कुछ लाभ, वा श्रीहस्तकु मस्तकपे धरवेको जो रोमाञ्च, पूर्ण अनुभूतियें, उन सबको वर्णन अपन्ने देख्यो. दूसरो उपकार प्रभुके मुखारविन्दके दर्शनके द्वारा प्रार्थना की "**जलरुहाननं चारु दर्शय**" . स्वरूपके द्वारा 'स्व''रूप' प्रकट करो. तीसरी गोपीने चरणारविन्दकु हमारेपे स्थापित करो "**पादाम्बुजं कृणु कुचेषु नः**" या तरहसू प्रार्थना करी. अब या आठवीं कारिकामें सात्त्विकसात्त्विकी गोपिका प्रभुके मुखारविन्दसू अपने उपकारकी प्रार्थना कर रही हे **मधुरया गिरा... अधरसीधुना आप्याययस्व नः**.

कहें हें **पूर्वोक्तमपि सर्वंहि यावत् स्पष्टं न भाषते तावत् सरसतां याति न कदाचिद् इति स्थितिः** वो गोपिकाने, हे प्रभु! मेरे मस्तकपे तुम्हारे श्रीहस्त धरो या प्रकारकी प्रार्थना करी पर केवल मस्तकपे श्रीहस्तके धारण करवेसु जो भी कुछ फलरूप मनोरथ सिद्ध हो रहे थे, वो बातें दूसरी हती पर बात केवल वहां तक सीमित नहीं हती. या गोपिकाने ये प्रार्थना करी कि हे प्रभु! तुम प्रकट हो जाओ, तो प्राकट्य अपेक्षित हे ही पर केवल प्रकट होयवेमें ही वो मनोरथ सीमित नहीं हे. मनोरथको पहिया और भी आगे दोड़नो चाह रह्यो हे. वो मनोरथ वासु भी आगे दोड़नो चाह रह्यो हे.

मनोरथ रुक जाये तो मनोरथ नहीं हे. चलतो रहे तो मनोरथ हे. रुक गयो तो फिर तो वाके पहियान्में भी जंग चढ़ जायेगो.

मनोरथ तभी कह्यो जाय कि जब वो निरन्तर चलतो रहे और याहीके लिये रासपंचाध्यायीके प्रकरणको जहां समापन कियो हे, बल्कि युगलगीतको जहां समापन कियो हे, वहां आचार्यचरणने भागवतार्थमें याकु स्पष्ट समझायो **"पुरुषाणां तथा स्त्रीणां रात्रौ च दिवसे तथा ज्ञानं भक्तिश्च सततं चक्रवत्परिवर्तते** ( ). मने ये रासके अनुभवके बाद कोई भी गोपीकानूकु प्रपञ्चस्मृति नहि भई दुनियामें जाके रासलीला कर ली, जैसे अपन् डाण्डिया नाच लेवें और फिर जाके घरके कामकाजमें लग जायें, एसो नौ दिनको ये डाण्डिया रास नहीं हतो, वो तामसफलप्रकरण हतो और या प्रकरणमें जो फलानुभूति उनकु भई, वा फलानुभूतिके बाद प्रपञ्च कभी इनके मनपे हावी नहीं हो सक्यो.

कल शामकु जैसे अपन्ने देख्यो कि गोपिकायें भक्तिमती हें और उनकी भक्ति कभी प्रपञ्चकी आसक्तिमें परिणत नहीं हो सके. ये वो भक्त हें कि जिनने बीहड़वनमें चलके पगडण्डी बनायी हे. जंगलमें जो लोग चलें तो वाकी पगडण्डी बने. एक बार पगडण्डी बन जाये, जानवर चलें तो पगडण्डी नहीं बनें, मनुष्य चले तो पगडण्डी बने, ऐसो नियम हे. ये गोपिकान्ने पुष्टिके वनमें, जो बड़ो भयंकर वन हतो, काम क्रोध मोह मद मात्सर्य सब तरहके यामें वृक्ष उग रहे हें, यामें कुछ कांटायें भी हें, कहीं कंकड़ भी हें, कहीं खाई भी हें, कहीं नदी भी हें, कहीं अनुल्लंघ्य पर्वत भी हें. उन सारे या प्रकारके पुष्टिके वनमें चलते भये, इनने एक पगडण्डी बनायी हे. जो पगडण्डी इनने बनायी, उनकी रेखान्को अनुसरण ओर (अन्य) भक्त कर पा रहे हें. या पुष्टिके वनमें पेहले चलवेवाली तो ये हें और इनने चलके पेहली बार इन भावन्कु ये गरिमा प्रदान की. ये जो बीहड़ वन हे, याकी पगडण्डीपे चलके पार कर लेंगे तो पार पहोंच जायेंगे बंदरकी तरह. श्लोकन्को ये प्रकरण पूरो हो जायेगो. अपन वानरभटे हें, अपन् सब बड़े बड़े वानरभट

हें नर-वानर, किन्तु याकी जो गंभीरता हे, जा लिये ये रो रही हें, जा लिये ये मोहित हो रही हें, जो तड़प इनकी हे, वो तो अपन् शब्दनूमें सुने हें, यदि शब्द अपनेकु छुये तो छुये, नहीं छुये तो नहीं भी छुयें, बम्पर् चल्यो जाये. क्रिकेट्में बोल् माथेके ऊपरसु बम्पर् चल्यो जाये ना!. ऐसे बम्पर् जावे. ये मन्थाचल हें, उनने या समुद्रमें गोता लगायो हे. जो गा रही हें अपन् जो सुन रहें हें, अपन् तो शब्द बोल रहे हें, अपन् तो केवल वानरभट ही हें. मगर वामें कोई हीनभावना लानी नहीं. ये डूबनो भी तो कौनकु मिले हे! जैसे कोई नदी होय और वामें ऊपर पुल होय और अपन् तैरनो नहीं जाने तो वा पुलपेसु नदीकु पार करवेको आनन्द हे ही. बस याके लिये ही सारो प्रयत्न हे. डूब पावें कि नहीं डूब पावें ये तो वाके प्रवाह पर निर्भर करे. पर कमसू कम अपने आचार्यचरणने गोपीगीतके सागरपे जो पुल बनायो हे अपनी सुबोधिनीको सो एक तफरी तो कर लें और कछु नहीं तो! या सुबोधिनीके पुलके नीचे एक ऐसो नीचे गेहराईको सागर लेहरा रह्यो हे और वा न्यायसू अपन् यहां थोड़ीसी तफरी कर सकें हें. वासू बड़ो अधिकार यामें तैरवेको या यामें गोताखोरीको अधिकार तो बहोत कठिन बात हे.

सुबोधिनी :

हे स्वामिन्, मधुरया गिरा मुह्यतीः इमा गोपीः आप्याययस्व. मोहो हि मरणपूर्वास्थारूपः. तासाम् आप्यायने हेतुः विधिकरीः इति, आज्ञाकारिणीः सेवाकारिणीः वा. असामर्थ्यं तु तव नास्ति इति आहुः हे वीर! इति. शौर्यं हि आर्तानाम् आर्तिनिराकरणार्थम्. इमा इति प्रदर्शनेन क्षणमात्रविलम्बेन मरिष्यन्ति इति सूचितम्. ननु वाङ्मात्रेण कथं मोहनिवृत्तिः इति चेत्, तत्र आहुः मधुरया इति, मोहो हि मायारूपः, स भवत्स्वरूपेणैव निवर्तते सच्चिदानन्दस्वरूपेण. तत्र तव वाणी आनन्दरूपा इति आह मधुरया इति, मधु=असाधारणो रसः तद्युक्ता मधुरा. वल्गु मनोहरं

वाक्यं यत्र, वाक्यस्य मनोहरत्वं सत्यप्रियप्रतिपादकत्वेन, अतः सद्रूपता निरूपिता. बुधानां मनोज्ञा आह्लादकारिणी, अनेन ज्ञानरूपा निरूपिता – ते हि ज्ञानेनैव रता भवन्ति. मुखे नयने वर्तेते इति तयोरपि व्यापारं कृत्वैव व्यक्तम् इति आहुः पुष्करेक्षण! इति, कमलवत् परतापापहारके ईक्षणे यस्य. किञ्च अधरसीधुना अधरामृतेन च आप्यायस्व, वक्तव्याः द्रष्टव्याः पाययितव्या इति. मूर्छितानां हि मूर्छानिवारणार्थं महामन्त्राः पठ्यन्ते, कमलादीनि च शीतलद्रव्याणि स्थाप्यन्ते. सर्वथा असाध्ये अमृतमपि पाय्यते. अतिगोप्यान् वा रसान् पाययन्ति. इयं तु मूर्छा न अल्पेन निवारयितुं शक्या इति वीर! इति सम्बोधनम्. अनेन अन्तिमावस्था प्रदर्शिता. पूर्वप्रार्थितश्च अर्थाः स्मारकत्वेन अधिकमूर्छाहेतवो जाताः ॥८॥

विवरणम् :

(मरणपूर्वावस्था मोह/ इमा मुह्यतीः)

हे स्वामिन्, मधुरया गिरा मुह्यतीः. कहें कि तेरी मधुर वाणीन्को वैसी ध्वनि भी मधुर हती. याके वाक्यविन्यास भी मधुर हें. उन वाणीन्को स्मरण कर करके इनकु मोह उत्पन्न हो रह्यो हे. इनकु अपनी मधुरवाणीसू ही फिरसु जीवनदान दे. **मोहो हि मरणपूर्वास्थारूपः.** शास्त्रमें मोह और मोह के बादकी अवस्था उन्माद मूर्छा मृत्यु मानी जाय. शास्त्रमें मोह पर्यन्त ही स्नेहको वर्णन होवे हे, मृत्यु पर्यन्त स्नेहको वर्णन नहीं होवे हे. नहीं तो वो स्नेह नहीं मानके करुण रस मान्यो जाय. यदि मृत्युपर्यन्त वर्णन होवे तो करुणरस हो जाय. मोहपर्यन्त जो रसको वर्णन कियो जाय तो वो स्नेहकी मर्यादा मानी जाय. या लिये ही कहें हें **मोहो हि मरणपूर्वावस्थारूपः.** कहे हें कि अरे! ये तो सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका हे, जो राजस-सात्त्विक हती वाने इतनो ज्ञानोपदेश दियो, ये सात्त्विक-सात्त्विका मोहसु डरी भई हे क्या? मृत्युसु डर रही हे क्या? साधारण जो अपन् देख गये सात्त्विकगोपिकायें, उनकु प्रभुको इतनो सम्यकतया बोध हे कि मृत्युको भय तो वहां सतावे ही नहीं हे. या लिये वा गोपिकाने

कही **''नतु गोपिकानन्दनो... उदेयिवान् सात्त्वतां कुले''** तो सात्त्विक-सात्त्विक होके याकु मृत्युको भय! ये सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका कहें हे, मनकु याको भाव होनो चइये, वैसे तो मृत्युको भय अज्ञानीकु होवे हे, क्योंकि अज्ञानीकु देहमें आत्माको अभिमान होवे हे. देहमें आत्माके अभिमानके कारण जा बखत देह छूटे तो वा बखत वाकु लगे कि ''मैं मर्‌यो''. दरअसल 'मैं' तो आत्मचेतनाको विषय हे और 'आत्मा' तो मरणशील हे नहीं. मरणधर्म तो देहको हे, आत्मा तो मरे नहीं पर देहमें रह्‌यो भयो अभिमान जो छूटे, वाके कारण अपनेकु यों लगे कि ''मैं मर्‌यो''. मरवेवालो देह और मृत्यु की साक्षी आत्मा, इन दोनोंमें काफी अन्तर हे. अब ये जो सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका हे याके लिये कहें हें कि आत्मा तो नित्य हे, आत्माकी कभी मृत्यु नहीं होवे. मृत्यु तो देहकी होवे. तो वो सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका केह रही हे कि इन सब गोपीनूकु मोह भयो हे, कोई खुदके बारेमें बात नहीं कर रही हे, या गोपिकाकी ये बात देखो. **इमा गोपीः आप्याययस्व.** ये दूसरेनूकी दुहाई दे रही हे. **इमा मुह्यतीः** ये सब गोपिकायें मुग्ध हो रही हें, इनकी मरणकी पूर्वावस्था आ रही हे. तो कहें कि इनकी मरणकी पूर्वास्था मोह हो रह्‌यो हे. मोह माने जाकु अपन् बेहोशी कहें. तो इनकु जो मोह हो रह्‌यो हे वामें तेरो क्या जाये! ये बचवेकी भावना करे हे. याकु सब ज्ञान तो हे, सात्त्विक-सात्त्विक होवेके कारण कि देहकी मृत्यु होवे हे. आत्मा तो नित्य हे, आत्माकी तो मृत्यु होवे नहीं हे.

(नित्यता मा अस्तु!)

श्रीगुसांईजी याको बहोत सुन्दर भाव प्रकट करें हें. तो वो कहें हें **''त्वद्वियुक्तस्य जीवस्य नित्यता मा अस्तु कस्यचित् किन्तु तत्क्षणएव अस्य नाशएव व्रजेश्वर!''** (विज्ञप्ति.१।३०) अपनेकु ये जीवकी नित्यता भी अन्य स्थितिमें तो अच्छी लगे. वस्तुतः एक बात बतायें, ये सचमुचमें देह छोड़ें हें तो मोह होवे, क्योंकि अपनेकु आत्माके बारेमें

न तो खबर हे और न ही गेरण्टी हे. या लिये अपनेकु दुःख आवे पर सचमुचमें यदि अपनो कोन्टेक्ट्र मृतात्मासु हो सकतो होय, जैसे आत्मायें बुलावें कोई लिखके बुलावें कोई स्पिरीच्युआलिटी करके बुलावें कुछ न कुछ करके बुलावें ऐसो अपने सब आत्मान्सु सम्पर्क स्थापित हो सकते होंय, उतनी सरलतासु जितनी सरलतासु समझो कि अपने घरको एक आदमी कोई दूसरे शेहरमें जावे, तो अपन् चिट्ठी लिखके बात कर लें, टेलीफोन्सु बात कर लें, चिट्ठीके अक्षर देखके संतुष्ट हो जायें, टेलीफोन्में वाकी आवाज सुनके संतुष्ट हो जायें. या तरहसु मृतात्मासु यदि सम्पर्क हो सकते होंय जैसे स्पिरीच्युआलिस्ट्र करें, तो दुःखको क्या विषय हे! शायद स्टेशन्पे छोड़वे जाओ तो आँख छलछलावे पर मनमें संतोष तो हे कि चिट्ठी आवेवाली हे. जा दिन अपन् स्टेशन्पे छोड़वे जावें तो आँख छलछलावे. कोई स्टेशन्पे रोवे तो लोग वाकु गमट्टू समझें. हमने यासु एक दिन पूछी (श्यामदाससु) "तेरे अमेरिकामें विदाई करें तो लोग रोवें कि नहीं?" तो याने कही कि "ऐसो कोई काम करे तो बड़ो विचित्र मान्यो जाय." इतनी भीड़ स्टेशनपे छोड़वे चली जाये पर वहां कोई छोड़वे नहीं जाये और अपन्तो सबकु छोड़वे भी जायें. जावें सब और खूब रोवें भी. रोवें क्यों कि स्नेहको स्वभाव हे या लिये रोवें. तो ऐसे ज्ञानकी दृष्टिसु व्यवहारकी दृष्टिसु विचार करो तो जैसे या शेहरसू वा शेहरमें जावे, अपन् चिट्ठी-पत्रीसु कोन्टेक्ट् कर सकें और शर्त इतनीसी हे कि या शेहरसु वा शेहरमें जावें तो चिट्ठी-पत्रीसु सम्पर्क हो सके हे, टेलीफोन्सु सम्पर्क हो सके हे और ऐसो सम्पर्क नहीं होवे तो अपनेकु पूर्ण विश्वास नहीं आवे कि ये यात्रा ही हे कि "चलन चहत अब कृपानिधाना" हे. यदि सचमुचमें जावेवाले आदमीके लिये यात्राको बोध हो जाये तो जावेकी करुणा इतनी नहीं रेह जायेगी. क्योंकि अपनेकु पता चल जाये कि ये केवल यात्रा हे, नष्ट नहीं हो रह्यो हे, वो केवल यात्रा कर रह्यो हे. गीतामें भगवान् कहें हें कि जैसे एक

कपड़ा उतारे आदमी और दूसरो कपड़ा पेहर ले, तो घरको आदमी रोवे कोई! कल तो तुमने नीले कपड़ा पेहरे हते आज सफेद क्यों पेहन लिये? आज हरे क्यों पेहन लिये? अरे कपड़ा बदलें तो रोनो नहीं आवे, तो देह बदले तो रोनो क्यों आवे! तो ये निश्चितरूपसु बात पता चल जानी चइये कि देह वो सिर्फ वाही तरहसु बदल्यो जा रह्यो हे, जैसे कपड़ा बदल्यो जा रह्यो हे. शास्त्रमें बतावें, अपन् शुद्धाद्वैत माने पर वा प्रकारकी अनुभूति अपनेकु होवे नहीं, या लिये नित्यता होते भये भी अपनेकु रोना आवे पर ये सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका कहे कि ये नित्यता जो ज्ञानमें प्रतिपादित की जाये हे, ये नित्यता भी वाही जीवकी होनी चइये कि जा जीवकु तेरो संयोग मिलतो होय. ज्ञानी लोग तो यों कहें कि देह क्षणभंगुर हे, आत्मा नित्य हे पर ये सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका कहे कि "**त्वद्वियुक्तस्य जीवस्य नित्यता मा अस्तु कस्यचित्**". यदि जीव तेरेसु वियुक्त हे तो जैसे देह क्षणभंगुर हे तो ऐसे जीवात्मा क्षणभंगुर हो जाये भले. वाकी नित्यता फिर अच्छी नहीं हे.

(ईश्वरवाद और शून्यवाद)

याही लिये श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें टिप्पणीमें, गोपिकानूके सामर्थ्यभावके कारण इनके तामसभाव हें और तामसभावके कारण इनकु प्रभुको बहि:प्राकट्य ही अभीष्ट हे. "**स्वामिनीनां हि बहिः प्राकट्यमेव भगवतो अभीष्टं तदैव ईश्वरवादः अन्यथा शून्यवादः. इति ज्ञापनाय ऐश्वर्यसमानसंख्या श्लोकैः दैहिका सा निरूपिता:**" (सुबो.का.टिप.१०।२६।७). ये जितनी स्वामिनीयें हें, रासस्थगोपिकायें हें, इनके मनमें एक दृढ़ विश्वास हे, यदि ईश्वर इनके सामने प्रकट रहे तो तो ये सब ब्रह्मवादी हें और ईश्वर प्रकट नहीं रह्यो हे तो ये सब तुरत शून्यवादी बन जायें. शून्यवाद कोनकु कहें?

भगवान् बुद्धने शून्यवादमतको उपदेश दियो. जा मतमें और

मतवाले तो यों कहें कि ''देह तो क्षणभंगुर हे'' पर बुद्ध भगवान् यों कहें कि ''आत्मा भी क्षणभंगुर हे''. तो जा मतमें आत्मा भी क्षणभंगुर मानी जाती होय, वा मतको नाम 'शून्यवाद'. अपन् तो देहकु क्षणभंगुर मानें, आत्माकु नित्य मानें. याके लिये अपन् 'आत्मवादी' केहवावें. 'सद्वादी' केहवावें कि 'हे' अपन् ऐसो माने हें. बुद्ध भगवान्ने जो उपदेश दियो वो ऐसो उपदेश दियो, कि जैसे देह अनित्य हे, ऐसे ही आत्मा भी अनित्य हे. जैसे देह छूट जाये, ऐसे ही तुम्हारी आत्मा भी निरन्तर छूटती चली जाये हे. जैसे नदीमें कोई दो बार पैर धर नहीं सके, क्योंकि नदीमें एक बार पैर धरो और दूसरी बार पैर धरो तो वो नदी तो आगे निकल गई होवे हे. वो नदी नहीं रेह जावे, वाके पाट जरूर रेह जाते होंयगे. वा न्यायसु कोई भी दिया जल रह्यो हे, तो एक दियाको तुम दो बार नहीं देख सको. क्योंकि एक बार तुमने देख्यो और एक बार देखवेके बाद दुबारा जो देख्यो तो वो पेहलेवालो दिया तो उड़ गयो, दूसरो दिया वहां प्रकट भयो हे. वोको वोही दिया वहां रहे नहीं हे. तो या तरहसु दियाकी तरह, या नदीकी तरह आत्माकु भी जो अनित्य माने, वा मतको नाम हे शून्यवाद.

श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें कि इन गोपिकान्को सबको ये दृढ़तर मत हे कि कल जैसे तुम्हारेकु आश्चर्य हो रह्यो थो कि उपपत्तिवाद उत्पत्तिवाद एक साथ क्यों मान्यो जाये? हां उपपत्तिवाद और उत्पत्तिवाद दर्शनकी दृष्टिसु विरोधी सिद्धान्त होते भये भी एक साथ मान्यो जा सके. अपनी अपनी वा बखतकी अपेक्षान्के कारण जा बखत प्रभुको बहि:प्राकट्य हे तो ये सब गोपिकायें आत्मवादी हें, ब्रह्मवादी हें, ईश्वरवादी हें. जा बखत प्रभुको बहि:प्राकट्य नहीं हे, तो इन सबको मन कबूल कर ले कि बुद्धने जो शून्यवादको उपदेश दियो वो सच्चो हे.

"स्वामिनीनां हि बहिः प्राकट्यमेव भगवतो अभीष्टं तदैव ईश्वरवादः अन्यथा शून्यवादः" सब गोपिकायें शून्यवादी क्यों हैं? **"त्वद् वियुक्तस्य जीवस्य, नित्यता मास्तु कस्यचित्"** यदि तेरेसु वियुक्त हे, तेरेसु वियोग हे तो जीवकी नित्यता हमकु अभीष्ट नहीं हे. देहकी नित्यता तो नहीं हे, ये तो देखी बात हे पर जीवकी जो नित्यता समझाई जाये कि जीव नित्य हे वो नित्यता भी अब हमकु नहीं चइये यदि जीव क्षणभंगुर हो जाये. यदि देह क्षणभंगुर हे तो वाही तरहसु जीव भी यदि क्षणभंगुर हो जातो होय तो हो जावे दो. क्योंकि ज्यादा दुःखकु निबाहवेसु फायदा क्या! यासु तो शून्यवाद अच्छो. **"त्वद् वियुक्तस्य जीवस्य, नित्यता मास्तु कस्यचित्. किंतु तत्क्षणएव अस्य नाशएव व्रजेश्वर!"** जा क्षणमें तेरो वियोग भयो, वा क्षण ही जीव भी नष्ट हो जातो होय तो सबसु अच्छी दार्शनिक मान्यता वोही हे. यासु अच्छी ऊंची दार्शनिक मान्यता कोई नहीं, ये तो श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हैं.

मधुरया गिरा... अधरसीधुना आप्याययस्व नः. तेरी मधुर वाणीसू, तेरे मधुर वचननूसू, जो विद्वान हैं, उनके मनको भी हरण करवेवाली और तेरे कमलपत्रके जैसे नेत्र, **विधिकरीर् इमा** ये जितनी गोपिकायें हैं, ये तेरी आज्ञाको उल्लंघन करवेवाली नहीं हैं, **विधिकरी** हैं. जो जो तू आज्ञा करे, वैसे मानवे तैयार हैं पर जो मोह हो रह्यो हे याके बजाय याकु ऐसो लगे हे कि **"तत्क्षणएव अस्य, नाशएव व्रजेश्वर!"**

(हे वीर!)

वीर! मुह्यतीः अधरसीधुना आप्याययस्व नः. ये सब मुग्ध हो रही हैं, बेहोश होवेकी इनकी स्थिति आ रही हे. ये सात्त्विक-सात्त्विक गोपिका भावना करे कि या तरहसु जो कष्ट पावें वाके बजाय तो अच्छो हे कि मुक्त हो जायें. भावमें थोड़ी क्रूरता हे. वो

क्रूरता विप्रयोगकी दशाकु सहन न कर पावेके कारण ही हे. कोई जातकी अशक्तिके कारण ऐसो नहीं भयो हे पर अशक्य हो गयो हे ना! तो ऐसो क्रूर निश्चय लेनो पड़े हे. सात्त्विक-सात्त्विक गोपिकाकु ये लगे हे कि इनकु मोह जब आयो, तो मृत्यु भी आ जाये तो अच्छी बात हे. ये कष्ट कबतक पायेंगी? वैसे केहवेकु एक बड़ो सुन्दर सम्बोधन केह रही हें, यहां दो बातें बहोत सुन्दर केह रही हें. यहां वीर! केह रही हें. आपकु मैंने वा दिन बतायो, 'वीर' तो दोनों प्रकारके अर्थोंमें, दानवीर भी होवे और युद्धवीर भी होवे. वा न्यायसु ये खुलासा नहीं करे हे कि तू दानवीर हे कि युद्धवीर हे. तू जैसो भी वीर हे, यदि तू वीर हे तो प्रकट हो. क्यों! वीरताको और प्राकट्यको क्या सम्बन्ध? तो कहें हें कि यदि तू वीर हे और यदि हमारेमें कोई तरहको मद हे, जा मदके कारण तू तिरोहित भयो, तो डरे क्यों हे ये बता!. हमारे मदको तोकु इतनो भय? ठीक हे हमारो मद गलत हो सके हे पर वीर तो कोईके मदसू डरे नहीं हे. बल्कि वीर जा बखत दूसरेके मदकु देखे तब वा बखत सचमुचमें वाकी वीरता जगे कि सचमुचमें अब कोई विषय आयो.

जगन्नाथ कविराज कहे हे "**दिगन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डा: करटिन: करिण्य: कारुण्यास्पदम् असमशीला खलुमृगा:. इदानीं लोके अस्मिन् अनुपमशिखानां पुनर् अयं. नखानां पांडित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपति:**". (जगन्नाथ) अरे! सुने हें कि आसाममें या केरलमें कहीं कई हाथी होवें हें. सब जगह तो हाथी मिले नहीं. ये जो छोटे छोटे जानवर हें, इनपे शेरने अपनो पंजा मार्‍यो भी, तो पंजा मारवेकी जो ताकत हे और पंजा मारके पीठकी हड्डीकु तोड़वेकी जो सामर्थ्य हे, वाको सच्चो स्वाद वाकु क्या मिलेगो! समझो बकरीकु पंजा मारके वाकी पीठ तोड़ दी, तो शेरकु वामें क्या मजा आयेगो? तो कहें हें "**नखानां पांडित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपति:**" वो नखको पांडित्य पंजा

मारवेको वाको जो पांडित्य हे, कहीं हाथी रेहते होंय आसाममें या और कहीं पर शेर अपनो पांडित्य कहां प्रकट करे? वाकी पंजा मारके हड्डी तोड़ देवेकी जो सामर्थ्य हे वाको पांडित्य जो होवे वाकी चिंता होवे. ऐसे कहें हें कि यदि तू वीर हे, तो जा बखत मद दीखे और ऐसो ही रोतो भयो सामने कोई शत्रु दीखे, तो मारवेकी इच्छा प्रकट होवे? "तू खींच मेरेकु जोर आवे हे". गुजरातीन्में ऐसो बहोत होवे हे. झगड़ा करें नहीं जितनो खींच-पकड़ पकड़के उतनो कोलाहल ज्यादा मचावें. जो उनको बीच बचाव करवेवाले हट जायें तो वाही बखत झगड़ा खतम. ऐसे ही बंगालीन्में भी होवे हे. बंगाली भी खूब कोलाहल कर दें यदि बीच बचाव करो तो. यदि उनकु छुट्टो छोड़ दो कि चलो करो मारीमारी तो फिर "एक बार बोले तो बोले दूसरी बार बोले तो माथा फोड़दुंगो " वापे बात चली जाय. अबके बोल्यो सो बोल्यो पर दूसरी बार बोल्यो तो माथा तोड़ दूंगो. "एखोन बोल तो!" ये केहके फिर खड़े ही नहीं रहें ऊपर घरमें घुस जाये. असल बात ये हे कि लड़ाकू कोम नहीं हे. लड़ाकू कोम होय सो वो तो लड़ मरे. ये बिचारे सीधे साधे. संस्कृतमें लड़ाईको एक प्रंसग आवे, वाग्हरि, बोलवेमें शेर, लड़वेमें शेर नहीं. खूब हल्ला मचा दें. सचमुचमें लड़के कोई झगड़ा नहीं करें पर ऐसेन्के आगे यदि सचमुचमें कोई लड़ाकू आदमी आ जाये तो वाकी लड़वेकी इच्छा बढ़े नहीं. क्योंकि वाकु पता हे कि सीधो सच्चो आदमी हे वाग्हरि हे. वाग्हरिके आगे ज्यादासु ज्यादा दो बात वो बोल भी दे. दो गाली दे देवे. लड़ाईकी सीमा उतने तक ही रहे. जो सचमुचमें शारीरिक कायिक युद्ध कर सकतो होय तो वाके सामने फिर लड़ाईको आनन्द आवे.

ऐसे ही गोपिका कहे हे कि यदि तू सचमुचमें वीर हे, जो कि हे ही, तो हमारे मदकु देखके छुपे क्यों हे? एक बार बोल्यो सो बोल्यो दूसरी बार बोल्यो तो माथो भांगी देबो, करके छिप

क्यों जाय? अरे तोड़ दे हमारे मदके माथा यदि वीर हे. कहे हें कि यदि युद्धवीर नहीं हे और दानवीर हे, तो **अधरसीधुना आप्यायस्व नः**'' अपने अधरसुधाके वितरणमें तोकु क्यों लोभ आ रह्यो हे, ये बता?

(प्रभुकी वाणीके तीनस्वरूप)

मोहो हि मरणपूर्वावस्थारूपः तासाम् आप्यायने हेतुः विधिकरीः इति. आज्ञाकारिणीः सेवाकारिणीः वा. प्रभुकी वाणीके दो स्वरूप बताये. एक **वल्गुवाक्यया** दूसरो **बुधमनोज्ञया. बुद्धमनोज्ञया** वाणी ज्ञानकाण्डकी वाणी हे. **वल्गुवाक्यया** वाणी कर्मकाण्डकी वाणी हे. गोपिकायें दो प्रकारकी हें ये अपनूने देख्यो. श्रुतिरूपा और ऋषिरूपा. याकु तुम यों समझ लो कि श्रुतिरूपा गोपिकायें ज्ञानकाण्डकी गोपिकायें हें और ऋषिरूपा गोपिकायें कर्मकाण्डकी गोपिकायें हें. भक्तमें दो प्रकारकी शक्ति हें एक ज्ञानशक्ति और दूसरी क्रियाशक्ति. जिन क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिसू, मने कुछ करवेकी ताकत और कुछ समझवेकी ताकत. सरल भाषामें कहूं तो, भक्त जो कछु प्रभुके सुखके लिये बात जान सके हे, समझ सके हे, ऐसे भक्तके सामर्थ्यकी जो प्रतिनिधि गोपिकायें हें, वो कौनसी हें? वो श्रुतिरूपा गोपिकायें हें. भक्त प्रभुसुखके लिये जो कछु कर सके हे और कर सकवेकी सामर्थ्यवाली जो गोपिकायें हें, वो ऋषिरूपा गोपिकायें हें. इन दोनों गोपिकानूको मोह प्रभुद्वारा कियो भयो हे. **मधुरया गिरा.** वो मधुर वाणी कौनसी? जो भक्तिकाण्डकी वाणी हे वो. पहेले ये श्रुतिरूपा हती और ये बिचारी अपने अपने ज्ञानके प्रमेयके वर्णनमें मस्त हती. और ये दूसरी ऋषिरूपा हती वा बखत अपने अपने कर्मसू अपनी अपनी आराधनासू प्रभुमें मस्त हती. यदि प्रभुने ऐसो आकर्षक रूप धारण नहीं कियो होतो, अपनी भक्तिकी वाणी प्रकट नहीं करी होती तो क्यों इनमें ये भाव कैसे जगतो और ये गोपीके रूपसु यहां प्रकट होती! काहेको प्रभुके विप्रयोगको या प्रकारको अवसर इनकु आतो? अरे थोड़ीसी

समाधि लगा लेती ये ऋषियें तो ऐसे सिद्ध ऋषियें हें.

जैसे उर्दुमें कहे हें "**दिलके आइनेमें हे तस्वीरे यार, जब जरा गरदन झुकाई देख ली.**" मने तेरो चित्र हृदयमें ऐसो अंकित हे कि दूर कहीं देखवेकी आवश्यकता ही नहीं हे. खाली थोड़ीसी आँख मींची नहीं, हृदयकी तरफ देख्यो नहीं, तो हृदयमें तेरो दृश्य दीख सकतो थो. ऐसे ध्यानाभ्यासवाले मन्त्रसिद्ध ये ऋषियें हें. श्रुति निरन्तर अपने अपने प्रमेयरूपको प्रतिपादन करें हें. "**मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्या अपोह्यते तु अहम् एतावान् सर्ववेदार्थः शब्दआस्थाय मां भिदाम्**" (भाग.पुरा.११।२१।४३). मात्र श्रुतिके वचन विभिन्न विभिन्न रूपन्में केवल परमात्माको ही प्रतिपादन करें हें, परमात्माके अलावा और कोईको प्रतिपादन नहीं कर रहे हें. परमात्माको प्रतिपादन करवेमें इन श्रुतिन्को स्वरूप चरितार्थ हतो. मने इनको प्रयोजन सम्पूर्ण हो रह्यो थो, वा बखत व्यर्थमें इनकु, या तरहसू गोपिकाके रूपमें प्रकट होवेकी श्रुतिवचनन्कु क्या आवश्यकता हती! यदि प्रभुको वैसो भजनीय स्वरूप प्रकट नहीं होतो तो!

(स्वरूप/लीलानुसारी शास्त्रवर्णन)

यहां तो नहीं बता रहे हें पर वेदस्तुतिमें आचार्यचरण बतावें कि जैसो जैसो भगवान् रूप धारण करते चले जायें, वैसो वैसो निरूपण करनो शास्त्रको कर्तव्य हे. अब भगवान् कभी दो विरुद्धधर्मन्कु धारण करें तो श्रुति वा विरुद्धधर्मन्को वर्णन करे. अब वामें श्रुतिको क्या गुनाह! श्रुतिको तो कोई गुनाह नहीं. मने कोई खूबसूरत होय और केमरा वाको फोटो पाड़ दे. कोई बदसूरत होय तो केमरा वाको फोटो पाड़ दे. अब फोटोमें कोई मेरे जैसेकी नाक टेढ़ी आ गई तो केमराको दोष कि मेरो दोष? अरे भई जब नाक टेढ़ी हे तो केमरामें भी टेढ़ी आयेगी. बरसन् तक हमकु पता ही नहीं हतो कि हमारी नाक टेढ़ी हे. एक आदमी आयो 'पीटरब्रेन्ट्'नामको और वाने हमारी नाक देखी और इन्टरव्यूमें लिख्यो कि "श्याम

गोस्वामीकी नाक टेढ़ी हे.'' हमने कांचमें जाके देख्यो तो सचमुचमें नाक टेढ़ी हती. अब बताओ कि कांचको दोष कि हमारो दोष कि पीटरब्रेन्ट्को दोष? अरे जो टेढ़ी हे सो तो हे ही. नहीं दीखी वो हमारो दोष हतो वो सचमुचमें देखनी चइती थी जब रोज कांच देखें तो. पर अपनी निगाह ऐसी नहीं हती. वो पीटरब्रेन्ट् इन्टरव्यूके लिये दो-तीन दिन आयो और वाने हमारी नाक देखके पेहचान लियो. अब मजा ये कि इन्टरव्यूमें क्या छाप्यो सबसू पेहले कि ''श्यामुबाबाकी नाक टेढ़ी हे.'' हमने कांचमें जाके देखी तो सचमुचमें टेढ़ी हती. अब दोष कोनको? अब वाने क्षमा मांगके हमकु पुस्तक भेजी कि ''आपकी नाक टेढ़ी.'' अब हमकु लग्यो कि सब कहेंगे कि ''नाक सीधी हे'' पर पेहले कांचमें जाके देख्यो तो नाक टेढ़ी दीखी तो हमने कही कि ''चलो क्षमा.'' नाक टेढ़ी हे. अब टेढ़ी नाक हे तो क्षमा नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे! सीधी होती तो एकाध पत्र ओब्जेक्शन्को भिजवाते कि ''हमारे बारेमें गलत बात लिख दी, सीधी नाक हती, टेढ़ी क्यों लिख दी?''

जैसो जैसो दृश्य वैसो वैसो वर्णन. प्रभु जो जो काम करें श्रुतियें वा तरहसू वाको वर्णन करें. इन सारी श्रुतिन्की प्रभुके वर्णनमें तत्परता हे. अब वामें उनकु या तरहके प्रश्नको अवकाश ही नहीं हतो. ज्ञेय हते तो श्रुतियें वर्णन कर रही हती, ज्ञेयके रूपमें श्रुतिन्को वर्णन चालू हतो पर एकाएक भजनीय हो गये तब श्रुतिनूकु प्रोब्लम् आई. जब प्रभुने भजनीय रूप लियो, तो अपने क्या केवल निरूपण करके चुप हो जानो! भजनीय रूप जा बखत ले ले, वा बखत यदि आप निरूपण करके चुप हो गये, तो आपने निरूपण नहीं कियो.

जैसे खावेकी सुन्दर सामग्री हे. मैं उदाहरण दूं और वो सामग्री आपके सामने साज दी. अब निरूपण करके आप बेठ जाओ कि यामें इतनी हींग पड़ी हे, इतनी मिर्च पड़ी हे, इतनो नोन पड़्यो

हे और या तरहसू घीमें तली भई हे. ये निरूपण कर दियो तो याको क्या लाभ हे! अरे भई! जो खावेके लिये सामग्री बनी हे वो तो खा जावेके लिये ही बनी हे. वाके निरूपणसु कोई लाभ नहीं होयगो.

(विधान अभिधान और अपोहन)

ऐसे प्रभुके प्रकट भजनीय रूपके भजनमें सार्थकता हती करके श्रुतियें गोपिकाके रूपमें प्रकट भई. नहींतो निरूपण तो चल ही रह्यो थो. अनादि कालसु श्रुतिनूने जैसो जैसो प्रभुको रूप हे, ऐसो ऐसो(वैसो वैसो) रूप निरन्तर "**मा विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्या अपोह्यते तु अहम् एतावान् सर्ववेदार्थः शब्दआस्थाय मां भिदाम्.**" (भाग.पुरा.११।२१।-४३). सर्व वेदार्थ कहीं विधानसु कहीं अभिधानसू कहीं विकल्पसू कहीं अपोहनसू सब तरहसू प्रभुको ही निरन्तर निरूपण वेदमें चल रह्यो थो. एकाएक जब प्रभुके रूपमें परिवर्तन नजर आयो, क्योंकि भजनीयस्वरूपको न तो विधान हो सके हे, न वाको अभिधान हो सके, न वाको विकल्प हो सके और न वाको अपोहन हो सके. तकलीफ ये हे. आप लोगनूकु ये बड़ी बोम्बास्टिक् बात लग रही होयगी कि एकाएक ये क्या चक्कर शुरु हो गयो. मैं आपकु थोड़ो समझा दूं :

जैसे शास्त्र यों कहे हे "**सत्यं वद, धर्मं चर**" (तैत्ति.उप.१।११।१). या तरहके वचन **विधान** माने जायें. मने जामें कुछ करवेकी आज्ञा दी गई होय, वाकु विधान मान्यो जाय. मैं जैसे आपकु कहूं कि 'उठो' 'चलो' तो ये सब विधानके वाक्य माने जायें. मैं ये आपको कहूं कि "ये दादाजीको चित्र हे." तब मैं आपकु करवेको काम कुछ केह नहीं रह्यो हूं. केवल चित्र हे वाको वर्णन कर रह्यो हूं कि "दादाजीको चित्र हे." "ये रंगीन चित्र हे", "ये यहां पधरायो गयो हे." अब ये खाली वर्णन भयो, **अभिधान** भयो,

विधान नहीं भयो. मैं यों कहूं कि “ये ब्लेक् एण्ड् व्हाईट् चित्र नहीं हे, रंगीन चित्र हे.” तो ये विकल्पको अपोहन भयो. मने दो तरहके चित्र हो सकते थे. एक शायद ब्लेक् एण्ड् व्हाईट् चित्र हो सकतो थो और एक कलर् फोटोग्राफ् हो सके हे. ये ब्लेक् एण्ड् व्हाईट् नहीं होके कलर् फोटोग्राफ् हे. जा बखत मैं यों कहूं तो विकल्प करके एकको अपोहन. एकंकु हटानो और एकंकु मंजूर करनो. ये ब्लेक् एण्ड् व्हाईट् नही हे ये कलर् हे, तो ये **विकल्प करके अपोहन भयो.**

ऐसे जितने भी वचन हें, उनकी ये तीनमें कहीं न कहीं स्थिति होवे. उपनिषद्में वेदमें और शास्त्रमें तीन तरहसू ब्रह्मको निरूपण आवे. कहीं विधानके रूपमें निरूपण आवे कि “या या तरहसू प्रभुकी उपासना करो,” “या या तरहसू धर्मको आचरण करो,” “ये बात करोगे तो तुम्हारो आत्मोद्धार होयगो” या तरहसू कहीं प्रभुको वर्णन विधानमें आवे.

कहीं अभिधानके रूपमें आवे कि ब्रह्म, ऐसो गुणवालो हे. “**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति**” (तैत्ति.उ.२।१) ये जगत् जासू पैदा भयो हे, जगत्को पालनहार, जगत्को संहारक वो ब्रह्म हे. या तरहको वर्णन अभिधान केहवावें, केवल वर्णन करवेवाले.

अब ब्रह्ममें कोई प्राकृत गुण नहीं हें. ब्रह्म मरणशील नहीं हे. ब्रह्ममें दुःखको स्पर्श नहीं हे. या तरीकेसू विकल्प करके जो अपोहन कियो जाय और जाको अपोहन कियो जाय हे वाकु भी श्रुति कहे हे कि ब्रह्मात्मक हे. “**मां विधत्ते अभिधत्ते मां**” जाको अपोहन करें वो भी ब्रह्म हे. जैसे कहें हें कि ब्रह्मके हाथ नहीं हें तो हाथ कहांसू आये दुनियांमें? यदि ब्रह्मके लिये भये हाथ जुदे जुदे रूप नहीं होते तो आये कहांसू ये हाथ? कोई शैतानने

तो अपने हाथ बना नहीं दिये. मायाने तो अपने हाथ बनाये नहीं. ये भी ब्रह्मके बनाये भये हाथ हें. तो ब्रह्मके हाथ नहीं हें फिर भी ब्रह्म पकड़ सके हे. ब्रह्मके पैर नहीं हे फिर भी ब्रह्म दोड़ सके हे. या तरहसू ब्रह्ममें हाथ पैरको विकल्प करके जो अपोहन कियो जा रह्यो हे हाथको और पैरको, कोई न कोई रूपमें वो भी ब्रह्म ही हे. तो कोई रूपसू वाको अपोहन कियो जाये हे, कोई रूपसू वाको हटायो जाय हे और कोई रूपसू वाको बतायो जाये हे. हटावेवालो, हटवेवाली चीज और जहांसू हटाई जा रही हे, वो दोनों ब्रह्म हें. याको मतलब 'ब्रह्मवाद' हे. यामें भगवान् आज्ञा करें हें **''एतावान् सर्ववेदार्थः''** सारो वेदार्थ इतनोसो हे, जब सारो वेदार्थ इतनोसो हे, तो भजनीय रूप जब प्रकट भयो तो ये चिन्ता हो गई कि क्या भजनीय रूपको विधान करनो?

समझो कि ''मेरी छोटी बेटी चिन्टू हे. अब मैं याकू बांध दऊं, बंध कर दऊं, दो-चार चपत लगाऊं, 'मेरेसू स्नेह कर' 'मेरेसू स्नेह कर' 'मेरेपे श्रद्धा रख''', तो चपत लगावेसू श्रद्धा पैदा होयगी? समझो कि पति हे. वो सुबह उठके चपत लगावे पत्नीकु कि ''मेरेसू स्नेह कर.'' चपत लगावेसू स्नेह पैदा हो जाये क्या? समझो कि कोई मोटी पत्नी होवे, वो पतिकु चपत लगा देवे, पति ही चपत लगावे ऐसी बात नहीं हे, अब चपत लगावेसू स्नेह पैदा नहीं होयगो. स्नेह तो पैदा होवे तो होवे, नहीं होवे तो नहीं होवे. ''ये वो लौ हे जो लगाये न लगे और बुझाये न बुझे.'' स्नेह कोई पैदा करो, कोईके आदेश दे देवेसू, अगर आदेश देवेसू स्नेह पैदा होतो होय तो इंदिरागांधी इलेक्शन् क्यों हारती? एक आदेश दे देती कि ''सब इंदिरागांधीसू प्यार करो.'' तो फिर कोई दूसरेकु वोट देतो ही नहीं.

तो हुकुमसू विधानसू भजनीयको निरूपण नहीं हो सके. भजनीयके साथ जो अपने व्यवहार हें, वो तो ईश्वर भी आके साक्षात् आज्ञा

करे कि "मेरो भजन करो." भजनको अर्थ अपन् जब स्नेहके अर्थमें लें **"भज् सेवायाम्"** (पाणि.धा.पा.भ्वा.१०२३) भक्तिके अर्थमें लें कि भजनको मतलब स्नेह, तो स्नेह करो तो ईश्वर भी जब आज्ञा दे, तो आज्ञाके कारण स्नेह तो नहीं हो सके, कर्म हो सके. अन्यथा कर्मकाण्ड करवे पर तो लोग कर दें, फूल चढ़ाने हें तो चढ़ा दिये वामें हमारो क्या गयो? **"पुष्पं समर्पयामि, फलं समर्पयामि"** फूल चढ़ा दिये, फल धर दिये, वो तो समर्पण हो सके. भाटा भी समर्पण करो तो कर सके हे आदमी. भगवान्पे कोई जोर नहीं पड़े क्योंकि जैसी आज्ञा. जीव जीव हे, भगवान् भगवान् हे पर आज्ञासू स्नेह पैदा नहीं हो सके हे. तो याके लिये जो विधानके वचन हते श्रुतीन्के, वो तो भजनीयरूपके होते ही अलग हट गये कि ये विषय हमारो नहीं हे.

अब अभिधानके जो वचन हते श्रुतीन्के वो कुछ अपनो काम कर लेंगे. अभिधान कियो खाली बेठके तो वोही गति होयगी कि सुन्दर रसगुल्लाकी सामग्री आई, बेठके वाको अभिधान करो कि या तरहसू याको छैना बनायो गयो, या तरहसू दूध फाड़्यो गयो, इतनी यामें चासनी मिलाई गई पर उतने सारे वर्णनसू वा रसगुल्लाकी मिठासको स्वाद तुम्हारी जीभपे आधो भी आयेगो? नहीं आ सके.

बोले विकल्पको अपोहन कर दें. ब्रह्ममें सारे आकार मिथ्या हे, वाके सारे गुणधर्म मिथ्या हें. उर्दुमें एक शेर हे **"शेखने मस्जिद बनाकर साफ बुतखाना किया. पेहले एक सूरत तो थी अब और वीराना किया."** ब्रह्मके सारे गुणधर्म आकारन्को आपने अपोहन कर दियो, कि ब्रह्ममें न तो कोई गुण हे न कोई आकार हे न कोई रूप हे तो कुछ तो पेहले हतो पर अपोहन कर दियो, तो "पेहले एक सूरत तो थी अब और वीराना किया." कुछ तो हतो. मने जब मन्दिर हते, ऐसे वो कहें कि ध्यान धरवेके लिये

एक मूर्ति तो हती, एक दिन शेखजीकु धर्मभाव जग्यो कि सब जगह पवित्र होनी चइये, तो मन्दिरमें आके उनने देख्यो कि अरे अरे रे बुतपरस्ती चल रही हे! वाने कही कि ''हटाओ बुतकु.'' हटा दियो. तोड़ दियो.

(मधुरया गिरा = श्रुतिन्को मोह)

जा बखत मथुरामें कृष्णजन्मस्थलपे, अब तो फिरसू वहां मन्दिर बन गयो हे, मोहम्मद गज़नवी आयो हतो, वाके साथ एक अलबरूनी इतिहासकार भी आयो थो. वो लिखे हे कि ''जा बखत मोहम्मद गज़नवी आयो और ये भव्य मन्दिर देख्यो, वहां कृष्णकी सोनाकी मनुष्यके बराबरकी आकृतिकी मूर्ति या स्वरूप हतो, मन्दिर भी इतनो भव्य हतो कि दस मिनिट्र तक मोहम्मद गज़नवी एकदम हतप्रभ हो गयो.'' जाने सब मन्दिर तोड़े, पर जब वाने मन्दिरके और कृष्णके स्वरूपके दर्शन किये तो वाके मुंहसू ये वाक्य निकल गयो, वाने कही ''ये मन्दिर और मूर्ति मनुष्यको बनाये नहीं लगे हे, ये तो कोई फरिश्ताने बनायो हे.'' ऐसे वाके मनमें भाव जग गये. फिर वाकु कुरान् याद आ गई कि बुतपरस्ती पाप हे. वाने कमाण्डर्कु बुलाके कही ''जल्दीसू याकु हटाओ नहीं तो मेरो मन चलायमान हो जायेगो.'' वाही बखत कमाण्डर्ने सारेको सारो मन्दिर तोड़ दियो, सब मूर्ति खण्डित कर दी. ऐसो याको वर्णन आवे कि इतनो भव्य मन्दिर हतो कि मोहम्मद गज़नवीको मन चलायमान हो गयो. श्रुतीनकी और ऋषीन्कीतो चर्चा क्या? तो कृष्ण जा बखत कृष्णरूप ले, वा बखत मोहम्मद गज़नवी जैसे को भी मन चलायमान हो जाये, तो श्रुतीन्की तो बात क्या!

श्रुतिने ये विचार्यो कि जा बखत ये भजनीयरूप लेके आयो तो अब केवल विधान करवेसू या अभिधान करवेसू या विकल्पन्के अपोहन करवेसू काम नहीं चलेगो. प्रकट होनो पड़ेगो, एक एक

श्रुतिके वचन, एक एक गोपिकाके रूपमें प्रकट हो गये, प्रभु भजनीय भये और श्रुतिवचन भजन करवेवाली भक्तिमती गोपिकायें बन गई. वो भजन करवेवाली भक्तिमती गोपिकायें बनी, या लिये ये सारी लीला प्रकट भई. ये लीला जो प्रकट भई, तो वाके लिये कहें हें कि हमतो आज्ञाकारिणी हें. तो कहें कि हमने कब आज्ञा दी प्रकट होवेकी! तो कहें कि भले वाणीसू नहीं दी, पर वाणीकी जो ध्वनि हती **मधुरया गिरा** जो हती, मने दो प्रकारकी वाणी, एक तो वाक्यरूपसू अपन् करें वो और एक वाणीमें जो मिठास होवे हे, वो वाणीकी मिठास ऐसी हती भजनीयरूपकी कि हमकु भक्त बननो पड़्यो. भक्तको रूप हमकु लेनो पड़्यो. ये रूपमें हम तेरी आज्ञाकारिणी हें.

जैसे पुराने राजायें होते थे ना! अब तो अपनेकु पता नहीं चले पर हे अब भी वो रूप हे, पर वो रूप थोड़ो बदल गयो हे, रूप अब भी मौजूद हे. जैसे मिनिस्टर् कहीं जावें तो वाके साथ रिपोर्टर् भी जावें. मिनिस्टर् कोई भी काम करें, बात करें तो रिपोर्टर् वाकु लिखके रिपोर्ट करें. तो उन श्रुतियन्ने ब्रह्मकी लीलाको वर्णन कियो. जा बखत जैसी लीला करी वाको वैसो वर्णन कियो. अब इन रिपोर्टरन्कु कोई आज्ञा करवेकी जरूरत नहीं होवे. इनको काम ही, मिनिस्टर जब कहीं जावे तो वाके साथ जाके सारे कार्यकलापन्को रिपोर्ट करनो ही होवे हे.

ऐसे ही ब्रह्मके जितने भी कार्य श्रुतीन्ने देखे, उनकु कह्यो. ऐसे प्रभुको भजनीय स्वरूप ही ऐसो हे और इन श्रुतीन्को स्वरूप ही कुछ ऐसो हे. जा तरहसू प्रभु लीला करें वा तरहसू वाको वर्णन श्रुति करती चली जायें पर यहां एक ऐसी स्थिति आ गई कि जब प्रभुने भजनीय रूप लियो कि जहां खाली रिपोर्टिंग्सू काम नहीं चले. क्योंकि कौनसे तरहकी याकी रिपोर्टिंग् होयगी? यामें रिपोर्टिंगको प्रश्न नहीं हतो, यामें तो खुदके इन्वोल्वमेन्ट्को प्रश्न आ गयो थो.

अब ये बात आके कब खबर पड़े? अब तो ये पद्धति कम हो गई हे. जैसे मिलिटरीके रिपोर्टर् होवें हें. उनके हाथमें बन्दूक भी होवे और केमरा भी होवे. जा बखत उनकु युद्ध करनो होवे वो युद्ध करें और बाकी टाईम्में रिपोर्टिंग् भी चलती रहे. युद्धके रिपोर्टर् या तरीकेके होवें हें, खाली रिपोर्टिंग् करवे बेठे तो मर ही जाये, क्योंकि युद्धकी स्थितिकी ऐसी मांग हे. लड़नो भी हे और रिपोर्टिंग् भी करनी हे. ये प्रेस रिपोर्टर् सड़क चलते जैसे नहीं होवें हें. उनकु दोनों काम निभाने पड़ें हें. युद्धस्थलमें जब खाई खोदी जायें, उनमें बेठनो पड़े, हाथमें बंदूक लेनी पड़े, शत्रु आये तो बंदूक चलानी पड़े और जब युद्धकी स्थिति जरा शांत भई, फायरिंग् बन्ध भई, तो उनकु वाकी रिपोर्टिंग् भी फटाफट करनी पड़े कि युद्धमें ये भयो, ये भयो और ये भयो.

ये गोपिकानूको स्वरूप प्रभुने जब भजनीय स्वरूप धारण कियो, वा बखत युद्धके जैसी इमरजन्सी पैदा हो गई तब वर्णन करवेवाली गोपिकानूकु खुदकु पार्टिसिपेट् करवेकी आवश्यकता पैदा हो गई कि अब रिपोर्टिंग्सू ही काम चल जाये ऐसी स्थिति नहीं रही. याके लिये प्रभुने जब भजनीय रूप धारण कियो, तो गोपिकायें भक्त बनके आ गई, भक्त बनके प्रकट भई. तब **'वल्गुवाक्य'** जो कर्मकाण्डके वाक्य हते और **'बुधमनोज्ञया'** जो श्रुतिरूपा गोपीनूकु मोह करवेवाले वाक्य हते और ऋषिरूपा गोपिकानूकु मोह करवेवाले वाक्य हते, ये **''मधुरया गिरा''** हे. वा मधुरगिरासू हम जो **'विधिकरी'** हें, तू जा प्रकारसू कहे हे वा प्रकारसू हम अनुसरण करवेवाली हें, यदि हमकु मोह हो रह्यो होय तो वा मोहसू हमकु उबारवेवालो तेरे सिवा और कौन हो सके?

आज्ञाकारिणी: सेवाकारिणी: वा. असामर्थ्यन्तु तव नास्ति इति आहु: हे वीर! इति. अब केह रही हें कि तुमकु मोह उत्पन्न हो रह्यो हे तो मैं क्या करूं? ये तू नहीं केह सके हे. जहां तक

तू वीर हे. **शौर्यं हि आर्तानाम् आर्तिनिराकरणार्थम्.** क्योंकि सारे शौर्य, सारी वीरता, वाको प्रयोजन क्या हे कि जो आर्त हें, जो दुःखी हें, उनकी आर्तिको निराकरण करनो. **इमा इति प्रदर्शनेन क्षणमात्रविलम्बेन मरिष्यन्ति इति सूचितम्.** ये सात्त्विक-सात्त्विक बड़ी चतुर हे. खुदकी बात नहीं कर रही हे पर सबकी वकालत कर रही हे कि देख यदि तू एक क्षणमें प्रकट नहीं भयो, तो ये सब जो मोहकी अवस्थाकु प्राप्त भई हें उनकी अन्तिम अवस्था आवेमें थोड़ीसी देर हे.

ननु वाङ्मात्रेण कथं मोहनिवृत्तिः इति चेत्, कहें कि खाली वाङ्मात्रसू मोहनिवृत्ति कैसे हो जायेगी? **मधुरया गिरा, आप्याययस्व नः. मोहो हि मायारूपः, स भगवत्स्वरूपेणैव निवर्तते सच्चिदानन्दरूपेण. तत्र तव वाणी आनन्दरूपा इति आह मधुरया इति. मोह मायारूप हे. मायारूप होवेके कारण, "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया मामेव ये प्रपद्यन्ते मायाम् एतां तरन्ति ते"** (भग.गीता ७।१४). ये मेरी माया दुरत्यय हे, लांघी नहीं जा सके ऐसी माया हे. पर जो मोकु प्रपन्न होवे हें, वोही या मायाकु तैर सके हें. ये केहके प्रभुने ये जतायो हे कि जो मोकु प्रपन्न होओगे तो तुम मायाकु तैर सकोगे. तो हमने तो प्रपन्न होके सब जगह खोज लिये. यों कहें हें कि **"प्रपच्छुः आकाशवद् अन्तरं बहिर् भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्"** (भाग.पुरा.१०।२७।४). हमने सो सर्वत्र खोज लियो वृक्ष-वृक्षसू पूछके खोज्यो, झाड़ीन् झाड़ीन्में खोज्यो, लतान्-लतान्में खोज्यो पर नहीं मिल्यो.

या लिये प्रार्थना कर रही हें कि हमने तो प्रपन्न होके खोज लियो, अब तू कहे कि मोकु जो प्रपन्न होंयगे वो मायाकु तैर जायेंगे. हम प्रपन्न होके खोज चुकी हें पर अब तू प्रपन्न हो ले, तू प्रपन्न हो जा और तू हमकु खोज ले तो सारे प्रश्नको समाधान हो जायेगो. तेरी प्रपत्तिको आकार क्या? मधुरया वाण्या.

मधु असाधारणो रसः तद्युक्ता मधुरा. वल्गु मनोहरं वाक्यं यत्र, वाक्यस्य मनोहरत्वं सत्य-प्रिय-प्रतिपादकत्वेन, अतः सद्रूपता निरुपिता. कहें कि तेरे प्रपन्न होवेके दो रूप हें कि जा वाणीसू तेंने हमारे अन्दर ये मोह उत्पन्न कियो हे, वो मधुरवाणी हमकु एक बार और सुना. तेरी वाणीकु एक बार सुनें तो हमारे मोह निवृत्त हो जायेंगे. ये जो बेहोश पड़ी गोपिकायें हें, इनमें फिरसू होश आ जायेगो, ये सोती भई गोपिकायें अगर तेरी मधुर वाणी एक बार फिरसू सुनें तो फिरसू उठ खड़ी हो जायेंगी.

(बुधमनोज्ञया गिरा)

बुधानां मनोज्ञा आह्लादकारिणी, अनेन ज्ञानरूपा निरूपिता - ते हि ज्ञानेनैव रता भवन्ति. कहें कि तेरी वाणी कैसी हे? बुध लोगन्के मनको भी हरण करवेवाली हे. उनकु जो मोह उत्पन्न होवे हे, ये अपने मनमें निरन्तर तेरे वा हासकु, तेरे मधुर नेत्रनकु स्तुतिकु दूर नहीं कर पावे हें, याके लिये इनकु मोह उत्पन्न हो रह्यो हे. बुध मनोज्ञ वाणी मने जो बुध हें, उनके मनको भी हरण करवेवाली वाणीकु जो तूने इनकु एक बखत सुनाई तो इनको मन दुबारा तू हरे तो शायद इनको मोह दूर हो जायेगो.

(पुष्करेक्षण!)

मुखे नयने वर्तेते इति तयोरपि व्यापारं कृत्वैव वक्तव्यम् इति आहुः पुष्करेक्षण! इति. पुष्करेक्षण! इति, कमलवत् परतापापहारके ईक्षणे यस्य. और कैसो? प्रभुकु संबोधन करके कहे हें कि तेरे नेत्र कैसे हें? जैसे कमलको एक पत्र होवे.

बिहारी बहोत सुन्दर कहे हे **"अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार. जियत मरत झुक झुक परत, जिहिं चितवत इक बार"** (बिहारी). नेत्रमें तीन रंग होवें, एक श्याम रंग नेत्र गोलक होवे, एक श्यामके आसपास जो सफेद रंग होवे वो और उनकी कोरनपे

थोड़ी थोड़ी लाल रंगकी रेखायें होवें हें वो. तीन रंग होवें. **"अमी हलाहल मद भरे"** सफेद रंग हे वो तो अमृतको रंग हे. जो कीकीको रंग हे वो हलाहल विषको कालो रंग हे, श्याम रंग हे. थोड़े थोड़े लाल रंगकी रेखायें मदकी रेखायें हें. **"श्वेत श्याम रतनार."** एक बखत देखवेसू एक संग तीन प्रभाव उत्पन्न होवे हें. क्योंकि तीनों रंगमें रंगे हें. अमीको रंग हे, विषको रंग हे, मदको रंग हे. एक नेत्रमें तीनों रंग हें, जाके लिये केवल एक बार देखवेसू तीनोंके परस्पर विरोधी प्रभाव प्रकट होवें. **"जियत मरत झुकि झुकि परत जिहि चितवत इकबार."** जो तू एक बार इन् नेत्रन्सू कोईकु देख ले, वो जी रह्यो होय तो मरवे लग जाये, मर रह्यो होय तो जीवे लग जाये और मरे नहीं तो झुक झुक जायेगो. जाकु तेंने एक बखत या दृष्टिसू देख लियो तो फिर वो वा दृष्टिसू कोई औरकु देखनो नहीं चाहे. वाकी नजरें झुक जायें. जैसे नशामें आदमीकी आँखे झुक जायें, ऐसे वाकी आँखे झुक जायें, जाकु तू एक बखत अपनी **पुष्करेक्षण** दृष्टिसू देख ले.

कोई कवि कहे हे **"जाके लगे सो जाने व्यथा परपीरको कोउ उपहास करे ना. नेकसी कांकरी आंख लगे, सो तो पीर ते नेकऊ धीर धरे ना. सागर जो चुभि जात हे चित्तमें कोटि उपाय करो पे टरे ना. अरी एरी भटू कल कैसे परे, जब आँखमें आँख परे निकरे ना!"** (सागर) इन पुष्करेक्षण नेत्रन्सू जिनकु तेंने एक बखत देख्यो उनकु निरन्तर मोह होनो स्वभाविक हे. **मोहो हि मरणपूर्वावस्थारूपः**[१]. मोह मरणके पूर्वकी अवस्था रूप भी हे. मद हे वो मोहावस्था भी हे और जी रही हें कथञ्चित् याही

---

१. "चक्षुरागो मनःसंगः संकल्पो जागरस्तथा कृशता विषयद्वेषो लज्जात्यागस्तथैव च उन्मादमूर्च्छे मरणं प्रेम्णोऽवस्थाः इमाः मताः". (वात्स्या.कामसू) केषाञ्चिन्मते त्वेतास्त्वपरेषां मते अन्यथा."अभिलाषाश्चिन्तनश्च स्मृतिश्च गुणकीर्तनम् उद्वेगश्च प्रलापश्चोन्मादच व्याधिरष्टमा जडता नवमी ज्ञेया मरणं दशमं स्मृतम्." (सम्पा.)

स्फूर्तिमें जी रही हें, या अर्थमें श्वेतावस्था भी हे. याके लिये आचार्यचरण आज्ञा करें हें **पुष्करेक्षण! इति, कमलवत् परतापापहारके ईक्षणे यस्य. किञ्च अधरसीधुना अधरामृतेन च आप्याययस्व, वक्तव्याः द्रष्टव्याः पाययितव्या इति. मूर्छितानां हि मूर्छानिवारणार्थं महामन्त्राः पठ्यन्ते, कमलादीनि च शीतलद्रव्याणि स्थापयन्ते. सर्वथा असाध्ये अमृतमपि पाय्यते. अतिगोप्यान् वा रसान् पाययन्ति.** यदि कोई बेहोश हो जाये, तो क्या क्या करनो पड़े? अपन् वाके कानपे जा जाके घड़ी घड़ी बोलें हें कि "अरे भई सुने हे का?' अरे बेहोश हो गयो कहा?" वाके कानमें घड़ी घड़ी वाको नाम बोलनो पड़े. अपन् ये चेक् करनो चाहें कि कितनो होश आयो? ठण्डी ठण्डी चीजें जैसे पानीके छींटायें लगावें. वो देने पड़ें कि जासू वाकु होश आवे. और क्या कियो जाये कि दवाईयें दी जायें. तो कहें हें वा तरहसू हमारे लिये तोकु तीनों उपाय करने पड़ेंगे. हमारे कानमें आके बोल वा मधुर वाणीकु जासू हमारो मोह तूटे. हमकु अपनी तापहारक कमलके जैसी दृष्टिसू आके देख. वा दृष्टिकु यदि तू हमारे मुखनूपे डालेगो तो हमारे लिये वो शीतलताको काम करेगी. वासू हमारो मोह शायद तूट सके. **अधरसीधुना आप्याययस्व नः.** और वो औषधि हमकु दे तो जाके हमारो मोह तूट सके. **इयं तु मूर्छा न अल्पेन निवारयितुं शक्या इति वीर! इति सम्बोधनम्.** ये मूर्छा इतनी जबरदस्त मूर्छा हे कि जबतक पूरे दिलसू तू याको उपचार नहीं करेगो, तबतक ये मूर्छा निवृत्त नहीं हो सके.

अनेन अन्तिमावस्था प्रदर्शिता. पूर्वप्रार्थिताश्च अर्थाः स्मारकत्वेन अधिकमूर्छाहेतवो जाताः. जो पेहलेकी प्रार्थनायें गोपीजननूनें करी, उन प्रार्थनानूसू मूर्छा और अधिक गेहरी होती जा रही हे और ये गेहरी होती भई मूर्छामें यदि प्रभु प्रकट न होंय तो इनकी मूर्छाकु दूर करवेको उपाय हो नहीं सके हे. **मधुरया गिरा..अधरसीधुनाप्याययस्व नः.**

----*----

॥ श्लोक : ९ ॥

उत्थानिका :

एवं पदार्थचतुष्टयं संप्रार्थ्य तददाने स्वयमेव हेतुम् आशंक्य परिहरन्ति तव कथामृतं...

विवरणम् :

"**मधुरया गिरा.. अधरसीधुनाप्याययस्व नः**" या आठवें श्लोकमें जो निर्गुणगोपिका हती वाके बारेमें सात्त्विकी-सात्त्विकीने जो कह्यो हतो, प्रार्थना करी हती प्रभुके मुखार्विन्दके दर्शनकी प्रभुके हस्तकमलकी, प्रभुके चरणारविन्दकी स्वरूपसु हस्तसु चरणसु मुखसु जा तरहसु प्रभु भक्तको उपकार कर सकें, वा प्रकारकी प्रार्थना उननें अलग अलग करी. आचार्यचरणने कही थी "**पूर्वोक्तमपि सर्वं हि यावत् स्पष्टं न भाषते तावत् सरसतां याति न कदाचिद् इति स्थितिः**". या न्यायसू जो भी कुछ पेहले कह्यो गयो वाकी बातकु स्पष्ट करवेके लिये निर्गुणगोपिकाने एक उपसंहारक उनके सारे तात्पर्यन्की प्रार्थना करी. अब ये गोपिका राजस सात्त्विकी क्योंकि सात्त्विकी हे, याके लिये याको टोन् निर्गुणके साथ झुक जावे हे. अब आपकु ये सब बातें क्लिष्ट लगी पर आपने पेहलेको प्रसंग सुन्यो होतो तो आपकु ये बात स्फुट हो जाती. थोड़ी देरमें स्फुट हो जायेगो, (चिंता मत करियो.)

एवं पदार्थचतुष्टयं संप्रार्थ्य तददाने स्वयमेव हेतुम् आशंक्य परिहरन्ति तव कथा... इति. राजसको स्वभाव शंकाको स्वभाव हे. संदेह शंका ये सब राजस गुणके कारण विशेष होवें. ये राजसमें सात्त्विकी हे. याके लिये शंका याकु होवे हे और ये खुद वाको समाधान करे हे. क्योंकि "**सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्**" (भग.गीता १४।१७). राजसी होवेके कारण जो कुछ याके पेहले गोपिकानूने प्रार्थना करी, उन

प्रार्थनान्के औचित्यपे याकु शंका होवे. ये प्रार्थनायें उचित नहीं भई. फिर उन शंकान्को समाधान भी ये करे हे. आचार्यचरण आज्ञा करें हें **एवं पदार्थचतुष्टयं संप्रार्थ्य** मने एकने हस्तकमलकी प्रार्थना करी कि तुम्हारो हस्तकमल हमारे माथेपे धरके हमकु अभय दो **"करसरोरुहं... शिरसि धेहि नः"** . दूसरी गोपिकाने जो ये प्रार्थना करी, हमकु तुम्हारे मुखारविन्ददके दर्शन कराओ **"जलरुहाननं चारु दर्शय"** . तीसरीने प्रार्थना करी कि अपने चरणारविन्दकु हमारेपे स्थापित करो **"ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः"** . चौथीने कही कि अपनी वाणीसु हमारे साथ कुछ बोलो, अधरामृतकी प्रार्थना करी **"अधरसीधुना आप्याययस्व नः"** . तो ये चार प्रार्थना करी और प्रभु प्रार्थनाकु सुनके प्रकट नहीं भये तो वाकु सन्देह हो रह्यो हे कि प्रार्थनामें कहीं गड़बड़ हो गई क्या? क्या गड़बड़ी भई होयगी वो सोचे हे अपने राजसस्वभावकी चंचलताके कारण. यों लगे कभी मनमें कि प्रार्थना तो जो भक्त होंय उनकी सुनी जायेगी. हमने अभी भक्ति कहां करी हे जो प्रभु हमारी प्रार्थना सुनें? तो जब भक्तकी ही प्रार्थना सुनी जायेगी तो प्रार्थनानुसार नितरां फल तो भक्तकु ही मिलेगो. हरेककी प्रार्थनानुसार फल तो मिलनो नहीं.

श्लोक :

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्॥
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा अजनाः॥

सुबोधिनी :

ननु सर्वम् इदं प्रार्थितं भक्तेभ्यो देयं नतु अभक्तेभ्यः. अभक्तत्वञ्च विरहेऽपि जीवनाद् अवसीयते. भगवांस्तु सर्वनिरपेक्षः. न तस्य भवज्जीवनेन कार्यं, लक्ष्मीसदृश्यो यस्य कोटिशो दास्यः. अतः "त्वयि धृतासव" इत्यपि असंगतम्. तस्माद् व्यर्थमेव प्रार्थनम् इति आशंक्य परिहरति-न

इदं जीवनम् अस्मत्कृतिसाध्यं किन्तु तव कथा विरहेण प्राणानां गमने प्रतिबन्धं करोति. कथायाः पुनः यथा तव सामर्थ्यं तथा; सापि षड्गुणात्मिका मोक्षदायिनी परमानन्दरूपा च, तदाहुः तव कथा अमृतमिव. अमृतं भगवद्रसात्मकं, सर्वेषां मरणादिनिवर्तकं यद् रूपं तद् 'अमृत' शब्देन उच्यते. अतो मोक्षदातृत्वं परमानन्दरूपता च सिद्धा. इदानीं षड्गुणान् निरूपयन्ति तप्तजीवनम् इत्यादि षड्भिः पदैः. तप्ता ये संसारे तेषां जीवनं यस्मात्. अमृतं हि तापनिवर्तकं प्रसिद्धमेव. वैराग्यं च भगवतो ज्ञानं वा सर्वतापनिवर्तकम्. यत्संस्कारयोग्यं तद् ज्ञानेन नश्यति यदयोग्यं तत्परित्यागेन. अतएव स्मार्तैः संस्काराशक्तैः परित्यागएव बोध्यते. अतो ज्ञानं वैराग्यं च तापनाशके भवतः. आपाततः तापनाशकत्वं जलादावपि वर्ततइति तदर्थम् आह कविभिः ईडितम् इति. कविभिः सर्वैरेव शब्दार्थरसिकैः ज्ञानिभिः ईडितं ज्ञानं वैराग्यं वा. आपाततः स्त्रीषु तथात्वम् अस्तीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आहुः कल्मषापहम् इति. कल्मषं पापम् अपहन्ति इति. "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य" (द्र.विष्णुपुरा.६।५।४७) इत्यपि क्वचित् पाठः. अलौकिकसाधकं च वीर्यं महत् तद्धर्मरूपमेव भवति. धर्म्यं च पुनः कल्मषनिवर्तकं भवति, पूर्वोक्तधर्मविशिष्टं च. कथायाश्च तथात्वं सर्वत्र प्रसिद्धम्. प्रायश्चित्तादीनामपि आपाततः तथात्वम् अस्तीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह श्रवणमंगलम् इति. तद्गोमयादि-लेपनात्मकम् उपवासात्मकं च स्वरूपतोऽपि अमंगलं घोरात्मकत्वात् श्रवणेऽपि अमंगलम्, इदन्तु उदारचरितं श्रुतमेव आनन्दं जनयति इति अनुभवसिद्धत्वात् श्रवणमंगलम्. तेन कीर्तितुल्यता निरूपिता. पुत्रजन्मादिश्रवणस्यपि किञ्चिद्धर्मसाम्यात् श्रवणमंगलत्वम् आशंक्य तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह श्रीमद् इति. तद्धनव्ययसाधकं नतु धनसाधकं, कथामृतं तु लक्ष्म्याऽपि अपेक्षितत्वात् तद्युक्तं भवति. तेन श्रोतुः वक्तुश्च तत्सिद्धिः. राज्यप्राप्तिश्रवणं तथा भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह आततम् इति. आ सर्वतः ततं व्याप्तम्; राज्यादिकन्तु परिच्छिन्नं, भगवतः ऐश्वर्यन्तु न तथा, अन्तर्बहिः सर्वेषां सर्वथा व्याप्तम् इति. कथामृतञ्च पुनः सर्वलोकान् व्याप्य तिष्ठति, स्वसामर्थ्यं सर्वत्रैव सम्पादयति. तस्मात् स्वरूपतो धर्मतः च भवत्सदृशी भवत्कथा इति तया कृत्वा जीवनं, नतु स्वतः अनेन

उत्कर्षोऽपि उक्तः - त्वं कदाचिन् मारयस्यपि, कथामृतं तस्मिन्नपि काले जीवयति इति. भगवान् स्वतन्त्रः कथामृतं परतन्त्रम् इति एतावान् विशेषः. त्वं च अवतारे ब्रह्मादिभिः प्रार्थित आगच्छसि, आगतोऽपि तिरोभवसि, कथा तु समागता न तिरोभवति. अतएव तादृशं कथामृतं ये भुवि गृणन्ति तएव भूरिदाः बह्वर्थदातारः. ये इति प्रसिद्धाः व्यासादयः. भूरिदाश्च ते अजनाश्च. ते केवलं भगवद्रूपाः जननादिदोषरहिता वा. परं विरलम् अमृतं केवलं मरणोपस्थितौ तन्निवर्तकमेवेति, नतु संभूय एकत्र रसजनकम्. रसपिण्डयोरिव तव कथायाश्च विशेषो, अन्यथा कथार्थमेव यत्नः कृतः स्यात्. परं विरहे मरणनिवर्तकत्वेन तदुपयोग इति भगवत्त्वेन स्तूयते. अतः तैः भगवत्कथाकथकैः बहु दत्तम् इति तद्वशाद् जीवनम्. एतत्सात्त्विक्याः ॥९॥

विवरणम् :

आचार्यचरण कहें हें **ननु सर्वम् इदं प्रार्थितं भक्तेभ्यो देयं नतु अभक्तेभ्यः.** और तुम तो प्रार्थना ऐसी कर रही हो जो अभक्तकु कभी दियो ही नहीं जा सके. अरे प्रार्थना कर रहे हें, भक्ति नहीं होती तो प्रार्थना क्यों करती? तो कहें कि सच्ची भक्ति तुम्हारे हृदयमें होती तो भक्तिको स्वभाव स्नेहको होवे हे. **तद्विना स्थातुं अशक्यः,** ये स्नेहको स्वभाव, यदि सचमुचमें भक्ति तुममें हे, तो प्रभुके बिना तुम्हारी स्थिति नहीं होनी चइये. अब प्रभुके बिना तुम्हारी स्थिति हे, तो क्या सिद्ध होवे हे कि तुम्हारी भक्तिमें कहीं न कहीं कोई न्यूनता हे.

अभक्तत्वञ्च विरहेऽपि जीवनाद् अवसीयते. भगवान्के विरहमें तुमसु रह्यो जा रह्यो हे, विरह सह्य हे, येही भक्तिकी अपूर्णताको द्योतक हे. यदि पूर्ण भक्ति होती, तो भगवद्विरह सह्य नहीं होतो. ये तो प्रार्थना करवेवालेके स्वभावको विचार. अब प्रभुके स्वरूपको विचार करें तो **भगवांस्तु सर्वनिरपेक्षः न तस्य भवज्जीवनेन कार्यं.**

प्रभु तो निरपेक्ष हें, तो थोड़ीसी ज्ञानकी स्थिति अपना ले तो **"अजो नित्यः शाश्वतो अयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"** (भग.गीता २।२०). वा स्थितिमें भगवान्‌कु कोईके मरवेसु या जीवेसु कुछ अन्तर पड़े नहीं हे. क्योंकि प्रभुने जा तरहसु जीवको रूप धारण कियो हे, तो जीवनसु या मृत्युसु जीवकी क्षति तो होवे नहीं हे. जन्म और मरण सू जा देहकी क्षति होवे हे, वो देह तो क्षयिष्णु हे. कभी न कभी वाको क्षय होनो ही हे. वो ध्रुव हे. **"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च. तस्माद् अपरिहार्ये अर्थे न त्वं शोचितुम् अर्हसि"** (भग.गीता २।२७). वा न्यायसू या देहके शोककी भी संभावना नहीं हे. आत्माको जन्म मरण नहीं हे तो वाके शोककी भी संभावना नहीं हे. या स्थितिमें जीवके जन्ममरणसू जीवकु शोक-मोह तो अज्ञानके कारण होवे हे. अज्ञानके कारण अहंता ममता में बंधे हे. अज्ञानके कारण जीवकु देहमें अपेक्षा बंधे हे. वैसी अपेक्षा प्रभुकु नहीं हे. प्रभु सर्वतः निरपेक्ष हें. तो या जीवके जन्म और मरण सु प्रभुकु क्या हानि-लाभ होवेवालो हे! जब हानि-लाभ हे नहीं, तो समझो कोई गोपीने विप्रयोगमें देहत्याग कर भी दियो, तो प्रभुको वामें कोई शोक-मोह नहीं हे. **न तस्य भवज्जीवनेन कार्यं**. ये तो ज्ञानकी दृष्टिसु विचार करें. **लक्ष्मीसदृश्यो यस्य कोटिशो दास्यः. अतः "त्वयि धृतासव" इत्यपि असंगतम्**. लक्ष्मीके सदृश प्रभुकी कोटिशः दासीयें हें. तो त्वयि धृतासव ये जो मांग कर रही हें कि हम या लिये जीवित हें कि तेरेमें हमारे प्राण लगे भये हें, मने **"भई हे उदास तोहू हे मिलनकी आस."** और **"त्वयि धृतासव त्वां विचिन्वते"** ये जो बात कही वो राजसीकु लगे कि ये बात बराबर नहीं कही. अरे **"त्वयि धृतासव"** भगवान्‌के हेतुसू प्राणधारण कियो हे, भगवान् प्रकट नहीं हो रहे हें तो प्राण छोड़ दो. यदि सचमुचमें भगवान्‌के लिये प्राण धारण किये भये होंय तो और छूट जाते भी होंय तो प्रभुकु कोई हानि नहीं हे. अब ये भी राजसताके कारण वाकु भान होवे हे. समझो सचमुचमें कोईने प्राण छोड़ दिये, तो वाकु संदेह होवे

कि प्रभु फिर भी नहीं मिले तो?

कोई शायरने कही हे **“घबराके केहते हें कि मर जायेंगे. मरके भी न चैन पाया तो कहां जायेंगे.”** मर तो जायेंगे. मरवेसु जो चेन मिलतो होय तो मर जायेंगे, राजस हे ना! पर मनमें संदेह होवे कि मरके भी चेन न मिले तो कहां जायेंगे? तो ऐसो याकु हो रह्यो हे मर तो जायें चलो. **“त्वयि धृतासव त्वां विचिन्वते.”** यदि फिर भी प्रभु प्राप्त नहीं भये, क्योंकि यदि प्रभु निरपेक्ष ही हें, जैसे ऐहिक जीवनमें प्रभुकु अपेक्षा नहीं हे, तो ऐसे ही अनैहिक जीवनमें. अरे जामें आत्माकी नित्यता हे वामें ही प्रभुकु कौनसी अपेक्षा होगी! ये निरपेक्ष हे तो निरपेक्ष हे. अब निरपेक्षकु कैसे सापेक्ष बनानो वाके मनमें ये संदेह हे. क्या करें कि प्रभु सापेक्ष हो जायें? वाकु ये समझमें आ जाये कि चल तू निरपेक्ष हे तो रेह पर हमतो सापेक्ष हें. ये बात वाकु कैसे कन्वे करी जाये? हमारी अपेक्षाकु गौण मत समझ, ये वा निरपेक्षकु कैसे समझायो जाये कि हमारी अपेक्षा गौण नहीं हे.

तस्माद् व्यर्थमेव प्रार्थनम् इति आशंकच्य परिहरति. यदि भगवान् निरपेक्ष हें तो सारी प्रार्थनायें **‘त्वयि धृतासवः’** इत्यादि बेकार हें. फिर ख्याल आवे कि ये बात कही या लिये प्रभु प्रकट नहीं भये. यदि ठीक तरहसु कही जाती तो प्रकट होते. कहीं केहवेमें गल्ती हो गई. “धृतासव त्वयि विचिन्वते” यों कहें कि तेरे हेतु प्राण धारण किये हें तब ही तो ये युक्ति आवे तो मरी क्यों नहीं अगर प्रकट नहीं भये तो, प्राकट्र्य नहीं भयो तो? नहीं भये पर अब तो प्राणत्याग होने चइते थे. तो वाकु सुधारके कहे हें कि हम मरी नहीं तो वामें हमारो कोई कारण नहीं हे पर तू खुद ही कारण हे. हमारी भक्तिको और अभक्तिको प्रश्न तो गौण हे. हमारी भक्ति या अभक्ति को प्रश्न यहां मुख्य नहीं हे. मुख्य

बात ये हे कि हमकु विप्रयोगमें भी तेरी कथा मरवे नहीं दे रही हे. हम मरवे तो तैयार हें. नहीं प्राण छूटें तो क्या करें! आदमी मर जाये तो प्राणतो छूटने चइयें ना, नहीं निकलें तो क्या करें!

श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें “**त्वद्वियोगे य आद्यो मच्छ्वासो निर्गमद् बहिः तेनैव सह चेत्प्राणा न ययुः तर्हि किं ब्रुवे.**” (विज्ञप्ति १।२७) कहें हें कि तेरे विप्रयोगमें, जा बखत प्रथम श्वास निकली, दरअसल वा प्रथम श्वासके साथ ही प्राण निकल जाने चइते थे पर नहीं निकले. अब बोल मैं तोकु दूसरी क्या सफाई दूं! निकलवे चइते थे पर नहीं निकले. कौनसी सफाई हो सके हे! तो ये सात्त्विकी गोपिका केह रही हे कि एक याकी सफाई हे और वो सफाई हे कि **तव कथामृतं तप्तजीवनं**. तेरी कथा हमारे प्राणनूकु बांधके रखे हे. छूटवे नहीं दे. तेरी कथाको एक ऐसो आकर्षण हे.

घनानन्द बहोत सुन्दर कहे हे “**बहोत दिनान्की अवधि आस पास परे, खरे अरबरनि भरे हें उठि जानको. कहि कहि आवन संदेशो मनभावनकों गहि गहि राखत ही दे दे सन्मानकों. झूठी बतियानिकी पत्यानितें उदास व्हे कै, अब न घिरत घनानन्द निदानकों. अधर लगे हें आनि करिवे पयान प्राण चाहति चलन ये संदेशो ले सुजानकों**” (घनानन्द.   ). ये जावेके लिये सर्वदा उद्यत सामान बांधके सर्वदा तैयार बेठ्यो हे.

हमारे पंडितजीकी बात हमने आपकु बताई ना! हमारे पंडितजी रोज बिस्तर बांधते, घरमें ही रेहते, कहीं नहीं जाते पर सुबह उठके बिस्तर रोज बांध लेते. क्यों? इलेवन्थ् अवरमें कोई कहे कि ‘चलो’ तो बिस्तरा बंध्यो भयो हे. वा बखत ये नहीं कि बांधवेकी जरूरत हे. तो भगवद्विप्रयोगमें भक्तके प्राण बिस्तर तो बंधे भये हें, कथाके दरवाजा जा बखत, कथाकी वायु उन दरवाजानूकु बंध रखे तो बिस्तर

बंधे भये भी क्या काम आवें? वो निकलवे ही नहीं दें. ये कथाकी वायु ऐसी चले, तो दरवाजा वासू जाम बन्ध हो जाये. वामेंसु बाहर चाहें भी तो निकल नहीं सकें. अब कहें हें. **न इदं जीवनम् अस्मत्कृतिसाध्यं किन्तु विरहेण प्राणानां गमने तव कथा प्रतिबन्धं करोति.** विरहमें प्राण जानो चाहें हें पर ये कथा अनवरत कुछ एन्टी-प्रोसेस् चलावे हे. जैसे रेडियेटर् गाड़ीमें पानी सरक्युलेट् करतो रहे और इंजनकु ठण्डो करतो रहे. अगर रेडियेटर् नहीं होवे तो इंजन गरम हो जाये और फुंक जाये. अगर रेडियेटर्में पानी भर्यो रहे और सरक्युलेट् होतो रहे तो वो वाकु गरम होवे नहीं दे. ऐसे कथा, कथामृत भी ऐसो ही हे. कथा दो तरहकी. एक भगवत्कथा तो भगवत्संयोगानुभवमें और एक कथा भगवद्विप्रयोगानुभवमें.

जा बखत रामचन्द्रजी वनवास पूरो करके पाछे पधारे, तो भवभूतिने बहोत सुन्दर बतायो हे कि जितने वनवासके चरित्र हते, उनकु रामचन्द्रजीने अपने अयोध्याके भवनमें चित्रित करवायो. जब चित्रित करवाये तो नाशिकके पास एक पहाड़ी हे, जहांपे श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी ने रात्रि निवास कियो हतो. वो चित्र जब आयो तो रामचन्द्रजीको एक बहोत सुन्दर श्लोक हे. "**किमपि किमपि मन्दं मन्दम् आसक्तियोगाद् अविरलितकपोलं जल्पतोर् अक्रमेण अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोर् अविदितगतयामाः रात्रिरेव व्यरंसीत्.**" (उत्त.राम.१।२७). जब नाशिक आये थे तबतक ये सूर्पनखाको काण्ड भयो नहीं हतो. सीताहरण नहीं भयो थो. वहींसु अरण्यकाण्ड चालू भयो हे. नहीं तो वहां तक तो उनकी यात्रा सुखद रही. तो प्रथम निवास वहां कियो. वहां नीचे लक्ष्मणकुण्ड हे. ये दोनों ऊपर टेकरीपे रहे हते. विश्राम कियो थो. पेहली बार जब इन दोनोंनूकु वननूके नये नये अनुभव भये तब वननूकी चर्चा रात भर चलती रही. रात भर ये चर्चा चलती रही कि अयोध्या कैसी हे, अयोध्याके लोग कैसे हें और वनमें वो ठिकानो कैसो आयो और ये ठिकानो कैसो आयो, "**अविदित**

गतयामा: रात्रिरेव व्यरंसीद्''. रात्रिके याम कब बीत गये ये पता नहीं चल्यो. श्रीरामचन्द्रजी कहें कि ऐसी रात्रि बीत गई. मने रात्रिके कलाक कब बीते ये पता नहीं चल्यो, ऐसे पूरी रात्रि ही बीत गई. क्योंकि वो संयोगकी रात्रि हती. वाके बाद तीव्र विप्रयोगकी रात्रि आई. वो रात्रियें ऐसी रात्रियें हती कि जा रात्रिमें वा रात्रिको कभी सुख भयो ही नहीं. तो ये संयोगकी कथा भगवत्कथा, एक अलग कथा हे. ये कथा **''जल्पतो अक्रमेण''** जो रात भरमें चर्चायें चली, उनको क्रम नहीं हतो. एक क्रमसु दूसरो क्रम चल्यो गयो, दूसरी बातसु तीसरी बात आ गई. तीसरी बातसु और बात आ गई और रात भर कथा चलती रही. बिना क्रमके चलती रही, वामें कोई क्रम नहीं हतो फिर भी इतनी निरन्तर हती कि वो कथा सारी रात्रिकु बिता सकी. बहोतसे कहें हें कि **''रात्रिरेवं व्यरंसिद्''** ऐसो पाठ हे.

कालीदासके एक श्लोकमें भवभूतिने संशोधन कियो कि तेरे अमुक श्लोकमें मेरेकु ये संशोधन उचित लगे हे. तो कालीदासने कही कि अच्छो पर मेरेकु संशोधन नहीं करनो हे, कोई परिवर्धन नहीं करनो हे, केवल एक शोधन करनो हे और वाने बिन्दु हटा दियो. भवभूतिने लिख्यो थो **''अविदित गतयामा: रात्रिरेवं व्यरंसीद्.''** जा रात्रिके कलाक कब बीते ये पता नहीं चल्यो, ऐसी तरहकी रात्रि बीत गई. कालीदासने **'रात्रिरेवं'**पेसु बिन्दु हटा दियो कि जा रात्रिके कलाक कब बीते ये पता नहीं चल्यो, 'रात्रिरेव' हो गयो. ऐसी रात्रियां ही बीत गई वनमें. अब वैसी रात्रि नहीं आई और सब रात्रियां आई पर वैसी रात्रि नहीं आई. रामकथामें नाशिककी वा टेकरीपे जो रात्रि आई वो रात्रियें फिर लौटके कभी नहीं आई. **''रात्रिरेव व्यरंसीद्''**, एक बिन्दु हटाके कालीदासने पंक्तिको अर्थ कितनो बदल दियो!

वहां भगवान्के संयोगानुभवको कथामृत हतो, ये जो कथामृत हे, ये वियोगानुभवको कथामृत हे. फर्क क्या? भगवान्के संयोगमें भगवान्के साथके अनुभवको कथामृत हे. भगवद्विप्रयोगमें भगवान्के बारेमें भगवत्कथा भक्तन्की होवे हे. भगवान्के साथ भगवत्कथा, अपन् अपने अनुभव ही सोचें, कि यहां ऐसो भयो, यहां ऐसो भयो. याको भी एक बड़ो आनन्द हे और कोईके बारेमें अपन् सोचें, तो वो आखो दूसरो स्वरूप हे.

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिः ईडितं कल्मषापहम्. विरहेण प्राणानां गमने तव कथा प्रतिबन्धं करोति. कथायाः पुनः यथा तव सामर्थ्यं तथाः; सापि षड्गुणात्मिका मोक्षदायिनी परमानन्दरूपा च. कहें कि हम क्या करें! तेरी कथामें ऐसो सामर्थ्य हे जो तेरेमें सामर्थ्य हे. वा कथाकु सुनवेमें हमकु तन्मय नहीं होनो पड़े हे, कथा हमकु तन्मय करे हे. कारण क्या? कथा भी षड्गुणा हे. जैसे प्रभुमें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य आदि गुण हें, याही तरहसु कथामें भी छेहों गुण हें. परमानन्द मोक्षदायिनी हे. परमानन्दरूप हे. या लिये कथाकु अमृत कह्यो जाय. **तव कथामृतं** जैसे प्रभु स्वरूपसू मोक्ष दान करें हें, ऐसे ही अपनी कथासू भी प्रभु मोक्ष दान करें हें. प्रभुको स्वरूप जैसे आनन्दात्मक परमानन्दात्मक रसात्मक हे, वाही तरहसु कथाको स्वरूप भी आनन्दात्मक परमानन्दात्मक रसात्मक हे.

अमृतं भगवद्रसात्मकं, सर्वेषां मरणादिनिवर्तकं यद्रूपं तद् 'अमृत'शब्देन उच्यते. ये भगवान्को एक ऐसो रूप हे कि जो परीक्षितने सुन्यो तो **"नैषा अतिदुःसहाक्षुद् मां त्यक्तोदमपि बाधते पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्** (भाग.पुरा.१०।१।१३) जल भी छोड़ दियो, क्योंकि ये भी मोकु बाधा नहीं करे हे क्योंकि कथामें ऐसी आप्ययात्मकता हे, आल्हादकता हे कि वो वाकी विस्मृति करा सके हे. **अतो मोक्षदातृत्वं परमानन्दरूपता च सिद्धा. इदानीं षड्गुणान् निरूपयन्ति तप्तजीवनम्**

इत्यादि षड्भिः पदैः. भगवत्कथामें भगवान्में जैसे छेहों गुण हें. ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य आदि याके लिये गोपिकायें छे बात केह रही हें कि भगवत्कथा **तप्तजीवन** हे, **कविभिरीडित** हे, **कल्मषापहा** हे, **श्रवणमंगल** हे, **श्रीमद्** हे और **आतत्** हे. इतने छे गुण हें और ये गुण भगवान्के एक एक गुणके समान गुण हें.

कल्मषापहा मने **कल्मषं पापं अपहरति दूरी करोति कल्मषापहं. कविभिः ईडितम्** कविलोग जाकी प्रशंसा करें. यद्यपि भगवद्विप्रयोग होवेके बाद पेहली सांस जो निकली, वा सांसके साथ प्राणनृकु निकल जानो चइतो थो पर नहीं जा रहे हें वामें कारण हमारो अभक्त होनो नहीं हे पर तेरी कथाको असाधारण सामर्थ्य ही हेतु हे. तो कहें हें कि कथा करके क्यों प्राणकु टिका रखो? कथा करके प्राणकु टिकाओ क्यों हो? जैसे आदमी अनशन करे और नींबूको पानी पी-पीके जीवित रहे. ऐसे जीवित रेहवेकी क्या आवश्यकता हे? जब अनशन कर रहे हो, तो ऊपर जावेकी जल्दीसु जल्दी तैयारी करो. नींबूको जल पीके अपनेकु टिकाके रख रहे हो वाको मतलब हे कि तुम भोजन नहीं पर भोजनको परिणाम तो चाह रहे हो! तो गोपिकायें जीवेके लिये कथा कर रही हें या कथा करवेके कारण जी रही हें? गोपिकायें जीवित रेहवेके लिये कथायें नहीं कर रही हें, कथा तो बरबस चल रही हे. क्योंकि कथा बिना रह्यो नहीं जा रह्यो हे और कथा बरबस चल रही हे, वासु मर भी नहीं रही हें. ये गोपिका वकालत कर रही हे कि हम जीवेके लिये कथा नहीं कर रही हें पर कथा चल रही हे याके कारण जीवित हें. कथा कर रही हें वामें हमारो कोई सामर्थ्य नहीं हे. कथा हो रही हे, कथा करी नहीं जा रही हे. कथा की जाये और कथा हो रही हे. कथा करी नहीं जा रही हे. कथा की जाये और कथा हो रही होय वाको अन्तर क्या हे?

हमसु लोग कहें कि ‘‘हम मानसी सेवा करें, ऐसी-वैसी सेवा नहीं करें.’’ पर मानसी सेवा करवेकी छूट नहीं दी जाये. मानसी सेवा तो जाकु हो जाये तो वाकु हो जाये. मानसी करवेकी छूट दे दें तो वो सेवा नहीं होके सेवाको आभास मने ‘ड्रामा’ केहलायेगो. मानसी सेवा करी नहीं जाये पर हो जाये हे. ‘‘केवल मानसी सेवा करें हें’’ ऐसे जो कहें हें उनकु निश्चित समझो कि वे कुछ भी नहीं कर रहे हें. खाली बेठे भये हें भैंसकी तरह. मानसी सेवा कभी करी नहीं जाये. ऐसे ही कथा भी करी जाये वो कथा फलरूपा कथा नहीं हे.

जब कथा होवे लगे तब सच्ची कथा समझियो. अपन् बेठे भये हें, जैसे अपनूकु गामकी खटपट याद आवे, याने वो कही वाने वो कही याने यों करी, वाने वैसे करी, ऐसे भगवत्कथा जो याद आवे लग जाये तो कथा हुई केहवावे. बेठके करी तो ठीक हे **‘‘न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिम् तात! गच्छति’’** (भग.गीता ६।४०) तो वामें दुर्गति तो नहीं हे पर कथा हो जाये और कथा करी जाये वामें बहोत अंतर हे. तो गोपिका कथा कर नहीं रही हें. गोपिकानूसु कथा हो रही हे. हो रही हे कथा वाके लिये जी रही हें. जा दिन कथा नहीं हो पायेगी, वा दिन उनके प्राण नहीं टिक सकेंगे. कथा करके जीवित रेहनो, ऐसो कोई मोटिवेशन् गोपिकानूको नहीं हे.

श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें **‘‘त्वन्नामोच्चारणेऽपि अस्ति न जीवेषु अधिकारिता अलौकिकत्वात् त्वन्नाम्नः मद्वाचो लौकिकत्वतः’’** (विज्ञप्ति १।१६) कथाकी बात तो दूर हे, तेरे नामके उच्चारणको हमकु अधिकार नहीं हे. हम अपने हिसाबसु विचारें, यदि मेरी सामर्थ्यसू मैं विचारूं तो तेरो नाम ले सकूं इतनी सामर्थ्य मेरेमें नहीं हे. कारण क्या कि तेरे नाम अलौकिक हें और मेरी वाणी लौकिक

हे. यदि मेरी वाणीसु वो अपने आप बरबस फूट नहीं पड़ते होंय तो तेरे अलौकिक नामनूकु मेरी लौकिक वाणी कैसे बोल पायेगी! वो नाम गोपिकानूके मुंहसु बरबस फूट रहे हें. तो गोपिकानूकु जीवेकी कोई आकांक्षा भगवद्विप्रयोगमें नहीं हे.

“**त्वद्वियोगे य आद्यो मच्छ्वासो निर्गमद्बहि: तेनैव सह चेत्प्राणा न ययु: तर्हि किं ब्रुवे**” (विज्ञप्ति१।२७.) ये गोपिकानूको भी दृढ़तर विश्वास हे, **किं ब्रुवे! तप्तजीवनं तप्ता ये संसारे तेषां जीवनं यस्मात्. अमृतं हि तापनिवर्तकं प्रसिद्धमेव. वैराग्यं च भगवतो ज्ञानं वा सर्वतापनिवर्तकम्. यत्संस्कारयोग्यं तद् ज्ञानेन नश्यति यदयोग्यं तत्परित्यागेन. अतएव स्मार्तै: संस्काराशक्तै: परित्यागएव बोध्यते.**

तव कथामृतं तप्तजीवनम् हे प्रभु! तेरी कथा तप्तजीवन हे. जैसे तेरेमें ज्ञान और वैराग्य धर्म हें, तेरे ज्ञान और वैराग्य धर्मके कारण तू संसारके तप्तजीवनूके जीवन रूप हो जाये हे. कैसे? गीताके विभूति योगमें जैसे “**यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमद् ऊर्जितमेव वा तत्तदेव अवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्**” (भग.गीता१०।४१) कह्यो, वा सिद्धान्तके अनुसार, श्रीमद् ऊर्जित तेजस्वी वस्तु कोई भी ऐसी नहीं हे कि जामें भगवदंशको प्रकाश न होय. ‘**द्यूतं छलयताम् अस्मि तेजस् तेजस्विनाम् अहम्**” (भग.गीता१०।३६). यदि द्यूतके द्वारा छलवेमें कोई आदमी बहोत चतुरता रखतो होय, दुनियामें कोई सबसु बड़ी छलना हे तो वो हे द्यूत. अब याको गलत अर्थ तात्पर्य मत लीजियो. जैसे कोईने महाभारत सुनी. वासु पूछी कि “क्या समझमें आई महाभारत? पांच पाण्डव द्रोपदीके हते. तो अब पांच नही तो दो-तीन तो हो सकें कि नहीं?” ऐसे खोटे अर्थ मत समझियो. “**द्यूतं छलयताम् अस्मि**” चलो द्यूत भगवान्को छलनाको रूप हे तो अपन् द्यूतकी ही उपासना करें. या कथाको ये तात्पर्य नहीं हे. जब जुआमें हार गये और द्रोपदीको वसन खींच्यो गयो तो वाके

पांच पाण्डव हते, वा बखत सिवाय कृष्णके उन पांचन्मेंसु कोई एक भी बचायवे नहीं आ सक्यो. पांच पाण्डवन्को तात्पर्य ये भयो के द्रौपदी जाके पांच पति हते वो नहीं बचा पाये. यदि कृष्ण नहीं आते तो द्रोपदीकी क्या गति होती? ऐसे ही "द्यूतं छलयतामस्मि" याको तात्पर्य उलटो नहीं लें. शुद्ध अर्थमें अपन् समझें तो एक बात समझमें ये आवे कि प्रभुकी विभूति जहां भी प्रकट भयी, जैसे भी प्रकट भयी, वा रूपमें वो भगवान्की ही सामर्थ्य हे. अब वो चाहे संहारमें प्रकट हो पालनमें प्रकट हो चाहे उत्पादनमें प्रकट हो. द्यूतकु अपन् शायद संहारक सामर्थ्यमें लें, पालन सामर्थ्यमें नहीं लेवें. पर उत्पादन पालन या संहार जो भी सामर्थ्य प्रकट होवे जा तरहसु तो वो सामर्थ्य प्रभुको ही हे.

एक सामान्य बात बताऊं जासू समझमें आ जायेगी बात. जैसे टेपरेकोर्डर् बोल रह्यो हे तो बिजलीकी सामर्थ्य हे, पंखा हवा दे रह्यो हे तो बिजलीकी सामर्थ्य हे, बल्ब् जल रह्यो हे वो बिजलीकी सामर्थ्य हे. अब इनकु आपसमें देखोगे तो कोई सम्बन्ध नहीं हे. रेडियोके बजवेको और इंजनके चलवेको क्या सम्बन्ध? क्या इंजन और रेडियो के मेकेनिज़म् एक जैसे हें? नहीं हें अलग हें. याको मेकेनिज़म् कुछ और ढंगको हे और वाको मेकेनिज़म् कुछ और ढंगको हे. तो जो भी मेकेनिज़म् काम कर रह्यो हे, चल रह्यो हे तो वामें बिजली हे. बिजली नहीं हे तो बेठे-बिठाये मशीन् नहीं चल पायेगी. अभी तक ओटोमेटिक् मशीन् भी कोई ऐसी ओटोमेटिक् मशीन् नहीं बनी कि जामें कोई तरहकी ऊर्जा नहीं होय. अब तारसु आती भई बिजली नहीं होय तो बेटरीकी बिजली होय, कुछ न कुछ बिजली हे. खाली मशीन् अपने आपमें चल नहीं सके हे. ऐसे ही उत्पादन सामर्थ्य कोई बातकु पैदा कर सके दुनियामें या ऐसे गुण कि जो कोई चीजको पालन कर सकें हें. या ऐसे गुण कि जो कोई चीजको संहार कर सकें हें. जिनमें

अपन् द्यूतको गिन लें. वामें भी संहारकताकी कोई सामर्थ्य हे तो भगवान्को द्यूतमें भी शिवरूप प्रकट हो रह्यो हे. यदि द्यूतमें संहारकी सामर्थ्य हे कोई तो. यदि मदमें कोई संहारकशक्ति हे तो वहां शिवको संहारकरूप प्रकट हो रह्यो हे. शिव प्रकट हो रह्यो हे भगवान्को जो रूप हे. और कोईमें ऐसी सामर्थ्य नहीं हे कि वो संहार भी कर सके. क्यों? क्योंकि भगवान्ने ये सारी लीला अपनी क्रीड़ाके लिये की हे. क्रीडाके लिये जब सारे रूप हें तब दूसरो कोई माथापच्ची कर नहीं सके. सारी क्रीडा भगवान्के लिये भये रूप हें. यामें जो भी दूसरेने माथापच्ची करी, वाकु समझ नहीं आयो. **“क्रीडार्थम् आत्मनः इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यन्तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः”** (भाग.पुरा.८।२२।२०).

हमारे किशनगढ़के एक पंडितजी जटा-वटा बढ़ाके बम्बईमें आके बेठे. जब बम्बईमें जटा-वटा बढ़ाके बेठे तो फिल्मलाईन्वाले आये कि “महाराज शादी कराओगे?” उन्होंने कही कि “करायेंगे.” उन्होंने कही कि “चलो हमारे साथ.” तो उन्होंने सोची कि “शूटिंग् करनी हे तो कोन्शियस् हो जायेंगे कि शादी करानी हे और केमरामें दीखूंगो”, तो उन्होंने कही कि “शादी कराओगे” तो वो बोले “कराऊंगो.” मण्डप वण्डप तैयार हतो. सावधान वावधान सब होके कन्या पधराई गई. आहुतियें शुरु भई. अब वो घीके बजाय घासलेटकी आहुति हो रही थी. फिल्ममें घीकी आहुति क्यों डाली जायेगी! जब घासलेटकी आहुति पड़ रही थी तो इनसु रह्यो नहीं गयो. तो इनने कही कि ‘अनर्थ!’ तो वहांको डायरेक्टर् बोल्यो कि “ये क्या अनर्थ?” वाने स्क्रिप्ट् उठाके देखी कि “अनर्थ डायलोग् हे कि नहीं?” अनर्थ डायलोग् तो स्क्रिप्ट्में नहीं हतो. तो वाने पूछी कि “ये कौन बोल्यो अनर्थ?” तो उनने कही कि “घासलेटकी आहुतिसे शादी करवाओगे तो वरवधू कभी भी सुखी नहीं रहेंगे.” डायरेक्टर्ने कही कि “ये डायलोग् हे कि नहीं?” वो डायलोग् भी नहीं हतो. तो उनने

कही कि "निकालो धक्का देके बाहर. स्क्रीनप्लेमें जो डायलोग् लिखे भये नहीं हें तो वैसे डायलोग् क्यों बोले?" तो ऐसे भगवान्की क्रीडामें आपने ऐसो कोई डायलोग् बोल्यो जो भगवान्के स्क्रीनप्लेमें लिख्यो भयो नहीं हे, तो स्टेज्सु बाहर निकाले जाओगे. केवल वोही डायलोग् बोलवेकी छूट हे कि जितनो वहांके स्क्रीन्प्लेमें लिख्यो भयो हे. एक डायलोग् भी ज्यादा नहीं बोल सकें. अब वाकी बात तो खोटी नहीं हती कि "घासलेटकी आहुति डालोगे तो वरवधू सुखी कैसे होंयगे!" पर स्क्रीन्प्लेमें होनो चइये ना वो डायलोग्? बात सच्ची होते भये भी जा बखत स्क्रीन्प्लेमें नहीं हे तो डायरेक्टर्ने कही कि "हटाओ याकु."

"स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यसि अवशोऽपि तत्. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन! तिष्ठति भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत" (भग.गीता १८।६०-६१). जो तुमकु पार्ट दियो गयो हे वाके अनुसार ही डायलोग् बोले जायेंगे. मनसु डायलोग् बोले तो गेटआऊट् हो जाये आदमी. वो चाहे तुम अनर्थ बोलो चाहे तुम कुछ भी बोलो. अनर्थ बोले नहीं और अनर्थ हो गयो और बिचारेकु वा विवाहकी दक्षिणा भी मिली नहीं और बाहर भी काढ़्यो गयो ब्राह्मण. ऐसे ही विभूति भी भगवान्की ही सामर्थ्य हे. वो चाहे संहारक होय, चाहे उत्पादक होय चाहे पालक होय.

कुछ ज्ञानी अपने आपकु **"उद्धरेद् आत्मना आत्मानं न आत्मानम् असादयेत्"** (भग.गीता ६।५). न्यायसू यों समझें हें कि हम अपनी आत्मासु हमारो उद्धार कर लेंगे. **"अमृतत्वस्यतु न आशा अस्ति वित्तेन"** (बृह.उप.४।५।३). यों कहें हें. उनकु वित्त दीखे तो उनकु लगे कि अनर्थ. तो भगवान् कहें कि स्टेज्सु बाहर जाओ. वो सोचें **"ऋते ज्ञानाद् न मुक्ति"** (   ). उनकु लगे कि हम

अपने आप ज्ञान हासिल करेंगे. ब्रह्मको ज्ञान नहीं मात्र आत्मज्ञान हासिल करके हम मुक्त हो जायेंगे. तो भगवान् कहें कि "चलो स्टेज्के बाहर जाओ. तुम फिट् नहीं हो." क्योंकि आत्मज्ञानसु भी अगर मुक्ति होवेवाली हे, आत्मज्ञानमें भी यदि मोक्षत्व अमृतत्व हे, तो वो भगवान्के ज्ञानको अंशभूत ज्ञान हे, या लिये हे. या लिये नहीं हे कि ज्ञानमें अपने आपमें सामर्थ्य हे कछु. अगर ज्ञानमें सामर्थ्य होती तो शंकराचार्यके पेहले आइन्स्टीन् सबसू बड़ो मुक्त होनो चइतो थो. क्योंकि आइन्स्टीन् सबसु बड़ो ज्ञानी हतो. बर्टेन्ड् रसेल् कितनो बड़ो ज्ञानी व्यक्ति. ज्ञानसु मुक्ति होवे हे, रावणकी ज्ञानसु मुक्ति तो हती, वो मुक्ति तो बादमें भई पर रामने मार्‌यो वाके पेहले रावणकी मुक्ति होनी चइती थी. क्योंकि रावण भी बहोत बड़ो ज्ञानी हतो पर मुक्ति नहीं भई. क्योंकि ज्ञानसु मुक्ति नहीं होवे हे. ज्ञान जा बखत भगवद्‌ज्ञानको विभूति होयगो, वा बखत वो ज्ञान मोचक होयगो. वा बखत वो ज्ञान मोक्षप्रद होयगो. ज्ञान अपने आपमें मोक्षप्रद नहीं हे. वैराग्य वैराग्यके रूपमें मोक्षप्रद नहीं हे. भगवद्‌विभूतिको अंशरूप जो ज्ञान और वैराग्य हे, भगवान्में ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य, ऐसे छे गुण हें. मने भगवान्में भी ज्ञान हे, वैराग्य हे और जो व्यक्ति ज्ञानसू मुक्त होवे हे, वो या लिये मुक्त होवे हे कि भगवान्ने वाकु अपने ज्ञानको थोड़ोसो टच दियो हे. एषां जीव जैसे बिजली यामें आ गई तो रेकोर्ड चल गयो. बिजली नहीं आती तो टेपरेकोर्डर्को ये बटन दबाओ कि वो बटन दबाओ, चाहे सारे बटन दबाओ, टेपरेकोर्डर् नहीं चलेगो. ऐसे ही वैराग्यसु मुक्ति भई कोईकी, तो या लिये नहीं कि वैराग्यसु मुक्ति भई, वैराग्यसु मुक्ति या लिये भई कि भगवान्ने अपने अन्दर रह्यो भयो जो वैराग्य हे वाको करेन्ट् थोड़ो वामें प्रवाहित कर दियो. भगवान्को तो कोई भी गुण मोक्षप्रद हो जायेगो. मने भगवान्में तो द्वेष भी कियो तो मोक्ष देंगे, ज्ञान-वैराग्यकी तो बात क्या! भगवान्के गुणन्में तो ऐसी सामर्थ्य हे कि वो तो विषके बदले भी मुक्ति देवें हें. यदि ज्ञान-वैराग्य

भगवद्विभूतिरूप नहीं भये तो उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं हे कि वो मोक्षप्रदान कर सकें. तो बगेर भगवत्संबंधके अपने ज्ञान-वैराग्यसु अपनेकु मुक्ति नहीं मिले. मुक्तिकी बात तो दूर रही अपन् कोईको संहार भी नहीं कर सकें. श्रुति ब्रह्मवादको सिद्धान्त तो ये हे. या लिये कहें हें कि जो तेरी कथा हे, संसारके जो भी कुछ ताप हें, सुख-दुःखके शोक-मोहके वो ज्ञान-वैराग्यसु निवृत्त होवें हें और वो ज्ञान वैराग्य वस्तुतः जीवगत ज्ञान-वैराग्य नहीं हे, भगवद्गत ज्ञान-वैराग्य हें. वाको कारण क्या?

(कियान् पूर्वं जीवः!)

श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हैं "**कियान् पूर्वं जीवः तदुचितकृतिश्चापि कियती**" (विज्ञ.१।१). जीव कितनो सो! "**वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवः स विज्ञेयः सच आनन्त्याय कल्पते**" (श्वेता.उप.५।९). ये बाल जो होवे ना! वाकी जो नोक होवे, वाके सो हिस्सा करो और सो हिस्साके फिर सो हिस्सा करो. इतनो छोटो जीवको परिमाण मान्यो जाय. इतनो छोटोसो जीव इतनो कौभाण्ड रच रह्यो है. एक छोटोसो जीव कितने कौभाण्ड रचे है? इतने छोटेसे जीवमें जो भी कुछ सामर्थ्य है, यदि जीवके स्वभावसु विचारोगे, तो तो इतनी ही छोटी होयगी. जीवके सामर्थ्यसु कोई भी स्वभावके विचारसु कोई सामर्थ्य इतनी बड़ी नहीं हो सके, कि कोई आदमी खड़ो होके केह दे कि मैं संसारमेंसु मुक्त हो जाऊं और वो अपनी आत्माको ज्ञान प्राप्त करे. तो प्रभु कहें हैं "**उद्धरेद् आत्मना आत्मानं न आत्मानम् अवसादयेत्**" (भग.गीता ६।५) अपनो आत्मज्ञान प्राप्त करे और अपने आत्मज्ञानसु मुक्त हो जाये. अरे वो आत्मा कितनी! वा आत्मामें पैदा होवेवालो ज्ञान कितनो? वा आत्माकु जानवेसु इतनी छोटी वस्तुकु जान लेवेसु इतनी बड़ी मुक्ति कैसे हो पायेगी? पर हो जाये है. वाको कारण क्या? क्योंकि

करेन्ट् है यहांसु. जीवके स्वरूपके कारण नहीं है पर भगवदंशके कारण.

आचार्यचरण कहें हैं **"अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति"** (त.दी.नि.प्र.१।५४) ब्रह्म अणु होते भये भी व्यापक है और यशोदाजीकी गोदीमें जो कृष्ण बेठ्यो भयो है, वोही सारे ब्रह्माण्डको आधार हो जाये है. वाके लिये ब्रह्ममें ही व्यापकताकी सामर्थ्य आवे. ब्रह्ममें जो इतनी सामर्थ्य है वह वाकी अणुताके कारण नहीं है. आजकल लोगनूकु भ्रान्ति हो गई है कि एटमबम्बमें अणुताके कारण ज्यादा सामर्थ्य है. अणुमें ज्यादा सामर्थ्य अणु होवेके कारण नहीं होवे है पर अणु व्यापकको बहोत घनीभूत रूप है, वाके लिये अणुमें वो सामर्थ्य है. जैसे एक हांडा भर छाछमेंसु आपने थोड़ोसो मख्खन निकाल लियो, तो वाकी फेट् घनीभूत होके वामें आ जाये ना. यों दिखवेमें मख्खन थोड़ो दीखे पर वस्तुतः वो हांडा भरके छाछ है वो एक कटोरी भरके मख्खन भयो है. अब वो हांडाभरी छाछ नहीं होती तो वो मख्खन कहांसु आतो! नहीं आ सके. ऐसे अणुमें जो कछु सामर्थ्य है वो व्यापककी सामर्थ्य है. वो व्यापक वाके पीछे है याके लिये वामें वो सामर्थ्य है.

(तापनिवर्तकता)

तो ज्ञानमें जो तापनिवर्तकता है, वैराग्यमें जो तापनिवर्तकता है, वामें भगवन्निष्ठ-ज्ञान-वैराग्य है ताकी निवर्तकता है. ये जीवके स्वरूपविचारसु ज्ञान-वैराग्यमें तापनिवर्तकता नहीं है. जीव जो जाने है, या जीव जो विरक्त होवे है, वो तो निषेधात्मक ही है. आपको वैराग्य कोई चीजके स्वरूपकु परिपूर्ण न जानवेके कारण है. भगवान्‌को वैराग्य प्रत्येक वस्तुके स्वरूपकु परिपूर्णतया जान लेवेके कारण है.

(अज्ञानमूलक और ज्ञानमूलक वैराग्य)

तो अज्ञानमूलक वैराग्य और ज्ञानमूलक वैराग्य में कितनो अंतर है! जैसे चिन्टू मेरी बेटीकी बात बताऊं. चिन्टूकु हम समुद्रके किनारे ले गये. जब वाके सामने लेहर आई तो चिन्टू डर गई. डर गई तो समुद्रमें पानीमें तैर नहीं सके. समुद्रसु घृणा हो गई. अब ये जो समुद्रसु घृणा भई, वैराग्य भयो, ये ज्ञानमूलक हतो कि अज्ञानमूलक? यदि ज्ञानमूलक होतो तब तो दूसरी बात हती. अज्ञानमूलक हतो. वो कैसे पता चली. फिर वाकु हमने थोड़ो थोड़ो कोडाई-केनालके पानीमें न्हवायो. सब जनें न्हाये कोडाई-केनालके पानीमें. वासू वाकी थोड़ी थोड़ी हिम्मत खुली. अब यहांसू देखो निकले ही नहीं है. तो अब मोकु निश्चित विश्वास है कि दूसरे स्टेप्में याकु समुद्रमें ले जाऊंगो तो वो अज्ञानमूलक वैराग्य कितनो जल्दी दूर कियो जा सके ज्ञानसु. अब वो स्पष्ट प्रामाणिक वैराग्य नहीं रह्यो. कहां रह्यो वैराग्य? वो अब समुद्रमें अच्छी तरहसु न्हा ले है. अब वैराग्य कहां गयो? "तिया गई घर सम्पति नासी. मूंड़ मुंड़ाये भये संन्यासी." तुलसीदासजी कहें हैं कि औरत भाग गई, सम्पति नष्ट हो गई, चांद घुटाके संन्यासी हो गये. ये वैराग्य चांद घुटाके संन्यासी होवेको, ये ज्ञानमूलक है कि अज्ञानमूलक है? दरअसल तुम्हारे दिलमें दूखे कि औरत भग क्यों गई? भगती नहीं तो तुम्हारे वैराग्य आतो नहीं. सम्पत्ति जमा रेहती तो वैराग्य आतो नहीं. औरत भाग गई, सम्पत्ति नष्ट हो गई, तब वैराग्य आ गयो तो संसार मिथ्या दीखवे लग्यो और चांद घुटाके संन्यासी हो गये. ये वैराग्य अज्ञानमूलक वैराग्य है. ज्ञानमूलक वैराग्य नहीं है.

ज्ञानमूलक वैराग्य और अज्ञानमूलक वैराग्यको इतनो अन्तर होवे, जो ज्ञानमूलक वैराग्यमें ये बातें नहीं होवें. दु:खके कारण अपन् कोई चीजकु छोड़ें नहीं है. पूर्णतया वाकु जाने. चाहें तो वाके साथ रेह सकें, नहीं चाहें तो नहीं रहें. ऐसो वैराग्य शायद अपने आपमें

ज्ञानमूलक वैराग्य है. जैसे कृष्णको वैराग्य. सोलह सहस्र गोपिकान्के बीचमें वो ब्रह्मचारी है. ये ज्ञानमूलक वैराग्य है. "**पत्न्यस्तु षोडशसहस्रम् अनंगबाणैः यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैः न शेकुः**" (भाग.पुरा.१०।५८।४) ये भागवतकार कहे है. मनकु मथित नहीं कर सकी कोई. तो ये ज्ञानमूलक वैराग्य है. मन वाको मथित नहीं होवे है. मन वाको व्यथित नहीं होवे है. और चइये जो लीला करे. क्योंकि वाकी आसक्ति नहीं है, वाकी लीला है. तो याही तरहसु ज्ञानको अंतर हो जाये है. अपन् जो जाने हैं वो थोड़ो बहोत वैराग्य जानें हैं. वाको पूर्णतया नहीं जाने हैं. यहां अपनेकु कुछ न कुछ राग है. जा वस्तुमें राग है वा वस्तुकु जाने हैं पर सबको नहीं जान सकें हैं. एक चीजकु जा बखत आप जानो हो, एट्‌ ध्‌ कोस्ट्‌ ऑफ्‌ थाउज़न्ड्‌स्‌ ओब्जेक्ट्‌स्‌.

मैंने दर्शनशास्त्र पढ़्यो याको कारण क्या? मोकु इंजीन्यरिंग्‌में रुचि नहीं थी. मोकु आर्टस्‌में रुचि नहीं थी. मोकु मेथेमेटिक्स्‌ आती नहीं थी तो आदमी क्या करे? तो दर्शनशास्त्र पढ़ लियो. आजकल लड़कियें क्या करें? मैंने कई जगेह पूछ्यो यूनिवर्सिटीमें, सो सो छात्र होवें फिलोसिफी बी.ए. में. क्यों? इतने ज्यादा क्यों? अब पता नहीं घर जाके क्या करेंगी? पतिन्‌सु झगड़ा करेंगी, विवाद करेंगी, आज-कल सब लड़कियें फिलोसिफी लेवें. क्योंकि फिलोसिफी पढ़वेके बाद कुछ करनो नहीं. "हाथ पांव नहीं हिलना, दस बीस कोस नहीं चलना. राधेकृष्ण बोल मुखसु राधेकृष्ण बोल." सब लड़कियां दर्शनशास्त्र पढ़ें. कुछ करनो धरनो तो है नहीं. खाली बेठके सोचनो है. घरमें भी तो बेठी भई हैं शादीके सपना बनाके, तो दर्शनशास्त्र ही पढ़ लो. अब पता नहीं वो पढ़ाई भी काम आयेगी कि नहीं, क्या पता! तो अपन्‌ने भी विषय चुने हैं अपने लिये तो वामें भी अपने अपने राग और वैराग्य काम कर रहे हैं. शुद्ध विषयकु भी विषय जानवेके लिये अपन् कहां जानें. जो जानें हैं वो विशेष

जानें हैं. जो जानें हैं वो अपने रागसु जानें हैं और एकमें राग होवेको मतलब निन्यानवे वस्तुन्में वैराग्य. निन्यानवे वस्तुन्में वैराग्य हासिल करके एक वस्तुकु आप जान लो तो आपको वैराग्य खंडित हो गयो. तो ज्ञान वा अज्ञानसु क्या कम खोटो बताओ? भगवद्ज्ञान या तरीकेको ज्ञान नहीं है. भगवद्ज्ञान ऐसो ज्ञान नहीं है, वो सहज ज्ञान है. कोइ वस्तुमें विरक्तिजनक ज्ञान नहीं है. वस्तु निरपेक्षज्ञान है उनको, प्रभुको जो ज्ञान है, या तरीकेको ज्ञान और वैराग्य जो होय वो तापनिवर्तक होवे है. या तरीकेसु निन्यानवे वस्तुमें जो ज्ञान है और निन्यानवे वस्तुन्के अज्ञानसु जो वैराग्य आ रह्यो है, ये दोनों ज्ञान और वैराग्य अपूर्ण ज्ञान और वैराग्य हैं. जीव यासू ज्यादा क्या कर सकेगो? **''कियान् पूर्वं जीवः तदुचितकृतिश्चापि कियती''** यदि कोईने अपने ज्ञान या वैराग्य सु मुक्ति प्राप्त की है तो वामें थोड़ो भगवद्ज्ञान और वैराग्य को करेन्ट्र आयो है. मिल रह्यो है करेन्ट्र थोड़ो, तो वो यासु मुक्ति प्राप्त कर सके है. याके लिये श्रीमदाचार्यचरण कहें हैं **तव कथामृतं तप्तजीवनं. अमृतं हि तापनिवर्तकं प्रसिद्धमेव. वैराग्यं च भगवतो ज्ञानं वा सर्वतापनिवर्तकम्.** मैंने विषयान्तर नहीं कियो पर या बातकु समझाऊं नहीं तो ये पंक्ति समझमें नहीं आवे. मने भगवद्विषयक या भगवन्निष्ठ ज्ञान सर्वतापनिवर्तक है.

(संस्कारयोग्यता और त्यागयोग्यता)

यत्संस्कारयोग्यं तद् ज्ञानेन नश्यति यदयोग्यं तत्परित्यागेन. ज्ञान और वैराग्य की जोड़ीकु संस्कार चइये. प्रत्येक वस्तुको ज्ञान वा वस्तुको संस्कार है. यहां ज्ञान मने सच्चो ज्ञान. जा वस्तुकु आपने वाकी सचाईमें जान लियो तो वा वस्तुको आपने संस्कार कियो. वो वस्तु आपके सामने रिफाइन्ड्र हो गई. जैसे हीरा है. हीराकु आपने हीराके रूपमें जान लियो तो वो अपने आपमें हीराको संस्कार है. हीराकु हीराके रूपमें नहीं जान्यो तो वो असंस्कृत हीरा है. वस्तुमें भी असंस्कृत है और ज्ञानमें भी असंस्कृत रहेगो. वाकी कीमत

क्या रहेगी? पर जा दिन आपने जान लियो कि "ये हीरा है", वा दिन वो कांच नहीं रेह जायेगो. वह कांचके बजाय, पथ्थरके बजाय हीरामें रिफाइन्ड् हो जायेगो. पर यदि आप हीराकु जान नहीं पाये, तो हीरा भी क्रूड् हो जायेगो पाछे पथ्थरके रूपमें. तो ज्ञान अपने आपमें वस्तुको संस्कार है.

एक बहोत सुन्दर बात आचार्यचरण कहें हैं कि जाको संस्कार कियो जा सके है वाकु ज्ञानसु संस्कृत करनो चइये और ज्ञानसु जाकु संस्कृत नहीं कियो जा सके वाकु छोड़्यो जाय है. जैसे जगत्कु छोड़नो है. तो जगत्कु छोड़वेमें आचार्यचरण यों नहीं कहें हैं कि जगत्कु छोड़के आप भाग जाओगे तो जगत् छूट नहीं जायेगो. समझो संन्यास लेके परिवार छोड़ दियो. तो परिवारकु छोड़वेसु जगत् छूटेगो नहीं. परिवारकु छोड़वेसु जगत् पीछे पड़ जायेगो.

अभी हमने अपने एक लेखमें लिख्यो कि श्रुतिने अपनेकु बतायो लोकेषणा पुत्रेषणा और वित्तेषणा. इन तीन ईषणानूकु छोड़े तब जाके वैराग्य सिद्ध होवे. "**लोकेषणाया पुत्रेषणाया वित्तेषणाया उत्थाय**" (बृह.उप.३।५।१). मने लोकमें अपनी कीर्तिकी कामना, पुत्रकी कामना और वित्तकी कामना. इन कामनानूसु जा बखत ऊपर उठे, तब वैराग्य सम्पन्न होवे. लोगनूने गलत अर्थ समझ लियो है याको. उनने कही "चलो छोड़ दो." छोड़के एक मठ बनायो वैराग्य लेके. अब मठमें सो शिष्य आ गये. अब शिष्यकु बेटा नहीं कहोगे तो क्या कहोगे? अब शिष्यनूके लिये तुमकु सामान जुटानो पड़ेगो. ट्रस्ट् करनो पड़ेगो मठको. तो वित्तेषणा भी आयेगी. अब वाकु पोप्युलराईज़् करवेके लिये तुमकु लोकेषणा भी लानी पड़ेगी. तो जितनी एषणायें छोड़ी वो सब मल्टीप्लाई होके शिष्यमें आ गई. जितनी एषणायें छोड़ो वो सब मल्टीप्लाई होके एकमें आ जायें. तीनके बराबर एक शिष्येषणा. वामें सब एषणायें छिपी भई हैं. जितने भी संन्यासी हैं वो शिष्यकु

बेटा कहें कि नहीं? शिष्यके लिये घर बनानो पड़े कि नहीं? गाम गाममें मठ बनाने पड़े. करे क्या? अरे तो यासु गृहस्थ क्या खोटो हतो! एक घरमें तो रेह रह्यो थो शान्तिसु. पंचायत तो कम हती. बेटायें पैदा होते तो कितने होते? मने कौरवके सो बेटा पैदा भये. अब हजार शिष्य एक एक मठमें होवें. तो एक हजार शिष्य हो जायें तो बेटान्सु कितनो बड़ो परिवार हो जाये? सारी पंचायत ज्यादा बढ़ जाये. तो श्रुतिने जो उपाय बतायो वाकु अपन्ने समझ्यो नहीं, गलत ढंगसू एडोप्ट् कियो तो वो उलटके और सामने आ गयो. तो ये जो तीनों एषणायें हैं वो अपनो पिण्ड नहीं छोड़ें. कहीं न कहीं पीछे लगी रहें अपने. अन्तर क्या है कि रूप बदल जाये. जैसे बच्चाकु तुम दूध नहीं दो तो वो अंगूठा चूसवे लग जाये. रबरकी टोंटी चूसवे लग जाये. वो ओर कुछ रूप हो जाये वाको. बात भूखके कारण नहीं है. तुमने दूध दियो और वाकी भूख मिट गई. ये बात नहीं है. मने तुमने एषणान्कु काट दी तो कटेंगी नहीं. उनकी नीचेकी जड़ जबतक नहीं कटेंगी तबतक वो एषणायें कोई न कोई दूसरे रूपमें आ जायेंगी. तुमकु पता भी नहीं चलेगो कि वो एषणायें हैं भी कि नहीं. केहवेकु तो हमने मठ बनायो पर मठसू घर क्या खोटो हतो! कोई भी अच्छे मठन्में जाओ तो एअरकन्डीशन् मिले. अच्छे अच्छे गद्दान्पे सोफा-सेटपे भगवा कपड़ा बिछा दें. तो यासू गृहस्थ क्या खोटो हतो! अब मठकु ट्रस्ट् तो करानो ही पड़े क्योंकि कायदा ऐसे आ गये हैं. ट्रस्ट्में डोनेशन् भी बिना टेक्स्के आ जाये. ये चक्कर पड़ जाये. वाके लिये आचार्यचरण कहें हैं **यद् संस्कारयोग्यं तद् ज्ञानेन नश्यति**. इन तीनों एषणान्कु यदि तुमकु नष्ट करनो होय तो छोड़के नष्ट नहीं होयगो, वाको सच्चो स्वरूप समझो कि वो एषणायें तुमकु कहां मार रही हैं. लोकेषणा पुत्रेषणा और वित्तेषणा तुमकु कैसे मार रही है? इनको सच्चो स्वरूप समझ जाते तो वो अपने आप नलीफाई हो जातो. इनको सच्चो स्वरूप नहीं समझके इनकु अपन् छोड़वे

गये तो उनने पलटके अपन्‌कु मार दियो.

ये कुत्तान्‌की खास आदत होवे. जा बखत गांवमें जायें अपन् तो भौं भौं करके तूटे अपनेपे. खडे रहो वाको रूप समझके कि ये कुत्ता है तो कछु नहीं करेगो पर भागे तुम तो काट ही खायेगो. दोड़ेगो ही नहीं काट ही खायेगो. तुम भागे और वो नहीं काटतो होय तो काट ले. ये सारी एषणायें कुत्ता हैं. जा बखत इन एषणान्‌सु डरके भागे, तो वो काट खायेंगी. इनको सच्चो स्वरूप समझ लो कि ये सारी एषणायें कुत्ता हैं जो कि भौं भौं करके चुप हो जायेंगी, करेंगी कुछ नहीं. एषणान्‌को स्वरूप ऐसो है. इनको स्वरूप पेह्चाननो पड़ेगो. यदि इनकु नष्ट करनो है तो आचार्यचरण कहें हैं **यद् संस्कारयोग्यं तद् ज्ञानेन नश्यति.** यदि संस्कारसु सुधार्‌यो जा सके कोई चीजकु तो वाकु नष्ट करवेकी जरूरत नहीं है, वाको सच्चो स्वरूप जानवेकी जरूरत है.

जो संस्कारसु सुधारी नहीं जा सके, वाकु आचार्यचरण कहें कि त्यागसु वाकु नष्ट कियो जा सके है. जैसे मद्य, मद्यकु तुमने जान लियो कि ये मद्य है करके पिवोगे? तो वो रिफाईन् नहीं हो पायेगी. क्योंकि मद्य संस्कारके योग्य नहीं है. तो वाको वैराग्यसु नाश होयगो. वाको ज्ञानसु नाश नहीं होयगो पर जो संस्कार योग्य वस्तु है जाकु सुधार्‌यो जा सके है और जाकु नहीं सुधार्‌यो जा सके, हर चीजकु परखनो चइये. जा चीजकु सुधारी जा सके है वाको ज्ञानसु नाश होवे है. जाकु सुधार्‌यो नहीं जा सके, जाको संस्कार नहीं कियो जा सके वाको वैराग्यसु नाश होवे. तो ये जो एषणायें हैं इनकु सुधारी जा सके हैं. "**पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः**" (निरो.ल.१८). आचार्यचरण कहें हैं. ऐसे वित्तेषणा है तो "**धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुम् न शक्यते कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीतः कृष्णो अनर्थस्य वारकः**" (त.दी.नि.२.२५६). जिनको संस्कार कियो जा सके है, तो

इनको सच्चो स्वरूप समझवेमें ही तापको नाश है. इनकु नष्ट करवेकी जरूरत नहीं है. जिनको संस्कार नहीं हो सके, जैसे मद्य है या हिंसा ही है, हिंसाको संस्कार नहीं हो सके. तो वाको फिर वैराग्यसु त्यागसु नाश होवे है. ये इनको स्वरूप हतो पर जब विवेक किये बिना सब मिथ्या है, मिथ्या है करके वाकु छोड़ दें तो वामें गड़बड़ हो जाये. सब चीज मिथ्या नहीं हैं. सब चीज सत्य हैं पर कुछ चीज संस्कारके योग्य हैं, कुछ सुधारी जा सकें हैं, कुछ नहीं सुधारी जा सकें हैं. जो नहीं सुधारी जा सकें हैं, उनको वैराग्यसु त्याग है और जो सुधारी जा सकें हैं उनको ज्ञानसु त्याग है.

(संस्काराशक्तैः परित्यागएव बोध्यते)

यहां देखो कैसे चूंटीयां भरें हैं आचार्यचरण. **अतएव स्मार्तैः संस्काराशक्तैः परित्यागएव बोध्यते**. जो लोग या सत्यकु समझ नहीं पावें हैं, जिनमें ये सामर्थ्य नहीं है वस्तुकु सुधारवेमें अपने संस्कारकु, जो कमजोर हैं, अपने साथ रहे भये संसारकु सुधार नहीं पा रहे हैं, वो संसारकु छोड़के भग जाये हैं. तो जा बखत छोड़के भग रहे हैं वा बखत उनमें सामर्थ्य नहीं है पर वा बखत उनमें उनको बुजदिलपनो है. कुत्तासु डरके कौन भागे? जो बुजदिल होवे है. जाकु पता है कि ये कुत्ता है वो वासु भगेगो नहीं और जमे भये कदम रखतो भयो चले जायेगो. तो वासु थोड़ी देरमें कुत्ता ही डर जावे है. जब अपन् कुत्तासु नहीं डरें तो कुत्ता अपनूसु डर जाये. जानवरनूमें ये भी सिद्धान्त है. शेर तक आदमीसु डरे. शेर कब अपनेकु खा जाये? जब अपन् झुक जायें या भग जायें. शेर भी तभी खावे. नहीं तो प्रायः जो मेनईटर् होवें वो खावें क्योंकि उनकु आदत पड़ जाये खावेकी. नहीं तो सामान्य शेर अपनेकु खा नहीं सके. शेर तकको ये सिद्धान्त है. तो स्मार्तनूमें वस्तुको संस्कार करवेकी शक्ति नहीं है. वो हर चीजको परित्याग ही बताते रहें कि छोड़ो, छोड़ो

पर क्या छोड़ोगे और कैसे छोड़ोगे?

बुद्ध साधुन्ने सारो जगत् छोड़ दियो और अजन्ता केव्स्में जाके रहे. तो एक वेस्टर्न आर्ट क्रिटिक्ने कही है "दुनिया जितनी रंगीन नहीं है उतने रंगीन चित्र उनने वहां बनाये हैं." सचमुचमें दुनिया इतनी रंगीन नहीं है. अब तो वो चित्र ही नष्ट हो गये बहोतसे. बाकी जाके देखो तो पता चलेगो कि सचमुचमें दुनिया इतनी रंगीन और खूबसूरत नहीं है जितनी खूबसूरत अजन्तामें दीखे. क्योंकि छोड़ दियो सब. छोड़ देवेसु दुनिया तो नहीं छूटी ना! उन गुफान्में आखी दुनिया चित्रित हो गई. राजा महाराजा हत्या हिंसा हाथी शेर सब चीज हैं वहां. दुनिया थोड़े ही छूटी. गुफान्में बना दी सारी दुनिया. दुनिया नहीं हती तो खड़ी करनी पड़ी उनकु. क्योंकि तुमने दुनिया छोड़ दी पर दुनियाने तो तुमकु नहीं छोड़यो ना!

जब पांच पाण्डव हिमालयपे गये, तो कहें कि कुत्ता तक उनके पीछे हिमालय तक पहोंच गयो. वो थोड़े ही छोड़ेगो पीछा धर्म तुम्हारो. धर्म और अधर्म जो तुमने किये हैं, वो दुनियाकु छोड़के चले जाओगे तो भी धर्म-अधर्म तुम्हारो पीछा नहीं छोड़ेगो. तुम दुनिया छोड़ भी दोगे तो तुम्हारे किये भये कर्म तुम्हारे पीछे हिमालय तक आयेंगे. पाछे वहां सारेके सारे प्रभाव पैदा कर देंगे जैसे प्रभाव तुमने यहां पैदा किये. वाके लिये कहें हैं **अतो ज्ञानं वैराग्यं च तापनाशके भवतः**. याके लिये संस्कारयोग्य वस्तुको सम्यक ज्ञान प्राप्त करके वाको स्वरूप समझनो चहिये तब वाके तापको नाश होयगो. ये ज्ञान और वैराग्य में तापनाशकतारूपी गुण भगवद्ज्ञान-वैराग्यके कारण आवे है और वा ज्ञान-वैराग्यमें जैसी तापनाशकता है वो ज्ञान-वैराग्य तो इतने आयाससु तापके नाशक होवें हैं पर तेरी कथा तो बिना किसी आयासके ही सारे तापनूकु दूर कर देवे है.

(कविभिः ईडितं कल्मषापहम्)

तव कथामृतं तप्तजीवनम्. तो कहें कि अरे भई तापकी कोई प्रोब्लम् है? तो कहे हैं **आपाततः तापनाशकत्वं जलादावपि वर्तते इति.** बहोत गरमी लग रही है तो जलमें न्हा लो तो जल भी तापनाशक है. तो तापनाशक होवेके कारण कथाको क्या बड़ो माहात्म्य है? तो कहें हैं कि जलमें तापनाशकता तो साधारण तापनाशकता है. विद्वाननूंकु अपील कर सके ऐसी तापनाशकता नहीं है. ज्ञान-वैराग्यमें तापनाशकता ऐसी है जो **कविभिः ईडित** है. विद्वाननूंकु पसन्द आ सके ऐसी तापनाशकता है. अब **'कवि'** शब्दमें श्लेष आचार्यचरण केह रहे हैं **कविभिः सर्वैरेव शब्दार्थरसिकैः ज्ञानिभिः ईडितं ज्ञानं वैराग्यं वा.** ज्ञान-वैराग्यमें तापनाशकता तो विद्वज्जनद्वारा प्रशंसित है. विद्वान लोग जाकी प्रशंसा करें, ऐसी तापनाशकता है. मने आधिदैविक अथवा आध्यात्मिक तापनाशकता है, जलमें तापनाशकता तो आधिभौतिक तापनाशकता है. तो कहें हैं **कविभिः ईडितम्.** कवि जाकी प्रशंसा करें.

तो कहें कि कविपे क्या विश्वास करनो? कवि तो स्त्रीकी भी प्रशंसा करें. स्त्रीकु भी कहें हैं कि तापनाशक है. तो कहें हैं **कल्मषापहम्** स्त्रीमें तापनाशकता है पुरुषके लिये अथवा पुरुषमें तापनाशकता है स्त्रीके लिये. वो कल्मषप्रद है, कल्माषापह नहीं है. कल्मषको दूर करवेवाली नहीं है. कल्मष बढ़ावेवाली तापनाशकता है. **कल्मषापहम् इति. कल्मषं पापम् हन्ति इति "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य" इत्यपि क्वचित् पाठः. अलौकिकसाधकञ्च वीर्यं महत् तद्धर्मरूपमेव भवति. धर्म्यञ्च पुनः कल्मषनिवर्तकं भवति पूर्वोक्तधर्मविशिष्टं च. कथायाश्च तथात्वं सर्वत्र प्रसिद्धम्.** कथामें तापनाशकता कैसी है कि वो तापकु निवृत्त करे और ऐसे ढंगसू नहीं कि कोई तरहको कल्मष पैदा होवे, कोई तरहको पाप पैदा होवे. ताप दूर करे और साथमें पाप भी दूर करे. ताप और पाप दोनोंकु दूर करे ऐसी कथा है. जलमें या स्त्रीमें, तापनाशकता हे, ताप तो दूर करे पर पाप दूर नहीं

करे. क्यों आचार्यचरण ये केह रहे हैं? **तप्तजीवनम्** में ज्ञान वैराग्य बतायो जैसे, ऐसे **कविभिः ईडितम्'** में वीर्य बता रहे हैं. भगवान्‌को सामर्थ्यरूप गुण वाको **'कल्मषापहम्'** सू बतायो. धर्ममें भी ये सामर्थ्य मानी गई है कि ये पाप दूर करे. याही लिये ही कहीं कहीं जहां छे गुण भगवान्‌के बताये गये हैं, वहां ऐश्वर्य धर्म वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ऐसे बतायें गये हैं. धर्मकी भी परिगणना भगवान्‌के छे गुणन्‌में की गई है. तो जैसे भगवान् पापनाशक हैं, कृष्णाश्रयमें अपने आवे ना! **"अजामिलादिदोषाणां नाशको अनुभवे स्थितः ज्ञापिताखिलमाहात्म्य कृष्णएव गतिर् मम."** (कृ.स्त्रो.७) वा न्यायसू जैसे भगवान्‌में पापनाशकता है, ऐसे ही भगवत्कथामें भी पापनाशकता है. वाही तरहसु धर्ममें भी पापनाशकता है.

(श्रवणमंगलम्)

तो कहें हैं कि पाप तो प्रायश्चितसू भी नष्ट हो जायें, प्रायश्चित करो तो पाप नष्ट हो जाये. वापें कहें हैं **प्रायश्चित्तादीनामपि आपाततः तथात्वम् अस्तीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह श्रवणमंगलम् इति.** कथामें एक अन्तर है. प्रायश्चितसू पापको नाश तो होयगो, पर कठोर कितनो है कि सुनवेमें आदमी घबरा जाये. अभी आज ये केह दो कि "कल तुम व्रत करो." तो आज ही मोहड़ा उदास हो जाये. कल व्रत करनो है पर मोहड़ा आजसु ही उदास हो जाये. प्रायश्चितको कहें तो श्रवणमंगल नहीं है. सुनवेमें आनन्द नहीं आवे. पापको नाश करे पर श्रवणमंगल नहीं है. सुनते ही मूड खराब हो जाये. सब लोग ऐसो ही धर्म पसन्द करें या लिये जामें कुछ प्रायश्चित न करनो पड़तो होय. बहोत सुन्दर देखो आचार्यचरण कहें हैं **तद्गोमयादि लेपनात्मकम् उपवासात्मकं च स्वरूपतोऽपि अमंगलं घोरात्मकत्वात् श्रवणेऽपि अमंगलम्** जैसे भूखे मरनो.

जैन लोगन्‌में बहोत प्रायश्चित उपवास करें. भूखे मरें बीस

बीस पच्चीस दिन. फिर पानी मांगे. तो फिर क्या होवे कि पानी मांगे तो उनके भक्त लोग डेरा डालके बेठ जायें. कहें कि "यहां प्यासो मरेगो तो ऊपर कैवल्य प्राप्त करेगो" और इतनी जोर जोरसु भजन करें कि वो बिचारो पानी पानी केहतो रहे पर वाकी अवाजकु सुनवे ही नहीं दें. "यहां प्यासो मरेगो तो ऊपर कैवल्य प्राप्त करेगो", केहते रहें. जबरदस्ती वाकु बीस-पच्चीस दिनमें विदा कर दें. अब पाप तो नष्ट होतो होयगो यदि या तरहसु प्रायश्चित करे, पर बात कितनी अमंगल है, ये तो सोचो! कथामें ऐसी कोई अमंगलता नहीं है. तापनाशकता है, पापनाशकता है और श्रवणमंगलता है. तीनों मधुर हैं. ये तो सुनवेमें ही घबराहट हो जाये.

(भगवत्कथाकी श्री)

इदं तु उदारचरितं श्रुतमेव आनन्दं जनयति इति अनुभवसिद्धत्वात् श्रवणमंगलम् तेन कीर्तितुल्यता निरूपिता. ये भगवच्चरित्र उदारचरित्र हैं. ये तो सुनवेमात्रसु ही आनन्दप्रद हैं. ये तो अनुभवकी बात है. ये याको यश है. "**श्रवणमंगलं श्रवत्**" ये सब यशके पर्यायवाची शब्द माने गये हैं. श्रवणमंगलम्‌को मतलब यश. '**तप्तजीवनम्**' में जैसे ज्ञानवैराग्य दिखायो, '**कविभिरीडितम्**' में जैसे धर्म दिखायो, '**कल्मषापहम्**' में जैसे वीर्य दिखायो, ऐसे '**श्रवणमंगलम्**' में श्री दिखायी.

तो कहें हैं कि सुनवेमें जो बात मंगलप्रद लगे, जैसे पुत्रजन्मकी बात सुनवेमें बड़ी मंगल लगे. प्राचीन सिद्धान्तके हिसाबसु, पुत्र, 'पुं' नामके नरकसु वाकु त्राण दिलावे है, या लिये पापनाशक भी है. तो तापनाशक भी पापनाशक भी है और श्रवणमंगल भी है. यदि पुत्रजन्मकी कोई बात अपनेकु सुनावे तो. तो भगवद्‌कथामें क्या वैलक्षण्य रह्यो?

तो कहें हैं **श्रीमद् इति. तद्धनव्ययसाधकं न तु धनसाधकम्**

कथामृतन्तु लक्ष्म्यापि अपेक्षितत्वात् तद्युक्तं भवति. तेन श्रोतुर्वक्तुश्च तत्सिद्धिः. भगवत्कथा श्रीमति है. पुत्रकथा श्रीमति नहीं है, धनव्ययसाधक कथा है, सुनते ही बधाई देनी पड़े पर कथाकु तो सुनते ही श्रीकी साधना हो जाये है. कथामृत कैसो है? लक्ष्मीकु भी भगवत्कथा सुननी अपेक्षित है. याके लिये कथामृतकी श्रीमत्ता तो कुछ अलग ही ढंगकी है.

तो कहें हैं कि तुम तो बढ़ाके बहोत कहो हो. **राज्यप्राप्तिश्रवणं तथा भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह आततम् इति**. तो कथा ज्ञान-वैराग्यवाली भी हो गई, वीर्यवाली भी हो गई, धर्मवाली भी हो गई, कीर्तिवाली भी हो गई, श्रवणमंगल भी हो गई, श्रीमति भी हो गई. तो अब गोपिकायें केह रही हैं कि वो आतत भी है.

वेदान्तदेशिक रामानुजके बहोत अच्छे विद्वान हुवे हैं और विजयनगरके जो मंत्री हते सायणमाधव, उनके क्लास्-फेलो हते वे प्रधानमंत्री बन गये. ये अपनी नौकरीमें रहे वहां. दोनों एक कोटिके विद्वान हते. तो उनने एक दिन उनकु केहवाई कि "मैं यहां विजयनगर साम्राज्यमें प्रधानमंत्री पदपे हूं. तुम भी यहां आके रेह जाओ तो दोनों मिलके आरामसु रहेंगे. वाके जवाबमें लिखके भेज्यो "**क्षोणीकोणशतांशपालनभवत् दुर्वारगर्वानलक्षुभ्यत्-क्षुद्रनरेन्द्रचाटुचपलान् धन्या न मन्यामहे देवं सेवितुमेव ईशनुमहे योऽसौ दयालुः पुराः धानाचैलमुचे कुचैल मुनये दत्ते स्म वित्तेशताम्**"" पृथ्वी या ब्रह्माण्डमें कितनी छोटी? और पृथ्वीमें भारतवर्ष कितनो छोटो? या दुनियाको एक तिहाई हिस्सा भी नहीं है भारत. वा भारतमें विजयनगर साम्राज्य कितनो छोटो? वा विजयनगरके साम्राज्यके सिंहासनपे बेठके गर्वसु जो निरन्तर जलतो होय, वाकु ऐसी चाटुकारिताके वचननूसु ठण्डो रखनो. उन्होने कह्यो "**धन्या न मन्यामहे देवं सेवितुमेव ईशनुमहे योऽसौ दयालुः पुराः धानाचैलमुचे कुचैल मुनये दत्ते स्म वित्तेशताम्**" और कह्यो के जो "**अचोरहार्यं पवित्रपात्रम्**" मेरे पात्र तो ऐसे

हैं, तेरे पात्र तो ऊंचे होंयगे, जिनकु कोई चोर भी सके है पर तेरे पात्र पवित्र नहीं होयगें. मेरे पात्र कैसे हैं कि जो सदा पवित्र हैं और जिन्हें कोई चोर भी नहीं सके है. मिट्टीके हैं. हवि उन्मादकारी नहीं है. भोजन है मेरो, मैं भी पेट भरके खाऊं हूं पर कहा खाऊं? चना खाऊं पर वामें उन्माद नहीं है कोई तरहको. ऐसो आलस्य नहीं है कि खाके पड़के सो गये. आराम कर रहे हैं. ऐसो उन्माद नहीं है हविसु. मैं यहां आरामसु रेह रह्यो हूं, मेरो जीवन चल रह्यो है तो मैं क्यों तेरे क्षुद्र राज्यमें आके रहूं और गुलाम बनूं?

वेदान्तदेशिक अपने आपकु भगवद्घंटाको अवतार कहें हैं. मने भगवानूकु जगावेके लिये जो घण्टा है वाको अवतार कहें हैं. और यों कहें हैं कि वरदराजस्वामीने प्रसन्न होके कही है कि ‘‘तू मेरे घण्टाको अवतार है.’’ जैसे घण्टा बजे वैकुण्ठमें तो सबकु सुनाई पड़े तो वैसे ही जब वेदान्तदेशिक बोले जा बखत कछु बात तो सबकु सुनाई पड़ती थी वैष्णवताकी. **‘‘काव्येषु कोमलधियो वयमेव नान्ये, तर्केषु कर्कषधियो वयमेव नान्ये, कृष्णे निवेशितधियो वयमेव नान्ये’’** (वेदान्तदेशिक) . काव्यमें कोमलबुद्धि है तो हमारी है कोई औरकी नहीं है. चक्रवर्ती सम्राट अपनेकु कहे. तर्कमें कर्कषबुद्धि है तो हमारी है. कृष्णमें निवेशितबुद्धि है तो हमारी है. बोलवेमें उनके देखो कैसी गरज है कि गाममें घण्टा बजतो होय वैसो सुनाई पड़े, ऐसे भक्त हते. वहां कहें हैं कि वरदराजस्वामीने एक दिन प्रसन्न होके आशीर्वाद दियो कि तू मेरे वैकुण्ठको घण्टा है. तू वा तरहसु निनाद करे. ये जो न्यासादेश श्लोक है वो महाप्रभुजीको लिख्यो भयो नहीं होके वेदान्तदेशिकको श्लोक है पर महाप्रभुजीने अपने ग्रंथनूमें इनकोरपोरेट् कियो है.

तो कहें हैं राज्य तो **राज्यादिकन्तु परिछिन्नं, भगवतः ऐश्वर्यन्तु**

न तथा, अन्तर्बहिः सर्वेषां सर्वथा व्याप्तमिति. कथामृतं च पुनः सर्वलोकान् व्याप्य तिष्ठति, स्वसामर्थ्य सर्वत्रैव सम्पादयति. भगवान्‌को ऐश्वर्य तो अन्तर्बहिः सर्वत्र व्याप्य है. मने कोई ऐसो स्थल नहीं है कि जहां भगवद्‌ऐश्वर्य नहीं होय. इन राजान्‌के जैसो भगवद्‌ऐश्वर्य नहीं है. **तस्मात् स्वरूपतो धर्मतश्च भवत्सदृशी भवत्कथेति तया कृत्वा जीवनं, नतु स्वतः अनेन उत्कर्षोऽपि उक्तः.** मने कथा वामें धर्म मने छेहों गुण ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य तेरे जैसे हैं. कथा परमानन्दरूप मोक्षदायिनी है. स्वरूपतः कथा भी तेरे जैसी है. याके कारण हम जीवित हैं. ये सामर्थ्य कि हम जीवित हैं, यदि ये अपराध है तो तेरो है. वाकी भाषा ये है यहां. गोपी केह रही है कि ये मेरो अपराध नहीं है, तेरो है. ये तेरो अपराध है जो हमकु जिला रह्यो है यदि अपराध है तो! यदि कोई तरहकी सेवा है तो तू प्रकट हो जा. अब राजसी है तो स्तुति करके फिर मन चल गयो वाको. राजसमें चांचल्य रेहवे है. चंचलताके कारण फिर वाको मन फिर्‌यो सो क्या कहे कि एक अंतर हमकु जरूर तेरी कथामें समझमें आ रह्यो है कि तू तो तिरोहित होके कभी हमकु मार सके है पर तेरी कथा कभी मारे नहीं है. जैसे तू अभी हमारे साथ खेल रह्यो थो, लीला कर रह्यो थो, अच्छो हतो सब गुण तेरेमें हते पर अभी छिप गयो. तो ये छिपके हमारेकु मारवेको उद्यम कर रह्यो है पर तेरी कथामें एक क्वोलिटी ये है कि वो छिपे नहीं है और मारे नहीं है. तेरी कथा हर वक्त प्रकट रहे है. मने तू छिप जाये है पर तेरी कथा चलती रहे है हमारे मनमें और वाणीमें. सो तेरी कथामें एक गुण अधिक है. **कथामृतं तस्मिन्नपि काले जीवयतीति** याके लिये हम कथाकु अमृत कहें हैं. तोकु अमृत नहीं कहें हैं. तू अमृतस्वरूप है. कथा तो अमृतरूप है.

भगवान् स्वतन्त्रः कथामृतं परतन्त्रम् इति एतावान् विशेषः. अब कहें हें कि तू मारे हे, क्योंकि तू स्वतन्त्र हे मार ले. राजाको

राजा कौन! पर कथामृत स्वतन्त्र नहीं हे. परतन्त्र हे. क्यों? कारण क्या? जा तरहकी भगवान्कु लीला करनी होय, प्रकट रेहनो होवे तो प्रकट रहे, तिरोहित होनो होय तो तिरोहित हो जाये हे, छिपनो होय तो छिप जाये. कथामें तो ऐसो नहीं हे ना! कथामें तो भक्तको जो मनोरथ होय वा हिसाबसु कथा चलती रहे.

भक्तमनोरथानुसारिता या कथामें आनन्द आयो तो ये कथा चले. वो कथामें आनन्द आयो तो वो कथा चले. भक्तके हृदयमें जो मनोरथ भयो, तदनुसार कथा अपने आप प्रकट होवे लग जाये. इतनी भक्तके आधीन हे. अपन् जो भी कथा करें वासु अपने मनोरथ ही तो प्रकट होवें ना! तो भक्तके हृदयमें जा प्रकारके मनोरथ होंय वा प्रकारकी कथा भक्तके आधीन चलती ही रहे हे. कथाके माध्यमसु वा लीलाको अनुभव, भक्तकु होतो रहे. इतनी सानुकूलता तेरेमें कहां हे बता? जैसी अनुकूलता तेरी कथामें हे, भक्तन्के अनुकूल पड़े तेरी कथा, इतनी अनुकूलता तेरेमें कहां पड़े? ये राजसी टोन् हे.

महाप्रभुजी बतावें तो दीख सके नहीं तो नहीं दीख सके. अपनेकु इतनो ही दीखे कि **तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिः ईडितं कल्मषापहम्.** ये सबको अर्थ तो तब दीखे जब श्रीआचार्यचरण दिखावें. ब्रह्मा प्रार्थना करे तब तू आवे, एक तो मनसु आवे नहीं. भक्तके मनोरथसु आवे नहीं. भक्त प्रार्थना करे तब भी तू नहीं आवे. आयो भयो भी छिप गयो. आयो एक तो ब्रह्माकी प्रार्थना करवेसु और आयो भयो भी छिप गयो. बता तेरी कथा ऐसे छिपे हे कहीं!

कथा तु समागता न तिरोभवति. कथा नहीं छिपे. कथा तो एक बखत आई नहीं कि फिर तो वो चलती ही रहे. **अतएव**

तादृशं कथामृतं ये भुवि गृणन्ति तएव भूरिदाः बह्वर्थदातारः. 'ये' इति प्रसिद्धा व्यासादयः. ये कथामृत जहां प्रकट भई, वो बह्वर्थ भूरिद हो जाये हें और तोकु देवेवाले लोग भूरिद नहीं होवें हें. क्योंकि जो स्वरूपदान करे हें, वो तो अल्पदान करे हें और जो कथाको दान करे हें, वो भूरिदान करें हें. क्यों? क्योंकि तू तिरोहित हो सके हे. कथा तिरोहित नहीं हो सके हे. तू भक्तमनोरथानुसारी नहीं हे और कथा भक्तमनोरथानुसारी हे. भूरि अर्थात् अधिकतामें, बहोत मात्रामें, जैसे दामोदरदासजीने कह्यो कि "दान बड़ो कि दाता बड़ो?" तो वामें ये बात कही कि "दाता बड़ो." अब दातामें भी दो भेद हो जायेंगे. एक स्वरूपदाता और एक कथादाता. तो स्वरूपदाता बड़ो कि कथादाता बड़ो? तो स्वरूपदाता तो बहोत छोटो हे. कथादाता भूरिद हे. क्यों हे? क्योंकि जैसो तुम्हारो मनोरथ तदनुसार तुमकु कथा सुनावे. जैसो मनोरथ वैसी कथा सुनो. तो वाही बखत तुम्हारो मनोरथ पूर्ण होवे. तुमकु जो स्वरूपदान करे, वा स्वरूपकु तुम रिझाओ, सेवा करो, मनोरथ करो और न जाने वो कब तुम्हारे मनोरथनूकु पूर्ण करेगो. तो अधिक मात्रामें तो नहीं रह्यो ना! तो जो कथाके दाता हें वो बहोतायतमें दे हें. जो स्वरूपके दाता हें वो बहोतायतमें नहीं दे हें वो तो बहोत सीमित मात्रामें दे हें.

भूरिदाश्च ते अजनाश्च, ते केवलं भगवद्रूपाः जननादिदोषरहिता वा. और वो कैसे हें? जननादि-दोष-रहित हें. मने मुक्तरूप हें. तो कथा सुनवेवालो जैसे मुक्त होवे हे, वैसे केहवेवालो भी मुक्त होवे हे. भगवत्कथा उभयमोक्षप्रद हे.

(तो कथा ही क्यों न करों!)

तो कहें चलो तो फिर काहेकु खोज रही हो? एक भागवतसप्ताहके पेम्पलेट् छपवाओ, एक कल्याणमण्डपम् बनाओ, भागवतकथाको आयोजन करके आनन्दसु भागवतसप्ताह सुनो. छुट्टी हो गई. मोकु फिर क्यों

खोज रही हो? तो फिर खोजवेकी क्या जरूरत! जब कथाकी इतनी प्रशंसा हे, तो आनन्दसु कथा सुनते रहो. तब चक्कर पड़ गयो. देखो राजसवृत्तिके कारण मनकी कैसी चंचलता हे. या कथामें सब कछु हे पर यामें एक बातकी कमी हे, वो क्या कमी हे?

परं विरलम् अमृतम् कि घनीभूत नहीं हे. शेलो(फेल्यो) हे. इतनो होते भये भी, शेलो(फेल्यो) हे, ठोस नहीं हे. कन्डेन्स्ड् नहीं हे. स्वरूप कन्डेन्स्ड् हे. स्वरूपको आनन्द कन्डेन्स्ड् आनन्द हे और कथाको जो आनन्द हे वो विरल आनन्द हे. घनीभूत नहीं हे. या लिये खोज रही हें. नहीं तो हम कथा करके तृप्त हो जाती. अब क्या करें? **परं विरलम् अमृतं केवलं मरणोपस्थितौ तन्निवर्तकमेवेति, नतु संभूय एकत्र रसजनकम्**. संभूत एकत्र रसजनक नहीं हे. मने कन्सोलिडेटेड् नहीं हे. कन्डेन्स्ड् नहीं हे. बहोत द्रवात्मक हे. या कानसु सुनो तो वा कानसु निकल जाये. रहे कहां तुम्हारे पास. स्वरूप छोटो हे पर रहे तो हे ना! कथा या कानसु सुनो तो वा कानसु निकल जाय हे. रहे कछु भी नहीं और स्वरूप वो थोड़ो होतो भयो भी रेह जाये हे, ये अन्तर हे क्योंजो **संभूय एकत्र रसजनकम्**. वो **भूरिदा जना** हें ये भूरिद नहीं हें, अंतर हे पर अंतर होते भये भी कथा स्थायी हे, स्वरूप ठोस हे. कथा भूरिद होते भये भी या कानसु सुनो और दूसरे कानसु निकल जाये हे. **रसपिण्डयोरिव तव कथायाश्च विशेषो**. या लिये तेरेमें और तेरी कथामें अन्तर कितनो हे कि तू एक पिण्ड हे और तेरी कथा बेहतो भयो रस हे. बेहवेमें जितनी देर बहे उतनी देर बहे, फिर क्या करोगे! ये जो पिण्ड हे जमा करके रखो खूब, ऐसो हे स्वरूपको माहात्म्य. **अन्यथा कथार्थमेव यत्नः कृतः स्यात्**. अगर ये अन्तर तेरेमें और तेरी कथामें नहीं होतो तो यहां बेठके भागवतसप्ताह करती. तोकु खोज रही हें, तेरी कथा या लिये नहीं कर रही हें कि जो रसकी पिण्डता हे, घनीभूत रस तो तू ही हे. तेरी कथा नहीं हे. याके लिये कथासु जीवन

टिके हे पर जीवनको स्वाद नहीं मिले हे. जीवन टिकनो एक दूसरी चीज हे. जीवनको स्वाद एक दूसरी चीज हे. जैसे दवाई और विटामिन्. दो चीज होवें हें ना! तो कथा दवाई हे और तू हमारो विटामिन् हे. दवाईसु रोग तो दूर हो जाये हे पर विटामिन् नहीं मिले हे और तू हमारो विटामिन् हे. या लिये तू अगर मिल जाये तो हमकु सब विटामिन मिल गये. इतनो अंतर हे. आवें दोनों ही दवाईके लेवल्पे, लेबल् तो दोनोंपे दवाईको ही लगे हे ना! विटामिन् भी एक तरहकी दवाई हे. दवाई भी दवाई हे पर अन्तर तो हे ना! एक केवल तापनिवर्तक हे, रोगनिवर्तक हे और एक सामर्थ्यजनक हे. तो सामर्थ्यजनक और तापनिवर्तक, उनमें थोड़ोसो अन्तर तो हे ना! याही तरहसु भगवत्स्वरूप सामर्थ्यजनक हे. भक्तिकी सामर्थ्यसु अनुभव कर पाओगे कि तुम्हारी भक्तिको महत्त्व क्या हे? तुम्हारी भक्तिको माद्दा क्या हे? ये तुमकु स्वरूपसु समझमें आयेगो. कथासु समझमें नहीं आयेगो. कथासु तो तुम्हारे भवके ताप दूर हो जायेंगे. या लिये कथा नहीं कर रही हें. अन्यथा कथाको प्रयत्न करती. **परं विरहे मरणनिवर्तकत्वेन तदुपयोग इति भगवत्त्वेन स्तूयते.** जा बखत तीव्र विप्रयोगमें मरवेकी स्थिति आ जाये हे, वा बखत कथा प्राणकु टिकाके रखे हे पर प्राणनूकु संतोष तो तेरे बिना नहीं हे.

अब देखो अपन् यात्रामें जावें और चारों चीज नहीं मिलती होंय दाल रोटी शाक भात तो टिकड़ा ले जायें हें और अपने प्राण टिकड़ा खा खा के टिके रहें हें. अब वो टिकड़ा कितने दिन खानो? एक बार यात्रामें खावे दो चार दस दिन खावे पर बारह महीना टिकड़ा खावेकी नौबत आ जाये तो! सचमुचमें कंटालो आयेगो. ऐसो संभूय रसजनक नहीं हे या लिये हम कथाको यत्न नहीं कर रही हें. नहीं तो हम तोकु नहीं खोजती. आपसमें मिलके कथा ही कर लेती पर अभी या बखत तो टिकड़ासु काम चल

रह्यो हे तो टिकड़ाकी ही स्तुति कर रही हें. तू आ जाये तो तेरी स्तुति करेंगी. ये वाको अन्दरसु निर्णय हे. हम कथाकी स्तुति क्यों कर रही हें? जैसे दो-बच्चा होंय और एक बच्चा अपनी बात नहीं मानतो होय, तो अपन् एक बच्चाकी स्तुति करें ना! देखो कितनो सयानो हे, कितनो अच्छो हे. अपन् तुलना करें ना! ये अच्छो हे. तू तो ऊधमी हे. ऐसे कथाकी प्रशंसा कर रही हें. वाको कारण क्या? तू छिपवेको ऊधम बंद कर दे. तू अगर ये छिपवेको ऊधम बंद कर दे तो वा बच्चाकी कोई प्रशंसा नहीं हे. पर तू छिपवेको ऊधम कर रह्यो हे तो या बच्चाकी प्रशंसा हो रही हे, देखो ये बड़ो सयानो हे. ये ऊधम करे! तो वाकी खुदकी प्रशंसा करनी नहीं. वो तंग करे तो याकी प्रशंसा होय, नहीं तो याकी कोई प्रशंसा नहीं हे. या तरहसु या कथाकी जो सारी प्रशंसा हे, तू छिप्यो भयो हे या लिये ही हे. **परं विरहे मरणनिवर्तकत्वेन तदुपयोग इति भगवत्त्वेन स्तूयते** या लिये भगवान् जैसी हे हम केह रही हें पर यदि तू प्रकट हो जाये तो तू ही तो हमारो भगवान् हे. प्रकट नहीं होवे तो तो क्या करें! चल तेरे बजाय तेरी कथा अच्छी हे.

अतस्तैः भगवत्कथाकथकैः बहु दत्तमिति तद्वशाद् जीवनम्. याके लिये जो भगवद्कथाके जो कथक हें, उनने लोगनूकु बहोत दियो हे और दियो हे या लिये उनसु जीवन टिके भये हें. नहीं तो जीवन टिके कैसे यदि भगवत्कथा ना होय तो! जा बखत संसार तापसु झुलस्यो भयो आदमी हे, वाकी औषधि कथा ही हे, बिना भगवत्कथाके भवौषधि नहीं हे पर जब वा भवौषधिसु भवरोग दूर भयो, वा बखत विटामिन तो भगवान् स्वयं ही हें, भगवत्कथा नहीं. **एतत्सात्त्विक्याः.** ये राजस सात्त्विक होवेके कारण याके विचारमें थोड़ी सात्त्विकता भी हे और राजसभावके थोड़े थोड़े छिपे भये कनिका भी हें, जासु भगवानूकु टकोर भी करती जाये और शब्द सात्त्विकताके

वापरे. राजसी होते भये भी थोड़ी सात्त्विक हे तो ठाकुरजीकु थोड़ीसी टकोर तो कर ही रही हे. **तव कथामृतम्..... ये भूरिदा अजनाः.**

----*----

॥ श्लोक : १० ॥

उत्थानिका :

तामस्याः वचनम् आह प्रहसितम् इति.

श्लोक :

प्रहसितं प्रिय! प्रेमवीक्षितं विहरणं च ते ध्यानमंगलम्॥
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक! नो मनः क्षोभयन्ति हि॥१०॥

सुबोधिनी :

यद्यपि कथया स्थातुं शक्यते, यदि त्वदीयैः धर्मैः क्षोभो न उत्पादितः स्यात्. यथा भगवति षड्गुणाः सन्ति तथा षड्व्यामोहकाअपि गुणाः सन्ति. अन्यथा कथयैव चरितार्थता स्यात्. तदर्थं भगवान् मायया कुहकलीलामपि करोतीति स्वस्वभावदोषाद् भगवति तथा स्फुर्तिः इति; यथा ज्वरितस्य अन्ने विरसताप्रतीतिः. अत आह तव प्रहसितादिकं नो मनः क्षोभयति इति, प्रकर्षेण हसितं, स्वभावतएव खिन्ना, तां त्यक्त्वा अन्यया सह स्थितं इति, ततः चेद् समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरां क्षोभं प्राप्नोति. प्रिय! इति सम्बोधनात् तव सम्बन्धोऽपि स्मृतः क्षोभजनको जायते. अतएव यासां न सम्बन्धः तासां न क्षोभः. किञ्च तव यत् प्रेमवीक्षितं प्रेम्णा वीक्षितं तदपि क्षोभयति स्मृतं सत्. अन्यविषयकं वा विश्वासजनकत्वाद् वा अन्तःकपटरूपमिति क्षोभजनकम्, अन्यथा कार्ये विसंवादो न स्यात्, मनसः उत्तोलकं वा आशाजनकम् आशया च श्रमः. तव विहरणमपि क्षोभजनकम्. विहरणं यच्चलनं, वेणुवादनादिना रसो भगवदीय आकाराद् बहिः स्थाप्यत इति. विशेषेण हरणं यस्माद् इति त्रिभंगललितादिकं भवति. तत्पूर्वम् अस्माभिः ध्यातम् इति ध्यानमेव मंगलं त्वल्लक्षणं शुभफलं प्रयच्छतीति. तदपि इदानीं क्षोभजनकं, तिरोहितत्वात्. ते इति सर्वत्र सम्बन्धः. अन्यत् माययापि करोतीति मुख्यतया अत्र उक्तिः. एवं रूपसम्बन्धे चतुष्टयं क्षोभकम् उक्तम्. नामसम्बन्धि

द्वयम् आह रहसि संविदः इति या हृदिस्पृशः इति. रहसि एकान्ते संविदो ज्ञानरूपाः भगवद्वाचः. ज्ञानान्येव वा शास्त्रजनितानि बन्धाद्यभिज्ञारूपाणि. तत्रापि या वाचो हृदिस्पृशः हृदयगामिन्यो भवन्ति. अस्मदनुगुणाएव बन्धसंविदो वा, नतु केवलं नायकानुगुणाः. अतएवम् एते सुखहेतवोऽपि, भवान् वञ्चयति चेत्, तदा क्षोभं जनयन्ति. अयम् अर्थः सर्वानुभवसिद्धः इति आह हि इति॥१०॥

विवरणम् :

(रसानुभूति = आनन्दको साकाररूप)

प्रभुको स्वरूप रसात्मक हे और रस एकाकितया सम्भव नहीं हे. याके लिये दयितसु भी एक कदम आगे बढ़के होनो चइये. रस होनो चइये. रसको भोक्ता होनो चइये. रसको भोग्य होनो चइये. वैसे तो रसमें और भी कई पेहलु चइयें, आलम्बनविभाव संचारिभाव स्थायिभाव पर जा बखत रस अपनी चरम अवस्थापे पहोंचे रसानुभूति वा बखत भी ये तीन तो रहें ही हें. जैसे अध्ययन. यद्यपि शास्त्रकारनूने अध्ययन-अध्यापन-कु रस नहीं मान्यो हे, तो भी अध्ययन चलतो होय, अपने अध्यापन करते होंय तो विषय चइये. एक अध्यापक चइये, एक अध्येता चइये. युद्ध चलतो होय तो योद्धा चइयें, बिना दो योद्धाके अकेलो आदमी युद्ध नहीं कर सके और कितनो युद्ध कर सके? तो रस चाहे शृंगार होय, चाहे हास्य होय, अपनेकु हंसनो होय तो हास्यकी स्थिति चइये. हास्यास्पद बात कोई चइये या वस्तु चइये और हंसवेवाले अपन् चइयें. अकेले आदमी हंस कैसे सकेगो? कायपे हंसेगो और क्यों हंसेगो?

“स वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न रमते स द्वितीयम् ऐच्छत्” (बृह.र.१।४।३). प्रभु परमानन्द स्वरूपतः हें ही पर परमानन्द स्वरूप होते भये भी, परमानन्दकी परमता रसमें जाके अभिव्यक्त होवे हे. एक आनन्द जबतक कोई रसको आकार ग्रहण नहीं करे तबतक

वो निराकार आनन्द केहवावे. जा बखत कोई भी आनन्द रसको आकार ग्रहण कर ले वा बखत वो साकार आनन्द हो जाये. ये एक अन्तर हे.

एक सामान्य बात बताऊं. जैसे मजा तो अपनेकु हर चीजमें आवे हे. सुख तो अपनेकु हर चीजमें मिले हे पर वा सुखको स्पष्ट आकार अपन् कब मानें? वा सुखको कोई निश्चित एक मनोभाव होय तो. याके लिये शास्त्रकारनूंमें रसके बारेमें विवाद हो गये. कोईने कही कि "नवरस हें." कोईने कही कि "बाराह रस हें." कोईने कही कि "एक रस हे." कोईने कही कि "चार रस हें." ये विवाद क्यों भये? वो या लिये कि एक निश्चित सुखके मनोभाव कितने हें? मनोभाव मने सेन्टिमेन्ट्स्. एक ऐसो सेन्टिमेन्ट्बेस् जाकु संस्कृतमें 'स्थायिभाव' कहें. जैसे बच्चा भयो, तुमकु रातकु रोके जगावे तो गुस्सा नहीं आवे? बच्चापे गुस्सा आवे पर वो गुस्सा प्यारको गुस्सा आवे कि द्वेषको गुस्सा आवे? गुस्सा आवे और गुस्सा आते भये भी प्यारको गुस्सा आवे. द्वेषको गुस्सा नहीं आवे. कभी खीजको गुस्सा आवे कि क्यों नहीं खुद आराम कर रह्यो हे और हमें भी नहीं आराम करवे दे रह्यो हे? क्यों हमकु तकलीफ दे रह्यो हे. गुस्सा आवे पर प्यारको गुस्सा आवे. एक विद्यार्थी नहीं पढ़तो होय, तो गुरुजीकु गुस्सा आवे. ऐसो गुस्सा नहीं आवे कि तलवार लेके गरदन ही काट देवे. फिर वो विद्यार्थी कहां रह्यो! वो तो शत्रु हो गयो. गुस्सा आवे तो ज्यादासु ज्यादा सोटी लगावे. माँ भी अपने बच्चाकु पीटे. पीटे पर ऐसे नहीं पीटे कि गला ही घोंट दे. पीटे क्योंकि वाको अहित दीखे हे. तो ऐसे गुस्सा आ रह्यो हे फिर भी प्यार कायम हे. वात्सल्य कायम हे. तो वात्सल्यकु एक रस मान्यो जाय. योद्धा युद्ध कर रह्यो हे, कोई बखत सामनेवालो शत्रु ऐसी अच्छी तलवार चलावे, ऐसी अच्छी गन चलावे या कोई शस्त्र चलावे कि अपनो भी मन मोहित हो

जाये. क्या चलाई! लड़वेवाले या बातकी खूबसूरती समझ सके हें कि जब सामनेवालो कोई शस्त्र चलावे तो सामनेवालेकु भी वाह! हो जाये कि भई बात. हमारे सामने कोई शास्त्रार्थकी बात कर दे तो मजा आ जाये. भले जवाब अपनेसु एक बखत नहीं दियो जा सकतो होय. कोईने एक ऐसी कड़क बात पूछ ली तो चित्तमें एकबारतो प्रसन्नता हो जाये, भले बादमें दुःख हो जाये कि याको जवाब नहीं दियो जा रह्यो हे पर एक बखत चित्तमें प्रसन्नता हो जाये कि क्या बात पूछी हे! तो वाको भी मजा आवे. वो मजा आवे करके अपन् वाके शिष्य नहीं हो जायें. जिनकु शास्त्रार्थकी आदत हे, कोईने एक ऐसी कड़क बात पूछ ली कि जाको उत्तर देते नहीं बन्यो, तो वाको आनन्द आवे. प्रेम भी आवे वापे कि वाह कैसी युक्ति दे रह्यो हे! पर वासु पराजय नहीं स्वीकारी जाये इतनी बात तो हे. पराजय स्वीकारी तो युद्धको स्थायिभाव तूट जाये. फिर रसाभास हो जाये. अच्छी तलवार चलाई होय, अच्छो शस्त्र चलायो होय तो मुंहसु वाह निकल जाये पर वासु पराजय नहीं स्वीकारी जाये अन्यथा रसाभास हो जाये. वीररसको स्थायिभाव उत्साह मान्यो जाय. उत्साह जबतक कायम रहे तबतक वीररस कायम रहेगो. उत्साह खंडित भयो तो वीररस खंडित हो जायेगो. अब चाहे शत्रुकी प्रशंसा करे चाहे निन्दा करे, शत्रुकु गाली दे चाहे कुछ भी करे चाहे भागे, यद्यपि भागनो कायरताकी निशानी हे पर भागके भी युद्धको उत्साह कायम रख्यो जा सके हे.

कृष्ण कालयवनके सामनेसु भागे तो डरके नहीं भागे पर या लिये कि याकु कैसे खतम करनो. शिवाजी तो हर बखत भागते थे, भागवेमें एक्सपर्ट हते. या लिये नहीं कि डरते थे, डरवे-डरावेको प्रश्न ही नहीं हतो. युद्धकु वा बखत उत्साहकी मांग हती कि या बखत या उत्साहकु या केन्वास्में डालो. कोई बखत भाग भी रह्यो होयगो. सामान्यतः ये मान्यो जाय कि महाराणा प्रताप भाग्यो नहीं,

सामने लड़तो रह्यो. शिवाजी भाग्यो, तो भागनो और सामने लड़ते रेहनो दोनोंमें उनको भरपूर उत्साह कायम हतो. महाराणा प्रतापके मनमें ये बात निश्चित हती कि "अकबरके सामने झुकनो नहीं चाहे तो मर मिटनो." शिवाजीके सामने ये उत्साह कायम हे "भागूंगो पर औरंगजेबके सामने माथा नहीं टेकूंगो. चाहे तो बदमाशीसु भागूं, चाहे तो छलछद्म करके भागूं चाहे तो वीरतासु भागूं चाहे लडूं जो कर सकतो होऊं सो करूं पर औरंगजेबके सामने सिर नहीं टेकूं." बीजापुरके जो पठान बादशाह हते, उनके सामने सिर नहीं टेकूं. या बातको उत्साह कायम रह्यो. यदि उत्साह खतम भयो तो वीररस खतम हो जाये. वामें एक स्थायिभाव कायम रहे हे और वो आनन्द वाको आकार ले ले हे. लड़वेमें जो सुख हे वो आनन्द हे. अपनेकु भी आनन्द आवे पर अपने आनन्दमें लड़वेके उत्साह नहीं होवें. मने कभी कोईसु अपनो झगड़ा हो जाये कोई बखत तो वो उत्साहको झगड़ा नहीं हे. कोईको प्रेमको झगड़ा होयगो. वो झगड़ा उत्साहको नहीं हे. जैसे शिवाजीको झगड़ाको उत्साह हतो, वैसो उत्साह नहीं, नहीं तो फिर वो दूसरो झगड़ा होवे. जिनकु झगड़ाको उत्साह होवे उनकु दूसरो उत्साह होवे. अपनेकु उत्साहको झगड़ा नहीं हे, अपने प्रेमको झगड़ा हे. कोईकु खीजको झगड़ा होवे हे. तो ऐसे अपनेकु झगड़वेमें जो आनन्द आवे वो आनन्द निराकार रेह जाये, क्योंकि वामें उत्साहको आकार नहीं आवे. अगर झगड़ाके सन्दर्भमें सोचें तो. जैसे सेवाके सम्बन्धमें अपन् सोचें. जैसे सेवामें अपनेकु आनन्द आवे.

यदि बादल एक दूसरेसु टकरावें तो वाकी बिजली चमके. ऐसे जा बखत ये भोक्ता और भोग्य रसके रूपमें आपसमें टकराये तब बिजली चमकनी शुरु होवें हे. अलग अलग सब गर्जनायें शुरु होवें हे. कोई बखत गरजे, कोई बखत गरजे नहीं, खाली चमके. कोई बखत चमके भी गरजे भी. ऐसे कई रूप याके होंय जा

बखत बादल उमड़ जायें तब ये आवे. नहीं तो नहीं आ सके और या लिये जो कुछ प्रभुको रूप हे वो प्रभुको रूप जा बखत गरज रह्यो हे चमक नहीं रह्यो हे और जा बखत चमक रह्यो हे और गरज नहीं रह्यो हे. ऐसे दोनों तरहके रूपन्को वर्णन **"बर्हापीड़ं नटवरवपुः"** (भाग.पुरा.१०।१८।५) में कियो हे. मने कहीं तो गरजे हे. बहोत सुन्दर पद हे **"तुम घनसे हो घनश्याम गरज गरज आये अनत जाय वरषे. कहूं बरषत कहूं नेह जनावत कहूं लावत झरसे... मुखकी हलबलाई हमसु करन् आये औरन्के तुम पग परसे. धोंधीके प्रभु तुम बहुनायक इन बातन् सरसे..."** आदमी केल्क्युलेशन् करतो रहे कि गरजे कहां बरसे कहां, चमके कहां? बद्दल तो एक हे पर सब ठिकाने एक तरहको व्यवहार नहीं करे हे. कहीं गरजवेको व्यवहार करे, कहीं बरसवेको व्यवहार करे, कहीं चमकवेको व्यवहार करे. क्योंकि बद्दल गहन हे. वो कहीं टकरायेगो कहीं नहीं टकरायेगो और जहां टकरायो हे, वहां चमकेगो. वाकी गरज भी सुनाई पड़ेगी. जहां बरसेगो वहां बरसेगो. तो या तरीकेके एक ही बद्दलकु देखवेवालो नीचे कहांसु देख रह्यो हे वाके हिसाबसु वो वा बद्दलके अनेक रूप हो जायें हें पर बद्दल तो एक हे. वाके बरसवेके चमकवेके गरजवेके अलग अलग रूप हो जायें.

या लिये ये गोपिकायें अभी तक प्रभुके गरजन्को बरसन्को एप्रीसियेट् कर रही हें. वो गोपिकायें अब ये केह रही हें कि ये बात या श्लोकमें हमकु अच्छी नहीं लग रही हे, क्योंकि भोग्यको रूप हें. तो हर भोग्य प्रभुने जा बखत अपनो परमानन्दको विस्तार कियो, परमानन्दमें जा बखत साकार रसरूपता आई, तो रसरूपताके आवेके कारण प्रभुमें दोनों तरेहके रूप आये. भोक्ताको रूप भी आयो और भोग्यको रूप भी आयो. ये तो अपन् एक सामान्यरूपसु कहें तो. ऐसे तो अनेक भोक्ताके रूप प्रभुमें आये हें. अनेक भोग्यरूपसु प्रभु परिणत भये हें. अब वामें शेर् कैसे एलोट् भयो? शेर् सबकु

या तरहसु मिल्यो कि बद्दलन्के बंटवारा. कुछ भोक्तारूपी बद्दल जो उड़ रहे थे, आजकल भी वाकु नेगेटिव् पोज़िटिव् मानें हें ना! बिजली तो तभी चमके कि जब नेगेटिव् पोज़िटिव् मिलें. वा तरहके बद्दल होवें ना! अपन् वाकु भोग्य भोक्ता को बद्दल समझ लो. तो कुछ जीवन्कु कह्यो गयो कि अच्छा चलो तुम भोक्ता बन जाओ. तो जिन् जीवन्कु भोक्ता बनायो गयो, उन जीवन्के संबंधमें प्रभु भोग्य बन गये. कुछ जीवन्कु कह्यो गयो कि चलो तुम भोग्य बन जाओ. उन जीवन्के सम्बन्धमें प्रभु भोक्ता बन गये. अब दोनों खेल खेलें. चोर सिपाही खेलें तब एक चोर बन जाये, एक सिपाही बन जाये. एक सिपाही बन जायें बाकी सब चोर बन जायें. तो अलग अलग दाव ये लगे. मर्यादाजीवन्कु भगवान्ने भोग्य बनाये और खुद भोक्ता बने. अथवा सच्चे शब्दन्में कहें तो जिन् जीवन्कु भगवान्ने भोग्य बनायो, उन जीवन्कु 'मर्यादाजीव' कह्यो जाय. जिन जीवन्के साथ रसानुभूतिमें भगवान् भोक्ता बने, उन जीवन्कु 'मर्यादाजीव' कह्यो जाय. जिन जीवन्के साथ रसानुभूतिमें प्रभु भोग्य बने, उन जीवन्कु 'पुष्टिजीव' कह्यो जाय. पुष्टिकु भोग्य नहीं बनायो पर प्रभु स्वयं जिन् जीवन्के लिये भोग्य बने वो जीव 'पुष्टिजीव' केहलाये. या तरहके प्रभेदके कारण स्वरूपमें अन्तर हो जाये. जो जीव भगवान्के लिये भोग्य बने, उनके लिये तो प्रभु भोक्ता हें. उनके साथ जो भी सम्बन्ध हे, वाकी टर्मस्-डिक्टेट् भगवान् करें. एक बिजिनेस्-कोन्ट्रेक्ट्में शर्त होवें हे कि इतनेको माल खरीद्यो जायेगो. इतनेको माल बेच्यो जायेगो. ये होयगो ये नहीं होयगो. वाकी टर्मस्-डिक्टेट् करें. कोन्ट्रेक्ट्को मतलब हे कि आपसमें दोनों जनें सन्धि करें. कोई बखत मालकी स्केयरसिटी होवे तो बेचवेवालो टर्मस्-डिक्टेट् करें. इतनेमें लेनो होय तो लो नहीं तो गुडबाय्. ऐसे टर्मस् जो डिक्टेट् करें वो भक्त डिक्टेट् करे. भक्त कहे कि "मेरे सम्बन्धसु टर्मस् बनेंगे मंजूर हे." तो भगवान् ना नहीं पाड़ सकें. ठीक हे नहीं तो गुडबाय्. जा तरहसु एक बायर् हे, एक सेलर् हे. तो बायर् तो कमजोर हे.

वाकु तो सामान खरीदनो हे, चइये हे और सेलर् कहे कि ''ये सामान तो इतनेको मिलेगो.''

यदि जीवकु तुमने भोग्य मान्यो तो टर्मस् तुम डिक्टेट् करोगे. यदि तुमने भोक्ता मान्यो, तो भोग तो मोकु करनो हे ना! अब चीज पसन्द कैसी आयेगी ये मैं डिसाइड् नहीं करूंगो तो कौन करेगो? अपन् कोईकु भोजनपे बुलावें, सामान्यतया तो ऐसो हे कि जो बने सो खानो चइये पर घनिष्ट सम्बन्ध होंय तो अपन् पूछेंगे कि ''क्या भावे हे?'' जब अपनेकु पता चल जाये कि ''याकु ये भावे हे'' तो वाकु वो चीज देनी चइये. जब भोक्ता जीव बने हे, तो भगवान् ये नहीं केह सकें कि तुमकु ये लेनो पड़ेगो कि मोकु ये चीज भावे हे. या समय तो जो जीवकु भावे सो भगवान्कु देनी पड़ेगी. क्योंकि जीव भोक्ता हे. भगवान् तो भोक्ता नहीं हें. या समय तो भगवान् भोग्य बन गये. तो याके लिये केह रहीं हें **प्रहसितं प्रिय.... क्षोभयन्ति हि**. प्रभु हंसें, प्रभु अपने प्रेमके पात्र बनें, प्रभु प्रेमसू अपनेकु रिझा रहे हें और प्रभुकी विविध क्रीड़ायें प्रभुकी बातें प्रभु जिनमें अपनो सुखविचार रहे हें, प्रभु जीवके हितमें जीवको सुखविचार रहे हें, अपने सुखको नहीं, जहां प्रभु जीवके सुखको विचार कर रहे हें और जीवने भोक्ता होवेके कारण बहोतसी बातें करी पर ये सब सुख कब हे? संयोगमें. येही बात विप्रयोगमें दुःख ही लगे हे. ये सारेके सारे प्रभुके गुण जो भगवत्संयोगमें मीठे लग रहे हते, मधुर लग रहे हते, वही बातें विप्रयोगमें तीखी लगवे लग जायें.

अब तुम कोईकु भोजनपे बुलाओ और वाकु परोसो. तो कोई चीज वाकु भावे और कोई चीज नहीं भावे. अब जो भावे तो तुम वाके पीछे पड़ जाओ कि 'खाओ.' क्यों आपने कबूल कर्‍यो कि 'भावे.' तो खाओ दिन भर. ऐसे नहीं भावे. अब तेरो साथ

तेरी प्रेमास्पदता तेरो निहारवो, ये सब भावे पर कब भावे? जब तू सामने होय तो. तेरो संयोग होवे तो पर तेरे वियोगमें तो ये सब बातें तीखी लगें हें. होंयगी सुहाती पर जब तू सामने नहीं हे तो ये सब बातें तीखी लग रही हें.

आचार्यचरण याही लिये यहां बहोत सुन्दर कहें हें. जैसे प्रभुमें छे गुण हें, ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य और वैसे ही ये छेहों गुण प्रभुकी कथामें भी हें. ये कथामें हें और याके कारण जो सामर्थ्य प्रभुमें हे, वो भगवत्कथामें भी हे. याही लिये भगवत्कथाके माध्यमसु भी जीवन टिक सके हे. गोपिकायें केह रही हें कि पर जैसे छे ये गुण हें, छे अवगुण भी हें. अरे तो अवगुणकु खोज रही हो! तो कहें हें कि तू मिल जाये तो गुण हें नहीं तो अवगुण हें. वो छे अवगुण कौन कौनसे? **हास प्रेमास्पदता प्रेमवीक्षण विहरण संविद और हृदिस्पृश** ये छे अवगुण तेरेमें हें जो तेरी कथामें नहीं हें. अब बता क्या करें? ये छे अवगुण कथामें होते, तो तो हम कथा प्रेमसु करती. कथाकु सुने हें, कथाकु सुन सकें हें पर जैसे तू मुस्कुराके हमकु प्रेमसु देखें हे ऐसे कथा हमकु देख नहीं सके हे. कथा तो सुनी जाय ना! कथामें बात कहां की जा सके हे? बोले तो बोलवेवालो नाराज हो जाये. कथा चल रही होय और आप बीचमें कुछ बोलो, नाराज हो जाये आदमी कि कथामें विक्षेप कर रह्यो हे.

हम प्रश्नोत्तरके कार्यक्रम रखें. तो कलकत्तामें कोईने कही कि "प्रश्नोत्तर करवाथी चर्चा थाय छे, वादविवाद थाय छे, वितंडावाद थाय छे, तो कथा करो." कथामें तो ये नहीं होयगो. जहां संयोग हे वहां ये संवाद हे. कथामें संवाद नहीं हो सकेगो. भगवत्संयोग जहां हे वहां तो संवाद हे. कथा कैसे संवाद करेगी? परीक्षितने संवाद कर्यो तो शुकदेवजी नाराज हो गये. हो गये कि नहीं हो

गये नाराज? बोलवेकी छूट तो हे नहीं. इकतरफा प्रयास हे. वो बोलते जायें तुम सुनते जाओ. तो कथामें संवाद कहांसु लानो? हंसनो. हंसनो भी संवाद नहीं हे. तो ये कथा वामें ये अवगुण नहीं हें जो तेरेमें हें. याके लिये हम कथा नहीं करके और तोकु खोज रही हें.

आचार्यचरण कहे हें **यद्यपि कथया स्थातुं शक्यते, यदि त्वदीयैः धर्मैः क्षोभो न उत्पादितः स्यात्. ''तव कथामृतं तप्तजीवनम्''** तेरी कथा तप्तको जीवन हे, विद्वत्प्रशंसित हे, कल्मषापह हे, श्रवणमंगल हे, सुनवेमें भी मधुर हे, श्रीमती हे और आतत हे. ये अवगुण नहीं हें पर तेरेमें जो अवगुण हें, ये जो क्षोभकगुण हें तेरेमें, वो तेरी कथामें कहां हें बता!

(षड् व्यामोहका गुणाः)

यथा भगवति षड्गुणाः सन्ति तथा षड् व्यामोहकाअपि गुणाः सन्ति. जैसे भगवान्में छे गुण हें और छे अवगुण हें. महाप्रभुजीकी प्रभुमें इतनी आसक्ति हे कि अवगुण नहीं कहें हें. और ये अवगुण केह रही हें तो नाराज हो रहे हें कि अवगुण नहीं केहने चइयें. या लिये **व्यामोहकाअपि गुणाः सन्तिः** याको खुलासा आगे कर रहे हें. **स्वस्वभावदोषाद् भगवति तथास्फूर्तिः इति.** ये जो अवगुण दिखाई दे रहे हें, व्यामोहक गुण दिखलाई दे रहे हें. ये भगवान्के अवगुण नहीं हें पर हमारे स्वभावके कारण हमकु दिखाई दे रहे हें पर थोड़ो याके तात्पर्यमें जाओ. ये स्वभावदोष क्या हे? जीवमें भोक्तृभाव प्रभुने स्थापित कियो हे. तो वो जीव अपनी टर्मस्-डिक्टेट् करेगो कि अब ये चीज हमकु चइये और ये नहीं चइये (भावे तो भी)?. तो गोपिका केह रही हे कि ये जो तेरेमें छे अवगुण हें कि हर बखत हमकु तेरी हंसी याद आ जाये हर बखत हमकु तेरो प्रेम याद आ जाये प्रेमसहित निहारनो याद आ जाये तेरो विहरण

याद आ जाये तेरी चतुराईकी बातें याद आ जायें. हम याकु अगर भूल जायें तो कथा करवे बेठ जायें. फिर तोकु नहीं खोजें. पर व्यामोहक गुणन्के कारण हम लाचार हें और तोकु खोज रही हें पर तेरी कथाकु नहीं खोज रही हें. क्योंकि ये चीजें वहां नहीं मिल सकें.

अन्यथा कथयैव चरितार्थता स्यात्. तदर्थं भगवान् मायया कुहकलीलामपि करोतीति स्वस्वभावदोषाद् भगवति तथा स्फूर्तिरिति:. अरे! भवगान्में अवगुण खोज रही हो? एक तो प्रार्थना कर रही हो कि प्रकट हो जाओ, प्रकट हो जाओ और ऐसो फटका! तो कहें हें **स्वस्वभावदोषात्** तो स्वभाव बनायो कौनने? जो भी हमारो स्वभाव हे और वा स्वभावमें जो भी दोष हें, वा दोषकु बनायो कौनने? मने आप हमकु भोजनके लिये आमन्त्रित करो और हम आपकु यों केह दें कि हमकु ये चीज रुचे हे, इनकु ये चीज परसो, ये दोष हमारो कि आपको दोष? आमन्त्रित क्यों कियो इनकु भोक्ता तरीके? आमन्त्रित नहीं करते. हम तो घरमें आनन्दसुं बेठे भये थे. कोई दु:ख नहीं हतो, कोई पीड़ा नहीं हती. आमन्त्रित कियो, आर.एस.वी.पी. लिख दी और वाके बाद तुम यों कहो कि तुमने मांग्यो क्यों? तुमने यों क्यों कही कि ये भावे और ये नहीं भावे? हमने आर.एस.वी.पी. तुमकु भिजवा दी, तो हमकु जो चीज भावे सो परसो हमकु. नहीं तो आमन्त्रित क्यों करो? तो कहें कि फोरमेलिटी हे. ऐसो नहीं केहनो चइये. जो परसें वो तो खा ही लेनो चइये. तो जहां ये फोरमेलिटी हे वो मर्यादामार्गमें होयगी. हमारे तो घनिष्टता हे. हम वो फोरमेलिटी क्यों बरतें?

आचार्यचरण क्या कहें हें, बहोत सुन्दर पंक्ति कहें हें **यथा ज्वरितस्य अन्ने विरसताप्रतीति:.** कोई चीज भावे, फिर भी भानी बंध हो जाये. जैसे कोई रसोई बहोत अच्छी चीज लगती होय पर

अपनेकु बुखार आ गयो होय तो वो भावे नहीं. तो गोपिकानकु जो चीज सबसु ज्यादा प्रिय हे, वो भी या विरहज्वरमें उनकु विरस लग रही हे. ये चीज, आइटम् ऐसी हें, ये डिश् ऐसी हें कि खूब भा रही हें पर ये विरहज्वर जो या बखत हे, वामें इन चीजन्के प्रति इनकु विरसता प्रतीत हो रही हे. अब हो रही हे तो हो रही हे क्या कियो जा सके हे. यदि विरहज्वर दूर हो जाये तो ये चीज अच्छी लगवे लग जायेंगी.

(वियोगो बाधते तावद्...)

श्रीगुसांईजी एक बहोत सुन्दर आज्ञा करें हें. "**वियोगो बाधते तावद् यावद् हृद्येव ते स्थितिः. यदा बहिः तदा नेति, विचित्रा इयं स्थितिः तवः**". (विज्ञप्ति १।६४) संस्कृतमें वियोगके दो अर्थ होवें हें. शब्दकोशके हिसाबसु आखो शब्द वियोगको अर्थ होवे हे सेपरेशन्. अलग होनो. ग्रामेटिकली वाकु लो तो दूसरो मतलब हो जाये. योग मने जोड़नो और वियोग मने विशेष जोड़नो. ज्यादा जोड़नो. तो शब्दकोश और ग्रामेटिकल् मीनिंग्में बहोत अन्तर होवे हे वियोगको. ग्रामर् और डिक्शनरी के हिसाबसु संस्कृतमें दो अर्थ पोसिबल् होवें हें. डिक्शनरी मीनिंग् होवे सेपरेशन् और ग्रामेटिकल् मीनिंग होवे क्लोज़कोन्टेक्ट्. तो "**वियोगो बाधते तावद् यावद् हृद्येव ते स्थितिः. यदा बहिः तदा नेति विचित्रा इयं स्थितिः तवः**" (विज्ञप्ति १।६४) गुसांईजी कहें हें वियोग कबतक परेशान करे हे? जा बखत हमारे हृदयमें तू स्थित हे, तबतक वियोगकी परेशानी होवे हे. हृदयसु प्रकट होके बाहर आ जाये हे तब ये बाधक नहीं रहे हे. आनन्द आवे. मने जा बखत तू हमारे हृदयमें स्थित हे तो येही वियोग हमकु तकलीफ देवे हे. हृदयमेंसु प्रकट होके बाहर दर्शन देवे लग जाये. ये भी तो वियोग हे ना! तब ग्रामेटिकल् मीनिंग् आ जाये. तब डिक्शनरीमीनिंग् नहीं रहे. हृदयमेंसु प्रकट होके दर्शन देवे लग जाये तो ये वियोग तकलीफ नहीं दे हे. ये कैसी विचित्र स्थिति हे?

जब तू हृदयमें हे तो ये वियोग तकलीफ देवे हे और हृदयसु बाहर प्रकट हो जाये, तो येही वियोग तकलीफ नहीं दे हे. ये तेरे वियोग और संयोग को कैसो स्वभाव हे?

योग और वियोग. योग शब्दको अर्थ होवे हे जुड़नो. **"योगः चित्तवृत्तिनिरोधः"** (यो.सू.१।१।१) और चित्तवृत्तिको जोड़नो योग हे. योग मने जुड़नो. 'वि' उपसर्ग हे, वाके दो अर्थ होवें हें : एक नेगेटिव्, विगत मीनिंग् होवे हे. दूसरो मीनिंग् होवे हे प्रचुरता बहोतायत खूब अधिक विशेष. तो वियोगको क्या अर्थ भयो? वियोग अलग होनो और दूसरो अर्थ क्या भयो? विशेष योग. जा बखत प्रभु हृदयमें बिराज रहे हें वा बखत हमकु ये वियोग दुःख दे हे. जा बखत हृदयमेंसु प्रकट होके बाहर आ जायें तो ये विशेष योग हमकु तकलीफ नहीं दे हे.

ऐसे ही कहें हें कि ये जो तेरे गुण हें, **प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं रहसि संविद हृदिस्पृश.** ये सब जैसे संयोगमें सुखद हें, वैसे ही वियोगमें दुःखद हें. क्यों? **यथा ज्वरितस्य अन्ने विरसता प्रतीतिः.** जो चीज भाती हती, तो जा बखत ज्वर आ जाये वो भानी बंद हो जाये. वो वस्तुको दोष हे कि ज्वरको दोष हे? ये सब नहीं भावे वा बखत. तो ऐसे जो तेरे ये गुण हें, जो संयोगमें भावें हें, वो ही गुण वियोगमें अत्यधिक कष्टकारी हो जायें हें. यदि ज्वर भयो हे तो आचार्यचरण कहें हें कि वो कष्टकारी नहीं होवें हें. कौनसो ज्वर भयो? जो विरहज्वर भयो, वाके कारण ये गुण कष्टकारी लगे हें. जा बखत प्रभुके चितवनको स्मरण अपनेकु आवे तो दुःख होवे हे. जा बखत उनकी कही भई बात याद आवें तो कष्ट ज्यादा होवे. यदि याद नहीं आती तो कष्ट कायेकु होतो! यदि प्रभुके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होतो तो कष्ट होतो! ये सेवा करवेको प्रवाहीजीवकु कोई कष्ट होवे! ये ब्रह्मसम्बन्धमें

ही अपन् कहें हें कि हजारन् बरस बीत गये अपनेकु तो कष्ट कहां भयो ठाकुरजीसु बिछुड़वेको! वियोगको कष्ट अपनेकु नहीं होवे, तापक्लेश नहीं होवे, तापक्लेश नहीं होतो तो आनन्द तो होतो वियोगको, वो आनन्द भी नहीं भयो. कछु नहीं भयो, कभी नहीं भयो. क्योंकि सम्बन्ध ही अपनेकु याद नहीं रह्यो पर याद आ जाये तो! तब तो होयगो ना! तो ये बातें ऐसी हें कि जा बखत हृदयमें स्थित रहेंगी तो तकलीफ देंगी ना! हृदयमें नहीं रहीं तो? कोई चीज अपने हृदयमें हे और नहीं मिल रही हे और बाहर भी नहीं मिल रही हे तो कष्ट हे ना! नहीं मिल रही हे और हृदयमें भी नहीं मिल रही हे और बाहर भी नहीं मिल रही हे. मने न तो बाहर कोई स्थान हे वाको और न अपने हृदयमें स्थान हे वाको, तो क्या वो कष्ट देगी! जावे दो गई सो गई. ऐसे ही ये जो तेरे गुण हें इनकु हृदयमें तो स्थान हे या लिये ये कष्ट दे रहे हें.

(प्रहसितं प्रिय)

अतः आह तव प्रहसितादिकं नो मनः क्षोभयन्ति इति, प्रकर्षेण हसितं, स्वभावतएव खिन्ना, तां त्यक्त्वा अन्यया सह स्थितः इति, ततः चेत् समागत्य प्रकर्षेण हसति, सुतरां क्षोभं प्राप्नोति... किञ्च तव यत् प्रेमवीक्षितं प्रेम्णा वीक्षितं तदपि क्षोभयति स्मृतं सद्, अन्यविषयकं वा विश्वासजनकत्वाद् वा अन्तःकपटरूपमिति. यदि कहें कि मेरो प्रहसित मेरो हंसनो तुमकु तकलीफ क्यों दे? तो कहें कि ऐसे तकलीफ दे. **स्वभातएव खिन्ना तां त्यक्त्वा अन्यया सह स्थितः इति.** प्रभुने कही कि आयेंगे और आये नहीं. गोपिका सोचमें बेठी भई हे, कहां गये होंयगे? क्यों नहीं आये? कही और पधारे और आये तो याकु पता नहीं चले. या प्रकार सोचमें बेठी भई हे. आये तो वाकी आहटकु सुन नहीं पावे. इतनो मनमें रोष हे. आके सामने खड़े भी हो जावें तो मनमें निश्चय नहीं होवे कि भावनासु दीख रहें हें कि सचमुचमें दीख रहे हें! ये तो आसक्तिभ्रमन्याय हे ना!

आसक्तिसु दीख रहे हें कि सचमुचमें दीख रहे हें! मने अपनो इमेज़िनेशन् प्रकट हो रह्यो हे बाहर या सचमुचमें दीख रहे हें, ये निश्चय नहीं होवे तो देखती रहे.

मिलवेकी स्थितिमें सामने खड़ें हो जायें तो अनिमेष दृष्टिसू देखती रहे. निश्चय हो नहीं पावे कि प्रभु आ गये कि नहीं आ गये? या अपने हृदयको ही भाव बाहर प्रभुके दर्शन करा रह्यो हे. ऐसी मन:स्थिति देखके प्रभुकु जोरकी हंसी आ जाये. जब जोरसू हंसे तब ये चमके कि अरे ये अपनी इमेजिनेशन् प्रोजेक्ट् नहीं हो रही हे, ये तो सचमुचमें पधार आये.

ये जो हंसी हे वो जब-जब याद आवे हे तब-तब दु:ख देवे हे. क्यों? अब क्यों नहीं आ रहे हो हंसते भये! जैसे अविगत आके हंसके और हमारे विरहको दूर कर दियो, ऐसे ही अब क्यों नहीं हंसते भये प्रकट हो रहे हो? **प्रहसितम्** वो कष्ट दे हे या लिये. **ततः चेत् समागत्य प्रकर्षेण हसति.** प्रभु बहोत खिलखिलाके हंस दे और आके सामने खड़े हो गये और वो पेहचान नहीं पावे, अनिमेष दृष्टिसु देख रही हे, कौनसे स्वरूपकु देख रही हे? हृदयस्थित स्वरूपकु देख रही हे कि बहि:प्रकट स्वरूपकु देख रही हे वो वाको निर्णय नहीं कर पावे. वो वाको सिलेक्शन् नहीं कर पावे. या रूपकु देखनो कि वा रूपकु देखनो? या रूपकु एटेन्ड् करनो कि वा रूपकु एटेन्ड् करनो? कन्फ्यूज़्ड् हो जाये और या कन्फ्युज़नपे जब प्रभु हंसे और जब वो हंसी वाके श्रवणन्में जाये और वो हंसी हर बखत घरके प्रत्येक कामकु करते बखत, याद आती रहे. वो हंसी कभी भूली नहीं जाये. वो हंसी जा बखत प्रभुको संयोगानुभव होवे, तब तो बड़ी सुखद लगे और येही हंसी, जब प्रभुको विप्रयोगानुभव होवे हे, वो तलवारकी तरह, कटारकी तरह चुभती रहे. ये गुण अवगुण हो गयो.

(भगवदवगुण या भगवद्गुण ?)

महाप्रभुकी भाषामें ये गुण अवगुण नहीं भयो पर **ज्वरितस्य अन्ने विरसताप्रतीतिः**. क्योंकि महाप्रभुजीको आग्रह हे कि ऐसे नहीं कहिये. जा बखत जतीपुरामें दर्शन करवे कोई महारानी आई, तो कह्यो गयो कि "सब दरवाजा बंद करो, महारानी साहिबा दर्शन करवे आ रही हें." तो सुरक्षा करवाई गई. सब दरवाजा बंद भये. दर्शन भये. तब श्रीनाथजीने दरवाजा खोल दियो. तो ऐसी भीड़ पड़ी कि महारानीकी परदाकी बात तो दूर रही, वाके कपड़ान्को भी ठिकाना नहीं रह्यो. कहां तो परदामें हती और जा बखत महाराजाधिराज बेठ्यो भयो हे तो वहां महारानीकी क्या पूछ! कौन पूछे कि "महारानी हे कि कौन हे जा बखत भीड़ पड़े हे." सब वस्त्र इधर उधर हो गये. वा बखत परमानन्ददासजीने ये पद गायो **"कौन ये खेलवेकी बानि?."** अरे ये कैसो खेलवेको तरीका हे! तो महाप्रभुजी नाराज हो गये कि नहीं, जो खेले हे सो अपनेकु क्वेश्चन् नहीं करनो चइये. अपने ये केहनो **"भली ये खेलवेकी बानि."** अपन् कैसे ये केह सकें कि ये कौन तरीकेको खेल हे? नहीं खेल रह्यो हे तो बात दूसरी हे पर जब खेल रह्यो हे तो अपन् प्रश्न नहीं कर सकें हें. जैसे जैसे वो खेले वैसे वैसे वाकु रेलिश् करो. मने खेलके एक अच्छे दर्शक बनो. जो खेल चल रह्यो हे वाकु एप्रीशियेट् करनो सीखो. तब सच्चो ब्रह्मवाद हे. तो आचार्यचरणने ब्रह्मवादके मूडमें वा बखत टोक दियो कि "ऐसे मत कहो 'कौन ये खेलवेकी बानि' यों कहो 'भली ये खेलवेकी बानि'" वा मूडमें आचार्यचरण यों नहीं कहें कि प्रभुके ये अवगुण हें, पर यों कहें कि अपनेकु ज्वर आ गयो हे, या लिये विरसता हे, या लिये अवगुण लगें हे बाकी अवगुण नहीं हें. बात तो एक ही एक हे पर वाकी कहन तो आनी चइये ना!

(हे प्रिय!)

प्रिय! इति सम्बोधनात् तव सम्बन्धोऽपि स्मृतः क्षोभजनको जायते. अतएव यासां न सम्बन्धः तासां न क्षोभः. कैसे मुंहसु बोलें. कहें कि जैसे तेरो प्रहसित क्षोभजनक हे, गोपिका एक कदम और आगे बढ़ जाये हे. प्रहसितके बाद तेरेसु सम्बन्ध रखनो भी क्षोभजनक हे. सम्बन्ध ही नहीं होय तो अच्छो. सम्बन्ध रख्यो तो क्षोभ भयो ना! सम्बन्ध ही नहीं होतो तो क्यों क्षोभ होतो? **सम्बन्धोऽपि स्मृतः क्षोभजनकः** ये बात कहांसु बताई गोपिकाने? ठाकुरजीकु **'प्रिय!'** केहके. तू प्रिय हे या लिये क्षोभ हे. यदि प्रिय नहीं होतो तो क्यों क्षोभ होतो? तिरोहित रेहतो कि प्रकट होतो, क्या फर्क पड़े? दिनमें कितने आदमी सामने आवें, सामनेसु चले जावें, कितने आदमी मिलें, कोईके लिये क्षोभ होवे! क्षोभके कौनके लिये होवे? प्रिय व्यक्ति बिछुड़े तो क्षोभ होवे नहीं तो कायेकु क्षोभ होवे? लोगबाग आते रहें जाते रहें. तो कहें हें 'प्रहसित'. क्षोभजनक हे सो तो हे पर तेरेसु सम्बन्ध रखनो ही गुनाह हे. **प्रिय! इति सम्बोधनात्** ये जो प्रिय बोली हे तो बड़ो चाबके बोली हे. ऐसे ही नहीं बोली हे. **प्रहसितं प्रिय!** जो वाने सम्बोधित कियो हे तो वाने केवल सम्बोधनके लिये सम्बोधित नहीं कियो हे, वा सम्बोधनमें भी थोड़ो टोणा हे. वामें भी कछु मेणा हे थोड़ो. ऐसे ही सम्बोधन नहीं कर रही हे. वाके लिये कहे हें.

तव सम्बन्धोऽपि स्मृतः क्षोभजनको जायते. अतएव यासां न सम्बन्धः तासां न क्षोभः. तेरेसु जिनको सम्बन्ध नहीं हे ऐसे प्रवाही जीव दुनियामें बड़े आरामसु जी रहे हें. उनकु क्या क्षोभ हे? पर जिनकु तेरेसु सम्बन्ध हे, जिनकु ब्रह्मसम्बन्धके कारण विरहार्तिको दान हे, उनकु क्षोभ हे. उनकु कृष्णवियोगजनित ताप हे, उनकु कृष्णवियोगजनित क्लेश हे, बाकी कौनकु क्लेश हे? सारी दुनिया चैनसु जिये.

किञ्च तव यत् प्रेमवीक्षितं प्रेम्णा वीक्षितं तदपि क्षोभयति स्मृतं सत्. तो कहें हें कि हंसवेसु तेरेकु क्षोभ होवे हे, सम्बन्धसु तेरेकु क्षोभ होवे हे, तो तुमकु शायद यों लगतो होयगो कि मैं तुमसु स्नेह नहीं करूं. तो लो मैं तुम्हारेसु स्नेह करूं हुं, तो तुमकु क्यों क्षोभ होवे! तो कहे हें कि तू हमकु प्रेमसु देखे हे तो वासु भी क्षोभ होवे हे. तो हमकु प्रेमसु मत देख. या वनमें रात्रिके समय हमकु प्रेमसु नहीं देख्यो होतो तो काहेकु क्षोभ होतो! हमकु तेंने जो स्नेहभरी दृष्टिसू देख्यो वाको आज सारो ये क्षोभ हो रह्यो हे. क्यों देख्यो! एक तरहसु नहीं तीन तरहसु क्षोभजनक हे.

(क्षोभजनकता)

तीन तरहसु क्षोभजनक हे. **अन्यविषयकं वा विश्वासजनकत्वाद् वा अन्तःकपटरूपमिति.** याद करें तो भी तेरो प्रेमवीक्षण हमकु क्षोभ पैदा करे. जब हमकु ये याद आवे कि तू हमकु स्नेहसु नहीं निहारके कहीं और स्नेहसु निहार रह्यो हे तो भी क्षोभ पैदा होवे हे. जब ये पता चले कि तू हमें स्नेहसु केवल निहार ही रह्यो हे पर सचमुचमें स्नेह नहीं कर रह्यो हे तो और ज्यादा क्षोभ होवे. जब स्नेह नहीं हे तो स्नेहसु निहारे क्यों? कपटसु क्यों निहारे? ये और क्षोभजनक होवे. पदमें आवे ना.

"हांके हटकि हटकि गाय ठठकि ठठकि रही गोकुलकी गली सब सांकरी. जारी अटारी झरोखन मोखन झांकत दूरदूर ठौर ठौर ते परत कांकरी. चंपकली कुंदकली बरसत रस भरी तामें पुनि देखियत लिखेसे आंकरी. नंददासप्रभु जहीं जहीं द्वारे ठाढ़े होत तहीं तहीं वचन मांगत लटक लटक जात काहूसों हां करी काहूसों ना करी." वो गोकुलकी गली बड़ी संकरी हें. अब जो गाय एक साथ आवें, तो सबकी सब गाय एक साथ तो नहीं जा सकें ना! तो उनकु हांक-हांकके एक एक दो दो को क्यूमें आगे भेजनी पड़ें. **"हांके**

हटकि हटकि गाय ठठकि ठठकि रही'' मने एक संग आगे नहीं बढ़ पावें. **''गोकुलकी गली सब सांकरी''** तो वो रुकवेके कारण क्या होवे हे कि वो एक एक भक्त, ठाकुरजी शामकु लौटके आवें, तब सब अपनी अपनी अटारीनूपे, झरोखानूपे या शोभाकु देखवेके लिये खड़ी हो जावें. **''चंपकली कुंदकली बरसत रस भरी तामें पुन देखियत लिखे कछु आंकरी''** वो भक्त अपने अपने पुष्प उनपे फेंकें. तो प्रत्येक पुष्पमें कुछ कुछ संकेत हे. **''नंददासप्रभु जहीं जहीं द्वारे ठाढ़े होत तहीं तहीं वचन मांगत लटक लटक जात काहूसों हां करी काहूसों ना करी''** तो क्या ठाकुरजी कोई गोपीकु या कोई भक्तकु कभी ना केह सकते होंयगे? ये ना नहीं हे. हां तो ऐसी कि आओगे तो ठाकुरजीने कही हां आयेंगे पर आओगे ये तो कल भी कही थी कि आयेंगे और कल भी नहीं आये. ऐसे आओगे क्या? तो बोले ऐसे नहीं आयेंगे. **''काहूसों हां करी और काहूसों ना करी''**. ना करी वाको ये मतलब हे कि कल जैसे आये थे वैसे ही आओगे क्या? तो कहें हें कि ऐसे नहीं आयेंगे. तो ये सब कपटके वचन भी **क्षोभजनकं भवति**. ये भी अधिक क्षोभजनक हो जायें. **अन्यथा कार्ये विसंवादो न स्यात्**. क्योंकि यदि सचमुचमें तुम हां कर रहे हो तब तो आनो चइये. हां तो केह जाओ और आओ नहीं. वाको मतलब ये कि अन्त:कपट रूप हे. ये कपटको आरोप प्रभुपे लगावे कि तुम कपटी हो. अरे तू कपटी हे और व्यर्थमें हमारे मनमें क्षोभ पैदा करे हे.

मनसः उत्तोलकं वा तो ठाकुरजी कहें नहीं नहीं हम तो तुम्हारे मनकु हां और ना की तराजूमें तोल रहे हें. हां केहवेपे मनपे कैसो वजन आवे, मन कैसो भारी होवे और ना केहवेपे मन कैसो भारी होवे हे? तो बोले मन क्यों तोले? तोले वो आदमी जाकु लेनदेनमें सन्देह होवे. भई घरमें आपको कोई व्यक्ति दुकानदार होय सो खूब तोले. घरको आदमी चाय मांगे तो वाकु तोलके दोगे!

कॉफी शक्कर तोलके दोगे! पड़ोसीने कछु मांग्यो और वाको तराजू मंगाके तोलके दी जाये क्या! पड़ोसीके साथ ऐसो व्यवहार होवे! नहीं होवे. दुकानमें ही तोलके देवें. घरमें तोलके दियो जाये क्या! अपनो घनिष्ठ होवे तो वाको तोलके दियो जाय क्या! क्यों हमारे मनकु तोले हे! हां और ना की तराजूमें हमारे मनकु क्यों तोले! काय बातको तेरेकु संदेह हे, तू ये बता! **मनसः उत्तोलकं वा आशाजनकम्** जा बखत तेरेकु यों लगे कि हमारे मनकु तोलके कि हमारो मन आसक्त हे तेरेमें तो आशा क्यों पैदा करे फिर! वाही बखत निराश कर दे चल. सारी बात ही खतम हो जाय. कोई कहे कि माल कम दे हे. अब तोलके माल कम मिले, तो तोलवेमें क्या होवे हे कि तोलवेमें बनिया तराजूको यहांसु पकड़के दबा दे हे तो माल थोड़ो जावे हे. तो तोल तो ज्यादा पर माल सप्लाई कम होवे हे. एक तो मनकु तोले और फिर तोलके भी सप्लाई कम! तोले तब तो सच्चाई रख. अरे जो माल देनो हे सो दे दो हम ले लेंगे अपनी झोलीमें. जितनो आयेगो उतनो. अरे ये तोलवेको नाटक करे और माल कम देवे! ऐसो कैसो परिवृढ़ हे!

आशया च श्रमः तो कहें हें कि आशा हमकु होवे हे. आशाके अनुरूप हम न जाने कितनी देर बाट देखती रहें, ना जाने कितने चक्कर हम काटते होंयगे, न जाने कितने काम घरके जल्दी कर करके हम भागते होंयगे, व्यर्थके लिये? ऐसी खोटी आशा पैदा करके? तो ये जो तू छिप गयो हे वो हमारेकु क्षोभजनक हे. ये तामसी हे ना! एकके ऊपर एक कम्प्लेन् करती चली जा रही हे. अभी तकतो राजसीसु पाला पड़्यो हतो. अब तामसीसु पाला पड़्यो हे. कितनी शिकायतें हें, शिकायतके बाद शिकायत.

तव विहरणमपि क्षोभजनकम् तो कहें हें कि नहीं नहीं हम तो गाय चरावें गये हते. ये काम आ गयो वो काम आ गयो

थो. तो कहे हे कि जितने तेरे काम काज हें वो सब हमकु क्षोभजनक हें. **विहरणम् यच्चलनं, वेणुवादनादिना रसो भगवदीय आकाराद् बहि: स्थाप्यत इति, विशेषेण हरणं यस्मादिति त्रिभङ्गललितादिकं भवति. तत्पूर्वम् अस्माभि: ध्यातमिति ध्यानमेव मंगलं, त्वल्लक्षणं शुभफलं प्रयच्छतीति. तदपि इदानीं क्षोभजनकं तिरोहिततत्वात्.** कौन बताये आचार्यचरणके बिना ये सारे रहस्य! **विहरणम्** को मतलब यहां वहां घूमनो. अब फिर देखो डिक्शनरी मीनिंग् और ग्रामेटिकल् मीनिंग्में अंतर पड़ रह्यो हे. विहरणम्को डिक्शनरी मीनिंग् जो होवे हे यहां वहां फिरनो और ग्रामेटिकल् मीनिंग् हो जाये **विशेषेण हरणम्** चुर जानो/चोर लेनो . तो ये विहरण क्यों हे? मने बंसी बजाते भये, जा बखत आवें ''**बर्हापीडं नटवरवपु: कर्णयो: कर्णिकारं बिभ्रद् वास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् रन्ध्रान् वेणो: अधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः वृन्दारण्ययं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्ति:** (भाग.पुरा.१०।१८।५). दिन भर गाय चराके उनकी अलकन्में गोरज भर गई और बंसी बजाते भये और ग्वालियान्कु लेके ठाकुरजी सांझकु लौटें, वा बखतको और जंगलमें जा बखत मोरके पंख पड़े भये होंय उनकु अपने जूड़ामें ठूंस लें. आमके जो पत्ता हें उनकु कानपे लटका लें. जंगली फूल जो जंगलमें मिलें उनकु एक एक फूल तोड़के कभी और कहीं ठूंस लियो. एक मस्ती **विहरणम्.** मने सोद्देश्य जो आदमी जाय वामें तो ऐसी मस्ती नहीं होवे, क्योंकि जहां जानो होय वाकी टेन्शन् होवे कि वहां जानो हे. ये तो मस्तीमें जंगलमें घूम रहें हें. रस्तामें जो जो चीज मिली वाको उठा उठाके ठूंसते जा रहे हें. चलते जा रहें हें. वा तरहको जो तेरो विहरण हे और वेणुवादन करते भये आ रहे हें, उन बातन्के कारण हमकु क्षोभ होवे हे. तो कहें हें कि तुमकु क्यों क्षोभ होवे हे? वो तो हमारी वनकी लीला हे; तुम तो यहां व्रजमें रहो. तो कहें करें क्या **ध्यानमंगलम्** हे ना! ध्यान तो वामें लग्यो भयो हे ना. सुबहसु जावे तबसु मनमें ध्यान शुरु हो जाये. वो पूरो चले कि या जगह पहोंचे होंगे. अब या पेड़के नीचे

पहोंचे होंगे. वाके पत्ता ठोंस लिये होंगे. कैसे पता चली कि पत्ता ठोंस लिये? तो कहें हें कि शामकु आओ तो सब दिखे हे ना. शामकु जब लौटे तो सब दिखाई दे हे. तो ये निश्चय होवे हे कि इन इन पेड़न्पेसु गुजरे होंयगे. अलग अलग फूल-पत्ते जो प्रभुने श्रीअंगमें धराये तो सब पेड़ एक जगह तो नहीं होंयगे. अलग अलग जगह होंयगे. तो वा वा एरियासु प्रभु गुजरे होंयगे. ऐसे वा वा एरियापे ध्यान तो जावे हे ना!

(वेणुवादनसु उपदेश)

तो कहें कि ध्यान मत करो. तो कहें कि ये नहीं हो सके, क्योंकि विहरण ऐसो नहीं होवे हे. वो तो वेणुवादनके साथ होवे हे और वेणुवादनको प्रभुने विद्याकी तरह यूज् (उपयोग) कियो. आचार्यचरण कहें हें कि बंसी जो ठाकुरजी बजावें हें, ये एक तरहको ठाकुरजीको उपदेश हे. बल्कि सच्चे अर्थमें कहो तो ये उपनिषद् हे. तो जैसे उपनिषद्सु उपनिषद्के प्रतिपाद्य ब्रह्मकु समझ्यो जा सके हे. याही तरहसु बंसीकी धुनसु कृष्णके स्वरूपकु समझ्यो जा सके हे. कृष्णने जो भी कुछ स्वरूप समझायो ब्रजभक्तन्कु वो बंसी बजा बजाके समझायो. वो तो बंसी बजाते बजाते मदनमोहन भयो. ये बंसी एक तरहको प्रभुको उपदेशक रूप हे. याही लिये याकु विद्यारूप मान्यो गयो हे.

अभी किशनगढ़में हमारे बड़ी सुन्दर चर्चा भई कि अपने सम्प्रदायको शिवजीके साथ इतनो द्वेष क्यों हे? शिवजीके साथ क्यों द्वेष? क्योंकि जा बखत ठाकुरजी कृष्णके रूपमें अवतरित भये तो शिवजी वेणुके रूपमें अवतरित भये. तो बंसीके साथ क्या बैर पड़ गयो! बंसीके और हमारे? दिन रात श्रीठाकुरजीके श्रीहस्तमें रहे हे. दिन-रात अधरामृत पान करे हे. ऐसे ही कोई प्रकारसु ठाकुरजीकु छोड़े ही नहीं. बंसी कहां बैर पड़ी. तो ये द्वेष गोपिकान्के बखतसु शुरु भयो शिवजीको

और गोपिकान्‌को, जो अभी तक अपन्‌में भी चल रह्यो हे. बाकी और कोई द्वेष नहीं हे. क्योंकि अपनो सम्प्रदाय भी शिवजीके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय हे. अपनो पुष्टिमार्ग रुद्रसम्प्रदाय कह्यो जाये. याके आद्याचार्य रुद्र हें. मने रुद्रने ही अपनेकु कृष्णकी तरफ बुलायो हे. तो बुलावें तब तो अच्छे लगें पर खुद ही भक्ति करवे लग जायें और अपनेकु नहीं बुलावें तो कैसे अच्छे लगें! चक्कर ये हे. दिनरात खुद भक्ति करते रहें आँख मींचके और ठाकुरजी अपने हाथमें नहीं आवें, ये विवाद वा बखतसु चल रह्यो हे, सो अभी तक चल रह्यो हे. मुरलीके पद तो अपने यहां भरे पड़े हें और गाये भी जाये हें. शरदपूर्णिमाके पेहले मुरलीके पद गाये जाये हें. वो गालीन्‌सु ही भरे भये हें. वामें सब तरहकी गालियें हें. मने यहां तक गोपिकायें निर्णय करें हें कि एक दिन ऐसो करो कि जंगलमें जाके जितने बांसके पेड़ हें उन सबकु जला दो. ना रहे बांस ना बजे बांसुरी. ये बांस हे तो बंसी बने ना! ये बांस ही सब जला दो तब फिर बांसुरी बजेगी कैसे? तो ये पुरानो द्वेष हे नयो द्वेष नहीं हे.

उर्दुमें कह्यो जाय **"पुश्त गुजरी हे इस राहकी सैयारीमें"** मने या मार्गपे जनरेशन्‌सु जनरेशन् हम चलते आयें हें, झगड़ते चलते रहेंगे और वामें शिवजीकु भी मजा हे और अपनेकु भी मजा हे. ये झगड़ा चलनो चइये क्योंकि ये मधुर झगड़ा हे. ये क्षोभजनक झगड़ा हे ना! आचार्यचरण कहे हें **विहरणं यच्चलनं, वेणुवादनादिना क्षोभजनकं भवति. रसो भगवदीय आकाराद् बहिः स्थाप्यत इति, विशेषेण हरणं यस्मादिति.** तो क्या होवे हे कि वेणुको बहोत असाधारण सामर्थ्य हे विद्यारूप. न केवल ये भक्तन्‌के मनकु हरके भगवान्‌के पास ले जाये वेणु पर जा बखत बजे वा बखत भक्तन्‌के मन हरके भगवान्‌के पास चले जायें और भगवान्‌के स्वरूपकु भी हरके भक्तन्‌के हृदयमें पधरा दे. क्योंकि वेणुवादनकी प्रक्रियाके द्वारा भगवान्‌को स्वरूप जो

भगवान्‌की आकृति हे, वो तो भगवान्‌में ही रेहनी चइये पर ये वहांसु वेणुनादकी प्रणालीसु भक्तन्‌के हृदयमें आके स्थित हो जाये. तो भक्तन्‌मेंसु भक्तको हृदय चोरके भगवान्‌के पास पहोंचा दे और भगवान्‌की आकृति भगवान्‌को रूप माधुर्य वो भगवान्‌मेंसु यहां भक्तन्‌के हृदयमें लाके पधरा दे. या तरहकी गड़बड़ शड़बड़ करे. चोरी वोरी नहीं करे पर हेराफेरी तो करे ना!

हमारे पंडितजी और उत्तमजी को रूम पड़ोसमें. पंडितजी बिचारेन्‌कु इन्सोमेनिया हो गयो. रातकु नींद नहीं आवे. तो वो रातभर गाना गाते. उत्तमजीकु रातकु खटका भी होय तो नींद उड़ जाये इतनी कच्ची नींद. उनकु आखी रात परेशानी होती. अब दोनों करें क्या? दोनों अपने अपने स्वभावसु लाचार. वो रातकु गाना गावें तो उत्तमजीकी नींद उड़ जाये तो उत्तमजी बेठके पलंगपे तबला बजावें. पंडितजीकु लगतो कि ''ये इन्सल्ट् हो रह्यो हे मेरो, मैं गाना गाऊं तो तबला क्यों बजावे!'' पार्टीशन् बजावें ढमढम ढमढम. या तरहसु दोनोंन्‌में खूब द्वेष बढ़्यो. बढ़ते बढ़ते इतनो भयो कि पंडितजी छीवें जायें या न्हावे जायें, तो उत्तमजी क्या करें कि पार्टीशन्‌मेंसु कूदें और कूदके उनकी बाल्टी यहां रखी होय तो वहां रख दे, कपड़ा यहां रखें होंय तो वहां रख दें. चोरीको तो उत्तमजीकु कोई काम नहीं, चोरी क्यों करें उत्तमजी! चोरी नहीं कर सकें पर वस्तुविनिमय कर दें. उनको रूम खूब अगड़म बगड़म करके फिर पार्टीशन्‌सु कूदके अपने कमरामें सो जायें. अब पंडितजीने आके मोकु कम्प्लेन् करी कि ''मेरे कमरेमें वस्तुविनिमय हो जावे हे.'' मैंने कही ''वस्तुविनिमय कैसे हो गयो?'' मैं समझ्यो नही कि वस्तुविनिमय कैसे हो गयो! तो उनने कही कि ''चलो मेरे साथ.'' तो उनने दिखायो ये बाल्टी यहां रखी थी अब वहां रखी हे कोई ने. हमने कही कि ''भूत आ गयो कि प्रेत आ गयो.'' मेरी समझमें नहीं आई कि क्या हो रह्यो हे. मैंने सोची ''होयगो कोई घोटाला.'' वाके पीछे दो-तीन

दिन बाद उत्तमजीने मोकु कही कि “ये मेरेकु रातभर तंग करे तो मैं इनकु या तरहसु तंग करूं.”

तो भक्तें वेणुकु गाली दें. तो वेणु भी अपनो रिवेन्ज् ले तो कछु वस्तु विनिमय उत्तमजीकी तरह कर दे. भक्तन्को मन ठाकुरजीके पास रख आवे और ठाकुरजीको स्वरूप भक्तन्के हृदयमें पधरा दे. अब परेशान होते रहो. क्यों गाली दी? तो वाको कुछ न कुछ तो रिवेन्ज् होयगो ना! कोई चोरी नहीं करे पर वस्तुविनिमय तो कर जाये कि यहांकी वस्तु वहां और वहांकी वस्तु यहां धर दे और दोनों परेशान. वहां जो भी कुछ आकार रूप रस हे, वो यहां भक्तके हृदयमें स्थित हो जाये वेणुके द्वारा और यहां इनको मन वहां स्थित हो जाये. अब दोनों परेशान कि क्या करनो?

रसो भगवदीय आकाराद् बहिः स्थाप्यत इति. वो कहें हें कि भगवदीय रस आकारसु बहिः स्थापित कर दे. **विशेषेण हरणं यस्मादिति त्रिभंगललितादिकं भवति.** मने “**तेरी भ्रोंहकी मरोरनते ललितत्रिभंगी भये अंजन दे चितयो भयेजू श्यामवाम**” (नंददास). तो कहें कि या प्रकारको ललितत्रिभंगी रूप भी ध्यान करवेमें बड़ो सुख देतो थो. **तदपि इदानीम् क्षोभजनकम्** अब तो वो भी तकलीफ देवे लग गयो हे. हमकु वो भी नहीं रुचे. मने तेरो हंसनो नहीं सुहावे, तेरी प्रियता हमकु नहीं सुहावे, तेरो सम्बन्ध हमकु नहीं सुहावे, तेरो प्रेमसु निहारनो हमकु नहीं सुहावे, तेरो विहरणं हमकु नहीं सुहावे, जा, यदि तू प्रकट नहीं होवे तो. बड़ी कठोर बात केह रही हे.

तत्पूर्वम् अस्माभिः ध्यातमिति ध्यानमेव मंगलम्. पेहले हमने वाको ध्यान कियो हतो, प्रमेयप्रकरणमें भी तो ध्यान भयो ना! तो वेणुवादन करके जा बखत हृदयमें स्वरूपस्थापन भयो, तब ध्यान कियो हतो पर ध्यान ही मंगल हे महाराज और कछु बात नहीं हे. ध्यान

किये ते ही घोटाला भयो. नहीं ध्यान कियो होतो, ये स्वरूप हमारे हृदयमें नहीं पधरायो होतो, तो कायेकु ये कष्ट होतो!

(ध्यानमंगलम्)

तत्पूर्वम् अस्माभिः ध्यातमिति ध्यानमेव मंगलम्, त्वल्लक्षणं शुभफलं प्रयच्छतीति. तदपि इदानीं क्षोभजनकं तिरोहित्वात्. ते इति सर्वत्र सम्बन्धः. ये जो कह्यो **विहरणं च ते ध्यानमंगलम्, 'ते'** मने तेरो. मने **'ते'**को सम्बन्ध सबसु हे. तेरो हंसनो तेरो प्रिय होनो तेरो प्रेमसु निहारनो तेरो विहरण सब हमकु कष्ट दे. याकु **'ते'** क्यों कह्यो, याकु तेरो क्यों कह्यो? तो कहें हें **अन्यद् माययापि करोतीति मुख्यतया अत्र उक्तिः.** और जो कुछ तेरे गुण होंयगे, वो शायद मायासु भी हो सके हें पर ये तो निश्चित तेरे ही हें सारे अवगुण. मने ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य तो कहीं मायासु प्रकट हो जायें, कोईमें मायिक ऐश्वर्य प्रकट हो जाये, मायिक ज्ञान प्रकट हो जायें. मायिक वैराग्य प्रकट हो जाये. सब प्रकट हो सके, पर जा तरहसु तू हंसे हे जा तरहसु तेरी प्रियता हे जा तरहसु तेरो प्रेमवीक्षण हे जा तरहको तेरो विहरण हे, वो तेरे सिवाय और कोईकी ताकत नहीं हे जो कर सके याके लिये ये सब तेरे हें और तेरे हें सो तकलीफ दे रहे हें, बोल कछू केहनो हे!

(वाणीसम्बन्धि क्षोभक)

एवं रूपसम्बन्धे चतुष्टयं क्षोभकम् उक्तम्. नामसम्बन्धि द्वयम् आह 'रहसि संविदः' इति 'या हृदिस्पृशः' इति. ऐसे प्रभुके रूपसु सम्बन्धित चार बातें क्षोभक बतायी. अब दो बातें प्रभुकी वाणीसु सम्बन्धित क्षोभक बता रहे हें. जो कुछ बातें संयोगमें, मिलनकालकी वो सारी चतुराईकी बातें अब हमकु तकलीफ दे हें. (वो बातें) जिनमें तेरी चतुराई प्रकट होवे और जो बातें हमारे हितकी करे कि या तरहसु तुम्हारो हित हे, या तरहसु तुम्हारो हित हे, हमारे हित विचारमें

भी जो हमारो ख्याल आवे, तो हमकु होवे कि हित विचार करके, हमारो हितेच्छु बनके, हमारो स्नेहपात्र बने और फिर हमारो हित करे नहीं, तो जो **रहसि संविदः** हे और जो हृदयकु छूवेवाली मने हमारे हृदयमें तेरे हित करवेकी बातें जो तू करे हे, वो सारी बातें क्षोभजनक हें. **अतः एवम् एते सुखहेतवोऽपि, भवान् वञ्चयति चेत्, तदा क्षोभं जनयन्ति.** ये जो सारे सुखके हेतु हें, चार गुण तेरे रूपसु सम्बन्धित और दो तेरी वाणीसु सम्बन्धित, ये सुखके हेतु होते भये भी जा बखत इनके द्वारा तू हमकु ठगवे लगे हे, तो ये हमकु तकलीफ देवे लगे हें, ये बात बताई.

अयम् अर्थः सर्वानुभवसिद्धः इति आह हि इति. ये मैं अकेली केह रही हूं ऐसे नहीं हे, पर जितनी गोपी खड़ी हें वो सब ये ही केह रही हें, ये तामसी हे ना! तो ये केह रही हे कि मैं ही नहीं केह रही हूं, सबसु पूछ कि कोई यामें ना पाड़े? औरकी प्रार्थनामें तो शायद मोकु ओब्जेक्शन् होयगो पर मेरी प्रार्थनामें इन कोईकु ओब्जेक्शन् नहीं हे.

----※----

॥श्लोक : ११॥

उत्थानिका :

राजस्या वचनम् आह चलसि इति.

विवरणम् :

राजसतामसीनूके मनोक्षोभके वर्णनके बाद, राजसराजसीको मनोक्षोभ अब यहां बतावे जा रहे हें. **राजस्या वचनम् आह चलसि इति.** ये क्या कहे हे अपने स्नेहकु और प्रभुके स्नेहकी तुलना करे हे. ये कहे हे कि तू हमारो स्नेह देख कि कैसो हे? और तू अपनो व्यवहार और स्नेह हमारे प्रति देख हमारो स्नेह कैसो हे? पूर्वमें जो तामसीने कही **प्रेमवीक्षितम्** वा बातको थोड़ो एमेन्डमेन्ट् करे हें. तामसी कहे हे **''प्रेमवीक्षितं नो मनः क्षोभयन्ति हि''** ये कहे हे कि प्रेमसु तू देखे कहां हे? हम तो स्नेहवश जहां तोकु कष्ट नहीं पड़े, वामें भी हमकु स्नेहवश तोकु कष्ट होवेकी बुद्धि होती रहे हे. हमकु लगे हे कि तोकु कष्ट हो रह्यो हे. या बातको कष्ट हे, वा बातको कष्ट हे!

श्लोक :

चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ! ते पदम्।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त! गच्छति ॥११॥

सुबोधिनी :

अस्माकं तु स्नेहवशात् त्वद्विषयका समीचीनेऽपि खेदबुद्धिः जायते, तव तु न अस्मद्विषयिणी सति खेदेऽपि जायते इति न्यायविरोधमिव आह. यद् व्रजात् पशून् चारयन् चलसि तत्र चलने नलिनापेक्षयापि सुन्दरं कोमलं, हे नाथ!, ते पदं मार्गस्थितैः शिलतृणांकुरैः – शिलाः

पाषाणाः, तृणानि, अंकुराः दर्भादीनां, तामसानि सात्त्विकानी राजसानि; अथवा शिलारूपं यत् तृणं शिलातृणं कठिनतृणं, तस्य अंकुरैः - अतिपरुषतीक्ष्णैः सीदति इति क्लेशं प्राप्नोति इति, वस्तुतो न प्राप्नोत्येव तथापि, हे कान्त! भर्तः, मनः कलिलतां गच्छति. व्रजाद् इति प्रातरारभ्य खेदः सूचितः, चलनादेव च खेदः अतः प्रथमतः तदेव उक्तम्. वस्तुतस्तु तव पदे अस्मत्स्थानं विहाय न गच्छतः तथापि भवानेव तथा चालयति. किञ्च व्रजस्थिता गावो अरण्ये नीयन्ते, तासां चारणं न मार्गगमनेन भवति अतो अमार्गेऽपि गन्तव्यम्. भूम्यादीनाम् अनुग्रहार्थं न पादुकाग्रहणं, पाल्यानां चर्म च न परिधेयम्, अतो नलिनसुन्दरं पदमेव शिलतृणांकुरैः सिदति. (नलिनं!) जलएव स्थातुं योग्यं, जलपूर्णे वा नलिनादपि सुन्दरं चेत्, लक्ष्म्याम् अस्मासु वा स्थातुं योग्यम्. नाथ! इति सम्बोधनाद् बहवएव अत्र अर्थे नियोज्याः सन्ति तथापि स्वयमेव गच्छसि इति. वने हि त्रिविधा भूमिः - पर्वतरूपा अरण्यरूपा कच्छरूपा च. तत्र क्रमेण एकम् एकत्र भवति, सर्वं वा सर्वत्र. अवसादो अशक्या एकत्र स्थितः तदा चिन्ता भवति, स्वयं गत्वा स्वहृदये स्थापनीयम् इति. मनःकान्त! इति च, तेन मनः स्थापितमपि न तिष्ठति इति॥११॥

विवरणम् :

(किम् आसनम् ते गरुडासनाय... !)

असलमें क्या हे कि सारे भक्तिमार्गको रहस्य यामें छिप्यो भयो हे. यदि ब्रह्मवादकी दृष्टिसू देखो तो प्रभुकु क्या कष्ट हे? ब्रह्मवादकी भूमिकामें महाप्रभुजी कहे हें "**किम् आसनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभ भूषणाय. लक्ष्मीकलत्राय किम् अस्ति देयं, वागीश ते किं वचनीयम् अस्ति**" (त.दी.नि.प्र.१।१). जाको गरुड जैसो आसन हे, वाकु कौनसो आसन दिखावें हम! जाको कौस्तुभमणि जैसो भूषण हे, वाकु क्या शृंगार धरायें हम! जाकी लक्ष्मी स्वयं खुद पत्नी हे, वाकु हम क्या भेंट धरें! और जो वाणीको बुद्धिको मनको प्रेरक हे वाकी स्तुति भी क्या करें!

आचार्यचरण याही लिये पत्रावलम्बनमें आज्ञा करें हें **“ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचित् वस्तुतो ब्रह्म सर्वंहि व्यवहारस्तु लोकत:”** (पत्रा.३). यदि एक बखत ब्रह्मवादको सिद्धान्त अपना लें, मने बुद्धिमें तो अपनायो ही हे अपनूने, मगर व्यवहारमें कौन कहे कौनकु कहे क्या कहे, ये सब कछु ब्रह्म हे. जो बोलो सो भी ब्रह्म और जो नहीं बोले सो भी ब्रह्म. जो कही जाय बात सो भी ब्रह्म और जो नहीं कही जाये बात सो भी ब्रह्म. सब कछु ब्रह्म तो कौन कौनकु कहे और क्या कहे और क्यों कहे! कुछ प्रयोजन नहीं हे. समझो तो अपनी भाषामें एक शब्दको एक एक अर्थ होवे. जैसे मैं कहूं कि “मोकु जल पीनो हे. एक गिलास भरके जल लाओ.” तो ‘मोकु’शब्दको एक अर्थ हे. ‘गिलास’शब्दको एक अर्थ हे. ‘जल’को एक अर्थ हे. ‘लाओ’को एक अर्थ हे. तो सबके अर्थ अलग अलग हें. सबके अर्थ अलग अलग हें तो वाक्य बोलवेपे वाक्यको अर्थ समझमें आवे. समझ लो कि कोई अपनी ऐसी स्थिति हो जाये कि अपन् एक ही शब्द बोल पाते होंय, कोई भी शब्द. जैसे कौआ खाली “कांय कांय” करे. ज्यादा शब्द नहीं बोल पावे. ऐसे ही अपने कंठसु केवल एक ही ध्वनि निकल सकती होय. केवल एक शब्द ही निकलतो होय और समझ लो कि वो शब्द ‘ब्रह्म’ हे. तो मोकु जल पीनो हे. एक गिलास भरके लाओ. तो मोकु क्या केहनो पड़ेगो कि “ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म.” अरे भाई क्या अर्थ भयो! जब हो रह्यो हे कि क्या हो रह्यो हे? कैसे अर्थ समझमें आयेगो आदमीकु! पांच छे बार ब्रह्म ब्रह्म बोल लियो तो मोकु जल पीनो हे एक गिलास जल लाओ. ये अर्थ कैसे समझमें आयेगो? तो ब्रह्मवादको सिद्धान्त ऐसो विकट हे कि सारे शब्दनूको अर्थ ब्रह्म हे और सब कछु ब्रह्म हे सो ब्रह्म हे और जो नहीं हे सो ब्रह्म हे और जो केह रहे हें वो भी ब्रह्म हे. जो नहीं कह्यो जा रह्यो हे सो भी ब्रह्म हे. तो अब क्या केहनो? बड़ी विकट स्थिति हो जाये.

याही लिये आचार्यचरण कहें हें **''ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु न वक्तव्यैव कुत्रचित्''**. ब्रह्मवादमें केहवे लायक कुछ बात ही नहीं हे. वो ब्रह्मवाद तो हतो ही पर ब्रह्मवादको छोड़के कुछ ब्रह्मने भगवद्भाव अपनायो थोड़ो परमात्मवाद अपनायो थोड़ो भगवत्त्ववाद अपनायो तो वो ब्रह्म तो हतो ही पर वाने थोड़ी कुछ एडीशनल् क्वालिटी अपनायी परमात्मा होवेकी क्वालिटी अपनायी, भगवान् होवेकी थोड़ी और क्वालिटी अपनायी, तो ब्रह्म जब भगवान् बन्यो तब अपन् कछु बोल सकें. ब्रह्मके सामने कुछ भी नहीं बोल सकें. भगवद्वादमें तो कुछ बोल सकें. ब्रह्मवादमें तो कछु बोल्यो ही नहीं जा सके हे. क्यों? भगवद्भाव मने क्या? जामें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य होंय वाकु 'भगवान्' कहें. भगवान् हे तो ऐश्वर्य हे ऐश्वर्यकु गोपिकान्के जैसो कोई गावेवालो होय तो भगवान्को ऐश्वर्य हे ना! यश हे तो कोई सामने होय तो यश होयगो. शोभा हे तो कोई क्रिटिक् हे तो आर्टकी ब्युटी समझमें आयेगी. ज्ञानीकु थोड़े ही समझमें आयेगी! ज्ञानी तो वाकु फिर ब्रह्म बना देगो. ज्ञानीके लिये तो ऐश्वर्य भी ब्रह्म वीर्य भी ब्रह्म यश भी ब्रह्म श्री भी ब्रह्म ज्ञान-वैराग्य भी ब्रह्म. **गोमयं पायसम्.**

(गोमयम् पायसम्)

संस्कृतमें एक **''गोमयपायसन्याय''** (लौकि.न्याय.४०३) केहवावे. गोमय = अर्थात् गायसु जो भी चीज पैदा होती होय वो. अब गायसु तो दूध भी पैदा होवे घी भी पैदा होवे दही भी पैदा होवे गोबर भी पैदा होवे. अब जब खावेके प्रसंगमें आदमी बेठो भयो हे और कोई कहे ''गोमयम् लाओ'' तो कोई दूध आवे पेड़ा आवे तो कोई बात हे पर 'गोमयं' केहवे पर कोई गोबर लाके रख दे तो! वो भी हे तो 'गोमय' तो ज्ञानकी ऐसी ही एब्स्ट्रेक्ट् गति हे. गोमयकी जितनी वेरायटी हें, वामें मख्खन भी हे. ये सब एब्स्ट्रेक्ट् करके एक अद्वैत हो जाये, एक गोमय हो जाये. गोमय हे कि नहीं?

गोमय तो हे. फिर क्यों ना पाड़ रहे हो! अब पत्तलमें गोबर पड़्यो हे, क्या करे आदमी! गोमय तो हे. अब जो गोभक्त हे वो बिचारो तो खाले पर जो खावेको शोखीन हे भक्त जैसो वो कहां जाय? वो तो कहेगो कि "नवनीत मांग्यो थो, ये गोबर क्यों रख दियो पत्तलपे लाके?" अब क्योंकि अद्वैत हे वो भी गोमय हे और वो भी गोमय हे. तो ये "**गोमयपायसन्याय**" केहवावे संस्कृतमें. पायसकु गोमय समझनो. बात तो गलत नहीं हे. सब चीज ब्रह्म हे, ये बात गलत नहीं हे पर भक्तकी अपनी अपनी भूख भी तो हे कि नहीं कछु? खाली ब्रह्म होवेसु तो '**गोमयपायसन्याय**' हो जायेगो. भक्तकी भूख भगवान् बनावे हे. भक्तकु भूख हे ब्रह्मके ऐश्वर्यकु जानवेकी. क्योंकि अपन् अगर वाके सेवक नहीं तो वो ईश्वर कौनको? अगर वो ईश्वर नहीं तो वामें ऐश्वर्य कैसे? जो ईश्वर होय तब तो वाको ऐश्वर्य होय ना! बिना ईश्वरके तो ऐश्वर्य नहीं हो सके. तो वाको ऐश्वर्य अपन् सेवकन्पे निर्भर करे. अपन् सेवक हें या लिये वामें ऐश्वर्य हे. अपन् वाको यश गा रहे हें, वाके लिये वामें वो यश हे. अपन् वाकी शोभाको समझ पा रहे हें याके लिये ब्रह्ममें श्री हे क्योंकि भक्तमें भूख हे. भक्तकी भूख ब्रह्मकु भगवान् बनावे हे. अब भगवान् बन जाये ब्रह्म, ब्रह्म मात्र ब्रह्म ही रहे एकाकी तो कोई चिन्ताकी बात नहीं हे, फिर तो बोलवे लायक स्थिति हे ही नहीं, चुप रहो. पर जब ब्रह्म भगवान् बन गयो, वाके बाद हम तो स्नेहकी दृष्टिसु देखें और तू स्नेहकी दृष्टिसु नहीं देखे! ये कहांको न्याय हे? ऐसो तो हो नहीं सके कि एक आदमी भतीजा होय और दूसरो आदमी काका न होय! ये काका-भतीजा तो आपसी सम्बन्ध हे ना! यदि एक आदमी भतीजा हे तो कोई न कोई तो काका होनो ही चईये. बेठे-बिठाये कोई भतीजा हो जाये और कोई काका हो ही नहीं! काका-भतीजा तो आपसी बात हे ना!

(एकलव्यता)

कहें हें कि एकलव्यने द्रोणाचार्यकु गुरु बनायो और स्वयं चेला बन्यो. ये बात दूसरी हे कि द्रोणाचार्यने खुदने वाकु तीर चलानो सिखायो नहीं, पर एकलव्य तो द्रोणाचार्यसु ही सीख्यो. वाकी भावनामें इतनी ताकत हती जो न सिखावेवाले द्रोणाचार्य भी सिखावेवाले बन गये और वो सच्ची परख कब भई? जा बखत वाने कही कि "अच्छा! तू मेरो शिष्य हे या बातकु माने?" वाने कही कि "हां मानूं". तो "ला गुरुदक्षिणा दे अंगूठा." वाने कही कि "शिष्य हूं या लिये दे रह्यो हूं अंगूठा." ये भई भावनाकी सच्ची पेहचान. वा बखत वाने ज्ञानीकी तरह ये नहीं कही कि "नहीं नहीं वो तो केवल एक प्रतीक हती. सच्चे द्रोणाचार्यसु मैं कहां सीख्यो?" मूर्ति तो प्रतीक हे. प्रतीक क्या हे? कि जितनी देर नहीं आवे, जितनी देर ध्यान नहीं आवे वाके लिये मूर्ति रखी जाये. जब ध्यान धरनो आ जाये तो मूर्तिकु छोड़ दो. अपने आप तीर चलावे लग जाओ. ऐसो एकलव्य नहीं हो सके. जो एकलव्य हे वो ऐसे नहीं केह सके. अनेकलव्य या तरहको व्यवहार करे. एकलव्य मूर्ति और द्रोणाचार्य में भेद नहीं माने. यदि मूर्ति और द्रोणाचार्य में भेद माने तो वो एकलव्य नहीं हे. एकलव्यको मतलब हे कि जो मूर्ति हे वो द्रोणाचार्य हें और जो द्रोणाचार्य हें वो मूर्ति हे. वामें आह्वाहन नहीं कियो, वाने प्रतिष्ठा नहीं की, वाने पूजन नहीं कियो, वाने ब्राह्मणकु नहीं बुलायो, अपनी भावनासु वाने द्रोणाचार्यकी मूर्ति पधराई, तीर चलानो ऐसो आ गयो कि जाकु साक्षात् द्रोणाचार्य सिखा रह्यो हतो वा अर्जुनकु भी वैसो तीर चलानो नहीं आयो. मने अर्जुनकु चिंता हो गई कि तुमने तो महाराज वचन दियो थो हमकु कि मेरेसु उत्तम कोई शिष्य नहीं और ये क्या कौभाण्ड हे यहां? उनने कही कि पता नहीं चल्यो कि ऐसो कौभाण्ड कैसे हो गयो! पर तीर चलानो अर्जुन कर्मसु सीख्यो हतो और ये भावसु सीख्यो हतो. कर्मसु सीखे और भावसु सीखे वामें तो अन्तर हे ना! पुष्टिभक्त

तो भावसु भगवदाराधन सीखे हे, कर्मसु नहीं सीखे हे. वहां शास्त्रीय आज्ञा नहीं हे कि "जलं समर्पयामि. नैवेद्यं समर्पयामि, धूपं समर्पयामि." वो शास्त्रीय आज्ञा जैसे कि द्रोणाचार्य केहते अर्जुनकु कि "देख वृक्ष हे." तो वाने कही कि "हां वृक्ष हे." "चला तीर." वाने तीर चलायो, पर एकलव्य द्रोणाचार्यकी विधिसु नहीं सीख्यो, अपनी भावनासु सीख्यो. जो भावनासु सीख्यो वो ज्यादा वेधक भयो, जो विधिसु सीख्यो वो इतनो वेधक नहीं भयो. खुद द्रोणाचार्यकु ये समझ नहीं पड़ी कि ये तीर चलानो कैसे सीख्यो! जहां विधिसु द्रोणाचार्य सिखावे गयो वो विद्यार्थी इतनो तैयार नहीं भयो और जो विद्यार्थी भावनासु सीख्यो द्रोणाचार्यसु वो ज्यादा सीख्यो. यासु समझमें आवे अविहित भक्तिको माहात्म्य क्या हे! जो विहित भक्ति हे, जो शास्त्रीय विधिसु चलवेवाली भक्ति हे, वो कितनो वेध कर पायेगी और अविहित भक्तिकी निशानेबाजी कैसी हे! ये एकलव्यके उदाहरणमें पुष्टिमार्गको सारो रहस्य छिप्यो भयो हे, कभी समझवे जाओ तो!

"ते नाधीतश्रुतिगणा...केवलेन हि भावेन...सिद्धा मामीयुः अञ्जसा." (भाग.पुरा.११।१२।७) केवल भावसु वाने द्रोणाचार्यको स्वरूप पधरायो. मैं नहीं समझूं कि वो स्वरूप वासु बोल्यो होयगो कि बेटा तीर यों चला. आजकल कई लोग बोलें कि "हमने स्वरूप पधरा लियो पर ठाकुरजी हमसु बोलें नहीं." अरे पर तुम्हारेमें एकलव्यता हे! एकलव्यने कभी द्रोणाचार्यसु यों नहीं कही कि "ले महाराज मैंने आपकी मूर्ति पधराई हे. तीन दिन बाद तो बोलो? नहीं तो मूर्ति क्यों पधराई?"

एक दिन हमारेसु एकने झगड़ा कियो. "हम ग्यारह सालसु ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हें. ठाकुरजी जब पूतनाकु दर्शन दें तो हमकु क्यों नहीं दर्शन दें?" मैंने कही कि "कोन्ट्रेक्ट् तुमने कियो

थो, काउन्टरसिग्नेचर् ठाकुरजीके लिये थे?'' बोले वो तो ''नहीं लिये थे.'' तो मैने कही कि ''तुम वन साईड् एग्रीमेन्ट्में आये हो तो वाकी वेलिडिटी कैसे मानी जाय?'' अब कोई एग्रीमेन्ट् करे तो काउन्टरसिग्नेचर् चइये. काउन्टरसिग्नेचर् तो हें नहीं. अब तुम केह रहे हो कि ''ठाकुरजी नहीं बोलें.'' तो कैसे बोलेंगे ठाकुरजी! एकलव्यता तो लाओ. ये सेवा तुम कर रहे हो तुम्हारे हृदयमें इतनी मृदुलता आई. ये ही तो वो बोल रह्यो हे. वो नहीं बोल रह्यो हे तो इतनी मृदुलता आई कहांसु!

''योऽन्तः प्रविश्य मम वाचम् इमां प्रसुप्तां संजीवयति अखिलशक्तिधरः स्वधामना अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्'' (भाग.पुरा.४।९।६). यदि तुममें प्रभुके लिये एक आसूं भी बहावेकी क्षमता आई हे तो निश्चित समझो कि ठाकुरजीके हृदयमें भी तुम्हारे लिये कोई सोफ्ट्कोर्नर् भयो हे. यदि ठाकुरजीके हृदयमें सोफ्ट्कोर्नर् नहीं होय तो तुम्हारे आँखमेंसु एक आसूं भी कैसे टपके! जो मात्र इन्द्रियन्को प्रेरक हे, वो जबतक कोई प्रेरणा नहीं करे तो तुम्हारे कौनसे व्यवहार बन पायेंगे! कोई व्यवहार नहीं बन पायेंगे. अब फिर भी तुम यों समझो कि हम मूर्ति पूज रहे हें तो एकलव्यता सच्ची नहीं हे. बोले नही! अरे बोलवेसु क्या फर्क पड़े? जाकु स्नेह हे वाकु कोई फरक नहीं पड़े, बोले चाहे नहीं बोले. स्नेह तो स्नेह रहे हे और यदि कोई कोन्ट्रेक्ट् हे तो बात फिर काउन्टरसिग्नेचर्की हे. तो ये चक्कर हे थोड़ो सो. अपन् भक्तिमार्गपे चलें पर भक्तिके भावन्कु ग्रहीत नहीं करें तो वासु ऐसो कन्फ्युज़न् अपनेकु हो जाये.

अपनो छोटो बच्चा कौनसु बोल रह्यो हे! अब देखो ये निष्ठा ''कैं कैं'' करे, रोवे. अब पेट दूख रह्यो हे कि कान दूख रह्यो हे कि गरमी लग रही हे, अब क्या वो बतावे? अब या बातपे नाराज हो जायें तो? बताव तो इलाज करवायेंगे नहीं

तो नहीं करवायेंगे. अपनेकु लगे कि पेट दूख रह्यो होयगो तो हींग लगावें, कान दूख रह्यो होयगो तो कानमें दो-चार ड्रोप्स् डालें. अब भगवान् जानें कि याके कारण चुप होवे कि वाको रोवेको मूड खतम हो गयो वाके कारण चुप होवे? क्या पता चले अपनेकु? अपनेकु लगे कि हींग लगवेसु पेट दूखनो बन्ध भयो कि नहीं? अब बच्चा क्या बतावेगो? बच्चाकु तो कुछ एक्टिविटी चइये. कुछ नहीं मिले तो वो रोके अपनेकु एक्टिव् रखे. अब जब वाकु एक्टिविटी मिल गई तो अपनेकु जगाके आनन्दसु सो जाये. अपनेकु क्या पता चले! पर या तरहको ज्ञान माँ तो नहीं वापर सके ना! जब रोवे तो माँ वाके सब तरहके काम करे. हींग भी लगावे कानमें भी दवाई डाले सब कछु करे, अपनी जो जो सम्भावनायें हें. जितनी बात अपनी समझमें आवे.

(कलिलता मनः कान्त! गच्छति)

ऐसे भक्त तो भगवान्‌की सेवा ही करतो रहे. भगवान् वाकु रिटर्न क्या दे हें! ये कोई भक्तको विषय नहीं हे. भक्तिको स्वभाव ऐसो हे पर राजसभाव आ जाये तो अपन् मांगे फिर, जो हम तो स्नेह करें और तू हमसु स्नेह नहीं करे! ये गोपी यहां केह रही हे. गोपी क्या कहे हे? **चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ! ते पदम्. शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त! गच्छति.** अब देखो केहवेमें कितनो अन्तर हे. केहवे केहवेको अन्तर हे. केह तो सिर्फ इतनो ही रही हे कि हम यहां रातकु वनमें भटक रही हें और तू हमारी चिंता नहीं कर रह्यो हे. ऐसे वो केह नहीं रही हे. मात्र मनको भाव वा तरहको हे. केह कितनो रही हे? केह सिर्फ इतनी बात रही हे **चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून्** तेरे कोमल कमल जैसे चरण, सुबहसु गाय चरायवेकु इन कोमल कमल जैसे चरणन्‌सु तू चले हे, तबसु हमारेकु दुःख होवे लग जाये. ये कोई रातको अब ही दुःख हो रह्यो

हे ऐसी बात थोड़े ही हे. सुबहसु जब तू पेहलो कदम व्रजके बाहर धरे हे, तबसु हमारो मन खिन्न होवे लग जाये. क्यों खिन्न होवे? तो कहें हें कि तेरे चरण कोमल हें, वो ऐसे कहीं जंगलमें भटकवेके लिये हें कहा? इतने कोमल चरण जंगलमें काहे लिये फिरें हे? वहां कांकर होवें पथ्थर होवें कांटा होवें तिनका होवें सब चुभें पैरमें. क्यों भटके हे वहां? तो ठाकुरजी कहें कि मैं तो सुबहसु ही जाऊं हूं. गाय चरायवे जाऊं. तो कहें कि हमकु भी सुबहसु ही दु:ख हे या लिये. हमकु कोई अभी दु:ख हे ऐसे थोड़े ही हे. हमकु सुबहसु ही दु:ख हे या बातको कि तू सुबहसु ही जंगलमें क्यों भटके? तो अभी कोई नयो दु:ख आयो हे कहा? अभी तो चल्यो जा रह्यो हे. अभी तो और दु:ख बढ़ रह्यो हे वा बातको कि दिनमें भटके सो तो भटके अब रातमें और भटक रह्यो हे. रातमें क्यों भटके जब दिनमें हो गई भटकन पूरी! अब तो शान्तिसु बेठ कहीं. तो यदि प्रभु कहें कि हमारे कोमल चरणकु जंगलमें भटकवेको अभ्यास हो गयो. तो कहें कि शायद तेरेकु अभ्यास होयगो, तेरे कोमल चरणनूकु ऐसी कठोरतान्को अभ्यास होयगो पर हमारो मन तो खिन्न होवे ही हे. हमारो मन वो या बातसु संतुष्ट नहीं हो सके कि तोकु अभ्यास हे.

एक बात बताऊं. अपने घरमें कोई मेहमान आयो. अब अपने मेहमानकु तो पंखा चलावेकी आदत हे. अपनेकु पंखा चलावेकी आदत नहीं हे. अब वो सोतो होय बगेर पंखाके और वाकु पता होय कि इनकु पंखा चलावेकी आदत नहीं हे. अब वो यों कहें कि मेरेकु तो अभ्यास हे बगेर पंखा चलाये सोवेको और सो जाये तो! अब यदि अपने सुखको विचार करें, तो अपन् कहें कि अभ्यास हे ना बगेर पंखा चलायेके सोवेको, तो बस आज यहां मत चलाइयो पंखा, अपने गाँव जाओ तो वहां चलाइयो पंखा. यदि जरा भी अपनेमें आतिथ्यकी भावना हे तो अपन् क्या करेंगे? भई आपकु

तो अभ्यास होयगो बगेर पंखाके सोवेको पर कायेको वो अभ्यास यहां प्रकट करो. अपनो अभ्यास अपने घरमें प्रकट करियो. यहां तो पंखामें सोओ. हमकु कष्ट हे सो हम भुगत लेंगे. जामें आतिथ्यकी भावना हे वो तो या तरहको व्यवहार करेगो ना!

ऐसे ही गोपिका केह रही हे कि ठीक हे तेरेकु होयगो अभ्यास थोड़ो बहोत जंगलमें गाय चरायवेको और जंगलमें भटकवेको. पर ये अभ्यास दिनमें प्रकट करियो, अभी क्यों कर रह्यो हे? अभी यहां या अभ्यासकु जतावेकी क्या जरूरत हे? अब तो हमारे बीचमें शांतिसु बिराज. ये कमल जैसे कोमल चरणन्कु अभ्यास होय तो भी इन कंकड पथ्थरन्पे पधराके इनकु तकलीफ कायकु दो हो. हमारेपे पधरा दो. क्योंकि **नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्** ये कमल जैसे कोमल सुन्दर चरण हें, ये कोई कंकण पथ्थरपे पधरायवे लायक हें! या बातकु सोचके हमारे मनकु क्लेश होवे हे. वो ये बात कहे नहीं हे. ये तो भाव हे अन्दरको. अन्दरको भाव एक राजसभाव हे जो आचार्यचरण प्रकट करें हें. शब्दन्में वो केवल इतनो ही कहे हें कि क्यों कष्ट पावे हे तू? तो ये आदमी कब केह सके? जब वाके हृदयमें ऐसो स्नेह होय तब ना! नहीं तो केह दे कि अभ्यास हे ना! यदि व्यवहारकुशल होय, तब तो ये बात निभ जाये पर यदि जरा भी स्नेही होय, तो ये कौशल्य काम नहीं आवे. ये चतुराई काम नहीं आवे. स्नेह तो निश्छल होवे. वा स्नेहकी निश्छलता आचार्यचरण यहां समझा रहे हें कि ये वाके शब्दन्में निश्छलता प्रकट भई हे कि तू अपने चरणन्कु क्यों कष्ट दे हे? तो वासु ये भाव प्रकट भयो कि भई जिन कष्टन्कु सहन करवेको अभ्यास हे, उनमें भी हम नहीं चाहें कि तोकु वो कष्ट होवें. पर जा कष्टकु हमको सहन करवेको अभ्यास नहीं हे, वो कष्ट तू हमकु क्यों देनो चाहे? तेरेकु थोड़ो बहोत अभ्यास होयगो भी पर हमारेकु ये अभ्यास नहीं हे, वो कष्ट हमकु क्यों दे हे?

ये चरण जाके स्थापनको अधिकार केवल हमारेपे ही हे और वो चरण अगर हमारेपे स्थापित न होवें तो हमकु महान् कष्ट हे और वा कष्टकु सहन करवेको अभ्यास हमारेको नहीं हे. ऐसो कष्ट हमकु क्यों दे हे? तोकु अभ्यास होयगो शायद, कंकड़न् पथ्थरन्पे चरण स्थापित करवेको, पर हमकु ये अभ्यास नहीं हे कि तेरे चरण इन कंकड़ पथ्थरन्पे स्थापित होवें.

अब आचार्यचरण आज्ञा करें हें **अस्माकं तु स्नेहवशात् त्वद्विषयिका समीचीनेऽपि खेदबुद्धिः जायते.** जो बात तेरे लिये समीचीन हे, ठीक हे, यामें कोई अनौचित्य नहीं हे पर वामें भी हमकु तो अनौचित्य प्रतीत होवे हे और खेद होवे हे कि ऐसो नहीं होनो चइये. **तव तु न अस्मद्विषयिणी सत्यखेदेऽपि जायत इति न्यायविरोधमिव आह** और जहां सचमुचमें हमकु खेद हे, वामें भी तेरेकु हमारो कोई विचार ही नहीं होवे हे. कहे कि हमारेकु याको बड़ो कष्ट हे. मने तुलना कर रही हे कि जरा हमारे स्नेहकी और अपने स्नेहकी तुलना तो कर? "**न्यायविरोधम् आह**" नहीं केह रहे हें आचार्यचरण. "**न्यायविरोधमिव आह**" केह रहे हें. या बातसु समजियो कि वो केह नहीं रही हे, वो भाव तो सारे हृदयमें हें पर वाणीमें वा तरहको कोई झगड़ा नहीं हे. वाणी तो केवल इतनी हे कि "तू क्यों कष्ट पावे हे?"

यद् व्रजात् पशून् चारयन् चलसि तत्र चलने नलिनापेक्षयापि सुन्दरं कोमलं, हे नाथ! ते पदं मार्गस्थितैः शिलतृणांकुरैः शिलाः पाषाणाः, तृणानि, अंकुराः दर्भादीनां, तामसानि सात्त्विकानि राजसानि; ये कहे हे कि जब सुबह सुबह तू गाय चरायवेके लिये चले हे तो नलिनकी अपेक्षासु भी ज्यादा सुन्दर कोमल तेरे पद हें. अब एक और बात वा गोपिकाके मनमें जगे हे. वो यों कहे हे कि तेरेकु अभ्यास हे, शिलापे तृणन्पे अंकुरन्पे नंगे पैर घूमवेको, तो कहें हें कि ये तो हमारेमें भी हे. कैसे? शिला तामसभाववाली

हे तृण सात्त्विकभाववालो हे और अंकुर कांटा होवें हें, वो राजसभाववाले हें. तो हममें भी वैसे भाव हें. अब तेरेकु अभ्यास हे तो अभ्यासको मतलब क्या?

जैसे समुद्रमें न्हावेको अभ्यास हे. समुद्र कैसो भी होय पर न्हावेवालो तो न्हायेगो. कोइ डर जायें, जैसे अपन् डर गये, वाको मतलब ये कि समुद्रमें न्हायवेको अभ्यास नहीं हे खाली शोख हे. यदि सचमुचमें अभ्यास हे तो फिर चल राजस सात्त्विक तामस जैसी भी शिला होवें, हमारे हृदयमें भी कुछ शिला जैसे तामसभाव हें. हमारे हृदयमें भी बड़े दैन्यवाले मतलब तृण जैसे भाव हे मने तृणपे पैर रखो तो तृण झुक जाये. शिलापे पैर रखो तो शिला क्या करे? कि चुभ जाये. शिला झुके नहीं पैर रखवेपे आपकु पैरको ही ऊपर उठानो पड़े . हमारेमें भी तृण जैसे भाव हें जो सात्त्विकभाव हें. जा बखत तू उनपे अपने चरण स्थापित करेगो तो वा बखत वो दीनतासु गदगद हो जायेंगे. कोईमें तामसभाव हें कि पैर रखेंगे तो थोड़ी देर चुभेंगे. कोईमें राजसभाव हें, कोईमें सात्त्विकभाव हें कि थोड़ी देर चलायमान रहेंगे, कभी सीधे चुभे हें, कभी टेढ़े चुभे कभी आड़े चुभें कभी नहीं भी चुभें हें. जैसे कांटा सीधे चुभें तो ज्यादा दर्द करें और टेढ़े चुभें तो कम दर्द करें कांटा और आडे हो जाय तो नहिं भी चुभें. ऐसी चंचलता राजसताकी स्थिति वो अंकुरमें रहे, शिलामें नहीं रहे. तृण बिचारो तो सीधो ही होवे हे. पैर रख्यो नहीं कि झुक जाये. तो ऐसे भाव हमारेमें भी हें. यदि तेरेकु अभ्यास हे, ऐसे ही तेरे मनमें कोई शोख हे कि हमकु शिला तृण अंकुरन्पे नंगे पैर फिरनो हे तो वो तो सारेके सारे भाव हममें मौजूद हें. हमपे ही वो चरण क्यों नहीं स्थापित करे? या लिये मनमें क्लेश पावें हें. यों कहे हे.

अथवा शिलारूपं यत् तृणं शिलतृणं कठिनतृणं, तस्या

अंकुरैः - अतिपरुषतीक्ष्णैः सीदतीति क्लेशं प्राप्नोति इति. कहे हें कि तुम इतनो सब सुना रही हो, तुम्हारे भाव दैन्यवाले नहीं हें. सात्त्विकभाव नहीं हें. जो बहोत निर्गुणभाव हें वो भी बहोत चुभते भये सुना रही हो. सात्त्विकभाव जता रही हो शब्द सात्त्विक प्रयोग कर रही हो पर भाव उनके भी तामस हें. क्योंकि प्रकरण तामस हे. शब्द इनके सात्त्विक हो सकें हें पर प्रकरण तामस हे तो भाव तो सबके तामस ही हें.

सबके भाव तामस हें तो याके लिये कहें हें कि भले भाषा समझें और कोई "**न खलु गोपिका नन्दनो भवान्**" कहे कि तुम तो जगत्के अन्तरात्मा हो तुम भगवान् हो तुम तो दुनियाके पापकु नाश करवेवाले हो, हमारेमें जो पाप होंय वो दूर करो, ये तो केवल तुम्हारी भाषा ही भाषा हे. तुम्हारे भाव ऐसे नहीं हें. जा बखत तुम मीठी भाषा प्रयोग कर रही हो वा बखत भी भाव तुम्हारे तामस हें.

जैसे हमने वो कथा सुनाई ना कि "राज मुखारविन्दसु आज्ञा करें और दास मनमें विनती करे." भाषा बड़ी सात्त्विक हे. महाराजकु गाली देवेकी बहोत आदत. गाली दी महाराजने नोकरकु समझा दियो थो कि कभी गड़बड़ भाषा नहीं बोलनी. ज्यादा बोले नहीं क्योंकि ये तो नोकर हे. तो भाव तामस हे पर मनमें कहे ऐसे कि "दास विनती करे कि आप गधा हो." अब दास मनमें विनती करे और मनमें ऐसे भाव रखने कि "आप गधा हो." तो भाव तो तामस ही हे ना! शब्द सात्त्विक भाषा सात्त्विक और भाव तामस.

जो गोपिकायें सात्त्विकभाषाको प्रयोग कर रही हे उनको भाव तो तामस ही हे क्योंकि आखो प्रकरण ही तामस हे. कोई भी भक्त, कोई भी गोपिकाके भाव तो सात्त्विक नहीं हें. भाषायें सात्त्विक

आ रही हें. कोईकी राजस आ रही हे, कोईकी तामस आ रही हे. या लिये कहें हें कि नहीं नहीं नहीं तुम्हारे यहां तो त्रिविध प्रकारके भाव नहीं हें. भाव तो सबके तामस ही हें, एक जैसे ही हें. तो कहें चलो अच्छा अद्वैतवादी बनके इन सबको एक मान लो. तो कहें हें कि चलो यों मत समझो कि तीन चीजें हें. शिला एक अलग तामस हे. शिला जैसे तामस भाव हें. तृण अंकुर जैसे सात्त्विक राजस भाव अलग हें, ऐसे नहीं मानके हम सबके तामसभाव हें, यों तो समझ लो कि **शिलारूपं यत् तृणं शिलतृणम्** ऐसे ऐसे तृण जो शिलाकी तरह चुभते होंय, कोई ऐसे कठिन कठोर तृण होवें हें कि जो शिलाकी तरह चुभते होंय, कोई बबूलको पेड़ जैसे पैर रखवेसु झुके नहीं पर पैर रखवेसु चुभे ही चुभें. छोटे कांटायें भी ऐसे होवें तृण जो कि झुके नहीं, चुभे ही चुभें. **तस्य अंकुरैः अतिपरुषतीक्ष्णैः**. और उनके अंकुर तो बड़ी तीखी धारवाली होंवें. वो चुभें. तो हमारे यदि भाव ऐसे तामस होंय तो क्या व्रजमें ऐसे शिलारूप तृण अंकुर नहीं हें? उनपे पैर क्यों धरे? उनपे पैर धरतो होय तो हमपे क्यों नहीं पैर रखे? यामें क्या आपत्ति हे? हमारो भाव क्या उनसु ज्यादा कठोर हे? ये बता. व्रजमें तो कांटा ही ज्यादा होवें. व्रजमें यहांके जैसी नरम जमीन थोड़े ही हे. वहांकी कठोर जमीन हे. कांटा ही ज्यादा होवें. **''कांटा लागे गोखरू लागे फाट्यो जात तनो. भावे तोहि टोण्डको घनो.''** वहां तो कांटा और गोखरू ही ज्यादा होवें. सीदतीति क्लेशं प्राप्नोति इति, वस्तुतो न प्राप्नोत्येव तथापि, हे कान्त! भर्तः, मनः कलिलतां गच्छति. तो कहें हें कि तेरेकु अभ्यास हे, तो तोकु क्लेश नहीं होतो होयगो पर हमारे मनकु तो क्लेश होवे हे. हमारो मन तो क्लेश पावे ही हे. तेरे चरणकु क्लेश नहीं होतो होयगो वस्तुतः पर हमारे मनकु तो क्लेश होय कि अरे रे रे रे ये चरण! या तरहके! यहां रखवे लायक हें! पर क्यों होवे हे क्लेश? तो कहें हें कि या लिये कि तू कान्त हे. तू भर्ता हे. **''भर्ता सन् भ्रियमाणो**

बिभर्ति'' (तैत्ति.आर.३।१४।१) तेरे चरण तो हमपे होने चइयें पर हमपे नहीं होके इनपे रहें हें. ये तेरो भर्तृत्व, ये तेरो कान्तत्व बराबर निर्वाह नहीं होवे. हमारो जो सेवकत्व हे वो बराबर निर्वाह नहीं होवे, या लिये मनमें खेद होवे. **व्रजाद् इति प्रातरारभ्य खेदः सूचितः** ये तो राजसी गोपिका हे ना, **चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून्.** ये केह रही हे कि ये खेद हमकु अभी हे ऐसी बात नहीं हे, सुबहसु हमकु खेद हतो, कि क्यों गाय चरायवे जाय? तो बोलें कि अरे गाय चरायवे नहीं जाऊं तो क्या करूं? व्रजमें प्रकट होके, व्रजमें जब जन्म लियो गोपालके घरमें ग्वालन्के घरमें तो गाय नहीं चराऊं, ये कैसे हो सके! तो वाके लिये वो आगे जाके कहेगी **नाथ! इति सम्बोधनाद् बहवएव अत्रार्थे नियोज्याः सन्ति तथापि स्वयमेव गच्छसि इति.** कहे हे यदि तू खुद या तरहसु रखड़वेको शौकीन नहीं होय, तो तेरे नन्दरायजीके घरमें नौकर नहीं हें क्या जो तेरे बजाय गाय चराय आवे? नौकर भी तो गाय चरायवे जा सकें हें, पर तू रखड़े हे साथमें! तो हमकु ये खेद भी अभी हो रह्यो हे, ऐसी बात नहीं हे हमकु तो ये खेद सुबहसु हो रह्यो हे.

अपने यहां जो उत्सवमें सब स्वयं सेवामें पहोंचे तो वा बातको खुलासा यहां हो रह्यो हे. ये उत्सर्ग हे अपवाद नहीं हे. **वस्तुतस्तु प्रातरारभ्य खेदः सूचितः. चलनादेव च खेदः.** अब सुबहसु खेद हे और कबसु शुरु होवे? जा बखत चलवेकी तैयारी करी नहीं ठाकुरजीने वा बखतसु खेद शुरु हो जावे. अब देखो जंगलमें जायेगो. अब कंकड़न्पे पैर रखेगो. अब यहां जायेगो. अब वहां जायेगो. ये कष्ट पायेगो, वो कष्ट पायेगो. **अतः प्रथमतः तदेव उक्तम्. वस्तुतस्तु तव पदे''** या लिये गोपिका अपनी बात ही यहांसु शुरु करे हे **चलसि यद् व्रजाच्चारयन्पशून्.** मने जो बात अपनेकु सबसु ज्यादा चुभती होंय वो बात ही सबसु पेहले उभरे ना. वाकु सबसु बुरी बात ये लगे हे कि चले क्यों हे? चले हे तब तो छोड़के जा सके

हे ना! याको बस चले तो ठाकुरजीकु चलवे ही नहीं दे. ठाकुरजीके चरणनूमें सांकल बांध दे. "**प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः**" (भाग.पुरा.११।२।५-५) प्रणयकी रशनासु ठाकुरजीके चरण ऐसे बांध दो कि व्रजसु ठाकुरजी चल ही नहीं सकें. ठाकुरजी एक पग आगे नहीं जा सकें. याकु सबसु ज्यादा क्रोध या बातको आवे हे कि **चलसि यद् व्रजात्** चले क्यों हे तू? तू हमारे सामने बेठो रहे. बड़ो राजसभाव हे.

कई बखत अपने यहां क्या हो जाये कि जैसे कोई सेवा करे और जब सेवा करें तो विलम्ब हो जाये. तो क्या करें कि पूरी सेवा करें फिर क्रमसु. अब जैसे उत्सव हे या कारणसु विलम्ब हो गयो या यात्रा ही करी और विलम्ब हो गयो और शामके छे बज गये या रातके नौ दस बज गये. अब उत्थापनकी सेवा करो, उत्थापनके बादकी पूरी सेवा वनकी सेवा हे. तो वो क्या करें कि शयनभोग नहीं धरके, उत्थापनभोगसु सेवा शुरु करें. क्योंकि अपनेमें तो पुस्तकको पाण्डित्य आ गयो ना! जब उत्थापनमें घण्टानाद भयो तो वा समें उत्थापनभोग आने चइयें. अब दस बजे रातकु काहेकु ठाकुरजीकु गाय चरायवे जंगलमें पधराओ! हो गयो विलम्ब तो हो गयो वा दिन विलम्ब. अब ऐसी भावना करो कि आज ठाकुरजी गाय चरायवे नहीं पधारे. आज ठाकुरजीके कोई सेवक गाय चरायवे पधारे होंयगे. तभी तो विलम्ब भयो नहीं तो विलम्ब क्यों होतो? तो वा दिन ऐसो भाव करके जो प्रथम वस्तु हे, अब विलम्ब हो गयो तो ठाकुरजीको शयनभोग धरके पोढ़ा देनो. अब वो दस बजेसु उत्थापनकी सेवा शुरु करें. तो रातको दो बजे जाके शयन होवें. अब ठाकुरजीकु भी परेशानी, ऐसे भक्त आ जायें तो! कभी कभी ग्रहण पड़े तो ऐसो हो जाये. ग्रहणमें क्या होवे कि सेवाको क्रम उलटो सुलटो हो जाये. तो रातको दो बजे फिरसु सेवा शुरु होवे. छेल्ले ग्रहणमें ऐसे ही हतो. होलीके दिन वो होली खेलके डोल खेलके ठाकुरजी घर पधारें, फिर शामकी सेवा शुरु

होवे. अरे भई जा दिन होली खेलवे पधारे वा दिन गाय चरायवे क्यों पधारेंगे! जरूरी हे क्या? जा दिन होली खेलवे पधारें वा दिन गाय चरायवे नहीं जायेंगे. वा दिन कोई दूसरेकु भिजवा देंगे गाय चरायवेकु पर मानें नहीं क्योंकि पुस्तकमें लिख्यो हे ना! होली खिलवाके ठाकुरजीकु गाय चरायवे और भिजवावें. अब होली खेली तो चलो गाय चरायवे जाओ. रातकु डेढ़ बजे दो बजे ठाकुरजीकु पोढ़वेको अवसर आवे. ऐसी सेवा करके क्या फायदा! ये मेरे केहवेको मतलब हतो.

अब स्पष्ट आज्ञा कर रहे हें आचार्यचरण **बहवएव अत्र अर्थे नियोज्याः सन्ति.** बहोत हें जिनकु प्रभु गाय चरावेके लिये भेज सके हें. ये अगर गाय चराय आवें तो वनके भक्तनूकु कैसे दर्शन मिलें ये हेतुसु प्रभु वनमें पधारें. गायनूकु कैसे सुख मिले यदि प्रभु गाय चरायवे नहीं पधारें. याके लिये खुद पधारें पर याको मतलब ये तो नहीं कि विलम्ब होवेपे रातको नौ दस बजे ठाकुरजीकु गाय चरायवे भिजवानो! तो ऐसी अनुचित सेवा नहीं करनी चइये. अब एक बजे मंगला भई रातकु और सुबह छे बजे राजभोग हो गयो. क्रम कितनो उलट गयो आखो! छोड़े नहीं लोग क्योंकि पुस्तकमें लिख्यो हे तो करनो तो हे.

(ले महाराज!)

हम हजारीबाग गये तो दादाजीने कही कि "मेरो दोस्त रहे हें वहां वाके घर उतरियो." दादाजीने कही हती कि "मेरो दोस्त हे" तो वाकु कछु बोल तो सकें नहीं. वाने कही "भोजन करो" तो हमने भोजन कियो. वाके बाद वाने कही कि "एक ग्लास् दूध पियो." अब ग्लास् आयो तो इतनो बड़ो बिहारी ग्लास् दूध. मैंने कही कि "दाऊदयालजी! इतनो दूध नहीं पियो जायगो." तो वाने कही कि "पीऽऽओ....जवान होके दूध नहीं पीते हो?" अब

वो दादाजीको दोस्त तो कुछ केह सकें नहीं. एक ग्लास् पी गये. अब एक ग्लास् जब पी गये तो उनकु फिर जोश आ गयो, "अच्छा एक ग्लास् पी गये तो एक ग्लास् और पीओ." मैंने कही "दाऊदयालजी! मर जाऊंगो." वो बोले "मर कैसे जाओगे. पीओ..." अब वहां टाइगर् सेन्च्युरी थी. ये तो फिर भी थोड़ो शेहर हे पर वो घनो जंगल. अब हमकु पता नहीं कि टाइगर् कहां फिरते होंयगे. हम समझे कि यहीं कहीं फिरते होंयगे टाइगर् भी. तो रातकु पेटमें गुड़गुड़ होवे और बाहर जावें तो टाइगरको डर लगे. अब कोई भी तरहसु नींद नहीं आवे. आखी रात त्रास त्रास हो गई. ऐसी दोस्ती काहेकी? वाने कही "महाराज! फिर आइयो." तो मैंने मनमें कही कि "अब यहां आयेंगे ही नहीं कभी, आ गये सो आ गये." दादाजीके दोस्त होवेके कारण, हर बातपे आज्ञा करे. अब ना भी नहीं पाड़ सकें. मैंने आखी रात कष्ट पायो. कोई तरहसु भी चैन नहीं आवे. बाहर निकलवेमें डर लगे, एकदम झोंपड़ी बिजली नहीं. गाममें रातकु कोई शेर पकड़े तो मुश्किल हो जाये. दो-ग्लास् दूध पीवके बाद आखी रात नींद नहीं आवे. आखी रात पेटमें गुड़गुड़, पेटमें ही शेर बोलते रहे. तो ऐसी ले महाराज! सेवा करो तो बड़ो त्रास हो जाये. सुबह भोजनके बाद मोकु कही कि "महाराज लघुशंका करवे जाओ. मैंने कही कि "नहीं लग रही हे अभी." तो कहें कि "जाऽऽऽओ..." अब मैं सोचूं कि क्या करूं? हर बातकी आज्ञा देवे. वाकु भ्रान्ति कि भोजन करके लघुशंका नहीं करें तो बीमार पड़ जायें. जंगलमें वाको कौनसो सिद्धान्त समझमें आयो अपनूकु क्या पता चले? अब समझो कि कोई बखत लघुशंका नहीं लगी होय लेकिन "जाऽऽऽओ...", तो क्या करें? अब दादाजीके दोस्त हे तो बात माननी पड़े न! दादाजीकु मैनें कही कि "ऐसो कष्ट पायो." वो तो कोई बात माने ही नहीं.

ठाकुरजीकु भी ऐसो ही हो जाये कि अब समझो कि महाप्रभुके

नामसु केहवेवाले, सब आके की “जाओ गाय चरायवे.” तो ठाकुरजी भी शायद रातकु दस बजे गाय चरायवे जाते होंयगे और गाय भी रातकु एक बखत नहीं चरें. अब कोई पुष्टिभक्त केह रह्यो हे तो शायद ठाकुरजी भी जाते होंयगे गाय चरायवे, अब ठाकुरजी भी क्या करें! बड़ो कष्ट हो जाये. अब महाप्रभुजीके साथ ठाकुरजीको सम्बन्ध तो ना भी नहीं पाड़ सकें, कहें तो जानो पड़े. ऐसी स्थिति हो जाये.

(कभी चरणकु पूछके देख!)

क्या कहें हें कि **वस्तुतस्तु तव पदे अस्मत्स्थानं विहाय न गच्छतः तथापि भवानेव तथा चालयति.** तू तो समर्थ हे नाथ हे. चइये वो चीजको ला सके हे. मने ब्रह्मज्ञानीमें ये सामर्थ्य आ जाये. ज्ञानेश्वरके लिये कहें हें ना कि भीतपे बेठके आ गयो. वो नाथ कौनसे हते वो शेरपे बेठके आये. ज्ञानेश्वर भीतपे बेठके आये और भीत चलवे लगी. तो ब्रह्मज्ञान जाको हो जाये वामें इतनी सामर्थ्य आ जाये कि जो अचलको चलायमान कर सके. तो तू चरणकु चलावे तो वामें क्या आश्चर्यकी बात हे? पर तू कभी चरणसु पूछ कि तेरे चरण हमकु छोड़के कहीं जानो चाहें हें? तू नाथ हे, आदमी कष्ट पावे. जैसे अक्सर हम ठण्डीमें जावें ना तो कई लोगनूकु संदेह हो जाये कि क्या हमकु ठण्डी नहीं लगती होयगी? ऐसी बात नहीं हे. ठण्डी हमकु लगे. जैसे सबकु लगे वैसे पर सहन हो जाये. मनमें ऐसो निश्चय कियो कि ठण्डीकु सहन करनो तो सहन हो जाये. ऐसो नहीं हे कि हमारे भीतर ठण्डीको सेन्सेशन् नहीं हे. जैसे आपको ठण्डीको सेन्सेशन् होवे वैसे ही हमकु भी ठण्डीको सेन्सेशन् होवे. आप सहन करो नहीं वाको तो आप कपड़ा पेहर लो हो. हमने निश्चय कियो कि सहन करेंगे, तो सहन हो जाये. तो ऐसे ही चरणनूकु जावेकी इच्छा हे, ऐसी बात नहीं हे, चरणनूकु भी वो स्थल तो उचित नहीं लगे हें पर तू नाथ हे.

तू कहे तो वो जबरदस्ती चले हें. सो सहन करवेकी तेरी आदत पड़ गई. तो एक सहन करवेकी सामर्थ्यसु जो आदमी काम करे और एक रुचिसु जो काम करे. जैसे अक्सर क्या होवे? खूब ठण्डी पड़ती होवे, तो ठण्डो जल रुचे नहीं. पर जिनको सहन करवेकी आदत होवे हे ना, वो ठण्डे जलसु नहा सकें. उनसु पूछो कि गरम जल अच्छो लगेगो कि नहीं? तो कबूल तो करनो पड़ेगो कि सुहावनो तो लगेगो गरम जल, पर फर्क ये हे कि गरम जलसु न्हावेके बाद फिर ज्यादा ठण्ड लगे हे. ठण्डे जलसु न्हावेके बाद ठण्डी कम लगे हे. अब थोड़ी देर ठण्डी भुगतनी कि दिन भर ठण्डी भुगतनी? ऐसे सब विचार करके आदमी ठण्डे जलसु न्हा ले सहन कर ले वो बाद दूसरी हे.

हम सिक्किम गये तो ऐसे ही भयो. चार बजे सुबह उठके हमकु कलिंगपोंग्सु जानो थो सिक्किम. मैंने कही कि "चार बजे कौनकु जगायें यहां." हमने अंधेरामें सब जगह खोजके देख्यो कि कहीं जल मिले. तो सीमेन्ट्की कोठीमें जल भर्‍यो भयो हतो. दिसम्बरको महीना, कौनकु जगावें, गाली देंगे कि "अच्छे महाराज आये!" तो एक बाल्टी भरके अपनेपे डाल ली तो शरीर सुन्न पड़ गयो. सुन्न ऐसो पड़ गयो कि ठण्ड लगनी ही बंध हो गई. हम सुबह पांच बजे बाहर निकले, तो ऐसे ही धोती उपरनेमें निकले. बरफ पड़ रही हती. खूब ठण्ड पड़ रही हती. अब शरीर ही सुन्न पड़ गयो तो शॉल् ओढ़के भी करें तो क्या करें? शरीरमें बिजलीसी दोड़ गई. ठण्डी लगनी बंध हो गई. सहन करनो एक बात दूसरी हे पर वा बखत जब एक बाल्टी डाली तो आत्मा जाने कि क्या अनुभव भयो? इतनी ठण्ड लगी. क्योंकि वो जो एक्स्ट्रीम् ठण्ड लग सकती थी वो एक बाल्टीने लगा दी तो दिन भरको चैन हो गयो. तो ऐसे अपने ऊपर किसीकी जबरईसु सहन कर लेनी कोई चीज और सुहावनो क्या लगे? वो बात दूसरी हे.

तो वो कहें हें कि चरणन् तेरे पूछ? हमकु छोड़के वनमें भटकनो सुहावनो लगे चरणन्कु? उनकु तो नहीं लगे पर तू नाथ हे तो तू ले जाय हे चरणकु भी चलाके तो ले जा तो वामें तो क्या कर सकें! वो तो कूटस्थ हें तो चले कैसे! पर तू कूटस्थकु भी चलायमान कर दे तो तेरी मरजीकी बात हे. चरण तो चलनो नहीं चाहें. हमकु छोड़के चरण एक कदम आगे नहीं जानो चाहें पर तू नाथ हे. सो अक्षरको भी नाथ हे. क्योंकि **"तद्धाम परमं मम"** (भग.गीता १५।६). तू तो अक्षरको भी स्वामी हे. **"यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः. अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः"** (भग.गीता १५।१८). तू पुरुषोत्तम हे. तू जैसे क्षरको नाथ हे वैसे अक्षरको भी नाथ हे. तू क्षरकु भी चलावे और अक्षरकु भी चलावे. अब चलावे तो चलावे. अक्षर क्या करे? अक्षर चलनो नहीं चाहे, चलनो अक्षरको स्वभाव नहीं हे. चले हे तो तू अपनी सामर्थ्यसु चलावे हे, अपने स्वभावसु नहीं. तू चलावे हे याके लिये वो चल जाये हे.

(प्रभु नांगे पायन अनुदिन गैया चारी)

किञ्च व्रजस्थिता गावो अरण्ये नीयन्ते. तासां चारणं न मार्ग गमनेन भवति अतो अमार्गेऽपि गन्तव्यम्. भूम्यादीनाम् अनुग्रहार्थं न पादुकाग्रहणं, पाल्यानां चर्म न परिधेयम्, अतो नलिनसुन्दरं पदमेव शिलतृणाङ्कुरैः सीदति. कहे हें कि चलावे हे और चले हे. कहे हें कि हम तो बहोत सावधानीसु इतने देरसु गाय चराते आ रहे हें. सारे रस्तान्की हमकु जानकारी हे. कहां अच्छे रस्ता हें, कहां बुरो रस्ता हें और बहोत सावधानीसु हम चलें हें. ऐसी बात नहीं हे. हम अपने चरणकु चलावें क्योंकि हम जानें हें कि हमारे चरणको हित काहेमें हें. कितनो चलानो? तो गोपिका कहे हे कि ज्यादासु ज्यादा तुम जानते होओगे, पर गाय थोड़े ही जानें हें कि कहां तेरे चरणकु तकलीफ होयगी? उनके तो खुर हें, उनकु तो कांटा चुभें नहीं और गाय

घास चरवेके लिये मार्गसु ही जायेगी ये कोई जरूरी हे! जहां भी घास दीखे वहां गाय भग जाये. गाय भगे और तेरे चरण कैसे हें? 'तृणचरानुगम्' हें. तृणचरके अनुगम जो गाय उनके पीछे पीछे फिरवेवाले तेरे चरण हें. तो गाय जब अमार्गसु जाती होयगी, तब तेरेकु उनके पीछे जानो पड़तो होयगो कि नहीं बता? तू कहे कि मैं बहोत समझदार हूं. मैं इतने दिननूसु गाय चरावे जा रह्यो हूं, मोकु सब पता हे कि कहां अच्छे हें कहां कंटीले मार्ग हें, कहां सीधे मार्ग हें पर गायकु थोड़ेही पता हे? गायन्कु तो एक ही बात पता हे कि तृण कहां हें. जहां तृण हें वहां गाय जावें. जहां गाय जावें वहां तोकु जानो पड़े. अब वहां जो तू जावे तो वहां तेरे चरणमें वो चुभते होंयगे कि नहीं? बता. गायन्के प्रति तेरो स्नेह इतनो कि जीवित गायकु तो कोई तरहसु कष्ट न होय, उनके लिये मार्गसु अमार्गसु जहां भी वो जायें उनके पीछे पीछे तू जावे. इतनो ही नहीं गायन्के प्रति स्नेहके कारण, ठाकुरजी खाली गाय ही चरायवे पधारते होंय ऐसी बात नहीं हे. वामें भैंस हती, बकरी भी हती, सब हती. गोपाल शब्द अपन् कहें पर व्रजमें सब ही हती, इनकु ग्वाल चराते होंयगे. ये गाय चराते होंयगे इनकु गाय रुचें तो. तो इन सबन्के लिये तेरो स्नेह इतनो कि जीवितके लिये तो तू कष्ट भुगते अमार्गनूपे जाके पर इनके प्रति स्नेहके कारण इनके चमड़ाके बने भये चप्पल भी धारण नहीं करे. क्योंकि जब ये मेरे पाल्य हें तो पाल्यको चर्म धारण करूं तो इनके मरणको मैंने एक तरहसु सेन्क्शन् कियो यों अर्थ लगेगो.

जैसे बुद्धधर्ममें बुद्धभगवान्ने कही कि "हिंसा नहीं करनी." हिंसा नहीं करनी पर मांस खा सको. जैनन्में मांस खानो पाप मान्यो गयो पर बौद्धन्में मांस खानो पाप नहीं मान्यो गयो. अब वो क्या भयो वा सिद्धान्तकी परिणति? कि बौद्ध मांस तो खावें, वो कहें कि "मारनो नहीं, पाप हे." तो कोई बाट देखें कि जानवर अपने

आप मर जाये तो वा दिन खा जायें! वाकी कोई बाट नहीं देखें, वो खुद नहीं मारें पर कोई मार दे, तो हिंसा तो अपन्ने करी नहीं, अपन्ने तो मरे भयेको मांस खायो. मारनो नहीं हिंसा करनो पाप हे पर दूसरो आदमी मार क्यों रह्यो हे? तुम खा रहे हो या लिये ही तो मार रह्यो हे. नहीं तो वाकु क्या पंचायत पड़ी कि मारे! आज किसान यदि इतनो अनाज चावल वगेरे उगावे, अगर जितनो वाको पेट उतनो ही उगावे और मस्त रहे पर इतनी खेती करे और इतनो श्रम करे वाको कारण ये ही ना कि और भी खावेवाले कई हें. याही लिये कि तुम मांस खाओ तो वो मारे, नहीं तो क्यों मारे? तो या बातको ख्याल नहीं कियो ऐसे याके कारण अनुचित सिद्धान्त चल निकले. ‘‘मारे नहीं पर मरे भयेको खा लें.’’ तो इन्डस्ट्री याके लिये वैसी ही डेवलप् हो गई कि कोई खावेवाले हें. तो एक तरहसु खाके वाकी हिंसाकु सेन्क्शन् कर दियो ना! जो हिंसा प्रोहिबिटेड् हती वाकु सेन्क्शन् कर दी कि खायो जा सके याके लिये हिंसा सेन्क्शन् हो गई पर ठाकुरजीकु जिन् पशून्को पालन करनो हे उनकी हिंसाको सेन्क्शन् नहीं करें हें. या हद तक कि मरे भये जानवरको भी चमड़ा नहीं धारण करें.

टीकाकार यों बतावें कि यद्यपि चमड़ाके जूता या चप्पल ठाकुरजी नहीं धराते थे, जो कि वा जमानामें बनते हते पर लकड़ाकी पादुका धराते थे पर सर्वदा नहीं. क्योंकि लकड़ाकी पादुका धरके थोड़ी दूर तक ही चल्यो जा सके, ज्यादा दूर चलनो होय तो तकलीफ होवे. जैसे चप्पल पेहनके अपन् खूब चल सकें, वैसे लकड़ाकी पादुका पेहनके ज्यादा चल्यो नहीं जा सके. सरोवरसु आके मन्दिरमें चले गये इतनो तो चले पर लकड़ाकी पादुकासु ज्यादा चलो तो तकलीफ देवे हे और वामें दोड़्यो तो जावे ही नहीं. तो गायके पीछे तो दोड़नो पड़े. जंगलमें ऊंचे नीचे सब जगेह जानो पड़े.

आजकल तो रबड़ लगा दें पादुकामें तो बात बदल गई. बाकी पुराने जमानेमें जैसी पादुका हती वैसी पादुकासु दोड़्यो या ऊंचे नीचे स्थलमें नहीं जायो जा सके. याके लिये गाय चराते बखत ठाकुरजी लकड़ाकी पादुका भी धारण नहीं करें. तो इन गायन्के प्रति, इन पशून्के प्रति तो तेरो इतनो अनुराग कि मार्गमें छोड़के अमार्गमें भी जावे और उनके लिये सारे कष्ट सहन करे, तो हमने क्या गुनाह कियो! हमकु तो या बातको इतनो कष्ट हे कि तेरेकु हमारो कोई ध्यान ही नहीं! याके लिये जो नलिनसुन्दर पद, कमलसे कोमल जो पद हें, वो **शिलतृणाङ्कुर**सु हर बखत बिंधे जाय हें. या बातकु सोचके हमारो मन बड़ो खिन्न होवे हे. कारण क्या? यदि पादुका धारण करें, तो भगवान्के चरणारविन्दको स्पर्श शिलतृणन्कु नहीं मिले. इन भगवान्के चरणारविन्दके छुये भयेकु गाय खावें, ऐसे गायन्को भी वा तृणन्में अनुराग हे. वृन्दावनकी भूमि भी भगवान्के चरणकु स्पर्श चाहे हे. तो उन सब बातन्को विचार करके प्रभु वृन्दावनमें नंगे पैर गाय चरायवे पधारे. जबकि वस्तुतः यदि कमल जैसे पद हें, तो कमलको स्थान कहां? नलिनको स्थान जलमें हे, तो हमारे हृदयसरोवरपे ही तेरे पद रेहवे चइयें और उनकु छोड़के तू शिलतृणांकुरन्में अपने पैरन्को छिदवावे. ये क्या हे? याको संबंध क्या?

जले एव स्थातुं योग्यं, जलपूर्णे वा. नलिनादपि सुन्दरं चेत्, लक्ष्म्याम् अस्मासु वा स्थातुं योग्यम्. या तो कमल जलमें रेहने चइयें. अगर अपन् निकाल लें जलमेंसु तो फिर कहां रखें? ऐसे फूलदानमें जामें जल भर्‌यो होय तो वो कमलकी ताजगी और कमलकी शोभा रहे और ऐसी सूखी जगहमें धर दिये तो वो मुरझा जायेंगे. तो कहे कि सरोवर अथवा सरोवरके जलसु पूरित पात्रन्में रेहने चइयें. या तो तेरे चरण लक्ष्मीकी गोदीमें रहें तो इन चरणन्की शोभा हे या लक्ष्मीके भावसु पूरित जो हम हें, घटवत्, जैसा घड़ामें जल

भर दो, फूलदानमें और वामें कमल रख दो तो वो थोड़ी देर ताजो रहे. सरोवर जितनो तो नहीं रहे पर थोड़ो तो रहे ताजो. या तो लक्ष्मीकी गोदमें तेरे चरण रेहने चइयें या फिर हमारे पास रेहने चइयें जिनमें लक्ष्मीको भाव हे. पर ये सूखी जगहमें चरण पधराके तेरेकु क्या प्राप्त होवे हे, ये बता?

नाथ! इति सम्बोधनाद् बहवएव अत्र अर्थे नियोज्याः सन्ति तथापि स्वयमेव गच्छसीति. वने हि त्रिविधाः भूमिः - पर्वतरूपा अरण्यरूपा कच्छरूपा च. तत्र क्रमेण एकम् एकत्र भवति, सर्वं वा सर्वत्र. तीन प्रकारकी भूमि वनमें होवे हे. पर्वतरूपा भूमि. तो शिला पर्वतरूपा भूमि होवे हे. तृण अरण्यरूपा भूमिमें होवें हें और अङ्कुर कच्छरूपा भूमिमें होवें हें अथवा सभी चीज सभी जगेह हो सके हे पर बात इतनी हे **अवसादो अशक्त्या एकत्र स्थितिः**. तेरे चरणमें चुभे हें. इनमें अवसादन्की शक्ति हे, तेरे चरणन्में चुभवेकी इनमें शक्ति हे. किन्तु हमारे लिये तो तू पर्वतपे घूमे, चाहे नदी तटपे घूमे चाहे वनमें घूमे कहीं भी ऐसी जगेह घूमें जहां तेरे चरणमें कोई चीज चुभ सकती होय, तो वो हमारे चुभे हे. अब चाहे वो पथ्थर होय, चाहे तृण होय चाहे अंकुर होय.

तदा चिन्ता भवति. स्वयं गत्वा स्वहृदये स्थापनीयम् इति. जब हमकु ये ख्याल आवे कि ये तेरे चरणमें चुभ रहे होंयगे, तो हमको तू चले तबसु ये होय हे कि हम चले जांय और अपने आपकु भूमिपे बिछा दें जासु तेरे चरण चुभवेवाली वस्तुपे नहीं पड़ें. हमारेकु तो ऐसी चिन्ता हर बखत अनवरत सताती रहे हे.

(मनःकान्त कलिलतां गच्छति)

मनःकान्त! इति च, तेन मनःस्थापितमपि न तिष्ठति इति. अब क्या कहें हें. **शिलतृणाङ्कुरैः सीदति इति नः कलिलतां मनःकान्त!**

गच्छति. यद्यपि चरण हृदयमें अन्दर तो पधरा रखे हें और हृदयमें पधराये भये चरणकु, बाहर तो शायद तेरे चरणनूको अभ्यास होयगो उनके चुभवेको, पर जा तरहके तेरे चरण हमने अपने हृदयमें धारण कर रखे हें, वो हृदयमें धारित जो चरण हें, वहां स्पष्ट हमकु कष्ट हो रह्यो हे. याको हमारो हृदय साक्षी हे. तो **मनःकान्त कलिलता** कु प्राप्त होवे हे. तेरो स्वरूप कुछ भी होय पर हमारे हृदयमें बिराजमान तेरे स्वरूपकु कष्ट नहीं पहोंचनो चइये. तेरी या क्रियासु हमारे हृदयमें बिराजमान तेरे स्वरूपकु कष्ट पहोंच रह्यो हे. मने स्वरूपके भी दो भेद कर रही हे. एक तो तू जैसो रहे वैसो. और तू जो हमारे हृदयमें बिराजमान हे वैसो. तो तू जैसो हे वैसो तेरे चरणकु शायद अभ्यास होयगो वो तू जाने पर हमारे हृदयमें तेरे चरणको जो रूप हे, वाको कांटा चुभे ये हमकु सहन नहीं हो सके. तेरेकु अभ्यास होय तो तू तेरी कथा तू जान पर हमारे हृदयमें जो तेरो स्वरूप हे वा स्वरूपके चरणकु कांटा चुभे ये हमकु पसन्द नहीं आवे. हमारो मनःकान्त कलिल होवे हे, क्लेशकु प्राप्त करे हे. ये हमकु पसन्द नहीं आवे.

----*----

॥श्लोक : १२॥

उत्थानिका :

एवं सप्तविधा अनन्यपूर्वा निरूपिताः, चतस्रश्च ताः (अन्यपूर्वा). अतः परं क्रमेण षट् ताएव निरूप्यन्ते. तत्र प्रथमं राजसतामस्या वचनम्. ता हि बहिर्गत्वा द्रष्टुम् अशक्ताः. अतो यदा संध्यायां भगवान् आयाति तदा भगवन्तं दृष्ट्वा मनसि कामो भवति. ततो बन्धप्रार्थना अधरामृतप्रार्थना च रजसा सत्त्वेन च भविष्यतः, अनन्यपूर्वाणां तु नित्यएव कामः, दिनपरिक्षये इति.

विवरणम् :

एवं सप्तविधा अनन्यपूर्वा निरूपिता चतस्रश्च ताः (अन्यपूर्वा). या तरहसु सात प्रकारकी अनन्यपूर्वा और सात्त्विक राजस तामस और निर्गुण के भेदसु ग्यारह भक्तनूके गीतको वर्णन भयो. अभी तकके प्रकरणमें प्रथम चार श्लोक श्रुतिरूपा गोपिकानूकी प्रार्थनाके और वाके बाद सात श्लोक कुमारिकानूकी प्रार्थनाके ऐसे ग्यारह श्लोकनूमें वर्णन भयो. गान भयो. **एवं सप्तविधा अनन्यपूर्वा निरूपिता चतस्रश्च ताः.** प्रथमके जो चार श्लोक श्रुतिरूपा गोपिकानूके हते, जो विवाहिता गोपी हें उनके गाये भये भाव और वाके बाद पांचवें श्लोकके बाद ये ऋषिरूपा कुमारिकाके श्लोक हें.

(मनोहरे वपुषि मग्नमनः मुनिमण्डलीः)

जो ऋषि कुमारिकानूके रूपमें प्रकट भये, इनकु नन्दरायजी बिहारसु खरीदके लाये. ये गोकुलमें ही रेहती थी. इनने कात्यायनीव्रत कियो थो. जिनको चीरहरण भयो वो सब कुमारिकायें ऋषिरूपा हें. ये ऋषि जिनने रामावतारके बखत रामचन्द्रजीके माधुर्य सौन्दर्यपे मोहित होके रामचन्द्रजीसु वर मांग्यो कि "जैसे सीताकु आप अपने पार्श्वमें रखो हो वैसे हमकु भी कभी वा माधुर्यभावसु अपने पार्श्वमें उपस्थित

होवेकी सेवाको अवसर प्रदान करोगे." वा बखत तो श्रीराम मर्यादारूपमें स्थित हते या लिये कृष्णावतारमें इनको मनोरथ पूर्ण होयगो, ऐसो वर मिल्यो. वो सब ऋषि दण्डकारण्यमें तपस्या करते भये, जैसे कल मैंने आपकु बतायो, **"गणि विडम्बनि तस्य मनोहरे वपुषि मग्नमनः मुनिमण्डली: जपम् अमुञ्चत होमम् अमुञ्चत व्रतम् अमुञ्चत सर्वम् अमुञ्चत"** (प्रतिवादिभयंकरअण्णंगराचार्य) वैसो मधुरस्वरूप लेके जब श्रीराम उनके सामने आये तो कोई होम कर रहे थे, कोई जप कर रहे थे सब अपने अपने तपमें लगे भये थे उनको चित्त तो एकाग्र हतो, उनके चित्तमें एकाग्र होवेको सामर्थ्य भी हतो, पर एकाग्रभूत चित्तकु हरवेको सामर्थ्य जो प्रभुमें हे, तो उनने जा बखत वा चित्तकु हर्‍यो, तो इतनो हर्‍यो कि वो चित्त वहां एकाग्र हो गयो. जब तप होम सब कछु छूट गयो. **"जपम् अमुञ्चत, तपः अमुञ्चत, होमम् अमुञ्चत सर्वम् अमुञ्चत"** सब कछु उनको छूट गयो. यहां तक कि जो ऋषीनूमें रह्यो भयो पुंभाव हतो वो भी छूट गयो और की बात तो दूर रही. जब छूटवेकी तैयारी भई तो इतनो छूट गयो. हते तो ऋषियें पर उनकु भयो कि हमकु सीताकी तरह राम अपने पार्श्वमें रखें. **"गणि विडम्बनि तस्य मनोहरे वपुषि"** ऐसो मनोहर स्वरूप श्रीराम प्रभुको हे.

(श्रुतिन्को गौणार्थ और मुख्यार्थ)

उन ऋषिरूपा गोपिकानूने सात श्लोकनूसु मने पांचवे श्लोकसु लेके ग्यारहवें श्लोक तक प्रार्थना करी. याके बाद फिरसु श्रुतिरूपा गोपिकायें जो श्रुतिके एक एक वचन गोपिकानूके रूपमें अवतरित भये, जा बखत श्रुतिको प्रमेय परमात्मा कृष्णके रूपमें अवतरित भयो, वा प्रमेयकु निरूपण करवेवाली जो एक एक श्रुतियें हें, वो गोपिकानूके रूपमें अवतरित भई. प्रत्येक व्याख्याकार अपनी अपनी रुचिसु अपने अपने अधिकारसु श्रुतिनूके अन्य अन्य अर्थ लगावें हें. या न्यायसू जितनी भी श्रुतिरूपा गोपिकायें हें वो सब विवाहिता हो गई. क्योंकि

एक एक व्याख्याकारने एक एक श्रुतिको एक एक अर्थ लगा दियो. कोईने कही ''या श्रुतिको अर्थ प्रकृति हे'' कोईने कही कि ''याको अर्थ शिव हे'' कोईने कही ''या श्रुतिको अर्थ गणेश हे''. कोईने कही ''या श्रुतिको अर्थ आकाश हे.'' कोईने कही कि ''ब्रह्मा हे.'' कोईने कुछ कही और दूसरेन्ने कुछ कही. वा न्यायसू प्रत्येक श्रुति ठाकुरजीके साथ सम्बन्धित होवेके पेहले अन्यत्र विवाहिता हे, अपने अपने गौण अर्थके साथ हो गई.

(वेणुनादको आह्वाहन)

जा बखत रासलीलामें सबकु बुलायो, वा बखत रासकी रात्रिको मुख्य वरदान श्रुतिरूपानूकु नहीं हतो, कुमारिकानूकु हतो क्योंकि इनने व्रत कियो हतो, इनकु प्रभुने वर दियो हतो **''मया इमाः रंस्यथ क्षपा:''** (भाग.पुरा.१०।२२।२७). ये शरदऋतुमें रास करूंगो. इन श्रुतिरूपानूकु रासको वरदान नहीं हतो पर वेणु इनकु भी सुनाई पड़ी. वेणु सुनाई पड़ी और वा वेणुमें, वरदान बिनाको आह्वाहन भयो और वा लिये ये सब दोड़के आई. यदि वेणु सुनाई नहीं पड़ी होती तो आती कैसे! वेणुवादन भी व्रजमें सुनाई पड़्यो और जिनकु सुनाई पड़्यो वो दोड़े. जिनकु सुनाई नहीं पड़्यो उनको तो कोई प्रश्न ही नहीं हतो. जिनकु सुनाई पड़्यो और वा वेणुवादनमें, वरदान नहीं हतो पर आह्वाहन तो हतो और जब आह्वाह्न हतो तो आहूत और अनाहूत सब पहोंच गई. जैसे एक आदमी कहीं फंस गयो होय और हल्ला मचावे कि ''आओ आओ बचाओ बचाओ बचाओ!'' तो जाकु भी सुनाई पड़े जामें जरा भी दया होयगी वो सब दोड़े. ऐसे जब भगवानूने एकान्तमें **''एकाकी न रमते''** उनने वेणुके द्वारा आह्वाह्न शुरु कियो कि ''आओ आओ आओ!'' तो जितने भी भक्तनूकु सुनाई पड़्यो, जिनमें भी भाव हतो वो सब दोड़के गई. वहां जैसे दयाको भाव होवे तो दोड़े, ऐसे जिनकु वेणुको आवाह्न सुनाई पड़यो और जिनमें भाव हतो, वो सब दोड़के गये. जो सब

दोड़के गये वो सब आहूत ही हते कि अनाहूत हते, याकी व्याख्या करनी मुश्किल हो जाये. क्योंकि आवाह्न जो हतो वो नाम्ना नहीं हतो. आह्वाहन जो हतो वो अनामक आह्वाहन हतो. तो जो भी सब पहोंचे वो आहूत ही केहलायेंगे, अनाहूत तो नहीं केहलायेंगे पर वरदान जो हतो वो केवल कुमारिकानूकु ही हतो. इतनो अंतर हे.

(श्रुतिन्को समन्वय)

तो श्रुतिरूपायें विवाहिता हें उनको वारण भयो क्योंकि एक एक श्रुतिको अर्थ जब एक एक तत्त्वके साथ या देवके साथ भाष्यकार व्याख्याकार कर लें तो आदमीकु जिद पड़ जाये. जैसे कोई श्रुतिको ये अर्थ हो जाये कि या श्रुतिको अर्थ ये देव हे. अब अपनेकु ये याद हो जाये कि या श्रुतिको अर्थ तो ये देव हे.

अभी हम एक घाटेकु बांच रहे थे. तो वामें पढ़्यो कि "वल्लभाचार्यके भाष्यमें वैसे तो सब कछु ठीक हे पर जबरदस्ती सब श्रुतिन्को अर्थ ब्रह्मपरक करें." इनकु आग्रह हो जाये, इनकु घाटा नजर आ जाये. ये सब पति बनके बेठें श्रुत्यर्थके कि हम पति हें. हम इनकु यहां रोकके रखेंगे. या अर्थमें रोकके रखेंगे, ये कृष्णपरक नहीं हो सकें. अब जो रुक जायें सो रुक जायें और जो नहीं रुकें सो नहीं रुकें. जिनको जारभाव हे वो श्रुतिन्कु ही रोक पावें हें. जिनको जारभाव नहीं हे, शुद्ध स्नेह हे, वो श्रुतियें तो परमब्रह्मके साथ समन्वित होंयगी, होंयगी और होंयगी.

याही लिये आचार्यचरणने रुद्र सम्प्रदायकु स्वीकार्यो कि जा वेणुनादके कारण सब श्रुतियें ब्रह्ममें समन्वित हो जायें. कोई श्रुति अटक न जाये ब्रह्मके अलावा कोई अर्थमें याही लिये आचार्यचरणको अवतार हे. वो श्रुतिरूपायें गोपिकायें यहांसु फिर केहनो शुरु कर

रही हें. कारण क्या? क्योंकि ये सब इतरार्थमें भगवद्भिन्न जो अर्थ हे उनमें एक बखत ये भी निहित हें. निहित हें या लिये इन् श्रुतिन्में ब्रह्ममें समन्वित होवेकी गति, ब्रह्मसु संयुक्त होवेकी स्वछन्द गति इनकी नहीं हे. जो अन्यत्र समन्वित नहीं हें श्रुतियें वो स्वछन्द गतिसु ब्रह्ममें समन्वित हो जायें. क्योकि उनकु रोकवेवालो कोई नहीं हे. उन श्रुतिन्की कोई पंचायत नहीं करे. कहां हें कहां नहीं हें. इनको क्या अर्थ हे? कोई घाटे तो हे नहीं कि जाको पी.एच.डी. करनी होय कि इन श्रुतिन्को येही अर्थ होनो चइये और ये नहीं होनो चइये. ऐसो कोई पी.एच.डी. नहीं करे वहां. तो वा लिये उन श्रुतिन्को तो कोई घाटा हे नहीं. वो श्रुतियें स्वछंद गतिसु चाहे दिनकी लीला होय चाहे रातकी लीला होय जहां कृष्ण होंय वहां वो श्रुतियें पहोंच सके हें. पर वा तरहको स्वरूप कुमारिकान्को मान्यो गयो हे, पर सब श्रुति वैसी श्रुति नहीं हें.

या लिये कुमारिकान्कु कृष्णके दर्शन दिनमें भी वनमें हो सकें हें. क्योंकि जैसे वो खेलते भये निकल जायें ऐसे ही ये भी खेलती भई निकल जायें. इनकु कोई रोक-टोक नहीं हे. ये श्रुतिरूपा गोपिकान्कु रोक-टोक हे. घरको काम-काज हे. घरको काम-काज सब करनो पड़े हे. कहीं जानो हे तो पेहले वाकी सूचना देनी पड़े हे कि यहां जानो हे, यहां नहीं जानो हे. या लिये इनकु तो दर्शन तभी होवें हें कि जब लौटके ठाकुरजी फिर व्रजमें पधारें. वाके पेहले इन श्रुतिरूपा गोपिकान्कु प्रभुके दर्शन नहीं होवें हें जब प्रभु वनमें पधारें हें. जो थोड़े बहोत दर्शन होवें हें, वो भी ध्यानसू होवें हें साक्षात् नहीं होवें. ध्यानसू इनकु मानसीके कारण, मानसी सेवा जो उनकी चले हे वाके कारण उनकु थोड़े बहोत दर्शन होवें पर वो भी अनवरत नहीं होवें, व्यवधानसु होवें. घरके काम-काज करें और वा बखत मनमें वो बात आ जाये घरको कामकाज वा बखत दर्शन नहीं हो पावें. इनकु समग्र दर्शन नहीं हें. इनकु जा बखत

प्रभु लौटें हें, वा बखत दर्शन होवें हें. जब तक लौटके नहीं आवें, तबतक **“दिवसे सर्वे श्यामा मळी रसरूपतणों जस गायेजी...वासर निर्वाह ऐम करे, सखी सायंकाले पेखे. अलक मुख खुररज लागी ते, कमल भ्रमर विशेखे...भुजलता भीडी भामिनी त्यारे दिवस ताप बुझाये”** (वल्लभा.६।४-८) यह वल्लभाख्यानमें बतायो हे ना! वा तरहसु सायंकालमें जब प्रभु लौटें तब दर्शन होवें. लौटवेकी तैयारी हो रही होय, देखें कि दिनभर ये सूर्य क्या तप्यो, मानो इनके लिये विरहको ताप ही तपतो रह्यो. सूर्य नहीं तपे हे पर इनको विरह तपतो रहे हे. जा बखत सूर्य ढलनो शुरु होवे, तो मानो इनकी आशाने रंग पकड़्यो, इनकी आशामें कछु लालिमा आई कि अब लौटेंगे तो दर्शन होंयगे. लौटवेको समय पाछो भयो, तो गोपिकायें अपनो कोई न कोई बहाना करके, व्रजमें नहीं तो व्रजके बाहर आसपास कहीं कुआ हे, तो कहीं जमुनाजी हें कोई तालाब हे, वहां जाके जल भरवेके बहानेसु चली जायें. चली जायें तब वहांसु ही दर्शन करती आवें. उनकुं इतनी धीरज नहीं हे कि व्रजमें आ जायें तब दर्शन करें. याही लिये संध्याआरतीके पदमें आवे हे **“झुक रही सुन मुरलीकी टेर. उततें आई पनियांके मिष, गौ आवनकी बेर.. मोरचन्द्रिका मुकुट बिराजत, चपल नयनकी फेर. परमानन्द प्रभु मिले खिरकमें, यातें भई अबेर..”**(परमानन्द).

कहीं बंसीकी धुन आ रही हे कि नहीं? ये बंसीकी धुन थोड़ी भी सुनाई पड़ जाये, तो बस संकेत मिल गयो कि अब लौटवेको समय हो गयो. वाही बखत घड़ा-वड़ा माथेपे रखके, एकके बजाय दो घड़ा भी माथेपे रखके दर्शन करवेके लिये भाग जायें यमुना तटपे कि तालाबपे कि कुआपे जाकु जैसी सुविधा हती वैसे वहां जावे और दर्शन प्राप्त करें. इतनी उत्कट दर्शनकी अभिलाषा हे. वा अभिलाषाके कारण दिन भर जो सूर्य तप्यो वो ऐसे लगे कि निरन्तर उनको विरह तप रह्यो होय. जब वो ढलवे लगे तो

दिनको एक तरहको ह्रास होवे **दिनपरिक्षये** दिनको क्षय हो गयो आज कितनो बढ़्यो भयो हतो. एक एक क्षण जो बीते वो आगे जाके कहेंगी कि **त्रुटिर् युगायते त्वां अपश्यताम्.** वा न्यायसू एक एक क्षण बीते नहीं हे. यद्यपि श्रुतिन्को सिद्धान्त ये हे कि कोई चीजको क्षय होवे ही नहीं हे. यदि कुमारिका केहती ये बात कि दिनको परिक्षय होवे हे तब तो बात ठीक हती पर श्रुति तो माने ही नहीं कि कोई भी चीज क्षीण होवे हे. क्योंकि श्रुति **"सर्वं खलु इदं ब्रह्म"** (छान्दो.उप.३।१४।१) माने हे. सब कछु ब्रह्मात्मक माने हे. यासु सर्वकु नित्य माने हे और जब नित्य हे तो क्षय कैसे होवे? और क्षय नहीं होवे तो परिक्षय कैसे होवे? पर दिन भरसु हमारे हृदयको एक तकलीफ हती, कि अक्षय तो केवल भगवद्दर्शन ही होनो चइये, बाकी सब क्षयवान् होवें तो होवें. वो भाव अत्यन्त तापके कारण वो दिन भर चुभतो रहे. दिनकी अक्षयता मने अक्षयवत् जो दिन प्रतीत होवे जा बखत ढलवे लगे तो वा बखत उनकु लगे कि चलो आज दिनको तो क्षय भयो. उनकु यों लगे, वर्णन नहीं हे पर ये गाली हे. इनके हृदयमें दिनके प्रति जो रोष रह्यो भयो हे, या दिनके कारण इनकु दर्शन नहीं होवें हें. वा दिनके प्रति रह्यो भयो रोष या तरहसु निकल जाये हे. **दिनपरिक्षये** अब पूरी तरहसु दिन नष्ट भयो. कब नष्ट भयो कि जा बखत प्रभुके पधारवेको समय आयो. **ता हि बहिर् गत्वा द्रष्टुम् अशक्ता:. तत्र प्रथमं राजसतामस्या वचनम्.** अब ये जो श्रुतिरूपा गोपिकायें हें उनके छे श्लोक अब आगे आयेंगे. बारवें श्लोकसु लेके सत्रहवें श्लोक तक ये श्रुतिरूपा गोपिकायें अपने भाव व्यक्त कर रही हें.

(सन्ध्यायां भगवन्तं दृष्ट्वा...)

तत्र प्रथमं राजस-तामस्या वचनम्. अब सबसु प्रथम राजस-तामसी गोपी बोली. ये गोपिका राजस-तामसी हे. **ता हि बहिर्गत्वा द्रष्टुम् अशक्ता:. अतो यदा संध्यायां भगवान् आयाति तदा भगवन्तं दृष्ट्वा**

मनसि कामो भवति. ये राजसगोपिका हे. याके भाव राजस हें. पर बोलवेमें तामस आवे हे. याके लिये जब संध्याकु भगवान् लौटके आवें, तब प्रभुके वा स्वरूपकु, जो कि गायनूकु चरावेके कारण गोरज उड़ी वो सब मुखपे लिपटी भई हे. पसीनाकी बूंदनूके कारण वो और चिपकती जाये. रस्तामें जो कछु पुष्प मिलें पत्ता मिलें मोरके पंख जो मिलें, वो सब प्रभुने ठौंस रखे हें. एक हाथमें वेणु लिये बजाते भये, **"हांके हटक हटक गाय ठठक ठठक रही"** ऐसे गायनूकु चराते-चराते, शामकु वेणुवादन करते भये, कभी गायनूके आगे जावें, कभी पीछे जावें कभी या ग्वालासु बात करें, कभी दूसरे ग्वालासु बात करके आवें. ऐसो जो प्रभुको व्रजके तरफ लौटतो भयो स्वरूप, वा स्वरूपकु देखके याके मनमें काम उत्पन्न होवे हे. क्यों? हतो तो केवल शुद्धस्नेह पर ये स्वरूप कामप्रद स्वरूप हे याके लिये और जा बखत प्रभु **कामादपि कमनीय** रूप लेके आवें, तो इनकु काम होवे, नहीं तो विप्रयोगमें तो इनकु शुद्धस्नेहको भाव ही रहे हे. जितने भी व्रजभक्त हें, प्रभु जैसो स्वरूप धारण करें, वैसे भाव उनकु हृदयमें पैदा होवें. वैसे सारे भक्तनूको मुख्य भाव तो केवल शुद्धस्नेहको ही भाव हे. वामें न तो काम हे, न वात्सल्य हे ना सख्य हे. एक निष्कारण, निष्प्रयोजन स्नेह हे. मने **"सुदृढ़ो सर्वतोधिक स्नेहः"** निरुपाधिक और निष्प्रयोजन.

(सहजस्नेहको स्वरूप)

निरुपाधिक निष्प्रयोजन मने क्या? ये स्नेहके पेहले होवेंमें कोई कारण नहीं हे, या स्नेहकु प्राप्त करवेमें कोईकी इच्छा नहीं. क्यों भयो ये स्नेह वाको कोई कारण नहीं हे. मने पैसावालो हे, वासु पैसाके कारण स्नेह भयो. इन्फल्युएन्शल् आदमी हे वाके कारण स्नेह भयो. कछु हमारो हित साधन करे हे यासु स्नेह भयो. कुछ हमारे अहितनूको वारण करे हे यासु स्नेह भयो ऐसे कोई कारणसु अथवा सुन्दर हे यासु स्नेह भयो, ऐसो कोई भी कारण नहीं हे. सौन्दर्य

आदि भी कोई कारण नहीं हे. जान्यो और स्नेह हो गयो. तो स्नेह उत्पन्न होवेके पेहले भी कोई कारण नहीं हे और ये स्नेह उत्पन्न भयो या उत्पन्न स्नेहसु कोई वस्तु प्राप्त करनी हे, कोई प्रयोजन हे ऐसो भी नहीं हे. स्नेह हे सिर्फ स्नेहके लिये. या स्नेहसु कछु हासिल करनो नहीं और ये स्नेह हासिल कियो भयो नहीं हे. सहज रह्यो भयो स्नेह हे. अभी तक कोई कारणसु अवरुद्ध हतो, जैसे जमीनमें अपन् कुआ खोदें, तो पानी पैदा नहीं होवे, पानी तो जमीनमें भर्‍यो भयो हतो, अपन्‌ने कुआ नहीं खोद्यो थो या लिये अपन्‌कु वो उभरतो भयो नजर नहीं आ रह्यो थो. अपन् वहां थोड़ोसो खड्डा करें, तो जो आवरण हे वापे वाकु दूर कर दें तो वहां जो पानीको स्रोत हे, वो अपने आप पानीकु ऊपर फेंकवे लग जाये. भगवान्‌के व्रजमें आगमनसु केवल आवरण दूर भयो हे, वो स्नेह जो दब्यो भयो हतो, वाको केवल आवरण दूर भयो. नयो स्नेह प्रकट नहीं भयो पर स्नेहपे जो आवरण हतो वो दूर भयो. ऐसो जो स्नेह पेहलेसु ही हतो, क्योंकि भगवत्स्वरूप प्रकट होयगो ये सोचके यहां श्रुतिरूपा गोपिकायें प्रकट भई हें और वोही स्नेह इतने रूपसु **"व्रज भयो महरिके पूत जब यह बात सुनी, सुनि आनन्दे सब लोग गोकुल गणित गुनी.."** (जन्मा.बधा.सूरदास) कोई एकाध व्यक्ति प्रसन्न भयो ऐसी बात नहीं, सब लोग खुश भये, वाको कारण ये कि सब व्रजके जितने भी हते उन सबन्‌में पेहलेसु ही प्रभुके लिये सहजस्नेह हतो ही. सच्ची बात पूछी जाये तो व्रजभक्तन्‌में ही नहीं, प्राणीमात्रमें भगवान्‌के प्रति सहजस्नेह विद्यमान हे पर उनपे कोई कोई विषयासक्तिन्‌की धूल भरी भई हें, अपन् उन विषयासक्तिन्‌की धूलकु पथ्थरन्‌सु खोद खोदके निकाल देंवे, तो वो कुआ तो भर्‍यो ही भयो हे. छलकतो कुआ हे. हमारे राजस्थानके जैसो कुआ नहीं हे. केरलको कुआ हे जहां पांच छे फुटपे ही जल मिल जाये. ज्यादा लम्बी खुदाईकी भी जरूरत नहीं हे कि भई अस्सी फुटपे मिलतो होयगो पर जो पुष्टिजीव हें उनकु तो

केरलके कुआकी तरह तुरत जल मिल जाये. प्रवाहीजीवनूकु अस्सी फुटपे पानी मिले. ज्यादा खुदाई करनी पड़े. तब पता चले कि भगवदासक्ति इनमें भी हे पर क्योंकि वो प्रवाहीजीव हें तो जल इतनो नीचे उतर जाये हे कि सामान्य खुदाईसु तो जलको पता ही नहीं चले. पर पुष्टिजीव अथवा जो मर्यादाजीव हें, वाकु इतनी खुदाईकी जरूरत नहीं हे. वाकी विषयासक्तिको थोड़ोसो आवरण आपने हटायो तो पता चल जाये. पुष्टिजीवको थोड़ोसो भी विषयासक्तिको आवरण हटायो तो पानी मिल जाये, केरलके कुआकी तरह मिट्टी भर हटाई और पानी तैयार. अब मर्यादाके जीवमें एक पथ्थरकी लेयर् आवे. विषयासक्तिके बाद वो मोक्षकामनाकी लेयर्. वो पथ्थर तोड़नो थोड़ो कठिन पड़े. वो तोड़ें तब पानी निकले. मिट्टी हटाते ही पानी नहीं निकले. पुष्टिजीवमें विषयासक्तिनूकी धूल हटाई नहीं कि झटसूं पानी आ जाये पर मर्यादाजीवमें मोक्षकामनाके पथ्थरनूकु तोड़नो पड़े. गेहरो तोड़ दो तो वहां नीचेसु भगवदासक्तिको पानी मिले और प्रवाहीजीव तो राजस्थानी खाता हे. सो फुटपे नब्बे फुटपे जाके पानी मिले. वो भी कभी कभी खारो मिले, मीठो नहीं मिले पर हे सही. ऐसो कोई जीव नहीं हे कि जामें भगवदासक्ति नहीं होय. ऐसो कोई जीव हे ही नहीं. यदि जीव हे तो वामें भगवदासक्ति तो हे हे और हे ही. अब कितने फुटपे हे ये वाकी अपनी अपनी क्वोलिटीनूपे डिपेन्ड् करे हे पर भगवदासक्ति सर्वत्र विद्यमान हे.

गालिब कहे हे "**अलावा ईदके मिलती हे और दिन भी शराब. गदाये कूचये मयखाना नामुराद नहीं**" (गालीब). मुसलमाननूमें एक ऐसो नियम हे कि ईदके दिन शराब नहीं पीनी चइये. वैसे तो कभी भी नहीं पीनी चइये शराब, मौहम्मदसाहबने यों कही माने कि "इतनो कठोर नियम कौन पाले? पर ईदके दिन शराब नहीं पीनी. बाकी दिन शराब पी सको हो". गालिब कहे हे कि शराबकी गलीमें जो भिखारी हे, वाकु ईदके दिन ही शराब मिले ऐसो नियम

नहीं हे. जब सब पी पाके चले जायें तो बची-खुची शराब भिखारीनूकु मिल जाये. **''अलावा ईदके मिलती हे और दिन भी शराब गदाये कूचये मयखाना नामुराद नहीं''**. मिलेगी तो सही. ईदके दिन तो मिले ही हे क्योंकि वा दिन कोई भी नहीं आवे शराब पीवे पर थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़े. ऐसे ही कोई जीव ऐसो नहीं हे कि जो भगवद्भाव रूप मद हे वाको नशा नहीं करवेवालो हे पर कब मिलेगो ये! ये बात अलग हे. कोईकु रातभरकी प्रतीक्षाके बाद मिलेगो. कोईकु ईदके दिन मिलेगो. कोई जो ग्राहक होय तो जब जाओ तब मिल जाये. ऐसे वाके अलग अलग भेद हें पर ये नशा सबकु चढ़वेवालो हे एक दिन. हर प्राणी याही नशामें फिर रह्यो हे. कोई प्राणी ऐसो नहीं हे जाकु भगवद्भावको नशा नहीं होवे. नशा तो येही हे और तो जो नशा हें वो तो खोटे नशा हें. एक सच्चो नशा तो येही हे जो सबकु चढ़्यो भयो हे. सबने पी रखी हे ये शराब पर थोड़ेसे अन्तर हें मिलवेमें.

(भगवद्भावको कारण)

या लिये कहें हें **संध्यायां भगवान् आयाति तदा भगवन्तं दृष्ट्वा मनसि कामो भवति**. तो इनके जो निरुपाधिक भाव हते उन् निरुपाधिक भावमें कोई ऐसे शृंगारके भाव हते नहीं. मात्र व्रजभक्त निरुपाधिक भावसु निष्प्रयोजन भगवान्में स्नेह करते हते पर रूप जब भगवान्ने लियो और प्रभु बालक बन गये तो भक्तन्में वात्सल्य भाव जग गयो. जा बखत कामादपि कमनीय रूप धारण कियो तो भक्तन्में माधुर्य भाव जग गयो. जब सखारूपसु प्रभु चले तो सख्यभाव जग गयो. जब मारवेके लिये आये तो भक्तन्में भय भी पैदा कर दियो. वो कंसादिभी भक्त हें. अपने यहां तो कंसादिकनूकु भी भक्त मान्यो गयो हे पर वो भक्त कौनसे अर्थमें? सामन्य भक्तके अर्थमें नहीं पर सेवक मान्यो गयो हे. अन्तर केवल इतनो ही हे. भक्तिको मतलब हे स्नेह. तो वामें स्नेह वा तरहसु प्रकट नहीं भयो हे,

छिप्यो भयो स्नेह वामें हे. भगवान्के ऐश्वर्य-वीर्यादि गुण या तरहके आसुरभाव प्रकट नहीं करें तो भगवान्को वीर्य गुण, भगवान्को तामस गुण ऐश्वर्य कैसे प्रकट होयगो? अब व्रजभक्तनूमें, यशोदाके सामने ऐश्वर्य गुण प्रकट करो तो क्या मजा आयेगो ऐश्वर्यको! सामर्थ्य प्रकट करो तो यशोदाकु क्या समझमें आवे? थोड़ो वजन बढ़ायो ठाकुरजीने तो धरनो पड़्यो नीचे ठाकुरजीकु. क्यों वजन बढ़ायो? वर्णन पढ़ो कि जा बखत एक असुरकु उठाके फेंक दियो ठाकुरजीने, तो वासु असुर निराश नहीं भयो. फिर उठके दोड़के आयो. मने जब ठाकुरजीमें सामर्थ्य बढ़े तो वाके कारण असुरनूमें वाको रीस्पोन्स् करवेकी सामर्थ्यकी वृत्ति ज्यादा बढ़े. नहीं तो प्रभुके या गुणकु कौन रीस्पोन्स् करेगो? या लिये उनके गुणको उल्लेख अपने आपमें प्रभु रिवील् नहीं करवावें तो प्रभुके इन गुणनूको कैसे प्राकट्य होयगो? या लिये वो असूरभी या तरहसु प्रभुकी सेवा कर रहे हें. तो या तरहसु वो सेवक हें पर भक्त नहीं, बाकी सेवक तो गोपी हें. प्रभुकी सेवा नहीं कर रहे हें, ऐसी बात नहीं हे.

हमारो एक चचेरो भाई जब छोटो हतो तो वाकी येही आदत हती. वासु हमारे काकाकु बहोत स्नेह. सो माथे चढ़ गयो. तो वाकी आदत कि जिन बच्चानूसु दोस्ती हती उनकु मारतो. वाकी दोस्ती केवल उन बच्चानूसु हती कि जो वासु मार खा सकें. वो मारवेके लिये बच्चानूकु खिलौना देतो. अच्छे अच्छे खिलौना देतो बच्चानूकु जाके कि खेलो तुम यासु. फिर वाकी पिटाई करे. जो वाकी पिटाई सहन करे वासु दोस्ती और जो पिटाई सहन नहीं करे वाकी दोस्ती खतम, बिदा कर देतो. ऐसे बच्चानूकी भी अपनी अलग अलग रुचि होवे. ऐसे ये ठाकुरजीके सेवक बिचारे पिटाई सहन करें. क्योंकि उनकु लोभ ये हे कि भगवान्के हाथको उनकु स्पर्श मिलेगो. कमसु कम चरणको स्पर्श तो मिलेगो या बहाने. चलो थोड़ी पिटाई सहन कर ली यामें क्या भयो! लोभ होय खिलौनाको

तो मार सहन करें बिचारे. कई बच्चानूकु देखके हमकु बड़ो आश्चर्य होतो कि ये क्यों आ जायें! तब अध्ययन करके पता लगायो कि वो खिलौनाको लोभ दे देके पटातो. वाकु तो खिलौना मिलते ही. महाराज वाकु लाके देते खिलौना. उन खिलौनान्को लोभ दे देके छोटे छोटे बच्चानूकु पीटतो. खिलौनाके लोभमें सब बच्चा पिटवावेके लिये आते. वो सब वाके फास्ट्-फ्रेंड् हते. अब हमकु समझमें नहीं आवे कि इनकी दोस्ती निभे क्यों हे? पर निभे दोस्ती. पिटवेपे भी निभे दोस्ती. भगवान्के साथ कुछ ऐसे सम्बन्ध भी स्थापित हें कि ये पिटवेके लिये आ जाये. ये हें तो सेवक ही, पर दूसरे तरेहके गुणनूकु चान्स् देवे हें. और ये भक्त भगवान्के दूसरे तरेहके गुणनूकु चान्स् देवे हें पर जितने भी सेवक हें प्रभुके, उनके बीचमें ही प्रभुके गुण प्रकट होवें हें. ये बात नक्की हे.

(प्रभु अपने गुण और गुणसम्बन्धि सेवक सहित प्रकटे हें)

ब्रह्म अपने आपमें आत्माराम हे. यदि भगवान्कु प्रकट होनो हे तो सेवकनूके सहित ही भगवान् प्रकट हो सकें हें. जैसे मिनिस्टर् आवे कोई, तो फटफटी एस्कोर्टस् नहीं आवें, पर गवर्नर जब आवे तो फटफटी एस्कोर्टस् सब आवें. वो एक ओफिशियल् फोरमालिटी हे जाकु निभानी पड़े. आगे फटफटी पीछे फटफटी और आगे एक सायरनकी कार, सब चलें वाके आगे पीछे. तो जा बखत प्रभु पधारें तो प्रभुके जितने गुण हें, तो न जाने कौनसे गुणकु कब प्रकट करवेकी प्रभुको इच्छा हो जाये, तो वाकु सहन करवेवाले एक एक सेवक भी आवें.

अब तो नहीं पर पेहले पुराने जमानामें राजाके साथ एक पंखा रखके चलवेवालो चलतो. जल रखके एक साथमें चलतो. ऐसे एक एक सेवक एक एक सामानकु रखके राजा चलतो. ऐसे जा बखत प्रभु पधारें तो एक एक गुणके सेवक साथ चलें. कोई बखत

ऐश्वर्य प्रकट करनो होय तो वा बखत ऐसी ऐसी लीला करें कि जासु ऐश्वर्य प्रकट हो सके. वीर्य प्रकट करनो होय तो बा बखत वीर्यकु प्रकट करवेके लिये सेवक रखें, जासु सामर्थ्य प्रकट होवे. यशोदाकु सामर्थ्य दिखायो तो क्या काम आवे! न यशोदाकु आनन्द आवे और न ही प्रभुकु आनन्द आवे. ये सेवक तो सब हें पर प्रभुकी लीलाके अनुरूप सेवक होवें हें. भक्त सब नहीं होवें. ये बात विशेषतया समझनी. या लिये सबकु भगवान्में स्नेह हे, कंसकु भी भगवान्में स्नेह हे. क्योंकि स्नेह नहीं होवे तो निरन्तर द्वेष क्यों करे? स्नेहको अर्थ क्या? स्नेहकु संस्कृतमें स्निग्ध = चिकनाहट कहें हें. थोड़ो चिपके हे वाको मन, नहीं तो निरन्तर द्वेष क्यों करे अगर मन चिपकतो नहीं होय? तो जो निरन्तर द्वेष करे तो वामें कुछ न कुछ चिकनाहट तो हे ही ना? तो या लिये स्नेह तो सर्वत्र हे पर वा स्नेहकु आकार प्रभु अपनी लीलाके अनुरूप रूप धारण कर करके देवें. स्नेह तो सबमें निरुपाधिक निष्प्रयोजन हे ही चाहे वो द्वेष करे चाहे वो भक्ति करे. ऐसे ही इन श्रुतिरूपा गोपिकान्को, कुमारिकान्को निरुपाधिक स्नेह हे पर इनके निरुपाधिक स्नेहकु प्रभुने शृंगारको रूप धारण करके शृंगारात्मक भाव प्रदान कियो हे. ये जिम्मेदारी इनकी नहीं हे.

याके लिये गोपिका कहे हे **धनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर् मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि.** तू हमको स्मर दे हे. स्मर हमारो नहीं हे. **ततो बन्धप्रार्थना अधरामृतप्रार्थना च रजसा सत्त्वेन च भविष्यतः, अनन्यपूर्वाणां तु नित्यएव कामः, दिनपरिक्षये इति.** वाके बाद क्योंकि ये प्रभुने इनके शुद्ध स्नेहको ऐसो आकार दियो, दिवसतापन्यायसू अधरामृत प्रार्थनायें वो सब स्मरके कारण कर रही हें. शुद्ध स्नेहके कारण नहीं. **रजसा सत्त्वेन च भविष्यतः** ये आगेके श्लोकमें तेरहवें श्लोकमें निकल जायेंगी. अनन्यपूर्वान्कु तो प्रतिबन्ध हे नहीं और इनकु प्रतिबन्ध हे. तो याके लिये कुमारिका तो वनमें भी जा सकें.

इन कुमारिकानूको शृंगारभाव तो हर बखत उदबुद्ध रखे हें प्रभु. इन श्रुतिरूपानको शृंगारभाव अहर्निश उदबुद्ध नहीं रखे हें प्रभु. वो तो **दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैः वनरुहाननं विभ्रदावृतम् धनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर् मनसि नः स्मरं वीर! यच्छसि.** या न्यायसू शामकु जब पधारें हें गाय चरायके वा बखत इनमें वो भाव उदबुद्ध होवे हे. तब तक वो भाव उदबुद्ध नहीं होवे हे. क्योंकि प्रभु सामने होंय तो ये भाव उदबुद्ध होवे. प्रभु सामने नहीं होंय तब इन् भक्तनूको प्रभुके प्रति भाव शुद्ध स्नेहको ही भाव हे.

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैः वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।
धनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर् मनसि नः स्मरं वीर! यच्छसि॥१२॥

सुबोधिनी :

दिनपरिक्षये संध्याकाले, क्षयोक्त्या दिने द्वेष्यत्वं ज्ञाप्यते. रजोगुणस्य अयं समयः, कामस्य च कालः. नीलकुन्तलाः भ्रमराइव रसबोधकाः. ये हि मुखकमललावण्यामृतं पिबन्ति ते उद्‌बोधका भवन्ति, अतः तैः आवृतं वनरुहवत् कमलवद् आननं बिभ्रद्, हे वीर!, नः मनसि स्मरं यच्छसि.

(सन्ध्यायां नीलवर्णैः आवृतत्वे तत्प्रभाव्याप्तत्वं भवतीति तदुक्त्या वनरुहोक्त्या च कुवलयाभत्वं ज्ञाप्यते. तथाच प्रियामुखेन्दुदर्शनेन उत्तरोत्तरम् अधिकविकासवत्त्वम् इतः पूर्वम् अतादृशत्वं च ज्ञाप्यते. तेन प्रियस्य सर्वासु आसक्तिः सूचिता भवति. अतएव ‘जल’पदं विहाय ‘वन’पदम् उक्तम्. तेन वने या अवस्था तां ज्ञापयितुं तान् धर्मान् विभ्रदेव आननं दर्शयति इति ध्वन्यते.)

धनेन गोभिः रजस्वलं मुहुः च प्रदर्शयन्. मध्येमार्गं गच्छन् उभयतः स्थिता गोपीः पर्यायेण पश्यति, अतो मुहुः प्रदर्शनम्. अग्रे गच्छन् पुनः पुनः व्याघुट्य पश्यति इति वा तथा. तादृग्दर्शनं स्वापेक्षाज्ञापकम् इति

स्मरजनकम्. निरन्तरदर्शनेन तत्रैव रसास्वादनमिति न स्मरोत्पत्त्यवसरः स्यात्. अतो वारंवारं प्रदर्शनं स्मराग्नेः संधुक्षणमिव भवति. तादृशं कृत्वा तत्पूरणार्थं तन्निराकरणार्थं वा युद्धम् अवश्यं कर्तव्यम्. तत्सूचयन्ति वीर! इति. धनेन रजस्वलं च श्रमसूचकं भवति. श्रमनिवृत्तिश्च अस्माभिरेव. वनरुहम् इति. वनएव एतत् सर्वथा भोग्यम् अतो अत्रैव समागमनम्. अनेन गृहे रतिं दास्यामि इति पक्षो व्यावर्तितः बिभ्रद् इति बलात्कारेण तामेव अवस्थां स्थापयति. यदि मुखसंमार्जनं कृत्वा समागच्छेत् तदा प्रसन्नमुखदर्शनाद् ज्ञानं वा भवेत्. धनसम्बन्धि रज इति कामएव, नतु क्रोधः. यथा पात्रं धृत्वा तत्स्थितम् अन्नं भोगार्थं दीयते तथा मुखं धृत्वा तत्रत्यो रसः कामात्मा मनसि स्थाप्यते इति मुखधारणस्य हेतुत्वम्. अतो भोगार्थं दत्त इति भोगः करणीयः. अयं काम आगन्तुक इति न अस्य अन्येन पूरणं भवति॥१२॥

विवरणम् :

(दिनपरिक्षये)

दिनपरिक्षये संध्याकाले वस्तुतः तो संध्याकाल केहनो चाहे हे कि सांझकु जब आप पधारो. अरे जब पधारें वा बखत ऐसो अपशकुनको शब्द क्यों बोलनो **परिक्षये** जैसो शब्द! पर **क्षयोक्त्या दिने द्वेष्यत्वं ज्ञाप्यते.** दिनको क्षय कह्यो हे वो शायद गोपिन्ने बहोत दांत पीसके कह्यो होयगो कि चलो अब दिनको क्षय भयो. याके लिये दिनके प्रति याको द्वेष प्रकट हो रह्यो हे. ये भावनायें आचार्यचरण नहीं बतावें तो कौन बतावे! अपन् तो सीधे अर्थ करें कि **दिनपरिक्षये** चलो सांझ हो गई! अब प्रभु घर पधार रहे हें. अब सांझ हुई और **दिनपरिक्षये** में कितनो अन्तर हे!

(रजोगुणस्य अयं समयः)

रजो गुणस्य अयं समयः, कामस्य च कालः. नीलकुन्तलाः भ्रमराइव रसबोधकाः. कहे हें कि ये समय जा बखत ठाकुरजी पधार

रहे हें, हर तरहसु ये राजस समय हे. या समयकु या लिये ही गोधूलिसमय कह्यो जाय हे. गाय जब लौटें, वाके खुरके कारण धूलि उड़े. या लिये 'गोधूलिवेला' कही जाये. व्यावृत्तिके हिसाबसु सोचो तो गाय लौटके आई तो गोदोहनकाल आयेगो. गोदोहनकाल आयेगो तो क्रिया राजस होयगी. तो गोपिकानूके लिये याकु राजस क्यों कहें? जब आदमी बहोत बिज़ी होय, ओक्युपाइड् होवे, जाकु अपन् ऑफिस-अवर्स कहें, आजकी परिभाषामें ऑफिसटाइम्कु अपन् राजसी कहें. सुबेहको काल जागवेको काल हे वो सात्त्विक काल कह्यो जाय हे. सो जावेवाले कालको तामस काल कह्यो जाय हे. काल तीन तरहको मान्यो जाय. जा बखत अपन् सात्त्विकभाव युक्त होंय, शान्तिसु अपन् सोच सकते होंय कि भई आज क्या करनो हे, या कल क्या कियो! जो सुबहके समय चित्तमें एक सात्त्विकता रहे हे, वो काल 'सात्त्विक' केहवावे. ऑफिस-अवर्स 'राजस काल' केहवावे और रातकु सोवेको काल 'तामस काल' केहवावे. ये प्रमाद निद्रा वगेरेह 'तामस' केहवावें. वा न्यायसू ये व्रजके लोगनूके लिये ये राजस काल हे. क्योंकि गाय सब लौटके आ रही हें. उनके बछड़ानूकु दूध पिलानो, उनको दोहन करनो, उनकु घास डालनी उनके लिये साफ करनो सब काम करने रसोई चढ़ानी, ये दिनको काल गोपिकानूके लिये दुपेहरको काल सत्त्वकाल हे. ग्वालें सब गोचारणके लिये चलें जायें तो वा बखत इनको फुरसतको काल हे. वा बखत युगलगीत चले "**वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुः अधरार्पितवेणुम् कोमलाङ्गुलिभिर् आश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः**" (भाग.पुरा.१०।३-२।२). वा बखत फिर उनको मन प्रभुको ध्यान करवेके लिये यहां वहां दोड़े. प्रभुकी क्या क्या लीलायें चल रही हें. या बखत व्यस्त काल हे. या व्यस्त कालमें भी कथञ्चित् समय निकालें, ये या गोपीको कृष्णके प्रति स्नेह और आकर्षण को स्वरूप हे. नहीं तो ऑफिस-अवर्समें कोई अपनेकु कहे कि भगवन्नाम लो तो बात जचें नहीं. अपन् कहें "घरमां गोविन्द गुण गासु". तो ऑफिस-अवर्स

जंचे नहीं वा बखत पर इनको स्नेहको स्वभाव ऐसो हे, स्नेहको कारण ऐसो हे कि इनकु बिज़ी टाईममें भी यदि प्रभुके दर्शन वा बखत हो रहे होंय, तो इनसु रह्यो नहीं जाय हे. नहीं रह्यो जाय हे ये इनके हृदयकी विवशता हे, लाचारी हे याके लिये आचार्यचरण कहे हें **रजोगुणस्य अयं समयः, कामस्यच कालः** ये समय रजोगुणको हे और कामके शृंगारके मधुरभावके आगमनको ये काल हे.

(निलकुन्तलाः भ्रमराइव रसबोधकाः)

मधुरभावके आगमनको काल हे क्यों? **नीलकुन्तलाः भ्रमराइव रसबोधकाः** प्रभु गाय चरायके और पाछे व्रजकी ओर लौट रहे हें. जैसे वहां कहें हें **"मत्त गजराजकीसी चाल. भुजवर दंड सूंढकी शोभा हर लीनी नंदलाल.. कुंचित कच अनेक अंकुशसे चलत लटकत भाल"** मने ये घुंघराले बाल जो ठाकुरजीके हें, छोटे छोटे यों कर्लीं होके यहां अलकनूपे जो बिखर जायें, तो उनमें अनेक भाव जागृत होवें. कभी ठाकुरजी झूम-झूमके आ रहे होंय, तब ऐसो प्रतीत होवे हे कि मानो कोई मस्त हाथी आ रह्यो हे. वा हाथीकु काबूमें रखवेके लिये अंकुश अनेक लटकाये होय हें जासू कि ये हाथी बेकाबू बेताब न हो जाये. कभी ऐसो बोध होवे कि ये मुख नीलकमल हे, क्योंकि सांवरो मुखारविन्द हे और सांझ ढल रही हे, वा बखत उनपे ये अलक ऐसे लगें कि सांझकु नीलकमलपे कोई भंवरा बेठे भये होंय. कुंतल ऐसे लगें हें जैसे कि गोल गोल भ्रमर होंय. मुखारविन्द पूरो नीलकमल जैसो दीखे और वापे ये अलक भ्रमरकी तरह दीखे हें. **नीलकुन्तलाः भ्रमराइव रसबोधकाः. येही मुखकमललावण्यामृतं पिबन्ति ते उद्बोधका भवन्ति.** कुल मिलाके बात क्या हे? रसको उद्बोधन कौन कर सके? रसकु कौन जगा सके? जाकी भगवान्‌के मुखारविन्दमें आसक्ति होय. इन कुन्तलन्‌की मने भगवान्‌की जो अलकें हें, उनकी भगवान्‌के मुखारविन्दमें इतनी आसक्ति हे कि पचास बखत उनकु ऊपर करो फिर भी गिरके मुखपे आवें हे.

क्योंकि वो मुखको सम्बन्ध छोड़नो नहीं चाहें. जब मुखको सम्बन्ध नहीं छोड़नो चाहें, मुखारविन्दकी आसक्ति उनकी छूटे नहीं, वासु इनमें ये सामर्थ्य हे कि मुखारविन्द सम्बन्धी जो कछु भी स्नेह हे, वा रसकु ये उद्बोधन करें. **ये हि मुखकमल लावण्यामृतं पिबन्ति** जो मुखकमलको लावण्यामृत पान कर सके हें, वो या रसको उद्बोधन कर सके हें. वो बता सकें. मने जो जाने सोई तो बता सके ना! जाने जान्यो ही नहीं, वाकु कैसे पता चले! अब गन्नाको रस हे, जाने पियो ही नहीं और मैं पचास बखत कहूं कि "गन्नाको रस मीठो होवे हे", तो वाकु समझमें नहीं आयेगो कि कैसो मीठो होवे. अब मुखकमलको लावण्य जाने पियो हे, इन कुन्तलनूने पियो हे, सो ये जाने हें और जता सकें हें, बाकी तो कोई और जता हू नहीं सके.

(वनरुहाननम्)

अतः तै आवृतं वनरुहवत् कमलवद् आननं बिभ्रद् हे वीर! नः मनसि स्मरं यच्छसि. इन अलकनूसु ठाकुरजीको मुखारविन्द घिर गयो. जैसे एक कमल खिल्यो भयो होय और वापे अनेक भ्रमरें टूट पड़ें और चार्‌यों ओरसु भंवरानूसु घिर जाये, ऐसे नीलकमलकी तरह ठाकुरजीके मुखारविन्दकी शोभा हे. या प्रकारसु **हे वीर! नः मनसि स्मरं यच्छसि.** या प्रकार नीलकमलके सदृश भंवरानूसु आवृत्त मुखारविन्द हमारेमें शृंगाररसके उद्बोधन करे. क्यों? "श्यामो भवति शृंगारः" (भरतनाट्यशास्त्र,अ.६) शृंगारको वर्ण वो श्याम मान्यो गयो हे. नीलकमल जैसे वर्णसु जा बखत प्रभु आवें तो श्याम शृंगारके वर्णसु शृंगारके भाव उद्बोधित नहीं होवें तो और क्या होयगो?

याही लिये आज्ञा करें हें **सन्ध्यायां नीलवर्णैः आवृतत्वे तत्प्रभाव्याप्तत्वं भवतीति तदुक्त्या वनरुहोक्त्या च कुवलयाभत्वं ज्ञाप्यते.** कुछ लोग कहें कि शामकु सूर्यास्त होवेके बाद जो अरुणिमा हे तब पधारे

हें. नहीं, अरुणिमाके बाद नीलिमाको पीरियड्र आवे हे तब ठाकुरजी पधारें हें. अरुणिमाके पीरियड्पे तो लौटनो शुरु करें हें. पदनूमें आप देखोगे तो पता चलेगो कि अब सूर्य ढल्यो, तो उनने कही कि "अब लौटो." तो मार्गमें ही वो अरुणिमा खतम हो जाये. जब व्रजमें पहोंचे तबतक तो नीलिमा आनी शुरु हो जाये. वा नीलिमाके कारण सांझकु जो नीलिमा छा रही हे, वा नीलिमाके कारण भी प्रभुके मुखारविन्दपे नीलिमा आई हे. वाके लिये नीलकमलकी शोभा हे, लौटते भये रक्तकमलकी शोभा नहीं हे. याही लिये रक्तवर्ण यद्यपि भयंकर रसको प्रतीक मान्यो गयो हे, वा तरहके कालमें प्रभु नहीं लौटें हें. जब नीलिमाको काल आवे हे तब लौटें हें. **"दिवसे सहु श्यामा मली रसरूप तणो जस गाय जि, गोपमंडणी मध्य देखीने, बारंबार सुख थाय जि. वासर निर्वाह ऐम करे, सखी सांयकाणे पेखे जि. अलक मुख खुररज लागी ते, कमल भ्रमर विशेखे जि"** (वल्लभाख्यान.६।४-५). ये सांयकालको जा बखत दर्शन किये हें, वो या तरहके स्वरूपके दर्शन किये हें. **नीलवर्णैः आवृतत्वे तत्प्रभाव्याप्तत्वं भवतीति तदुक्त्या वनरुहोक्त्या च कुवलयाभत्वं ज्ञाप्यते.** कारण क्या? **तथाच प्रियामुखेन्दुदर्शनेन उत्तरोत्तरम् अधिकविकासवत्त्वम् इतः पूर्वम् अतादृशत्वं च ज्ञाप्यते. तेन प्रियस्य सर्वासु आसक्तिः सूचिता भवति. अतएव 'जल' पदं विहाय 'वन' पदम् उक्तम्".**

यहां **'वनरुहाननम्'** कह्यो 'जलरुहाननम्' नहीं कह्यो, क्योंकि या बखत इनके भाव शृंगारके भाव हें और नीलिमा अपेक्षित हे. अब जलरुहाननूमें तो रक्तिमा होवे, गुलाबीपन होवे पर इनकु तो नीलिमा अपेक्षित हे. और ये खिल्यो क्यों हे? नीलकमल जैसो, कमल नहीं, जाको कमलनी कहें ना! वा तरीकेको प्रभुको मुखारविन्द खिल्यो हे. वो क्यों खिल्यो हे? **प्रियामुखेन्दुदर्शनेन** एक एक भक्तनूके मुखारविन्दके दर्शन ठाकुरजीकु भी हो रहे हें. तो वा ठाकुरजीके भक्तनूके मुखारविन्दके दर्शन होवें हें वासु भी प्रभुके मुखारविन्दमें

एक तरहको विकास नजर आवे हे. विकास मने क्या? प्रफुल्लता नजर आ रही हे. क्योंकि जब दिनभर वनमें रहे और शामकु जब लौटें तब एक एक व्रजभक्तके मुख जा बखत दीखने शुरु होवें, तो वो दीखवेकी जो प्रफुल्लता हे, वो प्रभुके मुखारविन्दपे भी झलक रही हे. वहां कहें हें ना! **''आनन्दसिंधु बढयो हरि तनमें. राधामुखपूरणशशि निरखत उमगि चल्यो ब्रज वृन्दावनमें..''** ये जो राधाजीके मुखको चन्द्रमा उदित भयो, तब ये प्रभुके श्रीअंगरूपी समुद्रमें, श्यामसमुद्र, नीलसमुद्रमें ज्वार आई. **''इत रोक्यो यमुना इत गोपिन्''** ऐसी दो पाट हती. एक पाट यमुनाजी रोक पाई या ज्वारकु, दूसरी बाजु गोपीजन रोक पाई वा ज्वारकु. **''कछु इक फैल पर्‍यो त्रिभुवनमें''** जैसे खाड़ीमेंसु पानी निकल जाये हे कहीं कहीं, ऐसे ही ये कुछ रस कहीं कहीं त्रिभुवनमें फेल्यो. तो आचार्यचरण यहां तो आज्ञा नहीं करें हें पर कहीं और आज्ञा करें हें कि वो जो कुछ फेल्यो, उनमें सारे कविन्के वर्णन करिवेकु विषय मिल गयो. सब कवि जैसे 'गीतगोविन्द'को नाम लें हें कि कछु फेल्यो तो जैसे गीतगोविन्दके जयदेव आदि भक्तकवि हें उनकु प्रकाश मिल्यो. जैसे वा खाड़ीमें थोड़ो सो जल आ जाये वैसे ही उतनेसु सारो साहित्य रच्यो गयो तो वो मूल समुद्रकी गम्भीरता कितनी? जो खाड़ीमें इतनी गेहराई देखें तो पता चले कि मूल समुद्र वाको गाम्भीर्य कैसो होयगो! समुद्रमें ज्वार आई हे, आनन्द समुद्र उमड़्यो तो. **''इत रोक्यो यमुना उत गोपिन् कछु एक फेल पर्‍यो त्रिभुवनमें''** (परमानन्ददास) वा कछुमें तो त्रिभुवन डूब गयो.

तो वा लिये कहें हें **तथाच प्रियामुखेन्दुदर्शनेन उत्तरोत्तरम् अधिकविकासवत्त्वम् इतः पूर्वम् अतादृशत्वं च ज्ञाप्यते.** जबतक प्रियाके मुखेन्दुके दर्शन नहीं भये हते, तबतक ये ज्वार प्रभुके मुखमें भी आयो नहीं. **तेन प्रियस्य सर्वासु आसक्तिः सूचिता भवति.** याके लिये उनकु एक भक्तकु देखके नहीं हे, अनेकविध भक्तन्के मुखन्कु

देखके प्रभुके मुखमें वो विकास, प्रफुल्लितता दिखलाई देवे हे. याके लिये जितने भी भक्त प्रभुकु दिखलाई दे हें, उन सबनूमें प्रभुकी भी आसक्ति स्फुटित हो रही हे. **अतएव 'जल' पदं विहाय 'वन' पदम् उक्तम्.** क्योंकि सबनूमें प्रभुकी आसक्ति हे, या लिये जल नहीं केहके वन कह्यो. वन माने सब. जल तो एकवाची होवे और वन तो समुदायवाची होवे हे. क्योंकि सब भक्तनूमें प्रभुकी भी आसक्ति हे. जैसे सब भक्तनूकु प्रभुमें आसक्ति हे, या लिये **वनरुहाननं विभ्रदावृतम्** कह्यो. **तेन वने या अवस्था तां ज्ञापयितुं तान् धर्मान् विभ्रदेव आननं दर्शयतीति ध्वन्यते.** तो कहें हें कि वनमें जो सारी लीला करी, उन लीलानूमें जिन्-जिन् भक्तनूकी जैसी रुचि हे, उन रुचिनूके अनुसार प्रभुने अपनो आनन्द प्रदान कियो हे.

(मुहु दर्शयन् नः मनसि स्मर यच्छसि)

गाय जो ग्वालनूको धन, गायनूकी जो धूलि वासु प्रभुको मुखारविन्द भी रजस्वल हे. मने वापे भी रज चमक रही हे. **मुहुश्च प्रदर्शयन्. मध्येमार्ग गच्छन् उभयतः स्थिता गोपीः पर्यायेण पश्यति, अतो मुहुः प्रदर्शनम्** अब या प्रकार मुखारविन्दकु एक बखत कोईकु देख लेते होंय, ऐसो नहीं हे. जब प्रभु पधार रहे हें तो दोनों तरफ भक्त दर्शनोंके लिये खड़े हें. एक बार या तरफ देखें, एक बार वा तरफ देखें. या तरफ वा तरफ दोनों तरफ देखते भये भी, ऐसो नहीं कि देखते भये आगे निकल गये पर पीछे मुड़के भी एक बखत और देख लें. या तरहसु चतुर्विध दृष्टि प्रभुकी चले हे वासु एक ही मुखारविन्दके प्रभु पुनः पुनः दर्शन करावें.

अग्रे गच्छन् पुनः पुनः व्याघुट्य पश्यतीति वा तथा. जैसे सिंह आगे चले और फिर पीछे देखे तो वाको सिंहावलोकन कहें. ऐसे आगे जावें और पीछे भी देखते जायें. पीछे देखें वासु सिद्ध होवे कि एक बार देखें तो वो जिज्ञासा कही जाये पर पीछे मुड़के

देखें वाकु उत्कंठा कहे हें. अपन् जा रहे होंय और क्रमसु अपन् एक बखत या ओर देखें, एक बखत वा ओर देखें तो आदमी जिज्ञासावश भी देख सके हे पर जाकु एक बखत देख लियो और पुनः एक बखत पीछे मुड़के देखनो, वामें तो उत्कंठा द्योतित होवे हे. वा दुबारा देखवेमें भक्तके ये प्रतीत होवे कि नहीं जैसो मेरो मन प्रभुमें आरूढ़ हे वैसे ही प्रभुको मन भी मेरे प्रति कछु स्पृहानुभूत हे.

तादृग्दर्शनं स्वापेक्षाज्ञापकमिति स्मरजनकम् फिर जो मुड़के दुबारा देखें हें वो दुबारा देखवेमें गोपिकान्के हृदयमें शृंगारभाव उदय होवे हे. एक बार देखवेसु तो नहीं होवे कि शायद क्या हे? ये जानकारीके लिये देखें पर जब मुड़के दुबारा देखें तो कन्फर्म हो जाये कि नहीं, प्रभुमें भक्तन्के प्रति उत्कंठा हे.

निरन्तर दर्शनेन तत्रैव रसास्वादनमिति न स्मरोत्पत्त्यवसरः स्यात्. पर जब निरन्तर देखें तब तो शृंगारके भाव जगे ही हें. वाको कारण क्या? निरन्तर देखवेमें तो दोनोंन्में एकतानता आ जाये. एकतानता आ जाये तो दोनोंमें तृप्ति आ जाये. तृप्ति आ जाये तो शृंगारके भाव जग नहीं पावें. थोड़ोसो टेरा आ जाये. एक बेर पर्यायसु देखें और फिर वाके बाद पीछे मुड़के जब प्रभु देखें हें तो शृंगारके भाव जगे हें. **धनरजस्वलं दर्शयन् मुहुः मनसि नः स्मरं वीर! यच्छसि.** हो जाये. **अतो वारंवारं प्रदर्शनं स्मराग्नेः संधुक्षणमिव भवति.** जैसे हवा निरन्तर चले तो अग्नि बुझ जाये पर झोंकान्में चले हवा तो अग्नि भड़क जाये. एकदम लगातार हवा चले तो वो अग्निकु बुझा देवे. संधुक्षण नहीं होवे जाको बर्तनपे कलई चढ़ावेवालो रेह रेहके धौंकनी करे तो वामेंसु निकली भई हवा अग्निकु बुझावे नहीं पर अच्छी तरहसु सुलगा दे हे. या तरहसु इनके हृदयमें जो भाव हें, वाको प्रभु संधुक्षण करें हें. निरन्तर जो दर्शन दें तो एकतानता आ जाये. एकतानता आ जाये तो संधुक्षण नहीं होवे.

(हे वीर!)

तादृशं कृत्वा तत्पूरणार्थं तन्निराकरणार्थं वा युद्धम् अवश्यं कर्तव्यम्. ये तामस हे ना! तो याकु क्या होवे कि यदि वा तरहसु संधुक्षित करके तुम शृंगाराग्निकु प्रज्ज्वलित कर रहे हो तो तुम वीर हो याके लिये तुम ही याकु बुझाओ. यदि वीर हो तो याकु बुझाओ. या लिये वो कहे हे **वीर यच्छसि. तत्सूचयन्ति वीर! इति. धनेन रजस्वलं च श्रमसूचकं भवति, श्रमनिवृतिः च अस्माभिरेव.** ये रज मुखारविन्दपे चोंटे क्यों हे? क्योंकि गाय चराते बखत जो श्रमबिन्दु आये हें, उनके कारण रज अधिक चोंट जाये. नहीं तो इतनी नहीं चोंटे. क्योंकि ये श्रम सूचित भयो. ये जो रज मुखारविन्ददपे लगी भई हे यासु वनमें जो गाय चराई हें वासु श्रम भयो, ये सूचित भयो. अब इतने श्रान्त हो तो वाकु ये होवे कि हम क्यों नहीं श्रम निवारित कर दें! **वनरुहम् इति, वनएव एतत्सर्वथा भोग्यम् अतो अत्रैव समागमनम्. अनेन गृहे रतिं दास्यामीति पक्षो व्यावर्तितः बिभ्रद् इति.** अरे बीचमें यमुनाजी आई हती. कई तालाब आये होंयगे, चाहते तो अपने मुखारविन्दकु धो लेते. फ्रेश् होके आते. फ्रेश् होके नहीं आये तो जो कछु भी वनमें श्रम भयो हे, वो सारे श्रमचिन्हन्कु लेके आये हो खाली ये जतायवेके लिये कि हम श्रान्त हें. जैसे आदमी खावे और भोजन करवेके बाद तृप्ति जतावे तो भोजन परोसवेकी इच्छा मारी जाये. खाके भूख जतावे तो परोसवेकी इच्छा हो जावे. आके कहे कि ‘‘पेट भर्‌यो भयो हे,’’ अपन् कहेंगे कि ‘खाओ’ तो कितनो कहेंगे कि ‘‘थोड़ो बहोत खा लो’’ पर अपनेकु भूख आके जतावे तो परोसवेकी इच्छा अधिक होवे. तो या तरहसु श्रम जता रहें हें. तो श्रमनिवारणकी इच्छा होवे. श्रम नहीं जताते होते, फ्रेश् होके आते, आजकल कई लोग जावें ना! औरतें भी पर्समें पाउडर रख लें, पोंछ पांछके फ्रेश् होके आ जायें तो श्रमको प्रश्न ही नहीं हे. ऐसे ही यमुनाजलमें अपनो मुखारविन्द धोके और फ्रेश्

होके आते, तो तो फिर मुखारविन्दपे कोई अपील तो रेहती नहीं न! अब क्योंकि मुखारविन्दपे अपील हे तो हम एटेन्ड् कर रही हें.

यदि मुखसमार्जनं कृत्वा समागच्छेत् तदा प्रसन्नमुखदर्शनाद् ज्ञानं वा भवेत्. अब ठाकुरजीको प्रसन्न मुख दीख्यो तो स्नेह नहीं होतो, ज्ञान होतो. भगवान्‌को प्रसन्न मुख नहीं दीखेगो तो कौनको दीखेगो! ज्ञान हो जायेगो कि प्रभु प्रसन्नतासु पधारे हें. स्नेहको अवकाश नहीं आवे. स्नेहको अवकाश तो तबही आवे कि जब श्रान्ति दिखलाई दे. स्नेहकी परीक्षा ही तब होवे कि जब अपनूंकु कोई श्रान्त दीखे. जब कोई श्रान्त दिखाई देवे तो वाको श्रम दूर करवेकी इच्छा होवे. जब तुम भी प्रसन्न और हम भी प्रसन्न तो दोनों आत्माराम जैसे इकट्ठे दीखें. दोनों भैंस जैसे दीखें. वो याको देखे और ये वाको देखे. दोनों स्थितप्रज्ञ. "**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव! स्थितधीः किं प्रभाषेत किम् आसीत व्रजेत किम्**" (भग.गीता २।५४). तुम भी आत्माराम और हम भी आत्माराम. फिर तो कोई बात ही नहीं करनी. कोई कोईकु अटेन्ड् ही नहीं करे. तो ये स्थितप्रज्ञता ज्ञानको लक्षण हे. स्नेहको लक्षण अलग हे, वहां प्रज्ञा स्थित नहीं होवे हे. वहां स्नेहके कारण अपनी प्रज्ञा चलायमान हो जाये क्योंकि यहां श्रम दिखलाई दे तो वहां उद्वेग दिखलाई दे कि श्रान्त हे. देखवेवालो दुःखी हो जाये कि कैसे याको श्रम निवारण करनो? एकदम स्थितप्रज्ञ होके वो भी आत्मतुष्ट आवें, तुम भी आत्मतुष्ट और हम भी आत्मतुष्ट. दोनोंकी प्रज्ञा स्थित हो जाये. स्नेहको तो कोई प्रसंग रेह ही नहीं जाये, श्रान्त नहीं दीखे तो.

(स्नेह और परिश्रम को विचार)

याके लिये ही अपने यहां सेवामें सबसु ज्यादा विचार परिश्रमको कियो गयो हे. कारण क्या कि परिश्रमको विचार होवे तो स्नेहपूर्वक

सेवा होवे. अपनूने वाको अर्थ उलटो समझ लियो. एक सामान्य बात बताऊं कि जैसे ठाकुरजीकु परिश्रम हो जाये, तो अपने यहां सीरा भोग धरें. कैसो सहज भाव हतो वामें कि बच्चा रो रह्यो हे. तो अपन् चॉकलेट मुंहमें दे दें कि नहीं! बच्चा चुप हो जाये. अपनूने क्या उलटो चक्कर सोच्यो कि खूब परिश्रम देनो और तपेला भर भरके सीरा भोग धरनो. तपेला भरके सीरा भोग धरवेसु तो और ज्यादा परिश्रम हो जाये. तपेला भरके सीरा भोग धरवेसु परिश्रम दूर नहीं हो जाये. बहोत लोग कहें कि ‘‘हमने छप्पनभोगसु परिश्रम दूर कर दियो.’’ अरे छप्पनभोगसु ठाकुरजीको परिश्रम दूर थोड़े ही हो जायगो! जा बखत परिश्रम भयो और वा बखत वा परिश्रमके कारण तुम्हारे चित्तमें थोड़ो भी उद्वेग आयो और वा उद्वेगके कारण तुमने एक छोटी कटोरी गरम गरम सीरा भोग धर दियो तो प्रभुके हृदयमें भी यह आवे कि अब हमारो परिश्रम दूर भयो.

हमारे किशनगढ़ दरबारके महलसु आगे १६ किलोमीटर दूर एक और किला हे. वहां किलामें दरबार रेहते और यहां किलामें ठाकुरजी रेहते. रोज सुबह घोड़ापे चढ़के शृंगार करवे आते. उठें, मंजन करते तो थोड़ो विलम्ब तो हो ही जातो थो. अब जब दरबारकु खबर पड़ी तो हुकम दियो कि एक घंटा देर होवे पे पेड़ाको एक छबड़ा भोग धर देनो. अब परिश्रमको सिद्धान्त और परिश्रम होय तो सामग्री धरनी. जब ये सिद्धान्त समझमें आयो तो एक घंटा देरसु आवें तो एक छबड़ा पेड़ाको भोग धर दें. अब मनकूं खुलासा मिल गयो कि पेड़ा तो भोग आ रह्यो हे ना! चलो एक और काम कर लें तो एक छबड़ा और भोग धर दीजियो. मनकूं खुलासा तो आ रह्यो हे ना! एक छबड़ा पेड़ा धरवेपे एक काम करवेकी छूट ली तो मनने तीन काम करवेकी छूट ले ली कि चलो तीन छबड़ा भोग धर दो. अब जब छबड़ापे छबड़ा आवे लग गये तो मुखियाजीने कही कि ‘‘महाराज आप तो राजा हो,

चाहो जितने पेड़ानूके छबड़ा भोग धर सको हो पर यासु परिश्रम घट नहीं रह्यो हे, बढ़ रह्यो हे.''

अपनूने स्नेहकी जो स्वभाविकता, सहजता, कोमलता हती, वो खो दी और परिश्रमके अस्वभाविक विचार कर लियो. ऐसे परिश्रम निवारण नहीं होवे. वस्तुतः जा बखत अपनूकु लगे कि प्रभुकु परिश्रम हो गयो और वा बखत सीराको कटोरा या और कुछ भी जामें बच्चाकु मजा आवे, ऐसो कछु प्रभुकु भोग धरनो चइये और वाको उद्वेग अपने चित्तमें भी होनो चइये. हुक्मनामेके अनुसार एक घंटा देरी होवेपे एक छबड़ा भोग धर दो तो न तो अपने चित्तमें कोई उद्वेग हो रह्यो हे और न ही ठाकुरजीको परिश्रम दूर हो रह्यो हे. परन्तु ठाकुरजीकु और अधिक श्रम हो रह्यो हे. क्योंकि मन फिर सहारो ढूंढवे लग जाये. एक छबड़ा और दे दीजो. एक छबड़ा और दे दीजो. मनमें एक काम करवेकी ही इच्छा थोड़े ही होवे. फिर तो एकके साथ दो काम और कर लो. या तरहसु छबड़ा भोग धरवे लग जायें तो अस्वभाविकता हो जाये.

परिश्रमको विचार तो बहोत आवश्यक हे पर वो स्वभाविक होनो चइये. आवश्यक भी और स्वभाविक भी होनो चइये. जैसे भोजन बहोत स्वभाविक हे, आवश्यक हे. स्वभाविक होय तो आवश्यक हे. कोई अस्वभाविक भोजन करवे लग जायें तो! बेदाना समझके दो बोरी मटर खा गये. यामें तो परिश्रम बढ़ ही जायेगो, घटेगो नहीं. परिश्रमको विचार आवश्यक होनो चइये और स्वभाविक होनो चइये, अस्वभाविक नहीं. अस्वभाविकको विचार करें ना, तो वो बिडम्बना हो जाये. फिर स्नेह नहीं रेह जाये, रूटीन हो जाये. रूटीनमें फिर श्रमको निवारण भी नहीं होवे और अधिक बढ़ जाये हे. अपनूकु पता नहीं चले पर यूरोपके ऑफिसके जो कायदा हें, उनकूं आप पूछो. उन सबनूकु ट्रेनिंग दी जाये. जैसे रिसेप्शनिस्टकु

बतायो जाये कि कोई आवे तो कैसे वाको सम्बोधन करनो, कैसे वाकु मुस्कराके बिठानो वगैरह. वो हंसवेके कारण उनके मनमें टेन्शन आवे, हंसनो बहोत अच्छी चीज हे पर हर समय ऑफिशियल वे में जो भी आवे वासु हंसके बोलनो सत्कार करनो. अब जब ये सब ऑफिशियल तरीकेसु कियो जाये तो भी टेन्शन आवे हे जबकि हंसवेसु टेन्शन दूर होवे हे. ऐसे जब आप ऑफिशियल हंसी हंसो तो वासु एक अलग तरहको टेन्शन बने हे और वो टेन्शन फिर हंसवेसु दूर नहीं हो सके हे. वो आदमी रोवे हे कि "कहां फंस गयो." वो टेन्शन हंसवेसु दूर नहीं हो सके हे क्योंकि वो अस्वभाविक हंसी हे. अपनेकु देखके रिसेप्शनिस्ट जो हंसे हे, वो अस्वभाविक हंसी हे, वो प्रसन्नताकी हंसी नहीं हे. वो आर्टिफिशियल हंसी हे. वासु टेन्शन दूर नहीं होवे. ऐसे ही अस्वभाविक परिश्रमके विचार स्नेहसूचक नहीं हे. फोरमेलिटी हे. स्वभाविक परिश्रमको जहां विचार हे, वहां स्नेह रह्यो भयो हे और वो आवश्यक हे. सेवामें याही लिये परिश्रमके विचारसु सेवा करी जाये हे. प्रभुकु कोई तरहको परिश्रम नहीं होय. शीतकाल हे तो कैसो परिश्रम कि "प्रभुकु ठण्ड लग रही होयगी." प्रभुकु नहीं भी लगती होय पर अपने हृदयमें यदि परिश्रमको विचार आ रह्यो हे, तो अपने हृदयमें वो स्नेहको परिचायक हे. अपने हृदयमें परिश्रमको विचार नहीं आ रह्यो होय और प्रभुकु परिश्रम होवे हे, ऐसो मानके आप चलो तो वो अस्वभाविक हे. गद्दल भी धरा दो वासु कछु फरक नहीं पड़ेगो. क्योंकि आपके हृदयमें ऐसो कोई विचार तो हे नहीं. फोरमेलिटीमें आप ठाकुरजीकु गद्दल धरा रहे हो. अपने हृदयमें परिश्रमको विचार मुख्य हे. वाकी जांच कैसे होवे कि अपने हृदयमें उद्वेग होवे कि नहीं? अपने हृदयमें उद्वेग होतो होय कि आज तो भोग धरवेमें वस्तुत: विलम्ब हो गयो, तब तो प्रभुकु परिश्रम भयो पर अपने मनमें तो उद्वेग होवे नहीं कि विलम्ब भयो. ग्यारह बजे भोग आवे चड़ते थे, साढ़े ग्यारह बज गये. चलो एक कटोरा सीराको धर दो. तो वो परिश्रमको

भोग नहीं हे. लेकिन प्राय: मन्दिरन्में येही प्रथा चले. सब तरहको परिश्रम दें. अपन् भी जा जाके मांगे, ये कामना पूरी करो, ये कामना पूरी करो, प्रभु आपकु परिश्रम भयो वाके लिये एक मनोरथ करा देनो. तुमने ये सब परिश्रमको विचार ही कहां कियो! जानकरके परिश्रम दो और फिर वाको मनोरथ करके परिश्रमको निवारण करो, वामें आनन्द नहीं हे. ये स्नेहको सूचक नहीं हे. ये केवल व्यवहारको सूचक हे.

याही लिये कहें हें **प्रसन्नमुखदर्शनाद् ज्ञानं वा भवेत्** प्रभुको जो प्रसन्नमुख देखें, तो ज्ञान हो जाये पर परिश्रान्त मुख दीखे, मुखारविन्दमें कछु परिश्रम नजर आ रह्यो हे, वाके कारण स्नेह उत्पन्न हो रह्यो हे. यदि स्नेह नहीं होय तो आदमीकु परिश्रम दीखे नहीं. आदमी थक्यो भयो और अपनेकु परिश्रम भी दीख रह्यो हे, जैसे एक लेबर हे, वो बिचारो मजदूर सुबहसु लेकर शाम तक कितनो काम करे, वाके चेहरामें क्या थकानके भाव नजर नहीं आते होंयगे! ध्यानसु देखोगे तो वाके चेहरापे थकानके भाव नजर आयेंगे पर वाके प्रति अपने हृदयमें स्नेह नहीं हे, तो अपनेकूं वाके चेहरापे थकान कभी दीखे ही नहीं. घोड़ाको कितनो चाबुक मार मारके भगावें पर मनमें कभी होवे कि घोड़ा थक गयो होयगो! बैलको कितने हंटर मारें और दौड़ावें. कभी हमकु दीखे हे कि घोड़ा थक्यो होयगो कि नहीं! बैल थक्यो होयगो कि नहीं! अपनेकूं घोड़ाके प्रति स्नेह नहीं हे. अपनेकूं बैलके प्रति स्नेह नहीं हे पर यदि कोई अपनो आदमी दौड़े या चले भी तो थोड़ी देरमें अपनेकूं वाके मुखपे श्रम दीखवे लग जाये कि थक गयो. क्यों? वो दीखे और अपनेकूं दूसरेके चेहरापे क्यों नहीं दीखे? अपन् ये मानके चलें हें कि ये तो याको धन्धा हे, याको कहा थकनो और नहीं थकनो! पर यदि थोड़ो भी स्नेह हे तो अपनेकु लगे कि थक गयो होयगो. याको रेस्ट दो. स्नेह होय तो अपनेकूं समझमें आवे और स्नेह

नहीं होवे तो अपनेकूं समझमें नहीं आवे. अब देखो बिचारे घोड़ानकूं अपन् कितनो लगावें? थोड़ो धीरे चलतो होय तो चाबुक मार मारके जल्दी चलावें. क्योंकि अपने हृदयमें वाके प्रति स्नेह हे ही नहीं. परिश्रम जो दीखे हे वो स्नेहके कारण दीखे हे बाकी नहीं तो परिश्रम नहीं दीखे. मने जानवरकी बात तो दूर रही, गाड़ीके जो शौकीन हें, उनकी गाड़ी जब गरम हो जाये, तो वो भी नर्वस हो जायें कि अरे गाड़ी गरम हो गई. जो गाड़ीके शौकीन नहीं हें, कैसे भी मारपीटके गाड़ी चलानो जिनकूं आवे हे, वो गाड़ी गरम भी हो जाये तो चलाते ही रहें हें, परवाह नहीं करे हें. उनकूं गाड़ीके प्रति लगाव ही नहीं हे. खुदकी गाड़ी होय, नई नई गाड़ी ली होय, हमने देख्यो. एकके साथ घूमवे गये. पति पत्नी दोनोंने नई गाड़ी ली. हमकु भी कही कि "आप भी चलो महाराज." हमने कही कि "अच्छा चलो." अब वो गाड़ी पत्नीकी हती. गाड़ी पत्नीने ली थी. पति ड्राईव कर रह्यो थो. तो वो हर बखत घड़ी घड़ी वाकूं कहे कि "अरे देखके चलाओ, संभलके चलाओ. अब इतने इन्स्ट्रक्शनस् दिये कि पति घबड़ा गयो. जा दिन गाड़ी ली वाही दिन पीछेसु कोईने टायरके ऊपरके हिस्सामें टक्कर मार दी. अब गाड़ी छिली क्या कि हमारे सामने ही दोनोंमें झगड़ा शुरु हो गयो. वो केह रही थी कि "मैं पेहलेसु ही केह रही थी कि गाड़ी ठीकसु चलाओ पर तुमने ठीकसु नहीं चलाई." अब वो कहे कि "लग गई तो लग गई, नयो रंग लगवा देंगे." रंग तो लगनेवालो ही थो. रंग नहीं लगनो थो ऐसी बात तो हती नहीं. रंग तो अवेलेवल हतो ही पर गाड़ीके प्रति रह्यो भयो स्नेह झगड़ा करावे. ये तो बेजानमें आदमीको व्यवहार ऐसो हे. जहां जान मानें वहां कितनो व्यवहारमें परिवर्तन आ जाये? अब जो परिवार दो दो गाड़ी रख सके तो क्यो वो एक स्क्रेचको मिटा नहीं सके, पर झगड़ा क्यों होवे? स्क्रेचको झगड़ा नहीं होवे पर वो स्नेहको झगड़ा होवे. हृदयमें रहे भये स्नेहके कारण ऐसो लगे कि जैसे

बच्चाकु चोट लग गई होय. इतनी कोमल भावना आदमी गाड़ीके प्रति रख ले. स्नेह होय तो गाड़ीको परिश्रम हो गयो. जब स्नेह नहीं होवे तो घोड़ानूकु भी दिन भर दौड़ाओ, कोई पूछे नहीं कोई जाने नहीं. नौकर दिन भर काम करतो रेहवे पर अपनेकु कभी विचार नहीं आवे कि अपन् पूछ भी लें या गरीबसु कि "भई तू थक गयो हे कि नहीं थक गयो हे?" क्यों? वाके प्रति स्नेह नहीं हे. अपन् पगार तो देवें ही हें, फिर कायको पूछनो? पगार देवें तो काम क्यों नहीं करे? थकनो कायको? अपने मनमें ऐसी काउन्टिंग रहे. अपन् व्यवहार जाने हें पर अपन् स्नेह नहीं जाने हें. स्नेह जानें तो परिश्रम दीखे, दीखे और दीखे ही हे. तो परिश्रम स्नेहके कारण दीखे हे और स्नेहके कारण फिर श्रमको संधुक्षण होवे हे. ये नियम हे और जहां परिश्रम नहीं दीखतो होय, वहां समझ जानो कि वहां केवल ज्ञान हे, केवल व्यवहार हे पर स्नेह नहीं हे. मने भगवान्की सारी पूजा मर्यादामार्गमें भी करी जाये, अपने यहां सेवा ऐसी वस्तुनूसु थोड़े ही करी जाये कि जो दुनियांमें मिलती न होंय. वोही अन्न, वोही फल, वोही फूल और वोही जल और वोही वस्त्र अपन् भी सेवामें वापरें हें. वोही अन्न फल फूल वस्त्र मर्यादामार्गीय पूजामें भी वापरे जायें हें. अन्तर कितनो हे कि वहां पूजामें वापरे जायें, व्यवहारके रूपमें. अपने यहां क्या हे कि वोही सब चीज परिश्रमके विचारसु करी जाये. एक परिश्रमको विचार, हर बातको बदल दे हे. स्नान करानो मने करानो. एक ये अभी शीतकाल हे, सो समोयेजलसु स्नान करानो. उष्णकाल हे सो शीतल जलसु स्नान करानो. या तरहको परिश्रमको विचार करके स्नान कराओ. वोही क्रिया स्नेहकी सेवा हो गई. फूल आयो तो ठाकुरजीके माथे पधराओ. जल आयो तो "नैवेद्यं समर्पयामि, जलं समर्पयामि." तो वो भी सेवा ही हे पर वो सेवा स्नेहके कारण नहीं हे. क्योंकि वामें परिश्रमको विचार नहीं हे, केवल व्यवहारको विचार हे कि नैवेद्य समर्पित करनो चइये. नहीं करो तो पाप लग जायेगो. वामें

पापको विचार हे, भयको विचार हे परिश्रमको विचार नहीं हे. कोई भी सेवा करो, अगर प्रभुके परिश्रमके विचारसु करोगे, तो वो आपके स्नेहको थर्मामीटर हे. जा बखत आपके हृदयमें प्रभुको परिश्रम हो रह्यो हे, ये भाव जग्यो तो आपके स्नेहके थर्मामीटरमें पारा चढ़यो. यदि आपके हृदयमें प्रभुके परिश्रमको विचार नहीं हे और सारी कृति रट ली, आईटमवाईज एक्सपर्ट होके सारी सेवा कर दी एक्स्पर्ट होनो सेवा नहीं हे.

हम अक्सर एक बात कहें हे कि "नर्स बच्चाकी देखरेख करवेंमें एक्स्पर्ट होवे हे पर माँ नहीं होवे हे." माँ अपने बालककी थोड़ी बहोत उपेक्षा भी करती होयगी, बालकक़ु एटेन्ड् करवेमें नर्सकी तरह इतनी एक्स्पर्ट नहीं होयगी पर बच्चाके रोवेपे माँ को जो दिल दूखे हे, वो नर्सको दिल नहीं दूखेगो. यद्यपि नर्स बालकक़ु मां की अपेक्षा अच्छो अटेन्ड कर सके हे. माँमें और नर्समें एक मौलिक अन्तर हे और वो अन्तर ये हे कि वो नर्स एक्स्पर्ट हे पर बालकके पोषण करवेमें वाको दिल नहीं दूखे हे. बच्चाके परिश्रमको विचार वामें नहीं हे. माँ भले एक्स्पर्ट नहीं होय, भले फूहड़ ही होय पर वाकु बच्चाके रोवेमें वाके परिश्रमको विचार हे. यहां आके सारी बात बदल जाये हे. बाकी क्रियामें तो कछु नहीं बदले. फूहड़ माँ भी माँ ही हे.

याहीके लिये आचार्यचरण कहें हें "**मूढाअपि वैष्णवा: विष्णुगतिम् जानन्ति नतु अत्यन्त निपुणाअपि अवैष्णवा:**" (भाग.पुरा.१०।२७।१०). मूढ़ भी यदि वैष्णव हे तो वो विष्णुकी गति जानेगो. अत्यन्त निपुण हे पर अवैष्णव हे तो विष्णुकी गति वाकु पता नहीं चलेगी. वो ज्यादासु ज्यादा नर्स बन जायेगो. अटेन्ड कर लेगो, रोतो होयगो तो मुंहमें एक दूधकी बाटली ठूंस देयगो पर बाटली मुंहमें ठूंसवेमें वाकी ममता नहीं होयगी. माँ बाटली मुंहमें ठूंसेगी नहीं पर मुंहमें

रखेगी. क्रिया तो एक ही हे पर वाके नाम अलग अलग हो जायें. वो ये नहीं चाहे हे कि रोतो बन्द हो जाये पर वो ये चाहे हे कि जा कारणसु ये रो रह्यो हे वो खतम हो जाये. माँ के हृदयमें बाटली ठूंसवेकी भावना और नर्स या आयाके हृदयमें बाटली ठूंसवेकी भावनामें बहोत अन्तर हे. माँ में परिश्रमको विचार हे और आयामें क्रियाको विचार हे. याही लिये प्रभुभी भक्तके भावके अनुरूप भक्तमें स्नेह जगे, वाके लिये अपने मुखारविन्दपे सारे परिश्रमके चिन्हनूकु लेके पधारे हें. आर्टीफिशियली अपने मुखारविन्दकु धोके अपने परिश्रमकु छिपानो नहीं चाहें हें. प्रभु परिश्रान्त हें तो अपनेकु परिश्रान्त दिखावें हें. नहीं तो अपन् घरमें घुसें सो रुमाल लेके मुंहकु पौंछके फ्रेश होके घुसे हें. अक्सर लोग करें ना कि जेबमेंसु रुमाल निकालके मुंह पौंछके घरमें फ्रेश होके घुसें. या तरहसु भी हो सके हे और वो कहां हो सके हे? कभी कोई अपने घरमें रुमालसु मुंह पौंछके घुसे हे! ऑफिससु आप घर आओ तो रूमालसु मुंह पौंछके घुसो हो? नहीं. दूसरेके घरमें जानो होय तो अपन् वाके घरमें मुंह पौंछके जायें. दूसरेकु कायकु अपनो परिश्रम दिखानो! अपने घरमें आते होंय तो पसीनाकी बूंद ज्यादा चमके तो अच्छो लगे. कमसु कम घरवालो पूछे तो सही कि शरबत पियोगे, ठण्डा पियोगे, क्या पियोगे?

याई लिये प्रभु भी आर्टिफिशियली फ्रेश होके व्रजमें प्रविष्ट नहीं होवें हें. अब जो कछु भी परिश्रमके चिन्ह उनके मुखारविन्दपे प्रकट भये हें, उन चिन्हनूकु लेके आवें हें जासु कि जिनने अटेन्ड करनो हे तो वो प्रभुकु प्रोपरली अटेन्ड करें कि दिन भर गाय चरावेके बाद काफी परिश्रम भयो हे.

(व्रजरज और प्रभुमुखारविन्द)

धनसम्बन्धि रजः इति कामएव, नतु क्रोधः. यथा पात्रं धृत्वा

तत्स्थितम् अन्नं भोगार्थं दीयते तथा मुखं धृत्वा तत्रत्यो रसः कामात्मा मनसि स्थाप्यते इति मुखधारणस्य हेतुत्वम् और ये गोरज प्रभुने मुखारविन्दपेसु धोई नहीं, तो वासु ये भी सूचित होवे हे कि गाय चरावेमें प्रभुकु कोई खीज या क्रोध नहीं हे. श्रम तो हे पर क्रोध नहीं हे. क्योंकि क्रोध भयो होतो तो यह लीला क्यों करते!

(आधुनिकदृष्टि और स्नेहदृष्टि)

हम एक बात बतायें, हमारे दादाजी, हम जब छोटे हते तब व्रजमें कोईके घरमें गये. जिनके घरमें जाके रुके उनके घरमें एक व्यक्ति प्लेन चलावेके लिये दिल्लीमें रेहतो हतो. जा दिन दादाजी पहोंचे वाई दिन वो व्यक्ति वहां आयो. दादाजीने वासु स्नेहवश यों ही पूछी कि "क्यों बेटा यहां नहीं रहे! दिल्ली रहे हे." तो वाने कही कि "यहां धूलवूल बहोत उड़े और कंटाला आवे हे, कौन यहां रेहनो पसन्द करे! मैं तो दिल्ली रहूं, साफ सुथरो तो हे." अब दादाजीने कही कि "अब या घरमें नहीं रेहनो, भागो यहांसु. व्रजकी रजकु धूल कहे!! तो अपने नहीं रेहनो." बड़े भाईने बहोत समझायो कि "नहीं नहीं वो दिल्लीमें प्लेन चलावे हे यासु रहे हे." दादाजीने कही कि "तेरी बाततो मोकूं समझमें आवे हे कि प्लेन चलायवेके लिये दिल्लीमें रहे हे, पर याने ये बात कही कि यहां धूलवूल उड़े या लिये दिल्लीमें रहे हे." सब सामान बांधबूंधके सुबह पहोंचे और शामको फिर वापिस निकल गये. व्रजरजकु धूल कहे!!! क्रोध आवे या लिये व्रजरज धूल लगे. स्नेह होतो होय तो धूल भी रज लगे हे बस अन्तर इतनो ही हे. अपनेकु व्रजरजमें कभी ऐसो भाव नहीं आवे कि "ये धूल हे." ये तो आधुनिकज्ञानकी आँखमें धूल होवे हे, नहीं तो ऐसी बुद्धि होवे. अपनेकुतो धूलमें भी व्रजरजकी बुद्धि होवे हे. क्योंकि अपनेकु वाके प्रति स्नेह हे, भक्ति हे. तो याई तरहसु प्रभुने अपने मुखपे जो रज धारण कर रखी हे, वामें प्रभुको स्नेह ही प्रकट हो रह्यो

हे, क्रोध प्रकट नहीं हो रह्यो हे. क्योंकि यदि क्रोध प्रकट होतो तो यमुनामें नहा आते, तालाब हते ही, अरे मुंहपे कहां रज लग गई करके मुंह धो लेते पर वा रजकूं अपने मुखारविन्दपे धारण करवेपे प्रभुको भी तत्सुख हे, परिश्रम हे तो सुख भी हे. परिश्रममें भी तो सुख तो हे ही ना! ऐसो तो नहीं हे कि सारो सुख परिश्रमके निवारणमें ही निहित हे. कछु सुख परिश्रममें निहित हे और कछु सुख परिश्रमके निवारणमें निहित हे. वा बातकूं भी तो समझनी चइये ना. आदमी कसरत करे तो परिश्रम हे कि नहीं? कसरत करवेपे आपकु पता चले कि यामें सुख हे. सुख खाली पड़े रेहवेमें ही नहीं हे कि ''पंछी करे ना चाकरी अजगर करे ना काम. दास मलूका कह गये सबके दाता राम'' पडे रेहवेमें ही सुख हे. परिश्रममें भी कुछ सुख हे. कछु परिश्रमके निवारणमें भी सुख हे. सुख सर्वत्र हे. या तरहसु प्रभुकु गोचारणमें जो परिश्रम भयो हे, वामें भी कछु सुख हे, वा बातकी निशानीके रूपमें प्रभुने वाको धोई नहीं, ये बात केह रहे हें.

जैसे कोईकु भोजन करानो होय तो परोसवेको एक पात्र होय. ऐसो ये जो प्रभुको मुखारविन्द हे ये शृंगारभावको पात्र हे. या मुखारविन्दरूपी पात्रसु सबके मनरूपी कटोरामें प्रभु शृंगार भाव भरें. जैसे करछी होवे या बड़े बड़े भोज होंवे तो चौगड़ा दुगड़ा सु सब्जी वगैरह परोसी जाये, तो या तरीकेको प्रभुको मुखारविन्द शृंगारभावकु परोसवेको चौगड़ा हे, कमण्डलु हे. ये कमण्डलु प्रभुको मुखारविन्द शृंगारभाव परोसवेको मनरूपी पातलनूपे एक कमण्डलु हे. या लिये प्रभुने अपने मुखारविन्दकी वो शोभा यमुनाजलमें धोके मिटा नहीं दी, वाकी पात्रता बनाये रखी और वा तरहको मुखारविन्द रखवेको निर्वाह प्रभुने कियो हे.

अतो भोगार्थं दत्त इति भोग: करणीय:. अयं काम आगन्तुक

इति न अस्य अन्येन पूरणं भवति. ये प्रभुने अपने मुखारविन्दसु व्रजभक्तन्कूं जो कामभाव या शृंगारभाव परोस्यो हे, याको जो भोग हे सिवाय जब तक प्रभु स्वयं न आवें तब तक कर नहीं सके हें, याको आस्वादन कर नहीं सकें हें, ये तो प्रभु करें तब ही हो सके हे. याके लिये कह्यो **दिनपरिक्षये... स्मरं वीर यच्छसि.**॥१२॥

----*----

॥श्लोक : १३॥

उत्थानिका :

ततः उत्तमा अनन्यपूर्वावत् स्तनयोः चरणधारणं प्रार्थयन्ति प्रणत इति. अतएव न पौनरुक्त्यं परं पूर्वापेक्षया अत्र चरणमाहात्म्यम् अधिकं - गुणाधायकम् एतत् पूर्वन्तु दोषनिवर्तकम्.

विवरणम् :

कुमारिकानृकु अहर्निशि भगवान्के संयोगानुभवके कारण, दिन इतनो बुरो नहीं लगे. श्रुतिरूपा गोपिकानकूं ये स्थितप्रज्ञ जैसो भाव हे. **"यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशाः पश्यतो मुनेः"** (भग.गीता २।६९) वालो भाव हे. जामें दुनियां जागे वामें उनकूं सबसु ज्यादा कंटाला आवे हे. फिर सो जायें. यद्यपि कैसे सोती होंयगी! आँख मींचके सोती होंयगी, ये जरूरी नहीं हे. ये ध्यानकी निद्रामें सोई रहें. अहर्निशि इनको ध्यान, सारे दिन इनको ध्यान प्रभुकी वनमें केसे प्रकारकी लीलायें होंयगी! वामें लग्यो रहे. तो वनलीलाको अनुभव इनकु होवे नहीं. सब अन्यपूर्वा हें. विवाहिता हें. घरके कामकाजमें लगी रहें. यासु दिन कैसे बीते? या बातकी इनकी बड़ी भारी महत्त्वाकांक्षा है कि दिन कथञ्चित बीते. दरअसल बात कुमारिकान्ने छेड़ी थी. **'चलसि यद् व्रजात्... कान्त गच्छति'**. व्रजसु चले हे और हमकूं खेद होवे हे. ये वाने बात छेड़ी थी. वाने सुबहकी प्रातःकालकी बात छेड़ी थी और वाकु दुःख या बातको नहीं हतो कि वनमें क्यों जावें हें. वाकु दुःख या बातको हतो कि ऐसे शिलतृणाङ्कुरन्पे अपने चरण स्थापित क्यों करे हे. कमल कोमल चरण शिलतृणाङ्कुरन्पे क्यों स्थापित करे हे! वाकु रोष या बातको हे कि वो स्थापित

करवेके लिये प्रभु चले तबसु वाको दुःख शुरु होवे हे. ये बात छेड़ी तो या श्रुतिरूपा गोपिकाकूं याद आई कि प्रभु जावे हे वाको तो खेद होवे ही हे, जावे तबसु तीव्र विप्रयोगके कारण ध्यानात्मिका स्थिति तो प्राप्त हो ही जाय, सो ध्यान करती रहे.

आचार्यचरण कहें हें **"अन्तर्निष्ठा विरहो वा तासाम् नान्या काचिद् अवस्था"** (सुबो.१०।४४/४७।५८) कभी अन्तर्निष्ठा होवे, मने कभी हृदयपे ध्यान दें, तो भगवल्लीलाके दर्शन होवें, कभी आँखें बाहरी वस्तुनूपे चली जायें तो फिर विप्रयोग होवे लग जाये. जितनी देर हृदयपे ध्यान जावे उतनी देर, मने जबतक ध्यानमें वो डुबकी लगी रहे तबतक तो विस्मृतिसी हो जाये. विस्मृति तो नहीं होवे पर विस्मृतिसी हो जाये कछु. क्योंकि ध्यान लग जाये. वहां ध्यानमें वनमें क्या क्या लीलायें चलती होंयगी? या बातमें मन लग जाये. फिर आँख, कान कभी बाहरी बातनूपे चल्यो जाये और बाहरी बातनूमें जावेके बाद जब भगवद्दर्शन नहीं होंय, तब भगवान् अपने व्रजमें नहीं हें या बातको बोध होय तब वाकु तीव्र विरह होवे लग जाये, ताप होवे लग जाये. तब दिनके प्रति पाछो द्वेष शुरु होवे और वा दिनके परिक्षयकी कामना करती रहे. संस्कृतमें **'परिक्षय'**को मतलब होवे हे **'परितः क्षय'** क्षय तो सामान्य बात हे पर परिक्षयको मतलब बिल्कुल खतम हो जानो. अब इतनो स्ट्रोंगवर्ड संध्याके लिये प्रयोग करनो आवश्यक नहीं हे कि दिनको परितः क्षय होवे. पर क्योंकि याके हृदयकी भावना हे कि दिन पूरी तरह खतम हो जाये, या लिये वाके मुंहसु निकल गयो, वाने ये बात बताई. शामकूं जा बखत ठाकुरजी व्रजकी तरफ लौटें, यद्यपि प्रभुके लौटवेको समय भयो, प्रभु लौटें, इतनेसु याकु संतोष नहीं हो जाये हे. लौटें वाको

आनन्द तो होवे, उल्लास तो आवे पर उल्लास एक दूसरी चीज हे और संतोष एक दूसरी चीज हे. संतोष याकु होवे नहीं. क्योंकि संध्याकालीन जो कुछ, संध्याके संधिकालीन होवेके कारण ही अपने आपमें दिनको आधो भाग तो वो रखे ही हे.

संधि मने क्या? संध्या क्यों कहें? दिन और रात्रिकी जहां संधि. मने आधो वाको रंग दिन जैसो और आधो रंग वाको रात जैसो. शामकूं जैसे संध्या होवे ऐसे प्रात:कालमें उषा होवे हे. उषाको भी ऐसो ही स्वरूप, आधो रंग वाको रात्रिके जैसो और आधो रंग दिनके जैसो. वो काल कितनी देर? तारायें अस्त हो जायें और सूर्योदय नहीं होवे, उतनो काल उषाकाल केहवावे. वाके बाद प्रात: हो जाये. ऐसे ही संध्याको कितनो? सूर्य अस्त हो जाये और तारान्को उदय नहीं होवे, वो संध्याकाल. या संध्याकालमें संधि होवेके कारण ये संधिकाल हे. याके लिये दिनकी भी थोड़ी छाया रहे हे. दिनको भी आभास रहे हे. रात्रिको भी थोड़ो आभास रहे हे. याके लिये उल्लास तो होवे पर संतोष नहीं होवे. पर वो आवें गायन्कु चराते भये, एक एक भक्त, जाकी जासु दर्शन करवेकी रुचि, जाको जहांसु दर्शन करवेको अवसर, ऐसे रुचि और अवसर के अनुरूप भक्तें प्रतीक्षा करते रहें. जो जा व्याजसु दर्शन कर सके, वा व्याजसु दर्शन करवेके लिये, व्याज मने बहाना, भक्तें दर्शन करें. राजसलीलामें रुचि इनके राजसस्वभावके अनुरूप अधिक हे यासु वो लीला ही याकूं सबसु पेहले स्मरणमें आवे. वनकी लीला इतनी स्मरण नहीं आवे. अब राजसके अन्तर्गत भी याको जो राजसभाव वह तामसभावसु मिश्रित हे. ऐसे थोड़ो तामसभावके अनुरूप थोड़ी सुनावा सुनाई प्रभुकुं कर दे हे कि तैंने कामभावकु

जगायो, तैंने याको संधुक्षित कियो. अब तू छिप्यो भयो रहे अच्छे वीर हो तुम! कभी इन राजसभावनूके कारण जैसे प्रभु पुनः पुनः देखके या कामको संधुक्षित करें, या स्मरको संधुक्षित करें, भड़कावें, पर ये पुनः पुनः देख तो नहीं पावे हे, हर बखत ऐसो अवसर मिलनो मुश्किल हे कि जा बखत प्रभु मुड़के देखें तो वा बखत ये देख पावे.

भक्तें वाको चित्रण करें **"जर जाओरी लाज मेरे ऐसे कौन काज आवे कमलनयन नीके देखन नहीं दीने. वनते आवत मारगमें भेंट भई सकुच रही री इन लोगन्के लीने. कोटिक यतन कर रहीरी निहारवेकूं अंचराकी ओट दे दे कोटि श्रम कीने. नन्ददास प्रभु प्यारी ता दिनातें मेरे नयना उनहीके अंग संग रंग रस भीने."** (नंददास).

तो जहां जहां इनने दर्शन दियो हे वाके पुण्यकूं और ये लज्जा गुरुजननूकी लाज, सखीजननूकी लाज वाको और बढ़ा दे हे और संधुक्षण ज्यादा हो जाये. विकलता और ज्यादा हो जाये. क्योंकि हर बखत तो देख नहीं सकें ना! ऐसे संधुक्षित कामको जो पुनः पुनः दर्शनके कारण बढ़यो हे और या लज्जामें नहीं देख पावेके कारण, अतृप्तिके कारण जो बढ़यो हे, उन सबमें लज्जा यदि घीको काम करे, तो पुनः पुनः दर्शन वायुको काम करे. या तरहसु दोनों तरहसु भड़की भई लालसाके बाद जो छुप जाये, तो वीर तू कैसो वीर हे तू समझ जा. राजसतामसी कुमारिकाने याद दिवाई.

चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून् तो कथञ्चित् जितनी भी

श्रुतिरूपा गोपिकायें हें, उनकु वो बात मनमेंसु जावे नहीं हे आगे तक या बातकु ये गोपिकायें छोड़ेंगी नहीं. दो श्लोकनूमें जितने भी उपालम्भ हें वो या बातकु लेके ही हें और वाके पेहले राजसराजसी केह रही हे **''प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयम् आपदि. चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेषु अर्पय आधिहन्''.** प्रार्थनामें कुछ शब्द या प्रार्थनाके मूलभाव, मूल प्रार्थनाके स्वर एक जैसे हें. इतनो मानके या प्रार्थनाको एक मत मान लीजियो. ऐसी ही प्रार्थना कुमारिकानूने भी करी. चरणपङ्कजकी प्रार्थना चरणसु उपकारकी प्रार्थना इनने करी. ये सब प्रार्थनायें तो सामान्य हें क्योंकि उनने अपने भावसु करी, ये अपने भावसु करेंगी पर एक सामान्य बात हे. आदमी भोजन करवे बैठ्यो होय, एक गिलास जल पी लियो होय, गिलास खाली हो जाये, कहे कि जल दीजो. धूपमेंसु चलके आयो होय, घरमें आके बैठे और घरवालो पूछे कि ''क्या लाऊं'' और वो कहे कि ''एक गिलास जल लाइयो.'' प्रार्थना तो एक ही हे कि नहीं पर अन्तर कितनो? प्रार्थना तो सर्वथा एक हे. प्रार्थना तो एक गिलास जलकी ही प्रार्थना हे. शब्दमें कोई अन्तर नहीं हे. भावमें कोई अन्तर नहीं हे पर वाकी भूमिकामें कितनो अन्तर हे? एक तो खावेके लिये बैठ्यो भोजनके और एक गिलास जल पी लियो, अब कोई चीज नमकीन हे या तीखी हे वाके अनुरूप जल और मांगे एक गिलास और एक धूपसु चलके आयो होय, तृषार्त होय, सर्वथा घरमें आके जब घरवालो जब पूछे वासु कि ''का लाऊं आपके लिये, चाय कॉफी लाऊं?'' तो वो कहे ''चाय कॉफी नहीं एक गिलास जल लाओ.'' वो एक गिलास जलकी प्रार्थनामें कितनो अन्तर हे? इनने दिनभरसु सूर्यको ताप सहन कियो हे. उनने तो सहन नहीं कियो. उनकूं तो अभी विरह ताप

भयो हे. इनकु तो दिनभरसु ताप रह्यो. रात्रिकु फिर ताप हो जाये. मने घरमें जायें, घरवालो पूछे कि ''तुम्हारे लिये क्या लाऊं? चाय कॉफी लाऊं '' और वो कहे कि ''चाय कॉफी नहीं चइये, एक गिलास जल दे दो.'' अब पानीकी कमीके कारण वो कहे कि ''जल तो नहीं हे'' बिचारेकी क्या स्थिति हो जाये! ऐसी स्थितिमें ये प्रार्थना कर रही हें **प्रणतकामदं पद्मजार्चितम्.... स्तनेषु अर्पय आधिहन्.**

(चरणकी दोषनिवर्तकता और गुणाधायकता)

ततः उत्तमा अनन्यपूर्वावत् स्तनयोः चरणधारणं प्रार्थयन्ति प्रणत...इति. अतएव न पौनरुक्त्यं.. यामें पुनरुक्ति मत समझियो ऐसो आचार्यचरण केह रहे हें, क्योंकि वाने जो प्रार्थना करी थी चरणकी वो चरणकी प्रार्थना ऐसी हती कि एकाध गिलास जल पी लियो हे, अब कोई चीज तीखी लगी या खारी लगी तो एक गिलास और जल पीनो हे. या बिचारीकी ऐसी स्थिति नहीं हे. या बिचारीकी स्थिति ऐसी हे कि दिन भर तपी हे. तपके आई हे कथञ्चित् और वा बखत एक गिलास जल तृषार्तकु न मिलतो होय तो कैसी स्थिति होयगी! शब्द तो पुनरुक्तिके लगेगें पर प्यासमें बहोत भेद हे. प्यासको भेद समझोगे तब समझमें आयेगो कि ये पुनः उक्ति क्यों नहीं हे? **परं पूर्वापेक्षया अत्र चरणमाहात्म्यम् अधिकम्.** वाने जो कछु चरणको माहात्म्य बतायो वो तो थोड़ी अघाई भई हती ना. इकोनोमिक्स्में याको डिमिनिशिंग यूटिलिटी कहें. प्रभुके चरणमें तो डिमिनिशिंग यूटिलिटी होवे नहीं, इन्क्रीसिंग यूटिलिटी ही होवे हे पर भक्तके हृदयकी तो अपनी अपनी सामर्थ्य हे ना. ऐसी बात तो अपन् केह नहीं सकें डिमिनिशिंग यूटिलिटीकी बात, क्योंकि डिमिनिश होवे ही नहीं,

भगवत्चरणारविन्दको जो सौख्य हे, सुख हे पर भूखमें तो अन्तर हो ही सके हे ना! भगवत्चरणारविन्दमें डिमिनिशिंग यूटिलिटी नहीं आवे पर भगवत्चरणारविन्दकी प्यासमें तो अन्तर हो सके हे ना. कोईकी तीव्र हे, कोईकी तीव्रतर होवे हे और कोईकी तीव्रतम हो सके. याकी बहोत तीव्रतम हे क्योंकि दिनमें भी याने ताप ही देख्यो हे. शामको भी याकु ताप दीख रह्यो हे. याके लिये चरणको माहात्म्य याके लिये ज्यादा हे. याकु यूटिलिटी डिमिनिश नहीं हो रही हे.

गुणाधायकम् एतत्, पूर्वन्तु दोषनिवर्तकम्. पूर्वमें तो दोषनिवर्तक हे, यहां गुणाधायकता चरणकी बताई जा रही हे. भगवच्चरणारविन्दके स्थापनसु कैसे गुणको आधान होयगो? कैसे गुण आयेंगे? वहां जो हतो, वा प्रार्थनामें भगवत्चरणारविन्दके स्थापनसु दोषनिवर्तन कैसे होंयगे ऐसी प्रार्थना हती. तू अपने चरण हमपे स्थापित करे तो कैसे ढंगसु हमारे दोष निवृत्त हो जायेंगे, ये प्रार्थनापे जोर हतो. क्योंकि खायो और एकाध गिलास जल तो पियो ही हतो. एकाध मिर्ची लगी या कोई तली भई चीज खाई तो वाके बाद फिर थोड़ीसी आवश्यकता हे और उतनो जो दोष पैदा भयो हे उतनो ही निवृत्त करनो हे. वहां प्यासको सवाल नहीं हे पर खावेमें जो तीखो या तल्यो आ गयो हे, वाके कारण थोड़ोसो जो दोष आयो हे, वो दोष निवर्तन करवेके लिये वो जल पान करनो चाहे हे. पर याको तो पूरी प्यास हे ना. ये दोष निवर्तनके रूपमें प्रार्थना नहीं कर रही हे. ये तो गुणाधानके रूपमें प्रार्थना कर रही हे क्योंकि याकु प्रथम गिलास पीनो हे.

श्लोक :

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयम् आपदि ।।

चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेषु अर्पयाधिहन्।।१३।।

सुबोधिनी :

हे रमण! रतिकर्तः, नः स्तनेषु चरणपंकजम् अर्पय. प्रयोजनम् आहुः आधिहन् इति आर्तिहन् इति वा, हृदयतापः चिन्ता च निवारणीया. दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति; अस्माभिः हृदये स्थापितं न बहिः समायाति अतः त्वया बहिः स्थापनीयम्. चरणपंकजस्यापि भगवतइव षड्गुणान् आह, तत्र प्रथमम् ऐश्वर्यं प्रणतकामदम् इति. प्र कर्षेण ये नताः अनन्यशरणाः तेषां कामदम् अभिलषितार्थदातृ. ईश्वरएव तथाविधो भवति. तत्रत्यः कामः स्तब्धैः गृहीतुं न शक्यतइति प्रणतत्वम् उक्तम्. पद्मजार्चितम् इति धर्मरूपता निरूपिता, ब्रह्मप्रार्थनयैव अत्र आगतम् इति. कीर्तिरूपताम् आह धरणिमण्डनम् इति, धरण्याः मण्डनम् अलंकरणरूपं श्रीरूपं वा. आपदि ध्येयं श्रीरूपं कीर्तिरूपं वा. पंकजसाम्यात् स्वरूपोत्कर्षः उक्तः. शन्तमं कल्याणतमं ज्ञानरूपम्. आर्तिहन्! इति सम्बोधनात् ते चरणपंकजम् इति सम्बन्धनिरूपणाद् वैराग्ययुक्तं च. रमण इति इष्टप्रापकः. आर्तिहन्! इति, अनिष्टनिवारकः.

अथवा यल्लोके पञ्चविधम् उपकारं करोति तदस्मासु एकमेव करोतु इति प्रार्थ्यते. प्रणतासु कामं ददाति, तत् पूर्वम् उक्तं "मनसि न स्मरं वीर! यच्छसि" इति. प्र कर्षेषु नम्रेषु वा कामं द्यति खण्डयति. पद्मजेन पद्मजया वा अर्चितम् ऐश्वर्यार्थं कामार्थं वा पद्मजैः अर्चितम् तत्तुल्यं वा, अन्यथा तानि चरणपंकजजन्म कथं प्राप्नुयुः? धरण्यपि स्त्री अनलंकृता न भुज्यतइति तस्यां पदस्थापनम्. भगवदपेक्षयापि चरणो महान्, आपदि ध्यानमात्रेणैव आपदं दूरीकरोतीति. यथा एतेषां सर्वोपकारकर्तृ तथा अस्माकमपि करोतु इति प्रार्थना. अनेन सर्वएव सुरतबन्धा आक्षिप्ताः।।१३।।

विवरणम् :

(आधिहन् और आर्तिहन्)

हे रमण रतिकर्तः, नः स्तनेषु चरणपंकजम् अर्पय. प्रयोजनम् आहुः आधिहन् इति. हमारेपे चरण स्थापित कर. क्योंकि जो हमारी आधि हें उनकूं हनन करवेवालो तो तू ही हे. जो अन्तरकी तकलीफ होवें हें वो 'आधि' केहवावें और जो बाहरकी तकलीफ होवें वो 'व्याधि' केहवावें. एक पाठ **'आर्तिहन्'** भी हे. तो हमारी जो आर्ति हे वाकु तू नहीं काटे, तू हृदयकी आर्तिको हनन नहीं करे तो वो कैसे मिटे! याही लिये अपने यहां, ठाकुरजीकी जो ये आरती करें वामें भी येही भाव हे. ये बात ध्यान रखियो. मर्यादामार्गमें जो आरती करें, सो तो देवकी पूजाके अंगसूं. (अपन् वहां गये हते तो देख्यो कि यों देव होंय तो यों देवके पास ही आरती कर दें.) हमकु तो भय होवे लग गयो कि ठाकुरजीके मुखारविन्दके इतने पास दिया कैसे ले जायो जाय! पर वो तो पूजाविधि हे. जहां कहो वहां दिया ले जायो जाय. अपने यहां तो इतने पास दिया ले जायो ही नहीं जाय. अपने यहां आरती दूरसूं होवे समीपसूं आरती नहीं होवे और वामें भी फिर ऐसो विवेक रखें कि शीतकालमें निजमन्दिरमें बिराजते होंय वा निजमन्दिरमें आरती होवे और उष्णकालमें निजमन्दिरमें बिराजते होंय वा रूमके बाहर निकलके आरती होवे. मने इतनो भी उष्णताको परिश्रम अपन् ठाकुरजीकु देनो नहीं चाहें. एक बात सच्ची हे कि प्रभुने अपनेकु इतनी देर दर्शन नहीं दिये, वाकी अपने हृदयमें आरती होनी चइये और जा बखत प्रभु दर्शन दें वा बखत वो आरती अपन् प्रभुपे वार दें. अब तेरे मुखारविन्दके दर्शन भये, तो आरती हमने अब वार दी और निवृत्त कर दी. तो अपने यहां आरतीको ये भाव हे.

(प्रणयावलोकन ही पुजन)

आरती अपने यहां पूजन तो हे ही पर पूजन भी **"पूजां**

दधुः विरचितां प्रणयावलोकैः'' (भाग.पुरा.१०।१८।११). अपने यहां प्रणयावलोकन ही प्रभुको पूजन हे, और कुछ पूजन नहीं हे; क्योंकि नेत्रनूकु कमलके पत्रकी तरह माने. भक्त जा बखत प्रभुके दर्शन स्नेहसूं करें तो अपने नेत्रकु भी प्रभु नेत्रकमल मानें. तो कहें कि मोकु एक कमलको पत्ता चढ़ायो. दोनों नेत्रनूसूं दर्शन करें तो प्रभुकु भी ये संतोष होय कि चलो मेरे भक्तनूने दो कमलके पत्र मोकूं चढ़ाये. तो प्रणयावलोकन ही अपने यहां पूजन मान्यो जाय हे. ''**पूजां दधुः विरचितां प्रणयावलोकैः**'' प्रणयावलोकन ही पूजन हे. वा न्यायसूं जो आरती हे वो भी कोई पूजनांग नहीं हे. वा अर्थमें तो पूजनांग हे पर आरती अपने यहां वारण हे. वारण या लिये कि जा बखत प्रभुके मुखारविन्दके दर्शन भये, तो जो इतनी देर दर्शन नहीं भये हते वाके कारण जो कुछ आरती भई, वो अपनूने मुखारविन्दके दर्शन होते ही प्रभुपे वार दी. आरतीको भी भाव समझनो चइये. क्रिया तो ठीक ही हे, क्रियामें तो ''क्रिया सर्वापि सैवात्र'' जो पूजामार्गमें क्रियायें हें, वो ही क्रियायें अपने यहां भी हें, पर ''क्रिया सर्वापि सैवात्र परं भावोहि भिद्यते'' क्रिया तो सब वो की वो ही हें पर उनके भाव भिन्न हो जायें. मने आज तो अपने ये चारों ओर बिजलीकी लाईट लग गई ना! तो अपनेकु समझमें नहीं आवे कि आरतीके कारण सुख क्या हे? प्राचीनकालमें जा बखत ठाकुरजी निजमन्दिरमें या गर्भगृहमें अन्दर बिराजे, वा बखत आरती होवे तब मुखारविन्दकी झांकी मिले. याही लिये आरतीको भी ऐसो नियम हतो कि प्रथम चरणकी आरती होवे, दीनतासूं शुरु होवे. तो प्रथम जा बखत दर्शन होवें, यद्यपि मनकी लालसा तो होवेकि मुखारविन्दके दर्शन पेहले कर लें पर थोड़ी दीनतासूं बात आगे बढ़े तो वामें सुख आवे.

अंग्रेजनूमें एक रिवाज हे कि जब भोजन करें तब और सब स्वाद चख लें और मीठो छोड़ दें, वो अन्तमें चखें. अपने यहां तो उतावल हो जाये तो लड्डू पेहले ही खा जायें. अंग्रेजनूमें या

बातको नियम हे कि कोई भी मिठाई उनके यहां धरें तो वो पेहले नहीं खावें. सब चीजनूकु खावेके बाद छेल्ले वो मीठो खावें. ऐसो ही केरलमें भी होवे. तो याही लिये मुखारविन्दके दर्शनकी जो मिठास हे, वो सबसूं छेल्ले आवे. बाकी तो चरणारविन्दसूं ही आरतीको वारण शुरु होवे. प्रथम जो आरतीके आंटायें हें वो चरणके लिये जायें, फिर जानुके लिये जायें, फिर उदरके लिये जायें, फिर वक्षके लिये जायें, तब मुख आवे. ऐसे ही तुरत मुख नहीं आ जाये पर एकाएक मुख तक पहोंच जानो थोड़ो अनौचित्य हे. अधिकारके अनुरूप जानो चइये, क्योंकि छलांग मारें तो फिसल भी जायें हें. सो छलांग मारवेके पेहले देख लेनो चइये कि अपन् पहोंच सकें, इतनी उंचाई हे कि नहीं? जो अधिक होय तो शनैः शनैः जानो अच्छो हे, पहोंचेंगे तो सही. छलांग मारवेपे तो गिरेंगे. फायदा क्या होयगो! याके लिये मुखारविन्दको माधुर्य पेहले ही ले लोगे तो फिर स्वादकी उत्तरोत्तर गतिको मजा क्या आयेगो? तो वा दृष्टिसूं भी चरणारविन्दमें जो दैन्यको स्वरूप हे उनपे आरतीको वारण कर लो और फिर उत्तरोत्तर मुखारविन्द तक पहोंचो तो आरती वारणको भी कुछ स्वाद हे. ये आरती प्रभुकी आरतीको निवारण कर सके. वाके लिये कहें 'आर्तिहन्'. आर्तिकु दूर करवेवाले हो.

हृदयतापः चिन्ता च निवारणीया. दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति; अस्माभिः हृदये स्थापितं न बहिः समायाति अतः त्वया बहिः स्थापनीयम्. आर्तिहन तो तुम हो. तुम हमारी आरती दूर करो तो हमारी आरती दूर हो सके हे. बाकी जो प्रभु आरती दूर नहीं करें, तो भक्तकी आरती कैसे दूर हो सके? क्योंकि भक्तकी आरती भगवद्विषयणी आरती हे. लौकिक आरती तो हे ही नहीं. लौकिक दृष्टिसूं आर्त होय तोभी पुष्टिभक्त तो भगवान्के पास रोवे नहीं जायेगो. "**आर्तो अर्थार्थी जिज्ञासु ज्ञानी च भरतर्षभ!**" (भग.गीता ७।१६) में जो आर्त भक्त हे, वो पुष्टिभक्त नहीं हे. यदि पुष्टिभक्तके अर्थमें आर्त लेनो

हे वाको, तो भगवत्कामनासूं भगवल्लालसासूं जो आर्त हो गयो हे, वो ही भक्त हे ये यहां लेनो चइये. ये भगवल्लालसासूं भक्त हें, लौकिक कामनासूं आर्त भक्त नहीं हें. या लिये ये **आर्तिहन्** प्रभुकु कहें हें. दिनभर प्रभुको दर्शन भयो नहीं, जा दिनके परिक्षीण होवेपर प्रभुके दर्शन होवेकी कामना हती, वो दिन भी परिक्षीण हो गयो, प्रभुके द्वारा आमन्त्रित भले नहीं सही, आमन्त्रण भले नहीं भेज्यो पर आ गये तो इतनो व्यवहार तो रखे कि कहे भले आये.

आचार्यचरण एक बहोत सुन्दर वचन कहें हें कि जो भी घर आवे सो अतिथि. वामें कहें कि जो ज्ञानी और वैरागी होंय, जो ज्ञानमार्गीय और विरक्त हें, उनके लिये हत्यारा भी घरमें आयो होय तो अतिथिके बराबर हे. ऐसी आचार्यचरण आज्ञा करें हें. जो हत्यारो घातक भी होय, वो घरमें आ गयो तो वो अतिथिके बराबर हो जाये जो ज्ञानी अथवा विरक्त होय तो. ज्ञानी और विरक्त न होय तो घातक जो होय वो भले अतिथिके बराबर नहीं होय और घातक नहीं होय पर भले दुश्मन होय और घरमें आयो होय तो अतिथिके बराबर ही होवे. गृहस्थके यहां वाको सत्कार तो होवे ही हे. न आयो होय तो दुश्मनीको कारण तो हे ही पर घरमें आयो पर घरमें आयो तो वो अतिथिके बराबर हे और आतिथ्य वाको होवे ही हे. ज्ञानी और विरक्त होये तो उनकूं तो घातक और हत्यारो भी होय तो उनकूं आतिथ्य करनो चइये.

अपनेकु पता हे जैसे भीष्मके पास सारेके सारे पाण्डव पूछवे गये कि "महाराज तुम मरोगे कैसे, ये बता दो? हम तो लड़ते लड़ते थक गये." तो उनने कही कि तुम मेरे यहां अतिथि बनके पूछवे आये हो, याचक बनके मांगवे आये हो तो तुमकु मैं निराश नहीं कर सकूं. लो मैं तुमकु रहस्य बता दूं कि मैं कैसे मरूंगो. तो घातकको भी क्योंकि ज्ञानी हतो और भीषण ज्ञानी हतो, साधारण

ज्ञानी नहीं हतो, भीषण विरक्त हतो, लोग भय खावें ऐसो जाको वैराग्य हतो. या लिये अपने मरणको उपाय भी पूछवे आये तो उनकूं अतिथि मानके, अतिथिको जो अपेक्षित होय और वाको सत्कार और उपकार करनो और उनकूं अपेक्षित रहस्य बता दियो कि ऐसे ढंगसूं मारियो सो मैं मर जाऊंगो. क्योंकि विरक्त हतो, ज्ञानी हतो. तो वा न्यायसूं कहे हें कि भले हम अनामन्त्रित आये, भले हमकूं आमन्त्रण नहीं हतो, पर आये तो भी अतिथि तो हें ना! अतिथि माने क्या समझे! जाके आवेकी तिथि निश्चित नहीं होय. जाके आवेकी तिथि निश्चित होय, वो 'अतिथि' नहीं केहवावे क्योंकी वाकी तिथि तो निश्चित हे ही कि वा तिथिकु आयेगो. अतिथिको मतलब कि जो निश्चित न होय ऐसी तिथिके दिन आ जाये और वाको सत्कार करे, तब तो सच्चो 'गृहस्थ' केहवावे. तो ये कहे हे कि भले हम कैसे भी हें, अनामन्त्रित आईं हें पर अतिथि तो हें ना! हमकु आमन्त्रण, हमकुं तिथि नहीं दी थी, "**मयेमा रंस्यथ क्षपाः**" (भाग.पुरा.१०।२२।२७) इन शरदकालीन रात्रिनूकी तिथिको आमन्त्रण हमकु नहीं दियो ह्तो! तो चलो अनामन्त्रित मानो पर अतिथि तो मानो. अतिथि ही नहीं मानो ये क्या मुश्किल हे? अतिथि मानो तो कमसूं कम हमारो अपेक्षित सत्कार तो करो! इतनो तो सत्कार कर.

(हृदयतापः चिन्ता च निवारणीया)

गोपीजन तो कहें हें कि दिन भर तापसूं तपी हें. इतनो ही नहीं आन्तर बाह्य उभयविध तापसूं तपी हें. उभयविध तापसूं हम तपी हें, **हृदयतापः चिन्ता च निवारणीया** न केवल हृदयमें ताप हे पर चिन्ता भी हो रही हे कि दिन भर तो हमने या आशामें बितायो कि चलो बीत जायेगो पर या रात्रिमें भी यदि हमकु यों ही रहे, चरण नहीं मिले, तो चिन्ता होवे हे कि अब क्या होयगो? अब कौनसो समय लानो? तो कहें हें कि ज्ञानमार्गके तरहसूं भगवान्‌के चरणारविन्दको ध्यान धरो. इतनी यदि चरणारविन्दकी आसक्ति हे तो

चरणारविन्दको ध्यान धरो. तो पेहले भी वाने कही **ध्यानमंगलम्** भगवान्‌के चरणारविन्द ध्यानमंगल हें. तो ध्यानमंगल चरणारविन्दको तुम ध्यान धरोगे तो तुम्हारो मंगल हो जायेगो. तो कोई औरकु ऐसे मूरख बनायो जा सके हे पर ये तो श्रुतिरूपा हें ना! इनकु प्रभुके सारे रहस्य पता हें, वा लिये कहे हें कि नहीं नहीं, **अस्माभिः हृदये स्थापितम्** ये चरणारविन्द तो हमारे हृदयमें कबसूं स्थापित हें. कबसूं इनकु हमने कैद कर रखे हें. ये चरणारविन्द हृदयमें तो स्थापित हें ही या लिये तो दुःखी हें. तो कहें अरे हृदयमें चरणारविन्द स्थापित हें तो फिर क्या दुःख रेह गयो! मूलतः या लिये दुःखी हें कि उनके हृदयमें भगवत्चरणारविन्दको ध्यान स्थिर नहीं रहे. प्राणायाम करें, शीर्षासन करें, ऊर्ध्वासन करें, हलासन करें, पचास ढंगके यम नियम ध्यान धारणा सब करें, क्यों करें? क्योंकि हृदयमें चरणारविन्द पूरी तरहसूं स्थिर नहीं हो पावें. तो यों कहें कि जिनकु लौकिक ताप, लौकिक चिन्ता दूर करनी हे वो ये सब कष्ट करें. ये तो कहें कि **''काहेको देह दमत साधन करि मूरख जन विद्यमान आनन्द तजि चलत क्यों अपाथे''** (हरिरायजी) हमारे सामने तू प्रकट हो गयो तो अपथपे हम क्यों जायें! हम न तो शीर्षासन करें, न हम प्राणायाम करें, हमने तो बिना प्राणायामके हृदयमें स्थापित कर रख्यो हे, हमकु प्राणसूं तेरे चरणनूकु अपने हृदयमें दबाके रखनो नहीं पड़े. हवाको प्रेशर डालो तो चीज दबी रहे ना! जलपे हवाको प्रेशर डालो तो जल वहां दब्यो रहे. तो हमने हृदयमें जो तेरे चरणारविन्द पधराये हें, वाकु प्राणसूं दबाके हम नहीं रोकेंगी. वो तो स्वतः ही रुके भये हें, बल्कि प्राण उनपे टिके भये हें जिनके हृदयमें चरणारविन्द स्थापित हें. नहीं तो हृदयमें जो चरणारविन्द स्थापित नहीं होते तो प्राण तो कबके निकल जाते.

''बावरी व्हे जात बार बार कहि वेदनको बिलख बिलख जो विहारस्थल रोती ना. पीर उठ ते जियरो हमारो टूक टूक होत

ध्याई प्राणनाथ जो कसक निज खोती ना. हरिचन्द प्यारेके पधारे परदेश हुते नैन नसि जाते जो सपनसंग सोती ना. तन जर जातो जो ना असुंआ ढरत आली प्राण कढ़ि जाते जो प्रतीति उर होती ना'' (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र). जो प्रतीति हृदयमें नहीं होती. चरणारविन्दकी अनवरत हृदयपे प्रतीति कायम हे. हमकु साधनन्सूं नहीं साधनी पड़े हे. हमारे द्वारा दुनियां साधे हे. हमने जैसे चरणारविन्दको निरूपण कियो वा निरूपणकु लेके दुनियां साधे हे कि कैसे चरणारविन्द हृदयमें होनो चइये. हमने बतायो **''सञ्चिन्तयेद् भगवतः चरणारविन्दं वज्राङ्कुश-ध्वज-सरोरुह-लाञ्छनाढ्यम् उत्तुङ्गरक्तविलसद् नखचक्रवाल-ज्योत्स्नाभिराहत-महद्-हृदयान्धकारम्''** (भाग.पुरा.३।२८।२१). ये तो हमने बतायो. तो बोले अरे जब दवा तुमने बताई तब क्यों बीमार! जब दवा जानो फिर क्यों बीमार! तो एक कारण हे. जो आदमी ज्यादा दवा खावे ना! वाके रोग ज्यादा कोम्प्लीकेटेड हो जायें. जो कम दवा खावे वाके रोग कम कोम्प्लीकेटेड होवें हें. एकाध दवाईसूं वाको रोग दूर हो जाये. अनवरत आप दवा खाते रहो, जैसे एलोपेथीमें तो बहोत होवे हे.

एक सामान्य बात बताऊं. मन्दाग्निके लिये आयुर्वेदमें पूछे जो तो क्या कहें, थोड़ो अदरक, नींबू निचोड़के खा लियो करो. मन्दाग्नि दूर हो जायेगी. अब आप रोज पाव भर अदरक खाते होओ तो! वाके बाद मन्दाग्नि पनपे तब! अब थोड़ेसे अदरकके रससूं वो मन्दाग्नि दूर नहीं होयगी. क्योंकि उतनी दवा तो आप खा ही रहे हो. अब वो मन्दाग्नि आयुर्वेदके या उपायसूं थोड़े ही दूर होयगी. वाकी दवा कुछ ज्यादा पावरवाली चइये. क्योंकि उतनी तो वाकी रोजकी खुराक हे जितनो वैद्यराज बतावे. भई एक चमचा अदरकको रस पी जइयो, अब एक चमचा अदरकके रस जितनो अदरक अपनी रोजकी खुराकमें रख लो वाके बाद भी थोड़े दिनोंमें मन्दाग्नि हो सके हे. अब वो मन्दाग्नि एक चमचा अदरकके रससूं थोड़े ही

ठीक होयगी. उतनी दवा तो वाको पचे हे. अब वो जिनकु दवा पचे हे उनके लिये तो जरा पावरफुल डोज चइये ना! उनकूं हलके डोजसूं रोग ठीक नहीं होवे.

(योगीन्‌की और गोपीजनन्‌की समस्या)

या लिये हृदयमें पधरायवेकी बात तो हमकु पच गई हे. अब वो सब प्रोब्लम योगीन्‌की हे. उनके मनमें ये प्रोब्लम हे कि हृदयमें कैसे स्थिर करनो? उनको हृदय यहां वहां भटकतो फिरे, एकाध अवसर आ जाये तो साधनासूं हृदय भटक जाये. भगवान्‌के चरणको ध्यान लगाके मने प्राणायाम करके, अन्न छोड़के, जल छोड़के, फलाहार करके, अनलाहार करके, बड़े बड़े विचित्र आसनें जमाके बैठें, पर एकाध अवसर आवेपे उनको मन अपने मार्गसूं भटक जाये, लिंक टूट जाये. यहां ऐसी प्रोब्लम नहीं हे. हृदयमें पधरायवेकी जो बात हती उतनो डोज़ तो हमने पचा लियो हे क्यो जो उतनी तो हमारी खुराक हे जासूं हम जीवें हें. इतनो अदरक तो हम रोज खावें तो हम जीयें. अब मन्दाग्निकी बीमारी भई हे अब कैसे करनो! अब वैद्यराज परेशान कि जितनो डोज लिख्यो थो कि एक चमचा अदरक रोज पीनो तो मन्दाग्नि दूर हो जाये; वो तो इनके रोजकी खुराकमें ही हे. अब कौनसी दवाई बतानी! तो कहें हें कि हृदयको ताप तो हमने **अस्माभिः हृदये स्थापितं** भगवत्चरणारविन्द हृदयमें स्थापित कर ही रख्यो हे. हमकु तकलीफ ये हे कि **न बहिः समायाति अतः त्वया बहिः स्थापनीयम्**. हृदयमें स्थापित चरण बाहर कैसे आवें? ये हमारी तकलीफ हे. बाहर आ जायें तो हमारो रोग दूर हो जाये. बाहर नहीं आ रह्यो हे याके लिये हमकु आर्ति हो रही हे. हृदयमें पधरायो भयो चरण यदि बाहर आ जाये, तो हमारी आर्ति दूर हो जाये. बाहर नहीं आ रह्यो हे, ये हमकु तकलीफ हे. अब तू चाहे तो हमारे हृदयमें जो चरण पधराके हमने रख्यो हे वाकु बाहर स्थापित कर सके हे. इतनी हमारी मांग हे, ज्यादा

कछु नहीं हे.

(दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति)

हृदयताप: चिन्ता च निवारणीया. दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति. ये बड़ो सुन्दर पद हे यापे ध्यान दीजियो. ऐसे कह्यो जाये कि लौकिक उपाय जितने हें वो दृष्टोपकारी होवें. अलौकिक जितने उपाय होवें वो अदृष्टोपकारी होवें. जैसे स्नान करवेसूं स्वच्छता आयेगी, यह दृष्टोपकारी उपाय हे. नहाके देख लो, स्वच्छ जलसूं स्नान करो तो शरीर स्वच्छ हो जाये. शरीरकी स्वच्छता जलके द्वारा कियो जातो दिखलाई देवेवालो, अनुभवमें आवेवालो उपाय हे, पर शरीर शुद्ध पवित्र हो जायेगो ये दृष्टोपकार नहीं हे अदृष्टोपकार हे.

जैसे किशनगढ़में हमकु बाम्भणिया एक बात बता रह्यो हतो. वाके साथ एक हरिजन क्लासमेट हतो. ये बाम्भणिया भी गांधीवादी और वो हरिजन भी गांधीवादी. दोनों जनें होस्टलमें रेहते थे. एक दिन क्या भयो कि पानीकी कमी हती. खाली लेट्रीन्में पानी आ रह्यो थो. ये बाम्भणिया ब्राह्मण प्लस गांधीवादी हतो. वो गांधीवादी प्लस हरिजन हतो. वाने कही कि "जल नहीं आ रह्यो हे तो लेट्रीन्मेंसूं जल लेके नहा लेंगे." अब बाम्भणिया गांधीवादी तो पक्को पर ब्राह्मण हतो, तो वाने कही कि "लेट्रीन्के जलसूं तो हम नहीं नहा सकें." वाने कही कि "शरीर ही तो साफ करनो हे." वाने कही "शरीर साफ करनो कि नहीं करनो पर हम लेट्रीन्मेंसूं जल लेके नहीं नहा सकें." तो हरिजन तो नहा लियो, क्योंकि दृष्टोपकारमें वाकी बुद्धि हे ना! शरीरकू साफ करनो, इतनी ही बुद्धि हे. वाकी शुद्ध करवेकी बुद्धि नहीं हे. याकी बुद्धि शास्त्रके आधारपे हे क्योंकि ब्राह्मणवंशमें हे. गांधीवादी भयो तो कहा भयो! वो ब्राह्मणत्वके संस्कार तो मनपेसूं गये नहीं. ब्राह्मणत्वके संस्कार मनपेसूं गये नहीं, याके लिये वाको शुद्धिको विचार हे, मने अदृष्टोपकारको विचार

हे. याकु वो कहें हें कि "नहीं भई, जैसे स्वच्छ जलसूं ही शरीर स्वच्छ होवे हे, वैसे शुद्ध जलसूं ही शुद्ध हो सके हे. अशुद्ध जलसूं शरीर शुद्ध नहीं हो सके हे." अशुद्ध जल भी स्वच्छ तो हो सके हे, स्वच्छता एक अलग चीज हे. जैसे एक होस्पिटल हे, स्वच्छ हो सके हे पर अपने यहां होस्पिटलकु शुद्ध नहीं मान्यो जाये, स्वच्छता एक दूसरी चीज हे, शुद्धता एक दूसरी चीज हे.

कुछ लोग क्या समझें कि शुद्धता माने स्वच्छता और स्वच्छता माने शुद्धता. ऐसे नहीं, दृष्टोपकार एक अलग चीज हे और अदृष्टोपकार एक अलग चीज हे. अब ये जो अदृष्टोपकार हे, मने भगवान्कूं अपने हृदयमें पधरायवेसूं सारे पाप दूर हो जायेंगे. अब पाप ही नहीं दीखें दुनियांमें तो पापकी निवृत्ति कैसे दीखेगी! सारे कष्ट, सारे क्लेश दूर हो जायेंगे पर पाप दीखते होंय तब ना! कोईके माथेपे लिख्यो तो होय नहीं कि ये पापी हे, न कोई पुण्यात्माके माथेपे लिख्यो रहे कि ये पुण्यात्मा हे. पाप और पुण्य ये तो अदृष्ट हें, दिखलाई नहीं दें ऐसी वस्तु हें, तो इनकी निवृत्ति या इनको संचय, उपचय भी नहीं दिखलाई दे. तो अदृष्टोपकार दिखलाई नहीं दे. भगवान्के चरण हृदयमें ध्यान धरवेसूं सारे पाप निवृत्त हो जायेंगे, ये कहां दिखलाई दे हे! निवृत्त भये कि नहीं भये पाप! क्षय भये कि नहीं भये! इतनो दिखलाई दे कि थोड़ी देर हृदयमें चरणको ध्यान धर्‌यो, उतनो तो दिखलाई दे पर वासूं पाप निवृत्त भये, ये तो दिखलाई नहीं दे. तो चरणकूं हृदयमें धरवेसूं जो ताप पाप क्लेश निवृत्त होवें हें, ये सब अदृष्टोपकार हें. ऐसे सब अदृष्टोपकारन्कू पचाके बैठी हें. या लिये कहें हें अदृष्टोपकार तो हम श्रुति गामकूं बतावें कि कैसे कैसे काम करवेसूं, कैसे कैसे नहावेसूं, अदृष्टोपकारसूं ठीक हो जाये. कैसे संध्या करवेसूं अदृष्टोपकार मन-वाणीको हो जाये. कैसे यज्ञ करवेसूं जीवको अदृष्टोपकार हो जाये. ये सारे अदृष्टोपकार तो हम गामकूं बतावे वाले हें. अब ये तू हमकु मत बता. हमकूं

तो अब वाकी जरूरत नहीं हे. हमकूं तो वासूं ऊपरकी ये आवश्यकता हे कि तू दृष्टोपकार बता तो काम चले. इतनो तो तू हमकु बता. याके लिये केह रहे हें कि **दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति** अदृष्टको तो हमकु सब पता हे. कैसे कैसे अदृष्टोपकार हो सके हें वो सब हम जाने हें. **अस्माभिः हृदये स्थापितं न बहिः समायाति.** या लिये हमने तेरे चरणन्कूं हृदयमें स्थापित कियो पर वो हृदयमें स्थापित किये भये चरण भी बाहर नहीं आवें हें. यासूं अब हमकूं ताप और चिन्ता हो रही हे. **अतः त्वया बहिः स्थापनीयम्.** तो तू वो क्यों नहीं करे! जो हमने तेरो चरण हृदयमें स्थापित कियो, वा चरणकू तू बाहर स्थापित कर ले, बस हमारी इतनी विनती हे.

(चरणपंकजके भी भगवान्के जैसे षड्गुण)

चरणपंकजस्यापि भगवतइव षडगुणान् आह अब चरणके स्थापनकी इतनी लालसा हे, तो चरणको कछु थोड़ो माहात्म्य बतानो चइये. याके लिये चरणको माहात्म्य बतावे हें. जैसे तेरे षड्गुण हें, ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ऐसे ही तेरे चरणमें भी छे गुण हें. अब वो चरणके एक एक गुणन्की स्तुति करे हे :

(प्रणतकामदम् = ऐश्वर्यम्)

तत्र प्रथम एश्वर्यं प्रणतकामदम् इति, प्रकर्षेण ये नताः अनन्यशरणाः तेषां कामदम् अभिलषितार्थदातृ. जो प्रणत हें, जो झुके भये हें, जो दीन हें, नत होनो एक दूसरी चीज हे और प्रणत होनो दूसरी चीज हे. झुकनो और प्रकृष्ट रूपसूं नत होनो झुकनो . अच्छी तरह झुकवेको मतलब क्या? **अनन्यशरणाः** दूसरेकी शरण नहीं. अनन्य शरण होवेको मतलब 'प्रणत' होनो हे, और खाली 'नत' होवेको मतलब तेरे यहां झुके, वहां भी झुके और जितने देव आये सबके यहां झुके.

हमारे यहां बम्बईमें रायसाहब करके हते. रायसाहब सुबह उठके भूलेश्वरमें जितने मंदिर हें सब मंदिरन्में जावें. सब मन्दिरन्में जाके ठाकुरजीके आगे झुकें. राम हनुमान मुम्बादेवी सबके आगे झुकें. झुकें और फिर झटका दें. अपने बालकृष्णलालके यहां भी आके झुकें. तो एक दिन हमने पूछी कि "आप नमस्कार करो हो सो तो ठीक हे, नमन तो ठीक हे पर ये झटका क्या हे!" तो वाने यों कही कि "ये झटका या बातको हे कि तुम देवता हो. याके लिये नमस्कार पर तुम हमारो काम अभी तक पूरो नहीं करो हो, तो हमारे क्या कामके! वाके लिये झटका हे." तो अब वाके काम पूरे नहीं होवें, वाके लिये जितने देव हें हनुमानजीके मंदिरमें जावें, पंचमुखी मन्दिरमें जावें, श्रीरामके मन्दिरमें जावें, मुम्बादेवीमें जावें, भूलेश्वर महादेवमें जावें, बालकृष्णलालमें जावें, दाऊजीमें जावें. सबके यहां जाके नमस्कार भी कर आवें और झटका भी दे आवें. अब वो नमन हे, प्रणाम नहीं हे. ये नमन हे, सब देवतान्के आगे झुकनो पर वा झुकवेमें एक झटका रह्यो भयो हे. वो झटका तुम करते हो तुम करो नहीं तो दूसरो देवता तैयार हे वाके लिये झटका. तो वा नमनमें वो झटका जब हट जाये, अन्यशरणको जो झटका हे, वो उनकूं जब न दो तो प्रणत केहवावे. वाके लिये कहें हें **प्रकर्षेण ये नताः अनन्यशरणाः तेषां कामदम् अभिलषितार्थदातृ.** तेरे अनन्य शरणस्थन्के कामको अभिलषित अर्थ देवे वाले हें. **ईश्वरएव तथाविधो भवति. तत्रत्यः कामः स्तब्धैः ग्रहीतुं न शक्यते इति प्रणतत्वम् उक्तम्.** जो भी कुछ कामना हे, "**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्**" (भाग.पुरा.२।३।१०) जो भी अकाम होय, सर्वकाम होय, मोक्षकाम होय, जो भी कामना हे, उन सारी कामनानूकूं पूरो करवेवालो यदि कोई स्वरूप हे, तो वो तो परपुरुष स्वरूप ही हे. जो अन्य देवस्वरूप हे, वो प्रत्येक कामनाकी पूर्तिके लिये एक एक देव स्वरूप प्रभुने लियो हे. कामनाकी पूर्तिके लिये प्रभुने जो देव स्वरूप लियो हे, वा देवस्वरूपसूं वाही

कामनाकी पूर्ति हो सके. सब देवसूं सब कामनान्की पूर्ति नहीं हो सके हे. “ **कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः तं तं नियमम् आस्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया.**” (भग.गीता ७।२०) वा न्यायसूं एक एक कामनाकी एक एक प्रकृतिके नियमनके लिये एक एक देवताके रूप हें. जो परपुरुषको रूप हे, वो तो अकाम, सर्वकाम, मोक्षकाम, अथवा भक्तिकाम, सबकेलिये वो भजनीय रूप हे. “**तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्**” (भाग.पुरा.२।३।१०) याके लिये ये माहात्म्य सिवाय परमेश्वरके, साक्षात् परमात्माके और कोईमें नहीं हे. जो अवर देवतान्के रूप हें उनमें ये माहात्म्य नहीं हे. जैसे साक्षात् परमात्मामें ये सामर्थ्य हे, वैसे ही ये सामर्थ्य परमात्मामें जरूर हे. या तरह चरणकी स्तुति कर रही हे. **ईश्वरएव तथाविधो भवति. तत्रत्यः कामः स्तब्धैः ग्रहीतुं न शक्यते इति प्रणतत्वम् उक्तम्** पर ईश्वर जो तुमकु देनो चाहे हे, तुम्हारे मनमें जो काम हे, वो तो तुम मांगोगे पर ईश्वर जो तुमकु देनो चाह रह्यो हे, वो तुम स्तब्ध होके नहीं मांग सको. स्तब्ध माने क्या? जैसे लहर आवे और आदमी यों खड़ो हो जावे, वाको नाम स्तब्धता. ईश्वरके आगे स्तब्ध हो जाओ. गीतामें आसुरी सम्पत्तिमें स्तब्धताको वर्णन आवे. “**आत्मसम्भाविताः स्तब्धाः धनमानमदान्विताः**” (भग.गीता १६।१७) . ईश्वरसूं जा बखत कोई मने अपने काम तो कोई भी तरहसूं अकाम, सर्वकाम, मोक्षकाम, भक्तकाम सारे काम ईश्वरसूं पूर्ण हो सकें हें पर तुम क्या चाह रहे हो और ईश्वर तुमकु क्या देनो चाह रह्यो हे, वाकी कभी तुलना करी तुमने? याकी तुलना करो तो तुमकु मांगनो आयेगो. नहीं तो मांगनो भी नहीं आयेगो. मांगवेमें भी आदमी गड़बड़ा जायेगो.

जा बखत ध्रुवके सामने प्रभु प्रकट भये तो ध्रुवने येही कही कि “अब मैं क्या मांगू?” तो प्रभुने कही कि “तेरे मांगवेपे नहीं पर मेरे देवेसूं पूरी करूंगो. तोको मैं ध्रुवस्थान भी दऊंगो कि जहां

तोकु जन्म-मरणके चक्करमें फंसनो नहीं पड़े.'' तो प्रभु जो देनो चाहें हें अपनेकूं और जो अपन् प्रभुसूं चाह रहे हें, वाकी कभी तुलना करो तो खबर पड़े कि अपन् कितनो क्षुद्र मांगे हें और वो कितनो अधिक देनो चाहें हें.

हमारे यहां पंडितजी कोई बावाको पढ़ायवे गये. तो महाराजश्रीने बड़े मन्दिरके पंडितजीकु कही कि ''कुछ दक्षिणा ले लो.'' हमारे पंडितजी बड़े निस्पृही, प्रयागमें रहें वो, उनने कही कि 'नहीं.' उनकूं अपने यहांसूं पगार मिलतो ही हतो. निस्पृह हते. तो आवश्यक जितनो हतो वो उनकूं अपने यहांसूं मिलतो थो. अनावश्यक संचयमें उनकी रुचि नहीं हती पर महाराजश्रीने कही कि ''पंडितजी कुछ तो मांगो.'' तो उनने कही कि ''मोकु कोई आवश्यकता नहीं हे. बावा पढ़े यासूं ज्यादा मोकूं और दक्षिणा क्या मिलेगी!'' महाराजश्रीकु लग्यो कि विनयवश संकोचवश नहीं मांग रहे होंगे, याके लिये टाल रहे हें. इनने दो तीन बार आग्रह कियो. उनने दो तीन बार रिफ्यूज कियो. बहोत महाराजश्रीने आग्रह कियो तो पंडितजीको क्रोध आ गयो. निस्पृह हते ना! स्पृहा होवे सो क्रोधकु दबावे. तो उन्होंने कही कि ''लाओ महाराज जो देते होओ, सो लाओ. क्योंकि मोकु क्या पता कि आप कितनो दे सकोगे और कितनो देनो चाह रहे हो! आप लाख देनो चाहते होओगे और मैं हजार मांग लूं तो नुक्सानमें रहूंगो. लाओ आप कितनो दे रहे हो? जो दोगे सो मंजूर हे.'' महाराजश्री भीतर पधार गये. ऐसेकु क्या दें! मांगवेवालेकु दे सकें ऐसेकु नहीं दियो जा सके. तो जो प्रभु देनो चाहें हें, वो कितनो हे अपनेकु क्या पता! अपन् हजार मांगके रेह जायें और वो लाख देनो चाहें तो बड़ो नुक्सान हो जायेगो. याके लिये **''प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय संशयात् सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च''** (वि.धै.आ.२). प्रभु सर्वज्ञ हें, सर्व हितेषी हें, जो देनो चाह रहे हें, जा रूपमें देनो चाह रहे हें वामें कछु न कछु अपनो हित रह्यो भयो हे, या श्रद्धासूं यदि आपने प्रभुसूं चीज स्वीकारी

तब तो आप वो ले पाओगे और ली भई चीजको आनन्द आयेगो बाकी कोरी स्तब्धता प्रभुके सामने अपनूने बरती, तो जो कुछ मिलवेवालो हे वासूं कुछ न्यूनही लेके जाओगे. क्योंकि तुम्हारी झोलीकी सामर्थ्य ही कितनी और वाके देवेके अक्षय वरद हस्तके देवेकी सामर्थ्य कितनी! वाकी तुलना तो कभी करके देखो! तुम्हारे भिक्षापात्रमें वो सामर्थ्य हे, वो विस्तार हे, जो वाके वरद हस्तसूं मिलते भये वरकूं अपनेमें समा सके! नहीं हे इतनी सामर्थ्य. इतनी सामर्थ्य हृदयकी नहीं हे, इतनी सामर्थ्य अपने हाथकी नहीं हे, इतनी सामर्थ्य अपनी बुद्धिकी नहीं हे, तो मांगके क्या करोगे? पर स्तब्धता करी तो कछु भी नहीं मिलेगो. वो कहें हें कि जो स्तब्ध हो जाये तो भगवान्‌के हृदयमें जो देवेके लिये कामना हे, तो भगवान् जो तुम्हें देवेके लिये कामुक हें कि ये वस्तु मैं भक्तको दे दऊं, वा कामनाको प्राप्त करवेके लिये तुम यदि स्तब्धता वापरोगे, तो काम नहीं आयेगी. वामें तो प्रणतता ही चइये. प्रणत होओगे तो प्रभु तो **प्रणतकामदं** हें.

(सागर और कृपासागर के गुण)

आज सुबह समुद्रमें नहा रहे थे, तो एक बड़ी मजेदार बात ख्यालमें आई. समुद्रको और ठाकुरजीको गुण एक सरीखो. समुद्र भी लेहरातो सागर, ऐसे ही ठाकुरजी भी कृपाके लेहराते सागर तो कृपाके लेहराते सागरके लेहरको एक नियम क्या? कि जो पैर टिकाके खड़े रहो तो लेहर फैंक दे. आपकु खड़े रेहवे नहीं दे क्योंकि वो कहे कि भूमिको अन्याश्रय क्यों कियो! जब मेरेमें तुम कूदे हो, तो मेरेपे निर्भर रहो. जमीनपे पैर क्यों टिकाओ! तो जमीनपे पैर टिकावेको अन्याश्रय करो तो लेहर फैंके. तैरते रहो तो वो ही लेहर फैंके नहीं. वो पलनाकी तरह झुलाती रहे. कभी यों ले जाये कभी यों ले जाये. अब वो थोड़ोसो वा पानीके सहारेपे अपनेकु छोड़ दो तो जैसे माँ झुलावे ना पलना! वैसो झूलवेको आनन्द

अपनेकु लेहरमें मिले. एक बार यों जावे, एक बार यों जावें पर पैर टिकाते ही क्रोध आ जाये. वो करुणासागरको भी वैसो ही स्वभाव हे, क्रोध आवे कि नहीं आवे, पर वो लेहरको स्वभाव ही ऐसो हे कि वो लेहर जो आ रही हे वामें पैर जमीनपे मत टिकाओ. लेहर आ रही हे तो वामें बहो. लेहरमें बहोगे तो वो कृपाकी ऐसी लेहर हे कि वो तुमकु बच्चाकी तरह झुलायेगी पर पैर टिकावेकी कोशिश करी तो पटकनी ही खाओगे. तो एक वो अन्याश्रय नहीं चइये.

दूसरी बात ये समझमें आई कि लेहरके सामने स्तब्ध खड़े हो जाओ तो वो पटकेगी. पटकेगी सो तो पटकेगी पर मुंहमें, नाकमें, कानमें नमकवालो पानी और घुसेगो. वा लेहरके सामने स्तब्ध नहीं हो जाओ तो ऊपरसूं जो लेहर चली जाये तो बहावे भी नहीं. वो तो खड़े रहो तो बहाके ले जाये. नीचे झुक जाओ तो बहावे नहीं. या तरहसूं सागरको और कृपासागरको गुण एक जैसो ही हे. स्तब्धता नहीं चइये और अनन्यता चइये. अस्तब्ध अनन्य या कृपासागरको आनन्द ले सके हे. **तत्रत्य: काम: स्तब्धै: ग्रहीतुं न शक्यते इति प्रणतत्वम् उक्तम्**. याके लिये गोपिका केह रही हे **प्रणतकामदम्**.

(पद्मजार्चितम् = धर्मरूपम्)

पद्मजार्चितम् धर्मरूपता निरूपिता, ब्रह्मप्रार्थनयैव अत्र आगतम् इति. कहे हे कि **पद्मजार्चितं** क्यों कह्यो ? गोपी ठाकुरजीकु थोड़ोसो ताना मार रही हे. वो ब्रह्मा केवल विधिके अनुरूप अर्चन मने पूजा करे. विधिसुं पुष्प समर्पण करनो होय तो ''पुष्पं समर्पयामि'', पत्र समर्पण करनो होय तो ''पत्रं समर्पयामि''. ब्रह्मा बिना कोई स्नेहके तुम्हारे चरणनूकी पूजा करे और कहे भगवान् भूमिपे अवतीर्ण हो जाओ, तो तुम भूमिपे अवतीर्ण हो जाओ हो. हम तो स्नेहसूं तुम्हारे चरणनूकी अर्चना करनो चाहें और भूमिपे अवतीर्ण होओ भी

नहीं कहें, पर कहें केवल प्रकट हो जाओ. क्योंजो यहीं कहीं वृक्षमें छिपे भये हो हमकु दिखाई नहीं दे रहे हो. इतनो ही कहें तो तुम प्रकट नहीं हो सको हो क्या! ऐसो कैसो माहात्म्य हे तुम्हारे प्रणतकामद चरणको! हम प्रणत नहीं हें या तुम्हारे चरणनूमें धर्मरूपता नहीं हे! क्या बात हे ये तो प्रकट होके बताओ! आखिर पृथ्वीपे आये तो क्यों आये? ब्रह्माजीने प्रार्थना करी कि भगवान् पृथ्वीपे अधर्म बढ़ गयो हे, आके जरा खबर तो लो पृथ्वीकी. एक तो ब्रह्माने खुदके लिये प्रार्थना नहीं की, गामके लिये प्रार्थना करी और वो भी प्रार्थना स्नेहसूं नहीं करी, खाली विधिसूं करी और तुम वाके केहवेसूं यहां आ गये. अब हमने मान्यो कि तुम प्रणतकामद हो पर क्या हम प्रणत नहीं हें! हमतो प्रणत हें और सर्वथा प्रणत हें. हम तुम्हारे चरणनूकी प्रार्थना करें और तुम प्रकट नहीं होओ, ये कैसी धर्मरूपता हे तुम्हारे चरणके रूपकी!

(धरणिमण्डनम् = कीर्ति/श्रीरूप)

कीर्तिरूपम् आह, तो कहें हें चलो ठीक हे. जैसे हो वैसे **"यादृशोऽसि हरे! कृष्ण! तादृशाय नमोस्तु ते. यादृशोऽस्मि हरे! कृष्ण! तादृशं हि माम् पालय"** (सेवाश्लोका १०). तू कृष्ण जैसो हे, ठीक हे ब्रह्माकी प्रार्थनासूं विधिवत् पूजन करवेंसूं भी धरणीपे आ जातो होय, हम स्नेहसूं पूजन करवो चाहें तो भी प्रकट नहीं होतो होय, झगड़ा तो हो नहीं सके, जैसो भी हे वैसो, हम तो तेरो यश ही गायेंगे. आचार्यचरण कहें हें कि "ऐसे नहीं कहिये" कौन यह खेलिवेकी बानि न कहिये. जैसे करें, जैसे खेलें वाको वैसो केहते रेहनो कि "भली यह खेलिवेकी बानि."

तो कहें **कीर्तिरूपम् आह धरणिमण्डनम् धरण्या मण्डनम् अलङ्करणरूपं श्रीरूपं वा.** जा बखत तू ये एक एक चरण धरणीपे रखे और एक एक चरणके जो निशान पड़ें हें, वो निशान क्या

हें? वो पृथ्वीके शृंगार हें. चरणकी छापको एक हारसो बन जाये पृथ्वीपे, वो हारकु धारण करवेके लिये धरणी न जाने कितने दिनसूं व्यग्र होयगी! तू प्रकट भयो और ये जो तैंने अपने चरणके छापन्को हार पृथ्वीकु धारण करायो, धरणिकु धारण करायो, तो आज या पृथ्वीकी शोभा हे, नहीं तो पृथ्वीकी शोभा कहां! वो कहें हें ना भारतभूमिके लिये! भारतकी भूमि धन्य हे. जहां देवतायें भी या भूमिकी स्तुति करें हें वाको कारण क्या? क्योंकि यहां कृष्णको अवतार भयो हे. या धरणीने वा धरणीधरके चरणकु हारके रूपमें अपने हृदयपे धारण कियो हे, यासूं ज्यादा और भारतकी भूमिकी क्या स्तुति हो सके हे!

(चरणकी पुरुषार्थरूपता = अनिष्टनिवारकता और इष्टप्रापकता)

जनकने कही **"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन"** (महाभा.१२।२६१।४). जनक ब्रह्मज्ञान दे रह्यो हतो और कोईने जाके खबर दी कि मिथिलामें आग लग गई. उनने कही "लगी होगी आग मिथिलामें वामें मेरो क्या जल्यो!" अरे आखो गांव जल रह्यो हे और राजा होके भी तेरेकु कोई चिन्ता नहीं हो रही हे! ठीक हे ब्रह्मज्ञान तो अच्छी बात हे पर ब्रह्मज्ञानी होवेपे तैंने राजा पदसूं तो रिझाईन नहीं कर दियो हे! कछु तो चिन्ता कर! पर विरक्त हे करे क्या! ये दोष नहीं हे. ये विरक्तिको स्वभाव हे. **"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन"** तो वा न्यायसूं कहे हें कि आरती अनुरक्तिके कारण होवे और जाकु तेरे चरण मिल जायें वाकी सारी आर्ति दूर हो जायें! तो तेरे चरणमें वैराग्य गुण हे कि नहीं? बता. ये **आर्तिहन्** केहके अनिष्टनिवारकता बताई. **'रमण'** कह्यो यासूं इष्टप्रापक बतायो. क्योंकि 'रमण' मने क्या कि जो रमण करतो होय ऐसो चरण. तो वासूं जो हमकु इष्ट वाञ्छित हे वाकु देवेवालो हे और **आर्तिहन् इति अनिष्ट निवारकः** और आर्तिहनसूं अनिष्टको निवारण बतायो. मने दुःखाभाव और सुख. दो

तरहसूं पुरुषार्थ मान्यो जाय. दुःख मिट जाये और सुख मिले. खाली दुःख मिट जाये इतनो ही अपेक्षित नहीं होवे. जैसे बीमारी मिट जाये और शरीर स्वस्थ हो जाये. तो बीमारी मिटनो एक चीज हे और शरीर स्वस्थ हो जानो दूसरी चीज हे. बीमारी मिटे दवाईसूं और शरीर स्वस्थ होवे विटामिनसूं. ऐसे ही भगवान्‌के चरणनन्‌में दोनों प्रकारके गुण हें. आर्तिहनरूपता भी हे और रमणरूपता भी हे. दुःखनिवारकता भी हे और सुखप्रापकता भी हे. अथवा तो कहे हें कि घुमाफिराके बात क्यों कहो! सीधी बात क्यों नहीं केहनी. हम तेरे चरणारविन्दके गुणनन्कूं याद दिवावें कि तेरे चरणारविन्द कैसे हें? **आर्तिहन्** और रमण हें.

जैसे हनुमानजीकु जब लंका जानो थो तब अपनी सामर्थ्य भूल गये. सब बन्दरनूने विचार कियो कि "जाये कौन?" अंगदने कही कि "जा तो सकूं पर आवेमें संदेह हे." तब सबसूं पीछे जाम्बवानकु ख्याल आयो कि "पवनकु कहीं पहोचवेंमें तकलीफ होवे हे! तो पवनपुत्र हनुमानकु कहीं जावेमें तकलीफ क्यों हो सके हे!" तो जब हनुमानने कही कि "इतनी दूर लंकामें कैसे जाऊं?" तब जाम्बवानने याद दिवायो कि "तु पवनपुत्र हे, या काम करवेकी तेरेमें सामर्थ्य हे." तो याद दिवावेपे उनकूं स्वरूप याद आयो तब तो उनने कही "कहो तो रावणकु भी मारके आऊं?" जाम्बवानने कही कि "बस ये मत करियो. बस जाके देख आ कि सीताजी कैसे हें! रावणकु मारवेको काम रामपे छोड़ दे." तो समर्थ आदमी भी अपनी सामर्थ्य भूल जाये.

तब ये गोपिकायें याद दिवावें कि तेरे चरणनूमें ऐश्वर्य हे, वीर्य हे, यश हे, श्री हे, ज्ञान-वैराग्य हे. अब सामर्थ्य हनुमानजीकु तो याद आ गयो पर इतनी देरसूं तोकूं याद दिवा रहे हें सामर्थ्य और फिर भी याद नहीं आ रही हे और प्रकट नहीं हो रह्यो

हे! आरती दूर नहीं करे हे तो क्यों सीधी बात नहीं केहनी! तो कहे हें कि ये जो सारे दुनियांके करवेके उपकार हें वो कर या मत कर, वो तू जाने और तेरी दुनियां जाने पर हमारे बीचमें तेरे ये गुण क्यों नहीं प्रकट करे हे! ये गोपिका सीधी प्रार्थना करें हें.

यद् लोके पञ्चविधम् उपकारं करोति तद् अस्मासु एकमेव करोतु इति प्रार्थ्यते. प्रणतासु कामं ददाति. आपके चरण दुनियांमें पांच उपकार करे. कर पर हमारेमें एक काम तो कर दे! **प्रणतकामदम्** और कोई उपकार नहीं चइये. हम प्रणत हें यामें तोकु संदेह होये तो बता! तू 'कामद' नहीं हे यामें तोकु कोई संदेह होय तो बता, हम दोनों बात तोकु कर दें! हमारे स्वरूपकी बातको खुलासा कर दें और तेरो स्वरूप तोकु याद दिवा दें. दोनों स्वरूप याद आ जावेके बाद फिर क्या कमी रेह रही हे! अपनो प्रणतकामदताको सामर्थ्य अभी क्यों प्रकट नहीं करे! दुनियांमें पञ्चविध उपकार कर, पर हमकु पञ्चविध उपकारन्की जरूरत नहीं हे हमारो तो एक उपकार कर दे **प्रणतकामदम्.**

तत्पूर्वकं मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि इति और वा बिचारी पेहलीवाली गोपिकाने कही हे कि **मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि** तो जब तू **स्मरं वीर यच्छसि** हे तो फिर क्यों नहीं तदनुरूप प्रकट होवे हे? **प्रकर्षेण नम्रेषु वा कामं द्यति = खण्डयति.** तो कहें हें कि भई **यच्छसि. प्रणतकामदम्** को एक अर्थ ये भी हो सके हे कि प्रणतकूं काम देवेवालो हे. तो पेहलीवाली गोपिकाने कही कि तू कामप्रद हे. हे तो क्या भयो! हे सूं काम नहीं चले. कामदको दूसरो अर्थ ये भी होवे हे कि **कामं द्यति खण्डयति.** कामकूं जो खण्डित कर दे. जो काम तैंने जगायो हे, हमारे हृदयमें जो आग तैंने लगाई हे, वाको तू बुझा. वा अर्थमें **कामद** ले.

यों मानके संतोषित मत हो जा कि कामद, काम हे सो तुमकु तुम्हारे हृदयमें दर्शनकी कामना हे ही, चलो बस तथास्तु! ऐसे नहीं, इतनेमें तथास्तु नहीं चलेगी.

जैसे गणपतिजीमें और व्यासजीमें जा बखत महाभारत लिखवावेको कार्यक्रम चल रह्यो थो, लोककथा हे बहोत करके, शास्त्रीय कथा तो नहीं हे. तो वा बखत व्यासजीको बड़ो लोभ आ गयो कि गणपतिजी जैसो लेखक प्रसन्न होके अपनी पूरी महाभारत लिख दे और प्रसन्न हो गये तो गणपतिजीसूं एकाध वरदान मांग लें. तो गणपतिजीसूं उनने कही कि "महाराज प्रसन्न हो गये?" गणपतिजीने कही "हां महाभारत लिखके प्रसन्न हो गये." तो उनने कही कि "एक वरदान दे दो कि जा क्षेत्रमें अपन्‌ने महाभारत लिखी, व्यासाश्रम हतो, यहां जो भी मरे वाको मुक्ति मिल जाये." गणपतिजीकु भयो कि ये माहात्म्य तो शिवको, काशीको हे. अगर या ठिकानेको ये केह दी तो अपने पिताको जो माहात्म्य हे वामें त्रुटि आ जाये. अब ना भी पाड़ें तो प्रसन्नताकी कमी दीखे. बहोत विचार करके गणपतिजीने कही कि "क्या कही?" तो व्यासजीने कही कि "महाराज यों कही कि या क्षेत्रमें जो मरे वाको मुक्ति मिल जाये." गणपतिजीने फिर पूछी कि "क्या कही?" उनने कही कि "महाराज यों केह रह्यो हूं कि या क्षेत्रमें जो मरे वाकी मुक्ति हो जाये." तीसरी बार गणपतिजीने फिर पूछी तो व्यासजीकु क्रोध आ गयो तो उनने कही कि "या क्षेत्रमें जो मरे सो गधा हो जाये." सो गणपतिजीने कही 'तथास्तु.' ऐसी लोककथा हे. प्रामाणिक हे कि नहीं मोकूं पता नहीं. तीन बखत पूछ्यो तो क्रोध आ गयो. क्रोधके बस मनमेंसूं गाली निकल गई, गाली निकली और उनने कही 'तथास्तु.' तो काशीको माहात्म्य बन्यो रह्यो या कारणसूं नहीं तो काशीको माहात्म्य संकटमें आ गयो थो.

ऐसे ही वो गोपिका कहे हे कि 'कामदम्' भगवान् कहें कि "जाओ तथास्तु!" कामना तुम्हारे मनकी दी तो तकलीफ दे दोगे महाराज! तो हम **'कामदं'**को अर्थ तुमकु स्पष्ट समझा दें, कहीं गणपतिके जैसी तथास्तु नहीं हो जाये. **'कामदं'**को मतलब हमारो काम देवेवालो नहीं पर **कामं द्यति = खण्डयति** कामकु जो खण्डित करतो होय, कामकु नष्ट करतो होय, ऐसो तुम्हारो चरण प्रकट करो कि ये हमारो काम, ये हमारी लालसा सब खण्डित हो जाये, ये टूट जाये. ये काम रेह न जाये, क्योंकि ये बहोत तकलीफ दे हे.

पद्मजेन पद्मजया वा अर्चितम् ऐश्वर्यार्थं कामार्थं वा पद्मजैः अर्चितम् तत्तुल्यं वा. अन्यथा तानि चरणपङ्कजजन्म कथं प्राप्नुयुः! 'पद्मज' मने तेरे चरणारविन्दके जो नख हें. उन गोपिकान्को चरणको ध्यान धरते धरते नखपें ध्यान गयो. क्योंकि चरण जो पञ्चविध उपकार करे हे और पांच नख हें यासूं ऐसो लगे हे कि नखन्की ज्योत्सना या चमक हे, वासूं नख निरन्तर चरणकी पूजा करें हें. चरणकी मानो आरती उतार रहे होंय और चरणकी शोभा बढ़ा रहे होंय. वाके कारण तेरे नखन्सूं तेरे चरणकी पूजा निरन्तर चल रही हे ऐसो भाव यहां प्रकट हो रह्यो हे. या लिये ही अपने यहां श्यामस्वरूपके चरणारविन्दन्में नख धराये जायें. श्रीनाथजी नख धरें हें. क्योंकि वो भी एक तरहसूं चरणकी पूजा हे. ऐसे ही श्रीनाथजी श्रीहस्तमें भी पांचों अंगुलीन्में नख धरें. श्यामस्वरूप होय तो सब जगह धरें और गौर स्वरूप होय तो नहीं धरें. तो वो कहें हें कि पद्मज जो नख हें, वो अपने ऐश्वर्यकूं बढ़ावेके लिये, तेरे चरणन्की पूजा करें. मने ऐसो लगे कि जैसे तेरे चरण अपने नखन्सूं पूजित हें और वो लक्ष्मी हे वो भी निरन्तर तेरे चरणन्की पूजा करे हे, शायद प्रणयावलोकनसूं, शायद पादसंवाहनसूं, तो या कामार्थ करती होयगी. **अन्यथा तानि चरणपङ्कजजन्म कथं प्राप्नुयुः!** नहीं

तो वो ऐसो जन्म क्यों चाहें कि वो निरन्तर तेरे चरणसूं लगे रहें! तो ऐश्वर्यार्थ या कामार्थ जो तेरे चरणमें प्रणत हो जायें हें, उनके कामकु तो तू पूर्ण करे ही हे तो हमारे काम क्यों नहीं पूर्ण करे हे!

(धरणिमण्डनम् ध्येयम् आपदि)

धरण्यपि स्त्री अनलंकृता न भुज्यतइति तस्यां पदस्थापनम्. ये धरणी जो हे वो विष्णुपत्नी हे. धरणिमण्डन जो हे, तो या पृथ्वीपे जो तू निरन्तर फिरे हे और चरण या धरतीपे स्थापित करे हे और तू चरण स्थापित करे और वामें शोभा न आवे, अलङ्करण वाको न होवे, ऐसी धरणी कैसे हो सके हे! मने अनलङ्कृत धरणीको उपभोग तो सम्भव नहीं हे, याके लिये तू खुद धरणीपे फिर फिरके मने पादुका भी धारण नहीं करे और नंगे चरणन्सूं अपने चरणारविन्द छाप छापके धरणीकु अलङ्करण करे हे. इतनो जब तेरे चरणको माहात्म्य ज्यादा हे मने **भगवदपेक्षायापि चरणो महान्.** या गोपिकाकु थोड़ो गुस्सा आ रह्यो हे, तो कहे हे कि तेरे बजाय तो तेरे चरण अच्छे हें. ये धरणीको इतनो उपकार तो करें हें, लक्ष्मीको इतनो उपकार तो करें हें! तू तो बिल्कुल उपकारी नहीं हे, अपकारी हे ऐसी प्रतीति होवे हे.

ध्येयम् आपदि आपदि ध्यानमात्रेणैव आपदं दूरीकरोति इति. आपत्ति आ जाये और चरणारविन्दको ध्यान धरो तो आपत्ति दूर हो जाये. **यथा एतेषां सर्वोपकारकर्तृ** इन सबके उपर तेंने इतने उपकार किये तो **तथा अस्माकमपि करोतु इति प्रार्थना** तो हमारे पर भी उपकार कर दे, इतनो भी नहीं करे क्या! सामने प्रकट हो जा. **अनेन सर्वएव सुरतबन्धा आक्षिप्ताः.** या तरहसूं **प्रणतकामदं.... स्तनेषु अर्पय आधिहन्.**

टिप्पणी : श्लोक १२ :

दिनपरिक्षये इत्यत्र 'बिभ्रद्'पदतात्पर्योक्तौ ज्ञानं वा भवेद् इति, भक्त्यात्मकत्वात् मुखस्य स्नेहरसानुभवएव स्याद् इत्यर्थः ॥१२॥

विवरणम् :

थोड़ोसो जो अपनो क्रम हे वो अपन् निर्वाह कर लें. बीचमें टिप्पणी छूट गई थी. यहां दो श्लोकन्में थोड़ीसी टिप्पणी हे सो अपन् देख लें. **दिनपरिक्षये .... वीर यच्छसि.** या कारिकामें एक बात कल आई थी **यदि मुखसंमार्जनं कृत्वा समागच्छेत् तदा प्रसन्नमुखदर्शनाद् ज्ञानं वा भवेत्. धनसम्बन्धि रज इति कामएव, नतु क्रोधः.** एक वाको तात्पर्य कल ये बतायो कि मुखसंमार्जन करके आते, परिश्रम दूर हो जातो तो केवल ज्ञान होतो, स्नेह नहीं होतो पर धनसम्बन्धि गोधनके सम्बन्धसूं गोरजके कण अपने मुखपे लेके व्रजमें पधारे हें, यासूं मुखारविन्दपे, कामभाव जतायो, क्रोध नहीं.

वहां **ज्ञानं वा भवेत्** या ज्ञानको तात्पर्य श्रीगुसांईजी कुछ अधिक दे रहे हें. प्रभुचरण आज्ञा करें हें कि यदि या तरहसूं मुखसंमार्जन करके पधारते तो मुखारविन्दपे एक तरहको ताजापनेको अनुभव होतो मने श्रमको बोध नहीं होतो. अश्रान्तमुखके यदि दर्शन होते, तो आचार्यचरण केह रहे हें कि ज्ञान होतो. श्रीगुसांईजी केह रहे हें कि ज्ञान मने कैसो ज्ञान? केह रहें हें कि चरण मर्यादाभक्तिरूप हें और प्रभुको मुखारविन्द पुष्टिभक्तिरूप हे. तो पुष्टिभक्तिरूप मुखारविन्दके दर्शनसूं ज्ञान होतो तो कैसो होतो? ऐसो ज्ञान होतो कि केवल स्नेहरसको अनुभव होतो. जो स्नेहरस तो हे ही, व्रजभक्तनूकु भी हे, प्रभुकु भी हे पर ये जो शृंगाररसको अनुभव वो नहीं हो पातो. शृंगाररसके अनुभावक तरीके, गोधनकी जो रज हे वाको मुखारविन्दपे वहन करके, धारण करके प्रभु पधारे हें. ये बहोत सुन्दर स्वारस्य '**ज्ञान**'पदको बतायो. यासूं ज्यादा श्रीगुसांईजी कछु लिखे नहीं हें.

टिप्पणी : श्लोक १३ :

प्रणतकामदम् इत्यत्र, अथवा यल्लोके इत्यादि. लौकिककामखण्डनैश्वर्य(दान)स्वकामदानालंकरणापद्दूरीकरणात्मकं पञ्चविधम् उपकारं करोति तच्चरणपंकजं तापनिवारणात्मकम् एकमेव उपकारम् अस्मासु करोतु इति अर्थः. पद्मजैः अर्चितम् इति, चरणपद्मजैः नखैः तथा इति अर्थः. लोके तेषां संयोगिद्रव्यत्वेऽपि भगवन्नखानां सच्चिदानन्दरूपत्वेन तथा वक्तुम् अशक्यं यद्यपि तथापि स्वस्य अधुना चरणसम्बन्धे अत्यार्त्या यदेव तत्सम्बन्धि तदेव पूर्णसाधनम् इति आशयेन तथा उक्तम्. अस्मिन् पक्षे उपपत्तिम् आहुः अन्यथा इति. उक्तारुच्यैव पक्षान्तरम् आहुः तत्तुल्यं वा इति. तैः अतिशोभा अतः तैः चरणपद्मं पूजितमिव भवति इति अर्थः. ध्वजादिचिह्नानि च उक्तरूपाणि ज्ञेयानि॥१३॥

विवरणम् :

प्रणतकामदम् या कारिकामें ये जो कह्यो कि **अथवा यल्लोक,** कि जगत्के तुम जो पंचविध उपकार करो हो, वो पंचविध उपकार हमकु नहीं चइयें, हमकु केवल एकविध उपकार करो कि प्रणतकामदता जो तुम्हारी हे वाकु निभाओ. वा बातको भाव स्फुट करें हें. **लौकिककामखण्डनैश्वर्य(दान)स्वकामदानालंकरणापद्दूरीकरणात्मकं पञ्चविधम् उपकारं करोति.** लौकिक जो कछु विषयासक्ति होवे ये भगवान्के चरणारविन्द उन लौकिक विषयासक्तिनूंकूं दूर करे हें. ऐश्वर्य तो भगवत्चरणारविन्दन्में हे ही. भगवत्चरणारविन्दमें एक बखत प्रणत होवे, वाकू भगवद्मुखमें काम जागृत हो सके हे. हरेकको अधिकार नहीं हे. याके लिये चरणारविन्दमें भगवत्कामदातृता भी हे. लौकिककामखण्डनको सामर्थ्य हे. लौकिकविषयक कामनाकूं तोड़ें हें और भगवद्मुखारविन्दकी कामनाको जगावेवाले भी चरणारविन्द हें.

याके लिये अपने यहांको क्रम आप देखो. तो पेहले अष्टाक्षरमंत्र दीक्षा दी जाये जासूं जीव प्रभुके चरणारविन्दमें शरणागत होवे. वाके

बाद ब्रह्मसम्बन्ध दियो जाय. तो अष्टाक्षरकी दीक्षा शरणागतिकी दीक्षा, चरणारविन्दमें दी जाती दीक्षा हे. ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा, यद्यपि तुलसी चरणारविन्दमें समर्पी जाये पर ये बात मत भूलियो कि ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा मुखारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा हे. चरणारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा नहीं हे. याके लिये ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा लेवेके बाद सेवा नहीं पधराई तो **"भाग्यहीन जीव जेणे कणिका न चाखी तेने देव ऊपर रह्या धिक्कार बोले मंदमति कही ने निन्दा दाखी"** (वल्लभाख्यान.७।७). ब्रह्मसम्बन्ध लेवेके बाद तो सेवा करनी करनी और करनी ही चइये. भगवत्सेवा छोड़के ब्रह्मसम्बन्ध लेनो वो पद्धति ही खराब हे. याको नुक्सान भयो पुष्टिमार्गको! यासूं सब लोग ब्रह्मसम्बन्धकु ऐसे समझ गये जैसे कि पुष्टिमार्गको ट्रेडमार्क होय. एक बार ब्रह्मसम्बन्ध ले लियो सो तर जाओगे. अरे तरवेके लिये ब्रह्मसम्बन्ध हे ही नहीं. ठाकुरजीके साथ तैरवेके लिये ब्रह्मसम्बन्ध हे, तरवेके लिये नहीं हे. या भक्तिरसमें ठाकुरजी और आप साथ तैरो, बाहर कहीं नहीं जानो हे. यहीं तैरते रेहनो हे भक्तिरसमें. बाहर जावेके मार्ग तो सब दूसरे ज्ञानमार्ग मर्यादामार्ग कर्मके, उनकु पार पहोंचवेकी चिन्ता हे. तुम कहां पार जाओगे! कोनसी चीजके लिये पार पहोंचोगे! ये भक्तिरस आपकु यहां मिल रह्यो हे. जब आपकी सेवा ठाकुरजी यहां अंगीकार कर रहे हें तो कायसूं पार होनो चाहो हो!

(वैराग्यसूं वैराग्य)

श्रीगुसांईजीकु एक बखत वैराग्य आ गयो. वैराग्य आ गयो तो गुसांईजीने कही कि "आज हमारे कपड़ा भगवा रंगमें रंग दो. हम घर छोड़के जायेंगे." वार्तामें आवे कि नवनीतप्रियाजीकु जब या बातकी खबर पड़ी तो उनने अपनो तनिया भी दियो गिरिधरजीकु कि "ये तनिया भी भगवा रंगमें रंगो." जब वो भगवा रंगके कपड़ा सूखे तो गुसांईजीके भगवा रंगमें रंगे कपड़ान्के साथ नवनीतप्रियाजीको तनिया भी भगवा रंगमें रंग्यो सूख्यो. तो गुसांईजीने लौटके आके देख्यो

कि ''ये क्या!'' गिरिधरजीने कही कि ''नवनीतप्रियाजीकी आज्ञा भई हे.'' अब वो नवनीतप्रियाजीने आज्ञा करी कि नहीं करी पर ये गिरिधरजीकी चतुराई हती क्योंकि गिरिधरजी तो वैराग्यके रहस्यकु जाने हें ना. तो गिरिधरजीकी चतुराई हती कि क्या हतो! पर जब नवनीतप्रियाजीको तनिया बाजूमें सूखतो दीख्यो तो गुसांईजीकु वैराग्यसूं वैराग्य आ गयो. उनने कही कि ''कौनके लिये वैराग्य लेनो!'' ठाकुरजी जब तुम्हारे घरमें बिराजे तो वैराग्य कोनसो ज्यादा बड़ो तिलक तुम्हारे माथेपे लगायेगो! ये वैराग्य प्राप्त करके भी जाकु प्राप्त करनो हे सो वो ही तो हे जो घरमें बिराज रह्यो हे. अब बिना वैराग्य प्राप्त किये अपने यहां श्रीआचार्यचरणने ये सामर्थ्य दी कि ठाकुरजी तुम्हारे घर बिराजे और वा ठाकुरजीके चरणारविन्दमें तो ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य बिराजे हें तो कौनसो वैराग्य प्राप्त हो जायेगो! ऊर्ध्वपुण्ड धारण करो तो वामें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य सब कछु आ जायेगो. कहां भागके जाओगे! जा बखत प्रभुके साथ रेह रहे हो, प्रभुकी सेवाके लिये घरमें रेह रहे हो तो और कौनसो वैराग्य चइये! वैराग्य लेके भी मठ बनानो पड़ेगो तो फायदा क्या होयगो! वैराग्य लेके तो ऐषणायें बढ़ जायेंगी तो फायदा क्या होयगो! कछु फायदा होयगो नहीं. याके बजाय घरमें क्यों नहीं ठाकुरजीके साथ बिराजो. पार वार जावेको मार्ग अपनो नहीं. पार जावेको मार्ग तो ज्ञानीनूको, विरक्तनूको, मर्यादाभक्तनूको हे, पुष्टिमार्गमें तो भगवत्सेवा ही मुख्य हे.

(सकलं तद्धि तवैव माधव!)

''भगवदीयत्वेन परिसमाप्तसर्वार्था:'' (भाग.पुरा.५।६।१७). भागवत-कार कहे हे कि एक बखत तेरो हूं वामें सारे पुरुषार्थ प्राप्त हो गये. अब तेरो हूं याकी पेहचान ये हे कि जो कछु मेरो हे वो तेरे लिये हे, तेरी सेवामें विनियोगार्ह हे. तेरी सेवाके लिये मेरो घर हे. तेरी सेवाके लिये मेरे बाल-बच्चा हें. तेरी सेवाके लिये

मेरो परिवार हे. तेरी सेवाके लिये मेरो गार्हस्थ्य हे. **"मम नाथ! यदस्ति योऽस्मि अहं सकलं तद्धि तवैव माधव!"** (आळवन्दार.५६) जो कुछ भी मेरो हे, मेरो कुछ भी है जो मैं हूं **"सकलं तद् हि तवैव माधव!"** . सब तेरो ही हे.

(नग्नक्षपणकस्य ग्रामे रजकः किं करिष्यति)

कहे तो यही बात ज्ञानी भी पर देवे कहां! वाके पास भगवा कपड़ाके सिवाय होवे कहां जो देवे! वो कहें हें कि दिगम्बरन्के गांवमें धोबीयें भूखे मरें हें. क्या तो नहावे और क्या तो निचोड़े! गाम दिगम्बरको तो सब बिचारे धोबी भूखे मरें. शब्द खराब हो गयो हे बाकी सच्चे अर्थमें वाको समझो. तो जो आपके इन कपड़ान्को **"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय"**, (भग.गीता २।२२) इन कपड़ान्को , भगवत्चरणारविन्द जो धोवे हे वो आप खुद दिगम्बर हो जाओ, तो वो धोवेगो कहा! आप खुद दिगम्बर हो जाओ मुक्तिमार्गीय, तो अपने यहां कही हे कि **"ब्रह्मज्ञानीने मुक्तिमार्गीय सपने नहीं व्यवहार"** (वल्लभाख्यान.१।७) क्योंकि जो अपनो धोबी हे, धोबीकु गालीके अर्थमें मत लो, सच्चे अर्थमें समझो, जो कि अपने देहरूपी कपड़ान्कु धोवे हे अपने चरणारविन्दके रज साबुन्सूं, वाको काम क्या रेह जायेगो अपने घरमें! वो साबुन् कहां लगाओगे! तो चरणरज कहां लगाओगे! वो नहीं लगाई तो फायदा क्या भयो ऐसे वैराग्यको! तुम्हारे ये नये नये कपड़ा भी पेहरो तो भी सुख हें यहां तो. वहां तुमने वो पुराने कपड़ा फैंक भी दियो तो क्या सुख मिलेगो! सब व्यर्थ जायेगो. मने **"इदमेव इन्द्रियवतां फलं मोक्षापि नान्यथा. यथा अन्धकारे नियता स्थितिः नाक्ष्णोः फलं भवेत्"** (सुबो.कारि.१०।१८७). तुमने और कोई फल चाह्यो या फलके अलावा तो तुम आँखवाले होते भये भी अंधेरे कुआंमें गिरे. फल तुमकु क्या मिल्यो! कोई फल नहीं मिल्यो.

(ब्रह्मसम्बन्धदीक्षाको तात्पर्य)

याके लिये अपने यहां ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा हे, वो मूलत: मुखारविन्दकी दीक्षा हे, मुखारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा हे. चरणारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा तो अपन् अष्टाक्षरसूं ही जीवकु दे दें. याके लिये जो सेवा नहीं करनो चाहते होंय, उनकूं केवल अष्टाक्षरमंत्र ही लेवो चइये, ब्रह्मसम्बन्ध नहीं लेनो चइये. क्योंकि वासूं प्रभुकु भी परिश्रम हे. श्रीमदाचार्यचरणकु भी परिश्रम हे और मार्गकी शोभामें भी बिगाड़ आवे. या तरहके पेहेले दो चार दस जीव हते आज तो बहोत बढ़ गये, आज तो दो चार दस केहवेमें शर्म आवे हे. अब तो सैंकड़ो ऐसे ही वैष्णव हो गये ट्रेडमार्क छाप, बिन्नीसूट, मफतलालसूट, मफतलाल सूटिंग, ऐसे ही पुष्टिमार्गके घरमें मफतलाल सूटिंग पैदा हो गई. सेवा करें नहीं और ब्रह्मसम्बन्ध ले जायें मफतमें, ये सब मफतलाल सूटिंग हें, ये सूट नहीं होवें हें पुष्टिमार्गमें. ये सूटेबल नहीं हे पुष्टिमार्गमें पर चल निकली हे, क्या करें! यासूं मार्गकी बड़ी क्षति भई हे. यदि पुष्टिमार्ग जीवेगो तो वहीं जीवेगो जिनके घरमें भगवत्सेवा बिराजे हे. यदि मार्ग तिरोहित भयो तो उन वैष्णवन्, उन महाराजन्के घरसूं तिरोहित होयगो कि जिनने ब्रह्मसम्बन्ध दियो और जिनने ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा नहीं करी. ब्रह्मसम्बन्ध नहीं लेनो अपराध नहीं हे, या बातकु तुम साफ सुथरे तौर पर समझ लीजियो. पुष्टिमार्गमें ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा नहीं करनी सबसूं बड़ो अपराध हे. यासूं बड़ो अपराध कोई नहीं हे. ब्रह्मसम्बन्ध नहीं लिये भये ऐसे कई वैष्णव महाप्रभुजीके अष्टाक्षर लिये भये हते, आचार्यचरण याई लिये सबकु अष्टाक्षर देते कि जिनकु सेवाको सौकर्य नहीं होय, कोई भी कारणसूं, परिवारके कारणसूं, अपने स्वभावके कारणसूं, कोई लौकिक उपद्रवके कारणसूं, जिनकु सेवाको सौकर्य नहीं हतो, उनकूं केवल अष्टाक्षरमंत्र देवेकी पद्धति हती पर महाराजन्ने और वैष्णवन्ने आपसमें मिलजुलके ये पद्धति बिगाड़ दी. उर्दुमें एक ग़ज़ल हे **"गुलचींकी साजिशें हैं न खारोंका हाथ हे. बरबादीए चमनमें बहारोंका हाथ हे.**

गफलतपे नाखुदाकी जमाना हे तानाजर. कश्तीके हादिसोंमें किनारोंका हाथ हे." (नसीम) मने ये बागीचा जो उजड़्यो वो ना तो मालीको गुनाह हतो, ना इन कांटान्को गुनाह हतो, बागीचा जो उजड़्यो तो ये बसन्तऋतुको गुनाह हे. बसन्तऋतु क्या? अपनूने गल्तीसूं ये समझ लियो कि खूब वैष्णव बढ़ जायेंगे, तो पुष्टिमार्गमें वसन्तऋतु आ जायेगी. ऐसे वैष्णवनूने बढ़ बढ़के पुष्टिमार्गकु चौपट कियो कि जो ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा ले लें और घरमें ठाकुरजीकी सेवा ना करे. दीक्षा लेवेके बाद सेवा नहीं करनी यासूं बड़ो अपराध कोई हे ही नहीं. हत्या करो तो यासूं छोटो अपराध हे पर ये ज्यादा भयंकर अपराध हे. अब करें क्या! वो वसन्तके बहाने अपनूने सोची कि जितनेन्को दो लौट बढ़ाओ, मासप्रोडक्शन करो. मासप्रोडक्शनमें क्वालिटी चीप हो गई. मास प्रोडक्शनमें अपन् अपनी क्वालिटी मेन्टेन नहीं कर पाये. ये मास प्रोडक्शनकी अपने यहां जरूरत नहीं हे. अपने यहां क्लास प्रोडक्शन कियो होतो, ये दो सेवा करवेवाले वैष्णव होते और मास अष्टाक्षर जपवेवाले होते तो पुष्टिमार्गको कोई नुक्सान नहीं होतो पर ब्रह्मसम्बन्ध लेके ये मास प्रोडक्शन जो भयो, **"बरबादीए चमनमें ये बहारोंका हाथ हे"**. वो बहार आई वैष्णवन्की ब्रह्मसम्बन्ध लेवेकी, वाने ये सत्यानाश कियो हे सम्प्रदायको, वाने हम महाराजन्की आदत बिगाड़ी, वाने तुम वैष्णवन्की आदत बिगाड़ी, वाने सम्प्रदायकी आदत बिगाड़ी और एक इतनो बड़ो महामंत्र, इतने बड़े पथपे चलवेको महामंत्र, प्रभुको महाप्रभुजीको वरदान, महाप्रभुजीकी योजना, अपनूने सब चौपट करके रख दी. एक छोटीसी मिस्टेकके कारण अपनूने ब्रह्मसम्बन्धकु इतनो चीप बनायो. ब्रह्मसम्बन्ध इतनो चीप नहीं हतो. ब्रह्मसम्बन्ध बहोत महत्त्वपूर्ण बात हती. तुम या बातको ध्यानसूं सुनियो. तुमने ब्रह्मसम्बन्ध लियो हे तो ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करनी चइये. नहीं तो ब्रह्मसम्बन्ध लेनो ही नहीं.

हमकु एकने कही कि "तुम्हारो काम हे ब्रह्मसम्बन्ध देनो.

तुम ब्रह्मसम्बन्ध दे दो. हम और ठाकुरजी निपट लेंगे आपसमें. तुम ब्रह्मसम्बन्ध हमकु करवा दो फिर हम और हमारे ठाकुरजी समझ लेंगे आपसमें, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं हे वामें". हमने कही कि "तुम तो आपसमें समझ भी लोगे ठाकुरजीसूं पर महाप्रभुजीने कही हे कि जो बिना विचारे या दीक्षाकु दोगे सो अजगर बनेगो और चेलायें सब चींटी बन जायेंगे. अगले जन्ममें मैं अजगर बनूं और तुम मेरेकु आके खाओ ऐसी भयंकर कल्पना मोकुं अपने मनमें नहीं लानी. क्यों तुम चींटी बनो हो क्यों मैं अजगर बनूं! मैं सुखी हूं बिना ब्रह्मसम्बन्ध दिये. तुम क्यों मोकुं खावेके लिये भूखे हो इतने! तुमकु जासूं ब्रह्मसम्बन्ध लेनो होय सो लो पर मैं अजगर योनिमें पड़नो नहीं चाहूं हूं. मैं अपनी या योनिसूं प्रसन्न हूं." स्पष्ट कह्यो हे **"विचार्यैव सदा देयं कृष्णनाम विशेषतः अविचारितदानेन स्वयं दाता विनश्यति"** (जलभे.वि.३). तुम जा महाराजसूं ब्रह्सम्बन्ध लो हो वा महाराजको तुम अहित करो हो, यदि ब्रह्मसम्बन्ध लेवेके बाद तुम सेवा नहीं करो हो वा दिन तुमने अपने गुरुको अहित कियो. तुम्हारो हित अहित तो ठाकुरजीसूं सम्बन्ध भयो तो तुम जानो और ठाकुरजी जानें. वो वैष्णवनूंमें और महाराजनूंमें दोनोंमें गल्ती हे. तुम्हारी ही गल्ती नहीं हे. ये महाराजनूकी गल्ती हे कि ब्रह्सम्बन्ध दें या तरहसूं यदि सेवा नहीं करनी होय तो. सृष्टि बढ़ावेके चक्करमें ब्रह्मसम्बन्ध देनो, यासूं भयंकर सम्प्रदायमें और कोई पाप नहीं हे. जो सेवा करनो चाहतो होय वाकु ही ब्रह्मसम्बन्ध देनो चइये. जामें सेवा करवेकी भावना होय, वाकु ही ब्रह्मसम्बन्ध देनो चइये, बाकी ब्रह्मसम्बन्ध नहीं लेनो हजार गुनो अच्छो हे. वार्तामें आवे हे कि **"इनको बरजे हते पर आये ताको फल पाय रहे हें"** (८४.वैष्ण.वार्ता). कोईने पूछी कि "तुम्हारे पुष्टिके सम्प्रदायमें इतने पतले शिष्य क्यों?" तो महाप्रभुजीने कही कि "हमने इनकु ना पाड़ी हती कि या मार्गमें मत आओ पर ये आये वाको फल पाय रहे हें." तो ये मार्ग तापक्लेशको मार्ग हे. भगवत्सेवार्थ सर्वस्वविनियोगको मार्ग हे. ये मार्गमें

चल सकते हो तो ही आनो चइये. या मार्गकूं ब्लोक करवे आवेकी जरूरत नहीं हे. रस्तामें बैठ जाओ और चलो ही नहीं. न या बाजू जाओ और न वा बाजू जाओ. ऐसे या मार्गमें आवो तो वो महान् हानिप्रद चीज हे.

(वरः तुष्यति नान्यथा)

या तरहसूं या मार्गमें कभी आनो नहीं चइये. भगवत्सेवा करनी होय तो ही ब्रह्मसम्बन्ध लेनो चइये. नहीं तो न लेनो चइये और न देनो चइये. ये ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा भगवदमुखारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा हे. होलीमें श्रीठाकुरजीके कपोलपे गुलाल खिलावेकी दीक्षा हे. नाकपे नकबेसर धरावेकी दीक्षा हे. श्यामस्वरूप होय तो चिबुक धरावेकी दीक्षा हे. काननूमें कर्णफूल धरावेकी दीक्षा हे. मस्तकपे तिलक धरावेकी दीक्षा हे. ये तुमकु अलकावली धरावेकी दीक्षा हे. ठाकुरजीके मस्तकपे बाल लगावेकी दीक्षा हे. ये करवेकी अगर तुम्हारी वृत्ति नहीं हे तो क्यों व्यर्थमें ब्रह्मसम्बन्ध लो हो!

आचार्यचरण वहां आज्ञा करें हें **''प्रौढापि दुहिता यदवत् स्नेहाद् न प्रेष्यते वरे तथा देहे न कर्तव्यं वरः तुष्यति नान्यथा''** (अंतः.प्रबो.८). अपनी लड़कीको ब्याह करवा दें और फिर कहो कि ''ससुरालमें जायेगी तो दुःखी होयगी.'' याके लिये पीहरमें ही पालके रखो तो तुम अपनी लड़कीको हित कर रहे हो कि अहित कर रहे हो! ब्याह क्यों करवायो! रखते कुंवारी वाकु. एक तो गरीबको ब्याह करवायो और फिर अपनो वात्सल्य दिखा रहे हो कि ''ससुरालमें जायेगी तो दुःखी होयगी.'' याकु घरमें पालपोसके बड़ी करो और घरमें ही रखो तो फायदा क्या भयो! ब्याह क्यों करवायो! **''तथा देहे न कर्तव्यम्''**. या देहकु अपनी बेटीकी तरह मानो और अपने आपकु पिताकी तरह मानो और कृष्णकुं याको पति मानो. तो याको कृष्णके साथ सम्बन्ध करवायो हे तो कृष्णकी सेवामें याकु भिजवा

दो, याकु अलग मत पालो. “**वरः तुष्यति नान्यथा**” यदि तुमने ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा नहीं करी तो यामें वरकु संतोष नहीं होयगो. पर हम सब ऐसे फ्रोड निकले कि जबरदस्ती ब्याह करवानो और ब्याह करके ससुराल नहीं भिजवानो. अरे ऐसो ब्याह करवावेकी जरूरत क्या! ये कौभाण्ड करवेकी जरूरत क्या! कौन तुमकु समझावे हे ऐसी विचित्र बात! कैसे ये बात अपने वैष्णवसम्प्रदायमें घुस गई! सोच सोचके परेशान हें पर समझमें नहीं आवे. तो ये ब्रह्मसम्बन्ध पुष्टिभक्तिमार्गकी दीक्षा हे, ये कभी मत भूलियो. ब्रह्मसम्बन्ध भगवान्‌के मुखारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा हे. चरणारविन्दकी दीक्षा, जामें तुम पार पहोंचनो नहीं हतो, जामें तरनो हतो.

(शरणागतितात्पर्य)

ये तो तुम अष्टाक्षरसूं भी तर सको हो. कृष्णनाममें इतनी सामर्थ्य हे कि तुमकु तरा दे (तुम्हारो उद्धार कर दे). तुम तो ‘शरणम्’ और केह रहे हो और ज्यादा. मने केवल कृष्णनाम बोलो तो तर जाये इतनो कृण्णनाममें सामर्थ्य हे, तो तुम तो ‘शरणं’ केह रहे हो (शरणागति ले रहे हो). जब प्रभु “**सकृदेव प्रपन्नाय ‘तवास्मि’ च इति याचते अभयं सर्व भूतेभ्यो ददामि एतद् व्रतं मम.**” (वाल.रामा.६।१८।३३). “**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षस्यामि मा शुचः**” (भग.गीता १८।६६) या तरहसूं कहें हें, तुमकु यदि तरनो ही हे तब तुम अष्टाक्षरसूं क्यों नहीं तर जाओगे! तरनो होय तो तर जाओ, कल तरते होय तो आज तर जाओ, कहो तो हम विदाई समारोहमें आवे तैयार हें यदि तुम तरते होओ तो पर सेवामार्गको क्यों या तरहसूं विच्छिन्न करो हो! या आखे मार्गकी मर्यादा और ये बिचारे गोस्वामिनूकुं सबकुं अजगर योनिमें फेंकवेकी व्यापक योजना क्यों बनाओ हो ये हमकु समझमें नहीं आवे हे! बड़ो क्लेश होवे हे सोच सोचके. तुम वैष्णवनूकी ही गल्ती नहीं हे हम गोस्वामीनूमें भी सुसाईडल टेन्डेन्सी हे अजगर

योनि लेवेकी. बिना सोचे समझे जो आवे दे वाकु ब्रह्मसम्बन्ध! कौन जाने क्या लाभ होतो होयगो! ये गलत दीक्षाको प्रकार चल गयो. वाईके लिये कहें हें **लौकिक कामखण्डन, ऐश्वर्य(दान), स्वकामदान, अलंकरण, आपद्दूरीकरण.** यासूं स्वकामदानको अधिकार सिद्ध होवे हे. ये चरणारविन्दकी अष्टाक्षरदीक्षासूं तुमकु ब्रह्मसम्बन्धमन्त्र लेवेको अधिकार सिद्ध होवे हे. वाके बाद तुमकु भगवत्कामको दान मिले हे. जा बखत तुम कहो कि "हे कृष्ण मैं तेरो हूं." तब वाके चरणारविन्द देखके मत कहो, भगवान्‌को मुखारविन्द देखके कहो हे "हे कृष्ण! मैं तेरो हूं". जा बखत अष्टाक्षर लो वा बखत चरणारविन्दकी ओर ध्यान दो. "कृष्ण तू मेरो शरण, मेरो रक्षक हे". जा बखत तुलसी समर्प रहे हो वा बखत तुलसी चरणमें समर्पो पर अपनी दृष्टि कृष्णके मुखपे रखो, तब ब्रह्मसम्बन्धको सच्चो आनन्द आयेगो. यदि चरणमें ही तुलसी समर्पी होती तो अष्टाक्षर बोलके क्या तुलसी नहीं समर्पी जा सके हे! अष्टाक्षर बोलके भी तुलसी समर्पी जा सके हे.

हमकु कई बखत जब वैष्णव बहोत पीछे पड़ जायें तो एक फ्रोड करवेकी इच्छा होय. गाममें करूं तो हल्ला मचायें या लिये करूं नहीं पर एक फ्रोड करवेकी इच्छा होय कि ऐसेनूंकुं ब्रह्मसम्बन्ध बोलवेकी बजाय अष्टाक्षरमंत्र बुलवाके तुलसी समर्पवाके भेज देनो कि "जाओ दे दियो ब्रह्मसम्बन्ध!" ऐसे धोखाधड़ी करवेकी इच्छा होय पर गाममें लोग हल्ला मचायें कि "महाराज नये नये पंथ निकाले." "एक तो मियां बाबरे और ऊपर खाई भांग" हो जाये या लिये करूं नहीं. नहीं तो जब वैष्णव बहोत तंग करें तो सचमुचमें कई बखत ऐसी इच्छा होवे कि बुला बुलाके सबकु कहूं कि "मैं भी दऊं ब्रह्मसम्बन्ध." "टके सेर भाजी टके सेर खाजा!" तुलसी हाथमें देवेकी और अष्टाक्षर बुलवाके तुलसी समर्पवानी और केहनो कि "जाओ दे दियो ब्रह्मसम्बन्ध, भागो यहांसूं." पर करूं और व्यर्थमें कोईकु पता चल जाये तो कौभाण्ड हो जाये कि "श्यामू

बावा नये नये नियम काढ़ें.'' बाकी ऐसी धोखाधड़ीकी मनमें बड़ी इच्छा होवे हे.

तो ये **लौकिककामखण्डन, ऐश्वर्य(दान), स्वकामदान, अलंकरण, आपद्दूरीकरण** या विधिसूं पंचविध उपकार भगवान्के चरणारविन्द करें हें, वामें हमकु और कोई उपकार नहीं चइये हे. **केवल तापनिवारणात्मकं एकमेव उपकारं करोतु इति अर्थः**. गामके लिये पांच उपकार कर पर अपने पुनः पुनः दर्शनसूं तेंने जो हमकुं स्मरको प्रदान कियो हे जो हमारे हृदयमें तेंने ताप जगायो हे वा ताप दूर कर दे बस! इतनोसो एक उपकार हमारो कर. एक बखत ''**स्मयमानमुखाम्बुजः पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः**'' (भाग.पुरा.१०।२९।२) सो हमारे तापको निवारण करवे तू प्रकट हो जा तो और कोई उपकार हमकु नहीं चइये. ये मुखारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा हे ना! या लिये गोपिकायें ऐसे कहें हें.

श्रीगुसांईजी '**पद्मज**'को अर्थ नख करें हें, नखके कारण चरणकी शोभा जो बढ़े हे वाके कारण चरण नखसूं पूजित हें ऐसो बोध होवे हे. ऐसे ही **ध्वजादिचिन्हानि च उक्तरुपाणि ज्ञेयानि**. ऐसे ही ध्वजा-चक्रादि चिन्हके रूप भी समझने. या तरहसूं **प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयम् आपदि चरणपंकजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेषु अर्पय आधिहन्** पे कही गई टिप्पणी पूरी भई.

----*----

॥श्लोक : १४॥

उत्थानिका : तदनन्तरं ततः उत्तमाः प्रार्थयन्ते सुरतवर्धनम् इति.

विवरणम् :

पेहलेवाली गोपिकाने प्रभुसूं प्रार्थना करी कि तेरे चरण प्रणतजीवन्‌के तापकूं दूर करवेवाले हें. तेरे चरणन्‌में धर्मको सामर्थ्य हे. जा बखत कोई आर्त पुकारे तो तू प्रकट होवे हे. तेरे चरण प्रकट होके जा बखत भूमिकु अपनो स्पर्श प्रदान करें हें वा बखत वाके अलंकार रूप बन जायें. आपद्‌में एक तेरे चरण ही ध्येय हें, ध्यान धरवे लायक हें. ध्यान धरवे मात्रसूं तेरे चरण आपत्ति दूर कर दे हें. यासू तेरे चरणारविन्दकी महिमा तेरेसूं भी अधिक हे, क्योंकि तू प्रकट नहीं हो रह्यो हे, आपद्‌को दूर नहीं कर रह्यो हे, तेरे चरणारविन्द आपद्‌को दूर करें हें. जब पृथ्वीपे इतनो उपकार करे हे, ब्रह्मासूं इतनो सधे कि वो धर्मसूं विधिवत् पूजन करे हे और प्रार्थना करे हे कि ''प्रकट हो जाओ'' तो तू प्रकट हो सके हे. पृथ्वीपे तोकूं कांटा चुभें, शिला चुभे, कंकड़ चुभें, पत्थर चुभे और फिर भी पृथ्वीपे तोकु इतनो स्नेह कि तू पादुका धारण करके चलनो नहीं चाहे और वापे तू अपने चरणन्‌की छाप छापे हे, तो हमने तेरो क्या बिगाड्यो! हम क्या तेरे प्रणत नहीं हें! हम क्या तेरे चरणकी अर्चना करनो नहीं चाहें हें! प्रणयावलोकनसूं हम तेरे चरणकी अर्चना नहीं करनो चाहे हें! क्या हम तेरे सामने प्रणत नहीं हें! तो जब तू हमारेपे चरणारविन्द पधरायेगो तो वो हमारे लिये मण्डनरूप नहीं होंयगे क्या!

यामुनेयाचार्य बहोत सुन्दर कहें हें **''ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ 'तवाहमस्मि' इति च याचमानः तवानुकम्प्यः स्मर तत्प्रतिज्ञां मदेकवर्जम् किमिदं व्रतं ते''**. (आळवन्दार.स्तो.६७) एक बखत ''तेरो हुं'' ऐसे

केह दे तो तू वापे प्रसन्न होवे, तो ऐसी अनुकम्पामें मोकूं ही क्यों अपवाद समझे हे ये बता? खाली मोकूं ही छोड़नो, ऐसो भी क्या! जा बखत तेंने सौगन्ध खाई थी कि "जो तेरो हूं केह दे, तो वापे मैं कृपा करूंगो", तो वा वखत तेंने क्या ये क्वालिफिकेशन रख्यो हतो कि याकु छोड़के और पे कृपा करूंगो! ऐसो वा बखत मोकूं अपवाद बनाके छोड़ दियो थो क्या! ये कैसी प्रतिज्ञा तैंने ली, ये तो समझा मोकूं! **"रघुवर यदभूः त्वं तादृशो वायसस्य प्रणतइति दयालुः यच्च चैद्यस्य कृष्ण प्रतिभवम् अपराद्धुः मुग्ध सायुज्यदो अभूः वद किमपदमागः तस्य ते अस्ति क्षमायाः. ननु प्रपन्न सकृदेव नाथ! 'तवाहमस्मि' इति च याचमानः तवानुकम्प्य स्मरत प्रतिज्ञां मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते"** (आळवन्दार.स्तो.६६-६७) जब तू कौआपे जो सीताजीके चरणपे चौंच मार रह्यो थो वापे तू प्रसन्न भयो, जो चेदी शिशुपाल तोकूं सौ सौ गालियें दे रह्यो थो वापे तू प्रसन्न भयो, तो मेरेमें तोकूं ऐसो कोनसो पाप दीख रह्यो हे कि मेरेपे तू प्रसन्न नहीं हो रह्यो हे? तेरी क्षमाको विषय मैं क्यों नहीं बन पा रह्यो हूं? ऐसो मेरो कोनसो पाप हे बस मोकु ये समझा दे तु! ऐसो यामुनेयाचार्य कहें हें.

ऐसे ही ये गोपिका कहे हे **"प्रणतकामदं.... स्तनेष्वर्पयाधिहन्"** तु मेरो स्वरूप नहीं जाने हे कि तेरो स्वरूप भूल गयो हे कि क्या बात हे! ये तो बता. हम सब तेरे हें. श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें **"सर्वज्ञे त्वयि अज्ञतरः किं वच्मि व्रजपालक! सर्वथा अहं प्रपन्नोऽस्मि सान्वयः सपरिग्रहः"** (विज्ञप्ति.१।३४) तू सर्वज्ञ हे, मैं अज्ञतर ज्यादा बोलूं तो भी अच्छी बात नहीं लगेगी और तेरी शोभा नहीं लगेगी ना! सर्वज्ञकुं जाके कोई इन्फोरमेशन दे कि आजकी ये मेन इन्फोरमेशन हे, तो सर्वज्ञको अपमान हे कि नहीं! टीचरको जाके जब कोई पढ़ावे लग जाये तो टीचरको अपमान हे कि नहीं! अरे सर्वज्ञ जो सब कछु जाने हे वाकु कौनसी इन्फोरमेशन अपनेकू सप्लाई

करनी हे! सर्वज्ञकी तरहसूं सर्वज्ञ हे और मैं तो अज्ञतर हूं **"किं वच्मि व्रजपालक"** तू व्रजपालक हे और हम व्रजके हें. **"सर्वथा अहं त्वदीयोऽस्मि"** तेरे प्रणत हें, सर्वथा त्वदीय हें, तेरे हें, इतनो ही नहीं हमारो शरीरको रोम रोम कण कण तेरो हे. तो तोकुं चरण धरवेमें कहां आपत्ति आ रही हे, ये तो बता! क्यों हमारे शरीरको अलंकरण तेरे चरण धरवेसूं नहीं होयगो! यदि तेरो चरण धरणीको मण्डन बने हें, तो हमारे देहको मण्डन क्यों नहीं बने हे, ये तू बता! वा बातकूं जब याने कही तब ये गोपिका केह रही हे. ये राजसीमें भी सात्त्विक हे. ये केह रही हे **"सुरतवर्धनं शोकनाशनं... नः ते अधरामृतम्"** जो राजस-तामस हती मने बारहवें श्लोककी गोपिका वो या बखत प्रभुकु वीर केह रही हे तो वो युद्धवीर कहे हे. क्योंकि वामें खुदमें तामसभाव हे. प्रभुकु 'वीर' तो कहे हे पर युद्धवीर कहे हे. वाके भाव भी युद्धके से भाव हें कि आज दो दो हाथ हो जायें. लड़ाईको जो शौखीन होवे, सो वाकी बांहमें खुजली होती रेहवे. हाथमें मारामारीकी खुजली होती रेहवे. वो जा बखत 'वीर!' कहे हे, तो ऐसे कछु तामसभावसूं प्रभुकु 'वीर' कहे हे कि यदि संधुक्षण कियो हे तो चल हो जाये युद्ध, पर ये ऐसो नहीं केह रही हे क्योकिं ये सात्त्विक हे. ये गोपिका प्रभुकु दानवीर केह रही हे, युद्धवीर नहीं केह रही हे. 'वीर' ये भी कहे हे, 'वीर' वो गोपिका भी कहे हे. वो भी भगवान्में वीरता चाहे हे, ये भी भगवान्में वीरता चाहे हे. वो युद्धवीरता चाहे हे अपने तामसभावके अनुरूप और ये दानवीरता चाहे हे प्रभुमें अपने सात्त्विकभावके अनुरूप.

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्॥
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर! नस्तेऽधरामृतम्॥१४॥

सुबोधिनी : अधरामृतं वितर इति, अत्रापि अधरामृतं गुणाधायकम्. एतस्य चतुर्गुणत्वमेव विवक्षितं, ज्ञान-वैराग्ययोः अत्र अनुपयोगात्. तस्य ऐश्वर्यम् आह सुरतवर्धनम् इति, गोपिकासु परिच्छिन्नः कामः अपरिच्छिन्नेन सह संयोगे क्लिष्टो भवति. यथा रसाः क्षुदुद्बोधकाः भवन्ति तथा अयं रसः कामोद्बोधकः. किञ्च न केवलम् अयं काममेव पोषयति किन्तु सर्वानेव अन्तःकरणदोषान् निवारयति. अतः शोकनाशकत्वं ज्ञान-वैराग्यरूपता च निरूपिता, ऐश्वर्य-धर्मरूपता च. यशोरूपताम् आह स्वरितो नादयुक्तो यो वेणुः तेन सुष्ठु चुम्बितम् इति, यशो हि नादज्ञैः कीर्त्यते; वेणुश्च परमभक्तइति तेनापि चुम्बितमेव नतु पीतम्. इतररागविस्मारणम् इति श्रियो रूपं, सा हि सर्वं विस्मारयतीति. स्वतःपुरुषार्थत्वेन प्रमेयबलम् उक्तं, पूर्वेण प्रमाणबलम्, शोकनाशनम् इति फलबलं, सुरतवर्धनम् इति साधनबलम्-एवं चतुर्विधपुरुषार्थप्रदं स्वतःपुरुषार्थरूपम्. नृणाम् अस्माकम् अधिकारिणां दुर्लभपुरुषार्थानां वा. यद्यपि इदं देयं न भवति तथापि वितरगुणेन दातुं शक्यत इति वितर इति उक्तम्. वीर! इति सम्बोधनात् शौर्यं नान्यथा संभवति इति निरूपितम्।।१४।।

(दानवीर)

दानवीर मने क्या? कालीदास कहे हे जा बखत कौत्स नामके ॠषिने अपने गुरुके पास अध्ययन पूरो कियो और अध्ययन पूरो करके गुरुजीसूं कही कि "आप गुरुदक्षिणा बताओ, मैं क्या गुरु दक्षिणा दूं?" वो योग्य शिष्य हते सो गुरूजीने कही कि "तू मोसों पढ्यो ये ही तेरी गुरु दक्षिणा हे. मोकुं कछु नहीं चइये तेरेसूं." फिर भी याने कही कि "मेरेसूं आप दक्षिणा तो लो ही लो." बहोत आग्रह कियो तो गुरुजीकु गुस्सा आ गयो. गुरुजीने कही कि "चौदह विद्याओंके लिये चौदह करोड़ रुपया लाके दे." अब बिचारो कौत्स जंगलमें रेहवेवालो वृक्षसूं फल तोड़के खावे, वल्कल पहरे, धन्धा भी करे तो भी चौदह करोड़ कितने दिनमें कमावे

और कब लाके दे! तब तक गुरुजी जियें कि नहीं जियें और वो खुदभी जिये कि नहीं जिये! सो वो बहोत घबरा गयो. बहोत घबरा गयो सो रघुके पास गयो. अब वो रघुके पास भी ऐसे दिन गयो कि रघुने यज्ञ करके अपनी सारी सम्पत्तिको ब्राह्मणनकूं दान कर दियो. अब ये जा बखत रघुके पास गयो वा बखत रघुके भण्डारमें कछु नहीं हतो. याने कही कि "मैं अब क्या करूं?" तब रघुने कही कि "तुम थोड़े विलम्बसूं आये नहीं तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति कोई अन्य ब्राह्मणके बजाय तुमकु दे देतो. अभी तो मेरे पास कछु भी नहीं रह्यो." पर रघु दानवीर हतो. वाने कही कि मेरे घरमें आके कोई खाली हाथ लौट गयो, ये मोसूं सहन नहीं हो सके. मृत्यु सहन हे मोकूं पर मेरे घरमें आके कोई खाली हाथ लौट जाये ये सहन नहीं होवे. "**माभूत् परीवादनवावतार**" (रघुवंश.५।२४). तो वाकु दान देवेके लिये वाने कुबेरपे अटेक करवेकी सोची. तो कुबेरकु पता चली कि आज रघु अटेक करवेवालो हे तो रातों रात वाने भण्डार भरवा दिये कि क्यों अटेक करे हे! रघुको अटेक कोई ऐसो आक्रमण नहीं हतो कि जामें हारजीतके फिफ्टी फिफ्टी परसेन्ट चान्स होंय. वा आक्रमणमें शतप्रतिशत कुबेर हारतो. तो कुबेरने सोची कि कौन रिस्क ले! भर दो ना भण्डार. व्यर्थमें युद्ध क्यों करनो, तो सारो भण्डार कुबेरने रघुको भरवा दियो. सुबह जब रघु प्रस्थानके लिये उद्यत हुये तब ही राजकोषरक्षकोंने सूचना दी कि कोषगृहमें आकाशसे सुवर्णकी वर्षा हुई हे. तो वाने कही कि "सारीकी सारी सम्पत्ति या कौत्स ब्राह्मणकु दे दो." कौत्सने कही कि "चौदह करोड़ मेरे गुरुजीने मांगे हें, चौदह करोड़सूं एक पैसा ज्यादा मोकूं तो चइये नहीं, बाकीको मैं कहा करूंगो!" यहां रघु कहे कि "भई मेरे भण्डारमें तो जितनो आयो वो तेरे निमित्त ही आयो हे. वो तो मैं तोकुं ही दऊंगो और कोईकु नहीं दऊंगो." वहां कालीदास बहोत सुन्दर वर्णन करे हे. "**जनस्य साकेतनिवासिनः तौ द्वावप्यभूताम् अभिनन्द्यसत्त्वौ गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपो अर्थिकामाद्**

अधिकप्रदश्च'' (रघुवंश.५।३१). ये याचक ऐसो हतो कि याकु जितनो गुरुकु देनो हतो वासूं ज्यादा एक पैसा नहीं चइये और दाता ऐसो हतो कि सबको सब दिये बिना मैं मानूंगो नहीं. एक दूसरेकु धन्य! केहवे लग गये. कौत्स कहे कि ''मैंने तेरे जैसो दाता नहीं देख्यो'' और रघु कहे कि ''तेरे जैसो मांगवेवालो नहीं देख्यो कि 'मैं दे रह्यो हूं और तू ले नहीं रह्यो 'हे.'' पेहले मोसूं आके कही कि चौदह करोड़ रुपया चइयें और अब दे रह्यो हूं तो केह रह्यो हे कि एक पैसा ज्यादा नहीं चइये. अरे चौदह करोड़ लेने हें तो थोड़े ज्यादा ले ले, क्या हानि हे तोकूं! वो कहे कि एक पैसा ज्यादा नहीं लूंगो. हाथ नहीं लगाऊंगो चौदह करोड़के अलावा. मने दानकी दक्षिणा भी नहीं लऊंगो. नहीं तो ब्राह्मण पेहले तो दान मांगे और दानकी दक्षिणा भी मांगे. ये कहे कि मोकूं दानकी दक्षिणा भी नहीं चइये. मेरे तो सिर्फ गुरुकु जितनो देनो हे उतनो ही चइये. दोनों एक दूसरेके अभिनन्दचरण हो गये. ये दानवीरको लक्षण केहवावे ''**चिन्तिताधिकादायकः**'' (पु.स.ना.४।६१) होवे. ये जा बखत वीर कहे हे, वा बखत या अर्थमें 'वीर' केह रही हे कि तू दानवीर हे, क्योंकि याको सात्त्विकभाव हे, राजसभाव होते भये भी तामसभाव नहीं हे. भाषा ऐसी सात्त्विक हे. पेहले वो जो 'वीर' केह रही हे वो दांत कटकटाके दांत पीसके 'वीर' केहती होंयगी और ये जा बखत प्रभुकु 'वीर' केह रही हे तो बड़े सात्त्विकभावसूं प्रार्थनासूं दैन्यसूं प्रभुकु 'वीर' कहे हे. ये दांत किटकिटा नहीं रही हे कि आ जाओ, दो दो हाथ हो जायें युद्धके. याको बड़ो सात्त्विकभाव हे. ये बड़ी विनम्रतासूं 'वीर' केह रही हे. सात्त्विकभावसूं प्रभुकु दैन्यतासूं वीर केह रही हे ''**सुरतवर्धनं.. नस्तेऽधरामृतम्**''.

यों कहे हें जो थोड़ो डिस्ट्रिब्यूट कर. **वितर** कहें हें बांटवेको. ये बिचारी सात्त्विक हे तो ये यों भी केह रही हे कि जितनो मोकूं चइये उतनो तो मोकु दे और बाकी सबमें भी बांट, तेरी

बाटमें बहोतसे भिखारी बैठे भये हें. थोड़ो थोड़ो उन सबमें बांट दे. ऐसी याकी बड़ी सात्त्विक प्रार्थना हे. **अधरामृतं वितर इति, अत्रापि अधरामृतं गुणाधायकम्.** पेहले भी एक कुमारिकाने ऋषिरूपा गोपिकाने अधरामृतदानकी प्रार्थना करी. ये भी प्रार्थना करे हे और यामें और वामें अन्तर ये ही हे कि वाने फिर दोषनिवर्तनकी प्रार्थना करी और ये गुणाधानकी प्रार्थना कर रही हे.

(अधरामृतको चतुर्धावर्णन्)

एतस्य चतुर्गुणत्वमेव विवक्षितं, ज्ञान-वैराग्ययोः अत्र अनुपयोगात्. गुणाधान क्या हे? ये अधरामृतको चतुर्धा वर्णन करे हे. प्रमाणबलसू, प्रमेयबलसूं, साधनबलसूं और फलबलसूं. ये षड्विधवर्णन नहीं करे हे, क्योंकि कहीं प्रभु ज्ञान वापर लें. षड्विध वर्णन करवे जायें और कोई ज्ञानको वर्णन आवे, तो वैराग्य भी करनो पड़े. ज्ञानी बनके जाओ तो मुश्किल, विरक्त बनके बैठ जायें तो मुश्किल. याके लिये वो बड़ी सावधानी रखे हे. ऐसी बात करे ही नहीं. चार बात कहे ऐश्वर्य, वीर्य, यश और श्री बस. ज्ञान-वैराग्यकी बात करे ही नहीं. कहीं गणपतिजीकी तरह तथास्तु केह दें तो मुश्किल हो जाये. तो वो कहे हे ऐसो सट्टा खेलनो ही क्यों कि जामें अपनो नम्बर नहीं लगे. तो वो ऐसो काम ही नहीं करे. वो दूसरी विधिसूं वर्णन करे हे. प्रमाण प्रमेय साधन और फल के प्रकारसूं वर्णन करे हे. मने ऐश्वर्य, वीर्य, यश और श्री को वर्णन करे हे. फलतः ज्ञान-वैराग्य आते होंय, तो वो ज्ञान वैराग्य भी ऐसे अर्थमें लेनो कि जो तुम अपने पास मत रखो और हमकु डिस्ट्रिब्यूट कर दो. ऐसो ज्ञान-वैराग्य प्रभु रखें तो हरकत नहीं पर कहीं ऐसे विरक्त हो जायें कि याचकसूं भी विरक्त हो जायें तो मुश्किल हो जाये. याके लिये फलतः वैराग्य कहे हे. शब्दतः वैराग्य नहीं कहे हे. फलतः वैराग्य केहवेमें एक लाभ होवे हे कि याचकसूं विरक्त नहीं होवे हें. अपने पास रखवेके बजाय सोचें हें कि व्यर्थमें

काहेको लोभ करनो, चलो दे दो. ऐसो वैराग्य होवे प्रभुमें तो तो अच्छो. ऐसो ज्ञान होवे कि बिचारे याचक हें इनकु देनो चइये, इनके याचक होवेको ज्ञान तो प्रभुमें होनो चइये. ऐसो उलटो ज्ञान हो जाये कि क्या जरूरत हे! **"आत्मन्येव आत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदोच्यते"** (भग.गीता २।५५). ऐसो स्थितप्रज्ञताको ज्ञान प्रभुमें आ जाये. **"वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः मुनिः उच्यते"** (भग.गीता २।५६) ऐसो वैराग्य प्रभुमें आ जाये तो मुश्किल हो जाये. लेवेके देवे पड़ जायें. या लिये ये गोपिका ऐसो कोई रिस्क लेवेकु तैयार ही नहीं हे. वो चार तरहसूं वर्णन करे हे **एतस्य चतुर्गुणत्मेव विवक्षितं, ज्ञान-वैराग्ययोः अत्र अनुपयोगात्** यहां ज्ञान वैराग्य को बहोत उपयोग नहीं हे.

(कामनाकी परिच्छिन्नता ब्रह्मकी अपरिच्छिन्नता)

तस्य ऐश्वर्यम् आह सुरतवर्धनम् इति, गोपिकासु परिछिन्नः कामः अपरिछिन्नेन सह संयोगे क्लिष्टो भवति. कहें कि इन बिचारे भक्तनूके भगवानूके बारेमें काम होंय तो कितने हो सकें हें! प्रभुको स्वरूप तो अपरिछिन्न अगणितानन्द हे और अपन् मांगे भी, भगवानूके बारेमें अपन् कामना भी करें तो कितनी कामना कर सकें! अन्तमें करेंगे तो परिछिन्न ही करेंगे ना! जैसे अपन् ज्यादा घरमें बैठें तो दम घुट्र्यो घुट्र्यो लगे. तो अपन् कहें कि चलो एकाध कलाक खुलेमें बेठें. अब एकाध कलाक खुलेमें आके रहे तो भी अपनेकु आकाश कितनो खुल्यो दीखे! वैज्ञानिक लोग कहें कि "तीनमील तक आकाश दीख सके. वासूं ज्यादा आकाश दीख नहीं सके." क्योंकि पृथ्वीकी रेखा तीनमाईल होवेके बाद कर्व लेवे. मने पहाड़ नहीं होंय, कोई चीज बीचमें नहीं आती होय, जैसे यहां तो वनराजी आ गई तो आगे दीखनो बंद हो गयो. लेकिन समझो राजस्थानको डेजर्ट या एकदम समुद्रमें अन्दर चले जाओ, तो कुल कितनो दीखे अपनेकु? केवल तीनमाईल तक दीखे. मने मनुष्यकी दृष्टिकी सामर्थ्य खाली तीनमाईल तक देखवेकी हे. बहोत जोर मारें तो एकाध मील और

देख ले अगर और ऊंचो उठे तो. प्रमाण प्रमेय साधन फल तक जावे दृष्टि. मोक्ष तक तो बहोत कम आदमीकी दृष्टि जाय. बाकी तो धर्म-अर्थ-काममें ही आदमीकी दृष्टि जावे हे. मोक्ष तक कौनकी दृष्टि जावे! आदमी अपने धर्म-अर्थ-काममें लग्यो रहे. महाप्रभुजी कहें हें **"त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते"** (बालबोध.५). आदमीकुं तीनमाईल दीखे. गीतामें भी कह्यो हे ना कि **"त्रैगुण्यविषया वेदाः निस्त्रैगुण्यो भव अर्जुन!"** (भग.गीता २।४५) तीन माईल ही दीखे खाली. थोड़ो ऊपर उठ, अपनेकुं थोड़ो एलीवेट कर जासूं तेरी होराईजनकी लिमिट बढ़े. बहोत बढ़े तो चोथी माईल दीख जाये वासूं ज्यादा तो आदमीकु दीखे नहीं, इतनी सीमित दृष्टि हे. अब आदमीकी इतनी सीमित दृष्टि हे तब दीखे कितनो और मांगे कितनो! जितनो दीखे उतनो तो ही मांगे वासूं ज्यादा तो मांग नहीं सके. वा लिये उनको जो भगवद्विषयक काम हे वह इनके स्वभावके अनुरूप हे ना! अरे भई बच्चा हे बहोत रोवे. अपन् रोवें वासूं चौगुनो ज्यादा रोवे. कैं कैं करे पर भूख कितनी! एक बौटल दूधकी. हल्ला कितनो मचावे पर भूख ज्यादा थोड़े ही होवे! बच्चा छोटो सो छोटोसो पेट वामें एक बोटल दूध समा जावे तो बिचारो आनन्दसूं पीके सो जावे. वाकी कितनी भूख होवे हे! ऐसे ही अपने हृदयको सामर्थ्य कितनो और भगवद्विषयक कामना अपन् कितनी कर सकें! बिचारी एक बोटल **"नः ते अधरामृतम्"** बस मस्त हो जाये और क्या चइये! कछु नहीं चइये. ज्यादा नहीं चइये. छोटीसी कामना उतनी भी हो जाये तो बहोत हे. हो हल्ला मचायें और सुनाई पड़े तो. माँ बिज़ी होय तो बच्चा रोतो ही रहे ध्यान ही नहीं दे, हो हल्ला मचावे कानपे जाय बात तो आके दूध पिला दे.

वासूं कहें हें **गोपिकासु परिछिन्नः कामः अपरिछिन्नेन सह संयोगे क्लिष्टो भवति.** उनकूं तारतम्य ही नहीं बैठे. वहां तो गणितानन्द हे. आपकु एक बड़ी सच्ची बात बताऊं, आपकु पता नही यह तकलिफ

हे कि नहीं! मेरे साथ ये तकलीफ हे आप लोगन्की आप जानो. एक या दो चीज रसोईमें बनी हों ना तो मोसूं ज्यादा खायो जाय पर दस पन्द्रह चीज बनें, तो दिमाग चकरा जाये कि याको खाऊं कि वाको खाऊं! मोसूं तो खायो ही नहीं जाय. सोचतो रहूं और घबराहटके मारे ही आधी भूख भाग जाये कि ये खायें कि वो खायें. एकाध चीज बनी हो खाली रोटी शाक, तो खूब खावेकी इच्छा होवे, चार खा सकते होंय तो आठ खा लें पर पांच दस चीज बन जायें तो चित्त घबरा ही जाये. क्लेश हो जाये. वैसे खावेमें दस चीज बनी हों तो ज्यादा स्वाद आवे पर एक्च्युअली ऐसो नहीं होवे. जितनी ज्यादा रसोई बने तो फिर घबराके कुछ भी नहीं खायो जाये. मोकु तो ऐसो बहोत होवे, आप लोगन्कू होवे कि नहीं ये पता नहीं.

ऐसे ही परिछिन्न सामर्थ्यमें इतनी वेराइटी कि वामें कहा खावे कहा देखे! और देखके ही जीव घबरा जाये. ब्रह्मको कितनो उपभोग कर सके हे! मने उपनिषद् याकु कहे हे **"सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन सोश्नुते सर्वान् कामान सह ब्रह्मणा विपश्चिता:"** (तैत्ति.उप.२।१) या हृदयकी गुहामें अब हृदय कितनो छोटोसो, एक तो या अनन्त ब्रह्माण्डके विस्तारमें, मनुष्य कितनो छोटो प्राणी! कोई प्राणी हाथी जैसो बन्यो होतो या व्हेल जैसो बन्यो होतो तो कछु शोभा हती. कितनो भी मोटो आदमी होय पर ब्रह्माण्डमें हाथी और व्हेलन्की तुलनामें देखो तो मनुष्य कितनो छोटो प्राणी हे! वामें वाको हृदय कितनो एक मुट्ठीके बराबर. थोड़ो बड़ो हो जाये तो हार्टअटेक आ जाये गरीबकु. हार्ट एक्स्पान्शनको रोग हो जाये. हार्ट बड़ो नहीं हो सके तो इतने छोटेसे हृदयमें हृदयगुहा कितनी छोटी! मने चार हिस्सा तो हृदयके यों ही बंट जायें और चार हिस्सा बंटवेके बाद उन चार हिस्सान्के बीचकी गुहा केविटी कितनी छोटीसी होवे हे! अब वा छोटीसी गुहामें वाके

कितने काम समा सके हें! अब वा अनन्त ब्रह्मके अनन्त विस्तारनूकु देखो, वाके अनन्त रूपनूकु देखो, वाकी अनन्त लीलानूकु, अनन्त नामनूकु देखो, तो कामना कर करके कितनी करोगे!

अभी हमारे यहां वो अमरीकन श्यामदास आयो हतो. अब हंसूभाईके घरकी तरह अमरीकामें संयुक्तपरिवारकी प्रणाली नहीं. रोज इनके घरमें नये नये फेमिली मेम्बर दीखें. तो वो चकरायो कि इतने फेमिलीमेम्बरके नाम कैसे याद रहें! तो एक दिन वाने हंसूभाईकी परीक्षा ली कि "फेमिलीमेम्बरके नाम बताओ बोलके!" उनके यहां मियां, बीबी और बच्चा. इतनो ही परिवार रहे. अब अमरीकामें तो साथ रेहवेकी पद्धति ही नहीं. तो उनकूं अपनो नाम याद रहे, बीबीको नाम याद रहे और दो चार बच्चानूको नाम याद रहे. बहोत जोर मार्‌यो तो माँ-बापके नाम याद रहे. वृद्धाश्रममें जावे तब उनके नाम भी भूल जाते होंयगे शायद. तातजीके नाम तो मुश्किलसूं ही याद आवें. कोई अपनी छे पीढ़ीके पूर्वजनूको नाम गिना दे तो उनकूं भ्रम हो जाये कि कोई रोयल परिवारके तो नहीं हे!

हमकु एक यूरोपियन मिल्यो. तो वाने हमकूं कही कि "तुम्हारे पिताजी कौन थे?" हमकु क्या पता कि इतनो भयंकर रूप हो जायगो. तो हमने पिताजीको नाम, उनके पिता गोकुलनाथजी महाराज, उनके पिता दामोदरलालजी महाराज, उनके पिता सब गिनाये. तो वाने पूछी कि "तुम्हारो कुछ रोयल परिवार हे क्या?" हमने कही कि "नहीं भई सामान्य परिवार हे." तो वाने पूछी कि "इतनी पीढ़ीनूके नाम कैसे याद रखो हो!" तो हमने कही "हमारे यहां तो सबकु याद रहें हें. शादीमें तीन तीन पीढ़ीन् तकके नाम तो लिवाये ही जायें." तो यहां याद रहें और वहां छोटे परिवार होवें या लिये याद नहीं रहें. अपने यहां पेहलेसूं ही बड़े परिवारको कन्सेप्ट

रह्यो हे. **"शतायुषान् पुत्र-पौत्रान् वृणीश्व"** (मन्त्राक्षता). अपन्कू सबके नाम याद हें, वहां नाम ही याद नहीं रहें.

(क्षुदुद्बोधक और अन्तःकरणदोषनिवर्तक)

तो ऐसे बहोत कामना आ जायें तो कितनी कामनान्को नाम याद रखें! भई ये कामना वो कामना गड़बड़ हो जाये. इतने छोटे हृदयमें वा प्रभुकी अनन्तलीलामें लिये भये अनन्तरूप और उनके अनन्तगुणन्की कामना कितनी आ सकें! हृदयगुहा जितनी तो आ ही सकें. वा गुहाके सामने प्रभुके जब इतने रूप परोस दिये जायें. वा कामनाके सामने, वा छोटीसी गुहाकी भूखके सामने, इतने रूप, इतने गुण, इतनी लीलान्को थाल परस्यो तो जीव घबड़ा जाये कि **"सह ब्रह्मणा विपश्चिता:"**. क्या लें और क्या न लें! या कन्फ्युजनके कारण शायद भूख ही कमजोर पड़ जाये. तो आचार्यचरण कहें हें **अपरिछिन्नेन ब्रह्मणा सह, कृष्णेन सह संयोगे क्लिष्टो भवति.** इन गोपिकानूमें रह्यो भयो जो अपरिछिन्न काम हे, वासूं याकू क्लेश पहोंच जाये, क्योंकि वाको वो बेलेन्स नहीं आवे. **यथा रसाः क्षुदुद्बोधका भवन्ति तथा अयं रसः कामोद्बोधकः.** जब क्लिष्ट हो जाये, खावेसूं पेहले देखके अघा जाये, बहोत सामग्री बनी होय तो देखते ही पेहले पेट भर जाये. तो अपने यहां अन्नकूटमें एक नियम हे कि जब सब सामग्री बनाके धरें तो भूख लगवेवाली अदरक, कांजी ऐसी सब सामग्री भी परसी जायें कि इतनी सामग्री देखके अघा मत जाओ, थोड़ो अदरक आरोगो.

हमारे यहां सुरेश बावा एक दिन आये. तो उनने कही कि "दादा भूख नहीं हे." तो वो काली गोली क्या होवे! यूनीएन्जाइम. तो हमने कही कि "भूख नहीं हे ना तो चलो खाओ और हम गोली मंगाके तैयार रखें." उनने कही "ऐसे दो चार बार ऐसे महाराजनूसूं पाला पड़े तो आदमी भोजन करनो ही भूल जाये."

एक तो भूख नहीं और जबरदस्ती खवायो और ऊपरसूं गोली और खाओ. ऐसे ही कहे हें कि "प्रभुके पास भी ऐसी गोली हे कि जो क्षुधावर्धक हे." इतने अनन्तरूपमें कौनसे रूपकु चुननो, कौनसी लीलाकु चुननो, कौनसे गुणनूकु चुननो, कौनसे रूप, कौनसे गुण, कौनसी लीलाके लिये अपने हृदयमें कामना होवे, तो वो कहे हें कि वाकी औषधी क्या हे? **वितर वीर नः ते अधरामृतम्** वाकी औषधी हे.

किञ्च न केवलम् अयं काममेव पोषयति किन्तु सर्वानेव अन्तःकरणदोषान् निवारयति. जैसे ऐसी गोली जो होवें, या ऐसी जो औषधि होवें, वो केवल भूख बढ़ावें, ऐसो ही नहीं. मने भांग आप पी लो तो भूख तो बहोत लगे और भांग पी के आप खूब खा लो तो पचे नहीं. पेट वाकु पचावेकी जिम्मेवारी नहीं ले. भांगमें केवल भूख लगावेको गुण हे, पचावेको नहीं हे. पर ऐसी जो उद्बोधक औषधि होवें हें, उनमें दोनों गुण होवें हें. क्षुदुद्बोधक भी होवे और साथ साथ एक्सेसमें जो आप खा रहे हो, वाकु पचावेको भी वामें गुण होवे हे. तो ऐसे ही अधरामृत भगवत्कामना भगवद्विषयक कामनाको पोषण करे इतनो ही नहीं, **किन्तु सर्वानेव अन्तःकरणदोषान् निवारयति.** ये जो भगवत्कामना अपने हृदयमें पचे नहीं, वाको कारण क्या? जो इतरविषयकी कामनायें हें, वो साथमें रहें तो वो अपने पेटकु भारी पड़ जायें. जो भगवत्कामना अपनेकु गरिष्ठ हो जाये, पचे नहीं, वमन हो जाये, होते भये भी भगवत्कामना, जो इतरविषयन्की कामना साथमें रेहती होंय, तो हृदयमें एक साथ इतनी सामर्थ्य नहीं हे कि इतरवस्तुन्के बारेमें अपने राग और अनुराग को भगवदनुरागके साथ पचा सके. तो ये यूनिएन्जाइम भगवान्के अधरामृतरूपी यूनिएन्जाइममें दो गुण हें; इतररागको विस्मारण करे मने दोषनूंकू दूर करे और भगवदनुरागको बढ़ावे. सारे अन्तःकरणके दोष, भगवदितर अन्य लौकिक जो कुछ भी राग हें, उनकूं दूर करे हे,

या अर्थमें ये शोक तापनाशक हे तो या अर्थमें ज्ञानवैराग्यरूपता भी याकी फलित होवे हे पर गोपिका केहनो नहीं चाहे.

अतः शोकनाशकत्वं ज्ञान-वैराग्यरूपता च निरूपिता, ऐश्वर्यधर्मरूपता च. याके कारण मूलतः अपने ऐश्वर्य और धर्म के रूपको भी क्योंकि **"धर्मेण पापम् अपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्"** (महा.नारा.उप.१७।८). धर्मसूं पाप और शोक दूर होवें याके लिये जा बखत वो **सुरतवर्धनम्** कहे हें वा बखत वो प्रभुके अधरामृतमें ऐश्वर्य गुणको वर्णन करे हे. क्योंकि ऐश्वर्य व्यापक हे, वो अपरिछिन्न हे. जा बखत **शोकनाशनम्** कहे हे, वा बखत धर्मरूपताको निरूपण करे हे कि प्रभुके अधरामृतमें धर्मरूपताको भी गुण हे. क्योंकि धर्मसूं जैसे पापको नाशन होवे हे, ऐसे ही यासूं मनके जितने दोष हें, वो सब निवृत्त हो जायें.

यशोरूपताम् आह स्वरितो नादयुक्तो यो वेणुः तेन सुष्ठु चुम्बितम् इति. अब याको यश बता रहे हें. ये प्रभुके अधर कैसे हें? **स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्** जो स्वरित वेणु हे, स्वरपरिपूर्ण जो वेणु हे, जामेंसूं स्वर निकल रहे हें, वा वेणुके द्वारा इन अधरनूको चुम्बन भयो हे. अधरें वाको चुम्बन कर रहे हें, ऐसो नहीं केह रही हें क्यों जो उनकुं वेणुमें द्वेष हे. देखो इनकु गुस्सा या बातको नहीं हे कि भगवान्के अधर वेणुकु चुम्बन कर रहे हें पर गुस्सा या बातको हे कि वेणु क्यों भगवान्के अधरसूं लगी भई हे या बातको क्रोध हे. क्योंकि **"वंशस्तु भगवान् रुद्रः"** (कृष्णोप.८) क्योंकि वंश भगवान् रुद्र हें. याके लिये "शिवद्वेषे तात्पर्यम्". संस्कृतमें एक कहावत हे कि कोई भी काम करनो होय और काम करके कोई भी टेढ़े रूपसूं गाली देनी होय, कोई गाली देतो होय कोई चीजको तो वाके लिये कह्यो जाय कि "शिवद्वेषे तात्पर्यम्". वो विष्णुभजन करे हे या लिये नहीं कि विष्णु वाको प्रिय हे पर शिवको द्वेष करनो या लिये विष्णुको भजन करे. ऐसी स्थितिकु कह्यो जाय

"शिवद्वेषे तात्पर्यम्" मने या गोपिकाकु या बातको क्रोध नहीं हे कि भगवान्‌को अधर वेणुको चुम्बन क्यों करें! या बातको क्रोध हे, रोष हे कि वेणु क्यों भगवान्‌के अधरसूं लगी रहे! यह यश हे. **स्वरितो नादयुक्तो यो वेणुः तेन सुष्ठु चुम्बितम् इति, यशो हि नादज्ञैः कीर्त्यते, वेणुश्च परमभक्त इति तेनापि चुम्बितमेव.** देखो शिव भगवान्‌के परमभक्त हें **इति तेनापि चुम्बितमेव नतु पीतं** वाने पियो नहि अधरामृतको चुम्बन कियो वामें इतनो द्वेष हे.

यशको गान कौन करे! यशको गान गायक लोक करे, आजकल वह वंशवारस प्रोफेशन रह्यो नहिं. पुराने जमानामें क्या होतो गावेवाले प्रोफेशनल वंशवारस जिनकुं गावेको ही पैशा हे वैसे होते थे जैसे 'भाट-चारण.' उनको यही वंशवारस धन्धा हतो. वो कहे जो नादज्ञ गावेवाले होय वह यशको गान करे. ये वेणु तेरे अधरपे लगी हें वह तेरी गायक भाट-चारण हे. वह हल्ला मचाती रहे कृष्ण ऐसो हे, कृष्ण वैसो हे. अधरामृतपानको अधिकार वाको नहीं हे.

'श्री' मानें शोभा. सच्ची शोभा माने क्या? जा शोभाके कारण आदमी (दूसरी) सारी बात भूल जाय ये हे सच्ची शोभा. इन अधरन्‌की शोभा ऐसी हे के **इतररागविस्मारिका** और कोई लौकिक आसक्ति याके सामने टिक नहीं सके. जैसे कहे हें **"जाको मन लाग्यो गोपालसों ताहि और कैसे भावे हो! लेकर मीन दूधमें राखो जल बिनु सचु नहीं पावे हो"** जलमेंसु मछलीकु बाहर काढ़ लो आप समझो के दूध बहोत ऊंची चीज हे दूधमें डाल दो दूधमें मछली जीयेगी? वह मर जायेगी. **"लेकर मीन दूधमें राखो जल बिनु सचु नहीं पावे हो... ऐसे सूर कमल मुख निरखत चित इत उत न डुलावे हो"** यहां सूरदासजीने बड़ी व्युत्क्रमकी उपमा दी हे (सामान्य उपमा यह हे) सूर्यके दर्शन करके कमल चित इधर-उधर नहीं डुलावे हे, पर सूरदासजी कहे हें के भगवान्‌के कमलमुखको

दर्शन करके सूरको चित इधर-उधर नहीं डोले हे और एक बखत भगवान्‌के कमलमुखके दर्शन भये तो वाके बाद कहीं ओर चित्त डोल नहीं सके हे मने यहां वहां भटक नहीं सके हे.

रसखानजी कहे हें - **"शेष सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस मनावो. कोऊ भवानी भजो मनकी सब आस सबेविध जाइ पुरावो. कोऊ रमा भज लेहु महाधन कोऊ कहूं मनवांछित पावो हे रसखानि सोही रसखान और त्रिलोक रहो के नसावो."** (रसखान.) जो रसखान हे वो तो रसकी खान हे त्रिलोक रहे के न रहे हमें वासु कछु लेनो-देनो नहीं हे हम तटस्थ हें वाके लिये जाकु जाको भजनो होय सो भजो **इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नः ते अधरामृतम्. इतररागविस्मारणम् इति, श्रियो रूपं, साहि सर्व विस्मारयतीति. स्वतःपुरुषार्थत्वेन प्रमेयबलम् उक्तं, पूर्वेण प्रमाणबलं, शोकनाशनम् इति फलबलं सुरतवर्धनम् इति साधनबलम् - एवं चतुर्विधपुरुषार्थप्रदं स्वतःपुरुषार्थरूपम्.** यामें चतुर्विध बल बताये हें. सुरतवर्धनंसु साधनबल बतायो. भगवद्विषयक अनुराग बढ़ावेकु और कोई साधनकी अपेक्षा नहीं हे भगवदधरामृतकी अपेक्षा हे. याही लिये अपने यहां असमर्पितभोजनकी मनाई हे **"असमर्पित वस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्"** (सि.र.४) इतनी स्ट्रोंग् आचार्यचरणने आज्ञा करी वाको कारण क्या? भगवद्भुक्त जो प्रसाद है वाकु अधरामृत मान्यो जाय हे, सच्चो साधन ये ही हे. उपनिषद् भी याकु कहे हे **"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनाम् विप्रमोक्षः"** (छान्दो.उप.७।२५।२). आहार शुद्ध होय तो सत्त्वकी शुद्धि होयगी सत्त्वकी शुद्धि होयगी तो चित्तकी शुद्धि होयगी चित्तकी शुद्धि होयगी तो ध्रुवास्मृति तुमकु प्राप्त होयगी. कोनसी ध्रुवा स्मृति? के हजारन् बरसनूसु मैं तोसु बिछड्यो भयो हूं, मोकु जो तापक्लेश होनो चहिये हतो वो भी नहीं भयो, तेरी याद आनी चहिये हती वो भी नहीं आयी. तोकु भी भूल गयो और धुवास्मृति जो कीलकी तरह हृदयमें चुभनी चहिये हती वो

नहीं चुभी. **स्मृतिलम्भे** वो अब चुभवे लग जायेगी और स्मृतिको जा बखत लाभ भयो तो तो **सर्वग्रंथीनाम् विप्रमोक्षः,** यासु हृदयमें बंधी भयी इतररागकी जितनी गांठें हें वो सब छूट जायेंगी, खुल जायेंगी. **इतररागविस्मारणं नृणां वीर नः ते अधरामृतम्** यह याके लिये अपने यहां कह्यो के **"असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत् निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः"** (सि.र.४-५). इतनो महाप्रभुजीको आग्रह हे कभी सोचो तो सही या बातकु! अपन् बस येही बात नहीं सोचें ब्रह्मसम्बन्ध ले लें और ये ही नहीं सोचें के अपनो साधनबल क्या हे? अपनो साधनबल वहां निहित हे के अपन् ठाकुरजीको अधरामृत ले पा रहे हें. ठाकुरजीको अपन् प्रसाद लें हें वो ही अपनो साधनबल हे सारे रागन्को अपने पास कोई विस्मारक साधन हे तो वो एक ये ही साधन हे याके लिये यामें साधनबल बतायो. **सुरतवर्धनं** क्योंके भगवद्विषयक जो रति हे वो भगवदधरामृतसु ही अपनेमें बढ़ेगी. **"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि** अपने आहारकी शुद्धि ये ही हे, बाकी धो लेनो मांज लेनो ये तो लौकिकशुद्धि हे पर आहारकी ये आधिदैविक शुद्धि हे. अच्छी वृत्तिसु कमानो, परायो अन्न जबरदस्तीसु नहीं खा जानो ये सब वाकी आध्यात्मिक शुद्धि हे पर जो आधिदैविक शुद्धि अपनी हे वह **निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद्** यह हे. अपने जो रोग हें वो आध्यात्मिक आधिभौतिक तो हें ही पर वामें जो सबसु बड़ो अपनो जो रोग हे वो आधिदैविक रोग हे और वो यह हे के भगवदधरामृत अपन्कु नहीं मिल रह्यो हे. भगवत्स्मृति अपन्में जग नहीं रही हे यासूं भगवान्के विप्रयोगको तापक्लेश अपन्कु सता नहीं रह्यो हे. ये तापक्लेश अपन्कु कैसे सतावे ये सबसु बड़ो अपनो सिरदर्द हे और वो सिरदर्द बगैर भगवदधरामृतके दूर नहीं होयगो और अपनी आधिदैविक शुद्धि नहीं होयगी. याके लिये अपने यहां सबसु बड़ो साधनबल याकु मान्यो गयो हे **सुरतवर्धनं** क्योंके भगवद्विषयक अपने यहां जो भगवद्रति हे वो यासु ही बढ़ सके ये नियम हे.

अपन् क्या करें के ठाकुरजीकु मिश्री भोग धर दें और अपन् ढोकला फाफड़ा गांठिया सब खावें बहोत जोर आयो तो थोड़ी प्रसादी मिश्री भुरक दें जब आप मिश्री भुरक रहे हो तो आपकु भगवदधरामृत भुरकावेमें मिल रह्यो हे अन्तरित मिल रह्यो हे शुद्ध नहीं मिल रह्यो हे शुद्ध प्रकार तो ये हे के **असमर्पित वस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत् निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद्.** ठाकुरजीकु पेहले भोग धरो और वाके बाद प्रसाद लो तभी वाकी आधिदैविक शुद्धि हे तभी सुरतवर्धन होयगो नहीं तो वो मिल्यो भयो सामर्थ्य बेकार जा रह्यो हे **सुरतवर्धनं साधनबलम् शोकनाशनं इति फलबलम्.** तब वो शोक ये शोक कौनसो हे ये लौकिकशोक नहीं हे याकु लौकिकशोक मत समझियो मैंने जैसे पेहले बतायो के **दृष्टोपकारेणैव तापो गमिष्यति** यहां अदृष्टोपकारी चिंता नहीं हो रही हे तापक्लेशानन्द जो नहीं हो रह्यो हे सहस्रपरिवत्सरन्सु बिछड़वेके बाद भी वो शोककी यहां बात हो रही हे और वाको नाश अधरामृतको फल हे वो शोक भी अभी तो हो ही नहीं रह्यो हे. अदृष्ट हे वो शोक ही अदृष्ट हे वो शोक हो ही नहीं रह्यो हे अभी तो बीमार पड़नो कैसे अभी तो ये समस्या आ रही हे बीमारीको इलाज तो बादकी बात हे ये जो बीमारी हे वो तो पेहले बीमार पड़ोगे तब तो दवाईको स्वाद आयेगो और याको इलाज होयगो वाके लिये कहे हें **शोकनाशनम् इति फलबलम्** यामें फलरूपताको बल हे **स्वरितवेणुना सुष्ठुचुम्बितम् इति प्रमाणबलम्.** आपकु प्रभु बुलायेंगे कैसे जहां लीला हे वहां तो वेणुनादसु ही प्रभुने सबकु बुलायो नहीं तो कहां वृन्दावन और कहां व्रज सबकु वेणु कैसे सुनाई पड़ती! कितनी दूर बंसी सुनायी पड़े? ज्यादासु ज्यादा बहोत ही नीरव रात्री होय तो भी एक माइल तक बंसीको नाद सुनायी पड़े. बंसी तो बहोत मधुर वाद्य हे कोई नगाड़ा जैसो वाद्य थोड़े ही हे के ढम-ढम करके बजे, बड़ो मधुर वाद्य हे वो बंसी सब भक्तन्कु सुनायी पड़ी क्यों सुनायी पड़ी? क्योंके या बंसीमें प्रमाणबल हे और प्रमाणबल हे या लिये सब भक्त

दौड़के आये. जैसे गंगाजी दौड़के समुद्रमें जावें वैसे भक्त दौड़के आये. आचार्यचरण कहे हें **''यथा कायिकगतिः गोपिकानाम्''** (सुबो.३।२९।११). जैसे पहाड़ आवे पत्थर आवे वाकु भी तोड़के गंगा रस्ता निकाले. जो भूगोलके जानकार हें वो या बातकु जानें के दो पहाड़न्के बीच रस्ता जो बने हे जिनके बीचमेंसु नदी निकले हे आज अपनूकु लगे के नदी पहाड़के बीचमेंसु निकल रही हे पर नदीने ये पहाड़ अपने पानीकी धारसु काटे हें समुद्रकी तरफ वाकु जावेकी जो उत्कट कामना हती वाके लिये वो रुक नहीं सके हे. पानी भी पत्थरकु काट सके हे. वैसे ही पत्थर जैसी जो अपनी दृढ़ विषयासक्ति हे एक बखत भक्तिकी धारा अपने हृदयमें बही तो दो विषयासक्तिन्के जो पत्थरके पहाड़ हें वो कट जायेंगे ये ध्रुवसत्य याद रखियो, पर एक बखत भक्तिरूपी नदीकु अपने हृदयमें बेहवे तो दो. ये (विषयासक्तिकी चट्टाने) बाजुमें खड़े रेह जायेंगे और नदी आरामसु निकल जायेगी नहीं कटेंगे तो इनकु लांघके जायेगी पर पानीकी धारा जो बही हे बेहनी शुरु भयी हे सो तो समुद्रसु मिलेगी मिलेगी और मिलेगी ही ये बात ध्रुव सत्य हे.

(वेणुनाद = प्रमाणबल)

याके लिये कहे हें **स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्.** ये वेणु या अधरामृतको प्रमाणबल हे याके द्वारा या अधरामृतकी सर्वत्र ख्याति फैले हे. कह्यो हे **''सर्व प्रवाहः सर्वत्र स्वानुकूल्येन कर्षति वेणुगीतप्रवाहस्तु प्रातिकूल्येन कर्षति** (   ). जितने भी प्रवाह हें उन सब प्रवाहन्की एक जैसी प्रकृति हे जैसे नदी यों बेह रही हे और वामें आप पड़ जाओ तो जा दिशामें नदी बेह रही हे वा दिशामें आप बेह जाओगे नदीके प्रवाहके साथ साथ या वेणुगीतको प्रवाह ऐसो हे के बहें यों हें पर यामें आप पड़ोगे तो खिंचके उल्टे जाओगे. अब यदि कोई प्रवाहमें पड़े तो जा दिशामें प्रवाह खुद बहे वा दिशामें बहाके ले जाये, पर **वेणुगीत प्रवाहस्तु प्रातिकूल्येन**

कर्षति, वेणुगीतको प्रवाह तो प्रवाहकी उल्टी दिशामें (अपने मूलकी तरफ) खीचें हे. कभी पड़के देखो या वेणुगीतके प्रवाहमें तो उल्टे बहके चले जाओगे ऐसो विरुद्धधर्माश्रय या वेणुगीतके प्रवाहमें हे, याके लिये याकु प्रमाणबल मान्यो हे, क्योंकि यदि प्रभुकु जाननो हे तो वेणुगीतसु ही जान पाओगे. याही लिये वेणुकु शिव कह्यो हे क्योंके **"वेदो शिवः शिवो वेद"** ( ). तथा **"वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव च अहम्"** (भग.गीता १५।१५). शिव वेद रूप हें और प्रभुकु जाननो होय तो वेद प्रभुकु जानवेके उपाय हे. जा बखत प्रभु व्रजमें अवतीर्ण भये तो वो वेद ही वेणुके रूपमें अवतरित भयो अब 'वेद' कहो के 'शिव' कहो बात एक ही हे. शिव निरंतर विष्णुको ध्यान धरे हे वेद भी निरंतर विष्णुको ध्यान धरे हे. वेद और शिव एक ही चीजके दो रूप हें एक शब्दात्मक रूप हे और एक साक्षात् रूप हे, वेद ही शिवके रूपमें मूर्तिमान हो जाये हे और शिव ही अक्षरके रूपमें वेद हो जाय हे, दोनों एक ही चीज हें. इन दोनोंनूके बाद वेद्य कोई वस्तु हे तो वो कृष्ण हें. "मैं वेदके एक-एक वचनको एक-एक वाक्यको एक-एक काण्डको एक एक प्रकरणको और चारों वेदनूको विषय केवल मैं और मैं ही हूं मेरे अलावा और कोई नहीं हे." **"मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्य अपोह्यते तु अहम् एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्"** (भाग.पुरा.११।२१।४३). वेदमें मेरो ही विधान हे, मेरो ही अभिधान हे, मेरो ही विकल्पन हे, मेरो ही अपोहन हे सब कछु मेरो हे. वेदके प्रत्येक अक्षरको अर्थ मैं हूं. ऐसे प्रभु आज्ञा करें हें याके लिये वो ही प्रमाणबल हे.

(शास्त्रम् अवगत्य...कृष्णः सेव्यः)

जा बखत प्रभु गोपालके रूपमें अवतीर्ण भये तो वेद वेणुके रूपमें अवतीर्ण भयो ये वेणु प्रमाणबल हे यासु जा बखत अपनू ठाकुरजीको शृंगार करें वा बखत वेणु धरावें और वेणु धरावें वा

बखत आरसी दिखावें यामें देखो अपने यहां दो भाव हें एक तो ये के ठाकुरजीने शृंगार कियो हे तो उनकु आरसी देखवेकी उत्कंठा हे कैसो शृंगार धरायो मेरे भक्तने मोकु! देखूं तो सही के भक्त मेरो शृंगार कैसो करे हे! मैं तो जैसो हूं वैसो हूं पर भक्त मोकु अपने भावसु कैसो शृंगारित करे हे ये अपनो रूप आरसीमें प्रभुकु भी देखवेकी उत्कंठा होवे हे. भक्तने मेरो रूप कैसो बनायो हे और दूसरी अपनी ये भावना हे के जैसे अपन् आरसी दिखावें तो दो बखत आरसी दिखावें. आप लोग सेवा करो हो या लिये मैं आपकु बता रह्यो हूं दो बखत ठाकुरजीकु आरसी दिखायी जाये हे एक बखत सीधी आरसी दिखायी जाय हे जासु ठाकुरजी अपने रूपको खुद दर्शन करें के अपन्ने कैसो रूप प्रभुकु दियो दूसरे बखत टेढ़ी आरसी दिखायी जाय जासु ठाकुरजीको रूप अपन्कु आरसीमें दीखे वो जो आरसीमें ठाकुरजीको रूप अपन् देखें वाकु तुरंत अपने हृदयसु लगानी या भावनासु के जैसे आपको स्वरूप या आरसीमें प्रतिबिंबित हे ऐसे मेरे हृदयमें आप पधारो. या लिये जैसे ही अपन् वेणु धरावें तो तुरंत आरसी दिखावें वाको कारण समझो **"अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिः विधियताम्"** (सि.मु.१२) **"शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः श्रीकृष्णः सेव्यः"** (त.दी.नि.प्र.१). कृष्णकु बिना प्रमाण जाननो गलत प्रणाली हे पेहले शास्त्रकु जानो और वाकु समझके अपने हृदयमें धारण करो या लिये पेहले वेणु धरायी जाये पीछे आरसी दिखायी जाये पीछे वा आरसीके द्वारा ठाकुरजीकु हृदयमें पधरायो जाय, क्योंके **"शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः श्रीकृष्णः सेव्यः"** शास्त्रकु समझके शास्त्रानुसारी कृष्णको स्वरूप जानो कृष्णकु मनघड़ंत जानोगे तो मनघड़ंत सेवा करोगे, मनघड़ंत सेवा करोगे तो मनघड़ंत दिशान्में पहोंच जाओगे, सच्ची दिशामें नहीं पहोंचोगे याके लिये आचार्यचरण आज्ञा करें हें **"शास्त्रम् अमवगत्य"** शास्त्रकु समझो और मन वाणी देह सु कृष्णकी सेवा करो. याके लिये जैसे आरसी दिखाके हृदयमें पधरानो हे तो पेहले वेणु धराओ फिर आरसी दिखाओ और भावना

करो **"शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः श्रीकृष्णः सेव्यः"** मोकु शास्त्र सहित शास्त्रीयरूपसु जानो. मने जैसो कृष्ण भागवतमें गीतामें वर्णित हे, जैसो कृष्ण ब्रह्मसूत्रमें वर्णित हे, जैसो कृष्ण वेदोपनिषद्में वर्णित हे वैसो कृष्ण मेरे हृदयमें बिराजमान हो जाय उतनी ही स्पष्टतासु जरा भी धूमिल नहीं. कई मंदिरनूमें आरसी धुंधली होवे और प्राय मंदिरनूमें आरसी धुंधली होवे ही हे क्योंके वहां आरसी तो दीखे नहीं हे वाको पीछेको भाग ही दीखे हे तो मुखियाजी तो आरसी नयी बनावें ही नहीं हें. पर घरमें सेवा करो मंदिरनूकी चर्चा भूल जाओ घरमें आरसी बड़ी स्वच्छ रखनी चहिये जामें ठाकुरजीको स्वच्छ प्रतिबिंब पड़े ऐसो स्वच्छ प्रतिबिंब के एक बखत सिद्धान्तानुरूप शृंगारित ठाकुरजीके दर्शन आपने कियो तो वो हृदयमें इतनो स्पष्ट प्रतिबिंबित हो जाय के जितनो स्पष्ट प्रतिबिंब स्वच्छ आरसीमें हो रह्यो हे.

अपने शिवके साथ जो सम्बन्ध हें वो बड़े उलझे भये हें गाली भी देवेको हे और अनुसरवेको भी हे. जैसे मैंने आपकु बतायो हतो के "थांके बिना चले नहीं और थारासु बने नहीं". जैसे शिवके साथ अपने सम्बन्ध हें ऐसे ही वेणुके साथ भी हें ऐसे ही वेदके साथ भी बहोत उलझे सम्बन्ध हें वेदकु भी अपन् हर बखत गाली दें **"वेददधिमध्य नवनीत जे भजन रस मथित माधुरी जीवे श्रवण पीधो तक्रसम कर्मपथ स्नेहरस हीन जे श्वेत जाणी विमुख ताणी लीधो"** (वल्लभा.७१२). अब इनकु गाली क्यों दें वेदकु तक्र केहके या लिये दें के अपनो वाके साथ सम्बन्ध उलझ्यो भयो हे वाके बिना चले नहीं हे और वो प्रभुके मुखारबिंदसु वो लग्यो भी रहे तो गाली दिये बिना रह्यो भी नहीं जाये हे. **स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम्.** जा बखत **वितर वीर! नः ते अधरामृतम्.** कह्यो वा बखत तो याके हृदयमें मुखपे जरूर सात्त्विकभाव हें, पर जा बखत **स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितं** बोली हे तो **'सुष्ठु'** बोलते-बोलते या गोपिकाके दांत पिस गये हें, बड़ो क्रोध आयो हे, बड़ी ईर्ष्या आयी हे,

बड़ो रोष आयो हे. वेणुगीतमें गोपी कहे हे **"गोप्यः किम् आचरद् अयं कुशलं स्म वेणुः दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुः तरवो यथा आर्याः** (भाग.पुरा.१०।१-८।९). वो कहे हे के मूलत तो ये प्रोपर्टी गोपिकान्की हे और तू अकेली खुद पड़ा जाय हे कुछ-न-कुछ कुशल कियो होयगो! क्या करें अब चले तो कुछ नहीं हे! मनकु मारनो पड़े **"गोप्यः किम् आचरद् अयं कुशलं"** याने कछु कुशल कियो होयगो. अब बस नहीं चले तो थोड़ो अकर्मण्यतावाद आ जाय छीना-झपटी कबतक चले जबतक बात अपने हाथमें थोड़ी बहोत रहे. जब छिनके चली जाय तब संतोष कर लेनो के वामें सामर्थ्य अधिक हती, वाके कर्म ज्यादा तगड़े हते अपने कर्म थोड़े हते. हाथमें रहे तबतक तो छीना-झपटी चले या लिये कहे हें **"गोप्यः किम् आचरद् अयं कुशलं स्म वेणुः दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् भुङ्क्ते स्वयम्"**. सब ले जाय अकेली याके आगे कहे हें **सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम्.** ये याको प्रमाणबल बतायो **इतररागविस्मारणं** ये याको प्रमेयबल हे क्यों? क्योंके यदि आपकु बहोत जोरकी प्यास लगी और कोई कहे के "नारंगी खालो, थोड़ो केला खालो. क्या प्यास बुझेगी? नहीं बुझेगी. अरे भई केला भी तो ठंडो हे, नारंगीको रस भी तो रस हे पर प्यास बुझे नहीं हे. अरे आमको रस पी लो! आमके रससु भी प्यास नहीं बुझे प्यास तो तभी बुझे जब जल पीओ. भूख मिट जाय पर प्यास नहीं बुझे ये जलको माहात्म्य हे जलरूपी प्रमेयको माहात्म्य हे के वो प्यास बुझावे ऐसे ही अधरसुधाको ये माहात्म्य हे के इतररागको विस्मारण करावे. ये याको प्रमेयरूप माहात्म्य हे मानें या प्रमेयकी एक एसेन्शियल् क्वालिटी हे. प्रमेयको मतलब ये हे के ये वाकी एसेन्शियल् क्वालिटी हे के वो इतररागको विस्मारण करावे. क्योंके याके बिना और कोई रागको विस्मारण नहीं करा सके. दूसरे विषयन्में जो अपने अनुराग हें भगवद्विषयसु इतर विषयन्में जो अपने अनुराग हें, अपने चित्तकी वृत्तियें हें, अपनी

वासनाऐं हें, अपनी लालसाऐं हें वो भगवदधरसुधाके सिवाय मिट नहीं सकें हें ये वाको प्रमेयबल हे.

(ब्रह्मसूत्र : प्रमाण-प्रमेण-साधन-फलनिरूपण)

(थोड़ो आपकु विषय कठिन लगेगो याके लिये मोकु यहां वर्णन करनो पड़ रह्यो हे.) व्यासजीने जो ब्रह्मसूत्रकी रचना करी वो भी इन चार पद्धतिनूसु करी हे और वो हें प्रमाण प्रमेय साधन फल. उनने सारे उपनिषद्नूके वाक्यनूकु चार ग्रुपमें विभाजित कियो हे कुछ उपनिषद्के वाक्य ऐसे हें जो ब्रह्मके स्वरूपकु जानवेमें प्रमाणरूप हो जायें हें, कुछ उपनिषद्के वाक्य ऐसे हें जो सीधे ब्रह्मके स्वरूपको ही वर्णन करें हें, कुछ उपनिषद्के वाक्य ऐसे हें के जो ब्रह्मकु प्राप्त करवेके साधनको वर्णन करें हें, कुछ उपनिषद्के वाक्य ऐसे भी हें जो इन साधननूसु प्राप्त होते भये ब्रह्मकी जो विविध फलरूपता हें वाको निरूपण करें हें. ऐसे चार तरहके वचननूकी चार कॅटेगेरीमें सॉटिंग् करी हे याके बाद उन वाक्यनूकु आपसमें पोहवेके (पिरोवेके) लिये सूत्र बना दिये. सूत्रको मतलब होवे हे डोरा. एक-एक श्रुतिके वाक्य एक-एक मणिके जैसे हें उन सबकु व्यासजीने एक सूत्रमें पिरो दियो वो हे ब्रह्मसूत्र. वा विचारको एक पूरो हार बनायो, विचारको हार याके लिये बनायो के ब्रह्मके जो जिज्ञासु हें उनके कण्ठमें धारण करवेके लिये वो हार हे. वा विचारके हारमें चार विभाग हें प्रमाण प्रमेय साधन और फल के.

(सर्वोत्कृष्टसाधन अनन्यभक्ति)

वामें कई साधन बताये कर्म ज्ञान भक्ति आश्रय के. वामें सर्वोत्कृष्ट साधन भक्तिको बतायो या लिये **सुरतवर्धनं**. सुरत नाम भक्तिः अनन्यासक्तिः. "**अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते**" (भग.गीता ९।२२) "**भक्त्यातु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधो अर्जुन! ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप!**" (भग.गीता ११।५४). या लिये अनन्यभक्ति इन सब साधननूमें

सर्वोत्कृष्ट साधन हे यह बतायो.

याके लिये साधनाध्यायको परमोत्कर्ष हे क्लाइमेक्स् हे वो अनन्य भक्तिके माहात्म्यके निरूपणमें हे और सारे साधन बताये ऐसे ही जो फलाध्याय हे वामें जो बतायो हे उत्कृष्टतम फल वो ये हे **''सो अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता''** (तैत्ति.उप.२।१) वाके लिये यहां बतायो **प्रणतकामदम्** कोनसे अर्थमें कामकु पूर्ण करनो - **कामान् द्यति खण्डयति.** या भक्तिसु जो ब्रह्मकु एप्रोच् करेगो तो ये आधिदैविक शोक निवृत्त हो जायेगो.

प्रमेयाध्यायमें क्या बतायो! जितने भी जुदे-जुदे मतनूके जो अलग-अलग सिद्धान्त हें जैसे नैयायिक हें वो कहे हें के सात पदार्थनूसु जगत् बन्यो हे मानें द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव इन पदार्थनूसु ही जगत् बन्यो हे या लिये ये प्रमेय सच्चे प्रमेय नहीं हें इन प्रमेयनूमें आसक्ति मत करो इन प्रमेयनूको चिंतन मत करो इन प्रमेयनूको मनन मत करो ऐसे अविरोधाध्यायमें व्यासजीने निरूपण कियो हे. सांख्य कहे हे के प्रकृति पुरुष सप्त पदार्थसु सारो जगत् बन्यो हे. अविरोधाध्यासमें व्यासजी कहे हें के ''नहीं नहीं प्रकृति पुरुष सु जगत् नहीं बन्यो हे प्रकृति पुरुष जासु बने हें वा परमात्माको चिंतन करो.'' बुद्ध कहे हे के वासनासु मानें आत्मा और आत्मा की रही भयी वासना इनसु ये सारो जगत् बन जाये हे तो व्यासजी कहे हें के ''नहीं नहीं आत्मा जा परमात्माको अंश हे वा परमात्माको चिंतन करो ये वासना जा परमात्माकी शक्ति एक अविद्याके कारण पैदा हो रही हे वा परमात्माको चिंतन करो या वासना और आत्मा को चिंतन मत करो.'' ऐसे ही पाञ्चरात्र वैष्णव कहे हें के संकर्षण अनिरुद्ध प्रद्युम्न वासुदेव सु जगत्की उत्पत्ति भयी हे तो व्यासजी कहे हें के ''नहीं नहीं ये जाके व्यूह हें ये तो वा परमात्माके एक एक व्यूह हें वा परमात्माको चिंतन करो व्यूहनूको क्या चिंतन

कर रहे हो!''

ऐसे ही जितने शैवमत वैष्णवमत आस्तिकमत नास्तिकमत जो अलग-अलग प्रमेयनूको परमात्माके अलावा निरूपण करे हें उन सबनूको पदार्थमें रह्यो भयो राग वाको विस्मारण व्यासजीने वहां कियो **इतररागविस्मारणम् नृणाम्.** या अविरुधाध्यायमें ब्रह्मसूत्रके याके लिये आचार्यचरण प्रमेयबल कहे हें अविरोधाध्याय ऐसो हे के या प्रमेयके साथ कोई टक्कर ले सके कोई विरोध कर सके ऐसो कोई प्रमेय नहीं **''न त्वत्समोऽस्ति अभ्यधिकः कुतो अन्यो''** (भग.गीता ११।४३). जब याके समान ही कोई नहीं हे तो अधिक कहांसु होयगो, अधिक तो तब होवे जब समान होवे. या परमात्माके समान कोई वस्तु हे ही नहीं तो यासु अधिक कैसे होयगी और सारी बातनूकु भूल जाओ और सारे पदार्थनूकु भूल जाओ. **''अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते''** (भग.गीता ९।२२) **''भक्त्यातु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधो अर्जुन! ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप!''** (भग.गीता ११।५४). **''केवलेनहि भावेन''** (भाग.पुरा.११।१२।८) या न्यायसु केवल याही परमात्मामें अपनो राग अनुराग विकसित करो **इतररागविस्मारणम नृणां,** ये वा प्रमेयको स्वरूप बतायो.

प्रमाण जो प्रथम बतायो हतो वो क्या हतो **स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्** ये **''शास्त्रयोनित्वात्''** (ब्र.सू.१।१।२) शास्त्रयोनि होयवेसु ये ब्रह्मकु समझवेको उपाय अपने मनगढ़ंत रीतसु नहीं हे. जो मनमें आयी वा तरहसु कथा कर देनी के गिरिराजजीमें लकड़ीके ढोंचा मारे तो पेड़ा गिरे लड्डू गिरे या मनगढ़ंत कल्पनासु ब्रह्मको स्वरूप नहीं समझनो. या स्वरूपसु ब्रह्मकु समझनो के जो सुष्ठुचुम्बित हे वेदकु भगवान्ने अपने मुखसु लगायो हे वेदकु वेणुके रूपसु भगवान् निरंतर धारण करे हें शास्त्रकु भगवान् अपने मुख पर निरंतर धारण करे हें **शास्त्रयोनित्वात्** शास्त्रैकसमधिगम्यरूप हे भगवान्की मनगढ़ंत

कथा केह केहके भगवान्की कथा केहते होंय उन कथानूकु सुनोगे तो तुमकु वेणुसु भगवान्को अवगाहन नहीं हो रह्यो हे कोई नगाड़ा बजाके न जाने कौनसी दिशामें भटक जाओगे या वेणुके द्वारा जो आहूत हे वो ही सच्चो अवगाहन हे बाकी तो ऐसी मनगढ़ंत कथानूसु तुम विपरीत दिशामें चले जाओगे प्रमेयकी दिशामें नहीं जा पाओगे क्योंके वो सारी की सारी शास्त्रीय कथा नहीं हे अशास्त्रीय कथायें हें.

याके लिये **स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम्.** प्रमाण ऐसो होनो चहिये के जाकु भगवान् भी चुम्बन कर लें के तू सच्चो ऐसे प्रमाण क्या कामके के जाकु भगवान् देखके कहें के फेंको याकु! यामें मेरी कोई कथाको वर्णन नहीं हे यामें मेरी तरफ ले जावेकी कोई कथा नहीं हे. यामें भगवत्कथाके बजाय भगवदितरराग बढ़ावेवाली कथायें हें. कथा भगवान्की करें और कहें के जब ठाकुरजीने गिरिराजकु उठानो चाह्यो तो उनसु उठ्यो नहीं तो उनने हनुमानजीको ध्यान धर्यो शक्तिको ध्यान धर्यो. अब बताओ के यासुं ठाकुरजीमें ध्यान बढ़्यो के शक्तिमें ध्यान बढ़्यो ठाकुरजीमें राग बढ़्यो के हनुमानजीमें ध्यान बढ़्यो! जब ठाकुरजीमें राग बढ़वेके बजाय हनुमानजीमें अनुराग बढ़ जाय क्योंके कृष्णकु भी यदि गिरिराज उठावेके लिये हनुमानजीको ध्यान धरनो पड़तो होयतो कृष्णकु क्यों भजनो! हनुमानकु क्यों नहीं भजनो! ऐसे इतरराग वर्धनकी जो कथायें हें वो स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम् नहीं हें वो ऐसी कथा नहीं हें के जिन कथानूसु जैसे आरसीमें ठाकुरजी बिराजे हें स्पष्टतम वा तरीकासु आपके हृदयमें स्पष्टतम बिराज सकें, ऐसी कथा नहीं हे ऐसी कथानूसु बचनो भी पुष्टिमार्गीयजीवको कर्तव्य हे जो कथा कर रहे हें भले करें निरंतर करें, उनको काम हे कथा करनो. आचार्यचरण कहे हें कथा वक्तव्या उनको काम हे कथा करनो पर आचार्यचरण कहे हें **"कुल्या पौराणिकाः प्रोक्ता पारम्पर्ययुता भुवि क्षेत्रप्रविष्टाः ते चापि संसारोत्पत्तिहेतवः**

(जलभेद.३). ये जो कथक्कड़ हें मनगढ़ंत कथा करवेवाले अपने मनसु भगवान्‌की कथा केहवेवाले जो शास्त्रीय कथा केहवेवाले नहीं हें वो कैसे हें **कुल्याः**, (बेहती हुई धाराकु दिखाके : ये देखो अपने यहांपे बाहर बेह रही हे कुल्या, ये नदी नहीं हे.) भगवद्गुणको वर्णन करवेवाली ये समुद्र नहीं हे ये कुल्या हे जामें गटर छूटे ये जाके क्षेत्रमें प्रविष्ट हो जाय यामें खाद हे अनाज पैदा करेगी पर संसारोत्पत्तिहेतव होयगी याको ध्यान रखियो यामें भगवदनुरागवर्धक क्षमता नहीं हे भगवदितरानुरागवर्धक क्षमता हे इतररागविस्मारकता नहीं हे याके लिये प्रमाण कैसो होनो चहिये **स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम्** चहिये तब **इतररागविस्मारण** होयगो नहीं तो नहीं होयगो ये बात ध्यानमें रखियो या तरहको प्रमाणबल व्यासजीने "**शास्त्रयोनित्वात्** (ब्र.सू.१।१।२) केहके बतायो हे.

याही कारण श्रीशंकराचार्यजी आज्ञा करे हें "**रूपाद्यभावाद् हि न अयम् अर्थः प्रत्यक्षस्य गोचरो लिंगाद्यभावाद् न अनुमानादीनाम् आगममात्रसमधिगम्यो अयं विषयो धर्मादिवद्**" (ब्र.सू.शां.भा.२।१।११). ब्रह्मकी कथा करवेके लिये मनगढ़ंत कथा नहीं करनी चहिये क्योंके वो निराकार ब्रह्ममें माने हें या लिये वो कहे हें के ब्रह्ममें रूप नहीं हे तुम देखके कैसे कथा करोगे ब्रह्मकी! ब्रह्म कोई तार्किक विषय नहीं हे के जाकी कथा तुम मनकी कल्पना करके कर दो. ब्रह्म शास्त्रीय विषय हे याके लिये ब्रह्मकी कथा शास्त्रीय होनी चहिये. ऐसी कथा के गिरिराजजीमें लकड़ीके ढोंचा मारे तो पेड़ा गिरे लड्डू गिरे ये सब अशास्त्रीय कथा हे. "**एवं प्रतारणाशास्त्रं सर्वमाहात्म्यनाशकम् उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुतिस्मृतिविरोधतः**" (त.दी.नि.१।-८०). आचार्यचरण कहे हें के "**फलं वैमुख्यतः तमः** (त.दी.नि.१।८०). ऐसी कथानूकु सुनवेसु तमोगुणकी तरफ ही तुम्हारी गति होयगी भगवद्गुणकी तरफ तुम्हारी गति नहीं होयगी याकी उपेक्षा करो विरोध करवेकी नहीं केह रहे हें "**उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुतिस्मृतिविरोधतः**" - **अतः**

तत्र उपेक्षैव कर्तव्या सुतरां भगवद्भक्तैः भक्तिमार्गे विरोधात् (त.दी.नि.प्र.१।८०). आचार्यचरण कहे हें के उपेक्षा करो भूल जाओ छोड़ दो इन कथानूकु इन कथानूमें मत जाओ इनको विरोध करवेमें भी अपने चित्तकु क्लेश होयगो और भगवद्वैमुख्य आयगो याके लिये उपेक्षा करो जैसे अपनूकु बास आती होय तो अपन् नाक बंद करके चले जायें सफाई करवे थोड़े ही बैठें वहां ये हमें पता हे के बास आ रही हे पर कहां-कहां सफाई करेंगे कोई और अच्छो काम करो न याके बजाय याके लिये **''उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः फलं वैमुख्यतः तमः** .

(नृणां मने भोक्तृभावात्मकम्)

सुरतवर्धनं शोकनाशनं.... नः ते अधरामृतम्. एवं चतुर्विध पुरुषार्थप्रदं स्वतःपुरुषार्थरूपम्. या प्रकार प्रमाण प्रमेय साधन फल चारों पुरुषार्थनूकु देवेवालो ये जो तेरो अधरामृत हे वो स्वतःपुरुषार्थरूप हे अब हम कौनसी चीज मागें! ये गोपी केह रही हे **नृणाम् अस्माकम् अधिकारिणां दुर्लभपुरुषार्थानां वा** कहे हें **इतररागविस्मारणं नृणां.** यहां **'नृणां'** यों कह्यो ये तो सब गोपिकायें हें नारी हें. **'नृणां'** यों कहे हें **नृणां अस्माकम् अधिकारिणाम्.** अधिकारीके अर्थमें याकु **'नृणां'** कह्यो हे. कौनसो अधिकार? वो अधिकार के प्रभु भोग्य हें और ये भोक्ता हें इनकु जो भोक्तृत्वको अधिकार हे और प्रभुको जो भोग्य होवेको जो अधिकार हे वा अर्थमें ये **नृणां** कह रहे हें क्योंके **'रासस्त्रीभावपूरितविग्रहः'** (सर्वो.स्तो.१६.नाम.४२). भगवानूमें भोग्यभाव हे वाके लिये ये केह रही हें **नृणां इतररागविस्मारणं,** क्योंके भोक्ता प्रभुकु छोड़के दूसरी वस्तुको भोग न करवे लग जाये. ये समस्या भोक्तानूकी हे, भोग्यको तो क्या हे के जैसे रोटीकु समस्या थोड़े ही हे के तुम वाकु खाओ! आपकी समस्या हे के आपकु रोटी खानी हे. अब तुम रोटी नहीं खाके कचरा खाओ तो रोटी क्या कर सके! रोटी तो पड़ी भयी हे वाकु खानो होय तो खाओ नहीं खानो होयतो मत

खाओ. भूखे मरो तुम कचरा खाओगे तो रोटी हल्ला थोड़े ही मचायेगी. इतररागविस्मरण यह खावेवालेकी चिंता हे, भोक्ताकी चिंता हे भोग्यकु कोई चिंता नहीं हे. भोग्य तो अपने आपमें स्थित हे नारियल झाड़पे लग्यो हे आपकु खानो होय तो खाओ नहीं खानो होय तो मत खाओ नारियलको वामें क्या नुकसान हो सके! पर तुम्हारो नुकसान हे इतनो अच्छो फल होते भये भी तुम वाकु न खाओ. एक सुन्दर आमको फल पेड़पे उग्यो और तुम वासु वंचित रेह गये तो **''भाग्यहीन जीव जेणे कणिका न चाखी''** (वल्लभा.७।७) तुम भाग्यहीन हो वामें आमकु कोई हानि नहीं हे. वाके लिये **नृणां** केह रहे हें, क्योंके प्रभु तो भोग्यभावापन्न हें और तुम भोक्तृभावापन्न हो 'नृ' हो पुरुषभावापन्न हो वाके लिये **नृणां** केह रहे हें. **''पुरुषते तियभाव उपज्यो सबही उलटी रीत''** (सुरदास.) सो प्रभुमें भोग्यभाव जाग्यो हे **नृणां इतररागविस्मारणम्** एक बखत प्रभुको स्वाद लेके देखो! तो तब तुमकु पता चलेगो के दूसरे स्वाद कैसे शुष्क हें.

सूरदासजी कहे हें के **''मेरो मन अनत कहां सुख पावे जैसे उड़ जहाजको पंछी फिर जहाजपे आवे... सूरदास प्रभु कामधेनु तज छेरी कौन दुहावे''** एक जहाज जा रह्यो होय वापे एक पक्षी पाल लो सो उड़े क्योंके वाके पंख लगे भये हें वासनाके पंख उग जायें अपने तो अपन् सब खोजवेके लिये भोग भोगवेके लिये उड़ें पर जहाजसु उड़के जायगो कहां उतरनो तो जहाजपे ही पड़ेगो. बीच समुद्रमें जहाजपेसु पक्षी उड़े तो वो उड़के जायेगो कहां **''मेरो मन अनत कहां सुख पावे जैसे उड़ जहाजको पंछी फिर जहाजपे आवे''** . कृष्णकु छोड़के मेरो मन अनत कहां सुख पा सके कृष्ण मेरो जहाज हे और मैं वा जहाजको पक्षी हूं यदि कोई जगह उड़्यो भी गलतीसु उड़ सकूं पर उतरूंगो तो जहाज पे ही, मानें कृष्णकी शरणमें ही. **''सूरदास प्रभु कामधेनु तज छेरी कौन दुहावे''** अरे जब कामधेनु मेरे दोहवेके लिये हे तो मैं क्या बकरी दोहूंगो!

वो गोपी कहे हे **"गोप्य किम् आचरद् अयं...मुमुचुः तरवो यथा आर्याः** (भाग.पुरा.१०।१८।९). **"अस्माकम् अधिकारिणां दुर्लभपुरुषार्थानां वा भुङ्क्ते स्वयं** ये बात बतायी **यद्यपि इदं देयं न भवति तथापि वितरणगुणेन दातुं शक्यतइति वितर इति उक्तम्** - कहे हें के अधरसुधाको वितरण कहांसु होवे ओष्ठसु और भगवान्के ओष्ठकु विराटके स्वरूपमें लोभरूप मान्यो हे. "प्रथमग्रासे मक्षिकापात" हो गयो क्योंकि भगवान्के ओष्ठ लोभरूप हें. "दाता दान दे और भण्डारी पेट कूटे" के अरे इतनो ले गयो! अरे तेरो यामें कहा जाय हे! अरे दे दे न! पर भण्डारीको स्वभाव ही ऐसो होवे के देवे नहीं हे ऐसे भगवदाज्ञा हो भी जाय तो भी लोभमें स्थित हे तो वितरण होवे कैसे! तो वो अधरके स्वयंके विचारसु तो हो नहीं सके **यद्यपि इदं देयं न भवति** वो अधरके विचारसु तो देय नहीं हे **तथापि वितरणगुणेन** याके लिये भगवान्कु भड़का रही हें के तू वीर हे! तू दानवीर हे! थोड़ो बांट दे, सब मत बांट थोड़ो बहोत बांट या तरहसु कहे हें. **तथापि वितरणगुणेन दातुं शक्यतइति.** थोड़ो बहोत तो बांट सके हे न! लोभपे स्थित हे तो पूरो मत बांट पर जितनो बांट सकतो होय उतनो तो बांट! हमकु तो एक बूंद भी बहोत हे वाके लिये कहे हें **वीर! इति सम्बोधनात् शौर्यं नान्यथा संभवतीति निरूपितम्.** दानको जो तेरो शौर्य हे वो अन्यथा कैसे हो सके! और दान वाके बिना तो संभव नहीं हे **सुरतवर्धनं शोकनाशनं... नः ते अधरामृतम्** क्योंके ये अधरामृत हमकु मिल्यो तो ही इतररागको विस्मारण होयगो, या अधरामृतको हमकु पान नहीं भयो तो इतरराग हमारे विस्मृत नहीं होंयगे.

इतरराग विस्मृत नहीं होंय तो श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हें **"वरं नेत्रे मुद्रा न पुनर् इतरावलोकनमपि वरं शून्यारण्ये स्थितिः इह वरं नान्यमिलनम् वरं मूकीभावो न पुनर् अपरा काचन कथा वरं प्राणत्यागः क्षणमपि न तत्संगविगमः"** (विज्ञप्ति ३।२७) कहे हें के ये अधरसुधा

हमकु नहीं मिले तो आँख मुंद जायें तो अच्छो, अन्धे हो जायें तो अच्छो पर हमकु या प्रभुकु छोड़के इतरावलोकन नहीं चहिये. जंगलमें अकेले पड़े रहें वो अच्छो हे पर हमकु और कोईसु हमकु मिलनो नहीं हे इतरराग हमकु नहीं चहिये. ये प्रार्थना हमारी सुनी जाती होय तो कुछ प्रार्थना करें भी! नहीं तो हमकु चुप रेहनो अधिक पसंद हे और कोई कथा हमकु करनी नहीं हे सिवाय याके ये प्राण छूट जायें ये अच्छो हे पर क्षणमात्र भी भगवत्संगसु विगम होनो हमारे लिये श्रेष्ठ नहीं हे.

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितं इतरराग विस्मारणं नृणां वितर वीर! नः ते अधरामृतम्.

----✻----

॥ श्लोक : १५ ॥

उत्थानिका :

एवं त्रिविधा निरूप्य पुनः तामस्यः त्रिविधा निरूप्यन्ते – देवनिन्दिकाः सात्त्विकतामस्यः, भगवन्निन्दिकाः तामसतामस्यः, स्वनिन्दिकाः राजसतामस्यः इति :

अटति यद् भवान् अह्नि काननं त्रुटि युगायते त्वाम् अपश्यताम्॥
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥१५॥

सुबोधिनी :

अटति इति. भवान् अह्नि काननं यद् अटति तत्र दिवसे त्रुटि युगायते. तत्र निमित्तं त्वाम् अपश्यताम् इति. यदा पुनः पश्यामः तदा कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं ते उदीक्षतां नो अस्माकं यः पक्ष्मकृद् ब्रह्मा स जडः. यथा देवानां पक्ष्म न करोति अलौकिकद्रष्टृत्वात्, तदपेक्षयापि अत्यलौकिकद्रष्टृत्वाद् अस्माकमपि पक्ष्मकरणम् अनुचितम्, अतो अनुचितकरणाद् जडः. देवा हि बहुकालं जीवन्ति तथा वयमपि, त्रुटिः युगायते इति. 'त्रुटि'शब्दो स्त्रियाम्. यदि सार्थकं गमनं भवेत् तथापि न काचित् चिन्ता परम् अह्नि काननमेव अटति, नतु कानने कश्चन पुरुषार्थः. अस्माकञ्च न बहिर्गमनं संभवति. एवं देवत्वं भगवता सम्पादितम्. मूर्खो ब्रह्मा तादृशीनां पक्ष्मकृत्॥१५॥

विवरणम् :

(त्रुटि युगायते)

राजसी गोपिकान्के भाव अपन्ने देखे, अब याके बाद जो आ रह्यो हे वो तामसी गोपिकायें श्रुतिरूपान्के भावन्को वर्णन आ रह्यो हे. ये सब विवाहिता हें करके वनमें जा नहीं सकें हें. इनको सारो दोष वनकी लीला अनुभव नहीं करवेके कारण बन्यो हे. दिनमें

वनमें नहीं जा सकीं भगवल्लीलाको अनुभव नहीं कियो वा बातकी ग्लानि तो कायम हती, न जाने कितने विघ्ननूकु टालके कथञ्चित् रातकु वनमें आयी और वा बखत भी प्रभु या तरहसु तिरोहित हो जायें तो इनकु क्लेश पहोंचनो स्वाभाविक हे. जब क्लेश पहोंचे तो इनके तामसभाव जो हृदयके हें वो अपने-अपने धुआयें बाहर छोड़ें आचार्यचरण कहे हें **''शब्दोहि धूमवल्लोके''** (सुबो.कारि.१०।२७।५) ये गोपीगीत क्या हे? स्नेहके गीले आर्दभाव और विप्रयोग के तापको जब सम्बन्ध भयो तब गोपीगीत प्रकट भयो. गीले लकड़ाको जब अग्निके साथ सम्बन्ध होय हे तो वो धुंआ छोड़े ऐसे ही इनके भावार्द्र हृदय अपने-अपने सबके भाव वा भावार्द हृदयकु जा बखत विरह तापके साथ सम्बन्ध भयो तो ये अपने-अपने धुंआ छोड़ रही हें. जाके जैसे धुंआ हें कोईके सफेद धुंआ कोईके लाल धुंआ कोईके श्याम धुंआ काष्ठके अनुरूप अपने-अपने धुंआ छोड़े हें और वा अनुसार ये गोपी केह रही हे **भवान् अह्नि काननं यद् अटति तत्र दिवसे त्रुटि युगायते तत्र निमित्तं त्वाम् अपश्यतामिति.** कितनो समय बीत गयो जैसे कुंभनदासजीने कही **''केतेक दिन ह्वे जु गये बिन देखे''**

मेरे दादाजीकी एक आदत हती एक गलती करें तो अपने चित्तमें वाको रेकॉर्ड रखते. हर गलतीपे टांय-टांय नहीं करते पांच गलतीको रेकॉर्ड जब उनके पास पूरो हो जातो तब एक दिन पड़ती के वा दिन वो कियो वा दिन ये कियो. तबतक वो रिकॉर्ड इकठ्ठो होतो रेहतो ऐसे ही जाने कितने दिनकी शिकायत याने इकठ्ठी करके रखी हें जब एक दिन कोई बड़ी गलती हो जाये तो सारी झाड़ एक साथ लगा देते, छोटे हते तब पिटायी भी हो जाती, बड़े हो गये तो खाली झाड़ पड़ती. रोज रोजकी कांय-कांय नहीं होती. या तरह ही तामस होते भये भी इतनी सात्त्विकता इनमें हे के रोज कांय-कांय नहीं करे. रोजकी शिकायत याके दिमागमें हे ''रोज

तुम चले जाओ, या तरहसु आज ही गये हो ऐसी बात नहीं हे रोज चले जाओ हो और रोज हमारो एक-एक क्षण युगके बराबर बीते हे और अब यहां रात्रिकु बड़ी मुश्किलसु वनलीलामें सम्मिलित होवेके लिये आ पायी हें तो यहां भी तुम वो ही काम कर रहे हो अब ये असह्य अपराध हो गयो.'' अब वा बातकी ये सारी कसर निकाल रही हे पर सात्त्विक हे तामसभाव होते भये भी सात्त्विक हे चाहे तो प्रभुकु ही कुछ केहनो होय पर प्रभुकु न केहके ब्रह्माकु गाली दे रही हे थोड़ो सत्त्व आ गयो हे मनमें क्या करे! दिनमें या तरहसु गाय चरावे चल्यो जाय और रात्रिकु हम आये तो या तरहसु तिरोहित हो जाय पता चले नहीं के क्यों तिरोहित हो गयो! क्या गड़बड़ हो गयी? पीछे जब राधासहचरीसु बातें मालूम पड़ीं तब बात समझमें आयी के क्यों तिरोहित भयो. सात्त्विकभाव हे सो कौनकु गाली दे गीतामें कह्यो हे **''यजन्ते सात्त्विका देवान्''** (भग.गीता १७।४). या लिये ब्रह्माकु गाली दे हे ब्रह्मा मिल गयो क्योंकि जितने सात्त्विकलोग हें वो देवताको यजन करें या लिये के सारे घोटालाऐं देवता करें हें सो ब्रह्माकु गाली दे रही हें कहे के ''ये ब्रह्मा मूर्ख हे.'' ये यजन कर रही हें **यजन्ते सात्त्विका देवान्''** . **''यज् देवपूजा संगतिकरण दानेषु''** (पाणिनीधातुपाठे.१।१०८७). 'यज्' धातुको अर्थ यज्ञ ही नहीं होवे हे, कोईकु कछु देनो वो भी 'याग' केहवावे. सो ये गाली दे रही हें. दान देनो भी याग केहवावे. यह पक्ष्मकृद् कहे रही हें वाकु के ये बड़ो जगतकर्ता बनके बैठ्यो हे जगतको उत्पादक बनके बैठ्यो हे और कौनसे ढंगसु कौनसी चीज बनानी ये याकु आवे नहीं हे और बनावे बैठ जाय हे. संगतीकरण भी यज्ञ हे, अरे तीन लोकके उत्पादनकी व्यवस्था ब्रह्माने करी देवलोक मर्त्यलोक असुरलोक सब लोकन्के भेदके हिसाबसु **''ऊर्ध्वम् गच्छन्ति सात्त्विका: अधोगच्छन्ति तामसा:, मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:''** (भग.गीता १४।१८).

(जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्)

जाने सब व्यवस्था बराबर करी ऐसो ब्रह्मा मूर्ख कैसे हो सके! तो कहें के "नहीं ऐसो ब्रह्मा भी मूर्ख हे." क्यों? "देवता जिनके देवलोकमें कृष्णको अवतरण नहीं हे, जहां कृष्ण अवतीर्ण नहीं होवे, कृष्ण अपनो रूप प्रकट नहीं करे, कुटिलकुंतलमुख जहां प्रकट नहीं करे उन् देवतान्‌की तो आँख ऐसी बनायी के उनकी पलकें भी नहीं गिरें और यहां जो कृष्ण अवतीर्ण भयो ऐसे कुटिलकुंतलमुखकु लेकें तो हमारी पलकें बना दीं. अब वाको मुख देखते रहें तो पलकको गिरनो भी हमकु चुभे और ऐसे ब्रह्माने हमारे पलकें बना दीं. अरे नहीं नहीं मनुष्य लोककी तो व्यवस्था ही ऐसी हे या लोकमें तो मनुष्यकी पलक गिरे ही हे देवतान्‌की पलक नहीं गिरे. अब तुम मनुष्यलोकमें हो तो पलक गीरेगी ही; मनुष्यलोक और स्वर्ग को अंतर क्या? मनुष्य माने 'मर्त्य' और देवता मानें 'अमर.' मनुष्य और देवतान्‌में अंतर इतनो ही तो हे देवतान्‌के राक्षसन्‌की तरह सींग या तीक्ष्ण दांत या ऐसो कोई क्रूर रूप तो होवे नहीं हे. देवतान्‌को ऐसो ही सौम्यरूप होवे हे, पर देवतान्‌को अन्तर केवल इतनो ही के वो अमर होवें और मनुष्य बेचारो मर्त्य होवे. अन्य अन्तर क्या हे? तो बोलें के याही लिये तो तुम्हारे पलकें बनायी हें देवताऐं अमर हें उनके यहां कालकी स्तब्धता हे अमर मानें के जहां काल स्तब्ध हो जाय, समरमें काल चले हे. कालाधीनता बतावेके लिये पलकें बनायी हें आज तो कालबोधनके लिये घड़ी चले हे प्राचीनकालमें पलकको गिरनो ये प्रथम काल केहलातो. पलक गिरवेसु जितनो काल व्यतीत भयो वाकु चौबीससु गुणो फिर वाकु चौबीससु गुणो फिर वाकी त्रुटि बने वाको पल बने फिर घड़ी बने या तरहसु समयकी गणना होती हती. जैसे आज सेकण्ड मिनिट और घंटा होवें या तरहसु मनुष्य कालाधीन हे मनुष्य जो कछु देखे हे वो कालाधीन होके देखे हे वाकी दृष्टि कालके अधीन हे वाकु जो कुछ भी दिखलायी दे हे वो कालके अंतरगत ही

दिखलायी दे हे. जो कुछ दिखलायी दे रह्यो हे वो कालमें दिखलायी दे रह्यो हे याके लिये वो कालको परिचायक पलकको गिरनो मनुष्यके साथ ही बनायो हे. यह तो ठीक ही हे ब्रह्माने कहां मूर्खता करी मर्त्य मरणशील प्राणी तो कालके अधीन हे तभी तो मरे हे कालके अधीन नहीं होय तो मरे ही नहीं. कालके अधीन हे और मरे हे सो वाकु कालाधीन विषय ही दिखलायी देवे हें याही लिये 'काल'शब्द मृत्यु और समय दोनोंन्को पर्याय हे समय बीतवेकु भी 'काल' कहे हें. ये जो जिनकी कालके अधीन दृष्टि हे जिनकु दृश्य दिखलायी दे रह्यो हे वो कालके अधीन हें उनकु ब्रह्माने रिस्टवोचकी तरह पलक प्रदान करी हे के जब तुम कालाधीन दृश्य देख रहे हो तो वाकु कालमें देखते रहियो के कौनसे टाइम्में तुमकु कौनसी चीज दीखी वह ध्यान रहे.

देवतायें तो सारे अमर हें कालके अधीन नहीं हें उनकु कालगणनाकी आवश्यकता नहीं हे या लिये उनकु पलक की क्या आवश्यकता! मानें आवश्यकताके अनुसार ही तो सारी चीज प्रदान की गयी हें. जैसे जानवरन्कु सींग प्रदान किये, कौनसे जानवरन्कु? जिनके पंजामें ताकत नहीं हती, जिनके दांतमें ताकत नहीं हती वो जानवर अपनी सुरक्षा कैसे करे तो वाकु सींग दे दिये. अपनी सुरक्षा करनी होय तो सींगको उपयोग करे जाके पंजामें दांतमें ताकत हे वाकु सींग नहीं दिये वो तो पंजा मारके, दांतसु काटके अपनो काम चला ले हे. हर चीज जाकी जैसी आवश्यकता हे वाकु वो प्रदान की गयी हे.

मनुष्यकु मरणशील होवेके कारण कालके अधीन होवेके कारण कालगणनाकी आवश्यकता होवेके कारण पलक दिये और देवता जो अमर हें कालाधीन नहीं हें या लिये उन्कु अनावश्यक होवेके कारण पलक नहीं दिये. कई लोग मजाक उड़ावें के ''नाक या लिये

दी के नहीं होती तो चश्मा काहे पे टिकतो!'' जो कछु ब्रह्माने दियो वो सोच समझके दियो हे तो वाकु जड़ क्यों केहनो? या लिये कहें के गलती हो गयी **अटति यद् भवान् अह्नि काननं त्रुटिः युगायते.** जा बखत तुम वनमें जाओ तो एक त्रुटि-त्रुटि कितनो काल केहवावे? सो-पचास कमलके पत्ता डाल दो और वामें एक सुई भोंक दो तो एक पत्ता कितनी देरमें बिंध्यो जितनी देरमें एक पत्ता बिंध्यो उतनो काल ''त्रुटि काल केहवावे.'' ऐसी एक त्रुटि युगके समान बीते सो सारे दिनमें कितनी त्रुटि होंयगी और कितने सालसु हम या युग सहस्रपरिवत्सरसु हम विप्रयोग सहन करती आ रही हें तो हम अमर नहीं हो गयीं क्या! हमारे लिये वो काल कहां बच्यो! जो लोग कालके अधीन हें जो कालमें मर्त्य हें वो तो सीमित कालमें मर जायें वो मर्त्य माने जायें हमने कितनो बड़ो काल देख्यो हे. युगकी गणना करो तब तो चार-चार लाख बरसको युग होवे और हमने एक-एक त्रुटि एक-एक युगके समान बितायी हे वा तरहसु और हमने कितनी त्रुटियें बितायी हें! तेरे विप्रयोगमें अबतक इतने दिनसुं! सिर्फ आजको हिसाब ही ले लो तो हम अमर सिद्ध हो जायें. ऐसे हम भी जो अमर हे उनकी पलक बना दीं ब्रह्माने! **जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्** मूर्ख हे ब्रह्मा और कहें हें के **पक्ष्मकृद** कालाधीन वस्तुकु देखवेके लिये, कालाधीन वस्तुकी कालिकता नापवेकों पक्ष्म मानें पलक बनाये होते तो बात और हती पर तू तो कालातीत हे तोकु देखवेके लिये इन पक्ष्मकी क्या जरूरत हती!! कालकी तो सीधी गति हे एक दिशामें चल्यो जाय हे भूतसु शुरु होके वर्तमानसु होतो हुवो भविष्यमें चल्यो जाय हे काल टेढ़ो-मेढ़ो नहीं जा सके और ये जो कुटिलकुंतल मुख हे वाकी तो बड़ी कुटिल गति हे. **''गिरिधर सबही अंगको बांको बांकी चाल चलत गोकुलमें छैल छबीलो काको! बांकी भ्रोंह चरणगति बांकी बांको हृदय ताको परमानंददासको ठाकुर कियो खोर व्रज सांको''** (परमानन्ददास). एक तो खुद बांको चले और व्रजकी

खोर तो संकीर्ण हें उन संकीर्ण गलियन्में सीधो चले तो जल्दीसु निकल जाय पर खोर तो सांकी हें या तरहसु अपने हृदयकी जो संकरी खोर हे उनमेंसु ये टेढ़ो-टेढ़ो चले हे तो दूसरो आदमी वामें आवे कैसे! कोई भी विषयके राग आ ही नहीं सके हें जब टेढ़ी चाल होयवेके कारण सारी गलीकु खुद घेरके चले. **कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते** मुखसु ही कुटिलता शुरु होवे बातमें कुटिलता बोलमें कुटिलता बोले कुछ करे कुछ! जैसे गोपीकु कही के "कंधापे चढ़ जाओ" और वाकु पेड़पे लटकाके चल्यो गयो. पेड़ कोई कंधा हतो क्या! ना जाने कैसे कुटिल अर्थमें बात करी! वा गोपीने कही "**न पारयेहं चलितुम्** (भाग.पुरा.१०।२७।३७) चल नहीं सकु तो कृष्णने कही के "कंधापे चढ़ जाओ." उनने कंधापे चढ़वेके लिये पेड़को सहारा लियो तो वा पेड़पे लटकती छोड़के भाग गयो! यह देखो! बात कुटिल, मुख कुटिल, भौंह कुटिल, देखवेको तरीका कुटिल, वाणी कुटिल, चाल कुटिल!! "**गिरिधर सबही अंगको बांको, बांकी चाल चलत गोकुलमें छैल छबीलो काको!**". ऐसो जो कुटिल हे और "**कियो खोर व्रज सांको**" जगह खुली होय और वामें टेढ़ो चले तो कोई तकलीफ नहीं होवे, पर; व्रजमें जितनी भी खोर हें संकीर्ण हें तो जरा भी टेढ़ो चले आदमी तो ट्राफिक् जाम हो जाय, वा एक भावके पकड़े रेहवेके कारण सारे भावन्की ट्राफिक् जाम हो रही हे . "**गोपीनाम् परमानन्दः आसीद् गोविन्द दर्शने क्षणं युगशतमिव यासां येना विना अभवत्** (भाग.पुरा.१०।१६।१६). एक क्षण सौ युगके समान जातो भयो लगे सारे भाव वामें अवरुद्ध हो जायें या हृदयकी संकीर्ण खोरमें दूसरो कोई भाव आ ही नहीं सके, क्योंके रूपदर्शनमात्रमें यही एक आनंदको भाव हे और कोई भाव हृदयकु पकड़ ही नहीं सके यासुं कहे हे **जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दशाम्.**

अब ये तो "जैसे केहनो बेटीकु और सुनानो तो बहुकु हे."

ये कह्यो तो बेटीकु जाय हे के "तेंने घरकी सफाई नहीं करी तेंने बुहारी नहीं काढ़ी चाय पीके बर्तन नहीं मांजे" पर सुनायो ये सब बहुकु जाय हे. सीधे नयी आई भई बहुकु कहे तो बहुकु बुरो लग जाय. बेटीकु तो झाड़ सकें पर बहु समझ जाय के सुबह उठके क्या करनो. ऐसी उल्टी गति हे ब्रह्माकु मूर्ख केह रही हे पर सुना ठाकुरजीकु रही हे. तामस हे या लिये सुना ठाकुरजीकु रही हे के ब्रह्मा बड़ो मूर्ख हे के या तरहसु वाने पक्ष्म बना दिये या तरहसु हमारी एक एक त्रुटि एक एक युगके बराबर बना दी. अब बनायी कौनने? ब्रह्मा गरीब क्या करेगो **"ब्रह्मा रुद्र त्यां कौण वापड़ा श्री हरिनु मन मोहे!** (वल्लभाख्यान.१।११) तो बेचारो ब्रह्मा यहां क्या करे! अब जाकु गाली दी जा सकती होय वाकु देके बात केह देनी अपने मनमें धुंआ भर्यो नहीं रेहवे देनो नहीं तो विस्फोट हो जाय.

(टिकनो मुखारविन्दपे)

अपन् दीन हें पर एक बखत श्रीकृष्ण यदि अपनूकु शरणरूपमें रक्षकरूपमें प्राप्त हो गये तो जैसे कल मैंने आपकु बतायो के पुष्टिजीवको ध्यान चरणमें पड़ेगो तो वहां ही नहीं रहेगो; पड़ेगो चरणमें पर जाके टिकेगो मुखारविन्दपे. सूरदासजी कहें हें **"चितवन रोकेहु ना रही श्यामसुंदरसिंधुसन्मुख सरित उमग बही प्रेमसलिल प्रवाह मोहि कव न थाह लही लहर लोल कटाक्ष घूंघटपट कगार ढही थके पलकन धीर नाविक परत नाहिं गही मिली सूर समुद्र स्यामहि फिर न उलटि बही"** (सुरदासजी). जितने भी पुष्टिमार्गीयजीव हें ये श्यामसुंदरको मुखारविन्दरूपी जो सिंधु हे वापे जिनकी आँख मीन जैसी नहीं टिके हें वो पुष्टिजीव हो नहीं सके हे. अपन् सब या अर्थमें मीनाक्षी हें. दक्षिणमें मदुरईमें एक मीनाक्षीदेवीको मंदिर हे. अपन् जितने पुष्टिमार्गीय हें वो सब मीनाक्षी हें. मीनाक्षी मानें जाकी आँख मीन जैसी होय. अपनो समुद्र क्या हे? श्यामसुंदर-सिंधु. अपन् सबकी आँखें वा समुद्रकी

मीन हें और **“लेकर मीन दूधमें डालो जल बिनु सचु नहीं पावे हो”** (हिलगपद) वा समुद्रमेंसु निकालके दूधमें या मीनकु डालो और वो संतुष्ट हो जाय तो समझियो के वो पुष्टिमार्गीय नहीं हे **“तदा ज्ञानमार्गे स्थातव्यम्”** (सेवाफल.वि.५) ऐसे आचार्यचरण कहे हें. **“बाबरी वे अखिंया जर जाओ जो सांवरो छांड तके कोऊ ओरे”** यों भक्त कहे हे के, ऐसी आँख जल जायें तो बेहतर हे जो सांवरेकु छांडके ओरकुं तके. ऐसी मीन क्या हो सके जो या श्यामसिंधुकु छोड़के कोई और सिंधुमें तैरनो चाहे! और या सिंधुमें तैरवेवाली मीनकु पकड़वेके लिये ही कुटिलकुन्तल हें. **कुटिलकुन्तल श्रीमुखं च ते** वो कुटिलकुंतल श्रीमुखपे लटका रखे हें जासु ये सबकी सब मछलियें वहीं बिंधी भई रहें बाहर नहीं जा सकें.

----✻----

॥श्लोक : १६॥

उत्थानिका :

तदपेक्षया हीना आहुः पति...इति :

(सर्वसाधनहीनस्य...श्रीकृष्णःशरणं मम)

अब तामस-तामसके लिये कहे हें **तदपेक्षया हीना आहुः पतिसुतान्वय... इति.** जो भगवन्निन्दक हे वो देवनिन्दकसु अधिक हीन हे. आचार्यचरण कहे हें के सर्वापेक्षया हीनाः क्योंके **"सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः पापपीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम"** (श्रीकृष्णशरणाष्टकम्.१). ये सब बातसु सब साधनसु हीन हे. वैसे अपनृमें उत्कर्ष कहांसु हो सके हे! ऐसो उत्कर्ष तो अपनेमें हे नहीं, राजस भी अपनेमें नहीं हे या अर्थमें अपन् यहां सब तामस-तामस हें. यासु अपन् सब **सर्वसाधनहीन पराधीन सर्वतः पापपीन** हें.

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ॥
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव! योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

सुबोधिनी :

हे अच्युत स्वतः कामनिवृत्तिभयरहितः, पतिः सुताः अन्वयो वंशः भ्रातरः बान्धवाः सम्बन्धिनः - एते सर्वथा अविलंघ्याः तानपि अतिविलंघ्य ते अन्ति समागताः. त्वं सर्वेषां गतिं जानासीति गतिवित् सर्वैः यावती गतिः संपाद्यते तां भवानेव दास्यतीति. वयं वा गतिविदः तेषां भजने भगवद्भजने च तारतम्यविदः. किञ्च तव उद्गीतेन च मोहिताः. अतो मोहयित्वा समानीय उभयभ्रंशार्थम् अरण्ये निशि योषितः कः त्यजेत्? सर्वदैव स्त्रियो न त्याज्याः, सुतराम् अरण्ये, सुतरां निशि. यदर्थं वा समाहूताः तदपि अदत्वा इति अभिप्रायेण सम्बोधनम्. कितवानां (वा!) वयं सम्बन्धिन्यः अतो अस्माकं तेषु न प्रवेशः ॥१६॥

(कपटको मूल)

परीक्षितने पूछी के "प्रभुको अवतार हे वामें प्रभुने या प्रकारको परस्त्रीरमणको काम क्यों कियो?" तो शुकदेवजीने कही "गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् यो अन्तश्चरति सो अध्यक्षः क्रीडनेन इह देहभाक्" (भाग.पुरा.१०।३०।३६) ऐसी कथा आवे के जा बखत ब्रह्माजी गोपालनूकु चोर गये और बछड़ानूकु वा बखत सब गोपालनूके और बछड़ानूके रूप धरके ठाकुरजी पहोंच गये. ब्रह्माजीकु यह कृष्ण हे के नहीं याको संदेह भयो सो सब ग्वालनूकु सब बछड़ानूकु सबकु चोरके ले गये और एक गुफामें जाके मोहनिद्रामें सुलाके सबकु बंद कर दिये. ठाकुरजीकु यह बात पता चल गयी के अपने ग्वाल-बाल बछड़ा सब चुर गये. जब व्रजमें लौटे तो सब इतने ग्वाल और बछड़ा के रूप धरके व्रजमें लौटे. अब प्रभु तो कई रूप धारण कर ही सकें. परमात्मा अपनी मायासु अनेक रूप धारण कर सके. अब मायाकु कुछ लोग मिथ्या मानें पर अपने यहां माया परम सत्य हे सर्वभवनरूपसामर्थ्यरूपा माया हे. अपने यहां मायाको अर्थ कपट जरूर हे पर मिथ्या नहीं हे ईश्वर कपट करे वो भी सच्चो दूसरेको निष्कापट्यच भी खोटो क्योंकि डायनेमो तो वहां हे. **"न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति"** (बृह.उप.४।५।६). कपट की शुरुआत कहांसु हें! मैं समझूं कि मोकु पढ़वेको शौक हे मैं दिन-रात पढ़वेमें लग्यो रहूं मैं पढूं क्योंके पढ़वेमें मोकु बड़ो मजा आवे हे पर ऐसो या लिये होवे के पढ़वेके बहाने ईश्वरने मेरो स्नेह ले लियो, पुस्तकके बहाने मेरो स्नेह ले लियो. सबको स्नेह हासिल करवेको वाकु शौक हे वाके लिये वाने इतने विविध रूप लिये. हरेकको स्नेह प्राप्त करनो याको शौक हे सबको हृदय चुरानो याको शौक हे क्यों जो चुरावेकी आदत हे न! वाको मनोहर रूप हे वाको स्वभाव जो चोरी करवेको हे वाने या कामके लिये ही अनेक रूप धारण किये **"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"** (बृह.उप.२।५।११). जैसे श्रुति

कहे हे "**न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्रा प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय पुत्रा प्रिया भवन्ति... न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवति आत्मनस्तु कामायसर्व प्रियं भवति** (बृह.उप.४।५।६). अपन् समझें के अपन् अपने बेटासु प्यार कर रहे हें पर ईश्वर अपनेकु ठग रह्यो हे. दरअसल अपनो स्नेह वो चुरा जाय हे अपन् समझें के अपन् अपनो स्नेह अपने बेटाकु दे रहे हें पर बेटाको रूप धरके ईश्वर अपनो स्नेह चुरा रह्यो हे. सबके स्नेह वो ही चुरा रह्यो हे. अपन् समझें के अपन् अपने पतिकु प्यार कर रहे हें पर वो ही पतिके रूपमें अपनो स्नेह चुरा जा रह्यो हे. स्नेहको आलम्बन तो वोही हे पर अपन् वाके कपटवश यों सोचें के नहीं यह मेरो हे और मैं याकु स्नेह करूं. वैसे अपन् जो भी कुछ स्नेह करें वह वो चुरा जाय.

(चेर्‌को एड्‌वान्टेज)

जैसे अपन् अपने घरके लिये ट्रस्ट बनावें के वो सब हमारे जावेके बाद अपने परिवार्‌कु मिले पर वो ट्रस्टी सब पैसा आके खा जाय परिवारके ट्रस्ट्में हम लिखके जावें के इतने पैसा बेटान्‌के इतने पत्नीके पर मौका पाके हमारे जावेके बाद ट्रस्टी आके सारे पैसा खा जाय. ऐसे जीव अपने स्नेहको बटवारा करे कोई पतिके लिये बांटे कोई पुत्रके लिये बांटे कोई कीर्तिके लिये बांटे कोई धनके लिये बांटे और याको ट्रस्टी कौन परमात्मा वो ट्रस्टी सबके पैसा खा जाय ऐसो कपटी और अपनेकु पता भी नहीं चले ट्रस्टी खावे तो पता नहीं चले सारे चौपड़ा बराबर रखे वामें कोई बातको हेर-फेर पता नहीं चले. ऐसे ही हमारी एक ट्रस्टीसु चर्चा भई वाने कही "सब कहें हें के ट्रस्ट्को पैसा हम खा गये पर तुम सब चौपड़ा हमारे देख लो वामें कोई घोटाला होय तो हमकु बोलो नहीं तो कोईकु बोलवेको अधिकार नहीं हे." मैंने वासु कही के "सब लोग ये केह तो रहे हें के तुमने पैसा खायो हे." तब

वाने कही "मैं तो केवल या चेयरमॅनकी कुर्सीको एडवान्टेज् लऊं हूं और कुछ नहीं खाऊं." वा कुर्सीको एडवान्टेज् कितनो जितनी भाड़ा चिठ्ठी आवें उनकु बदले वाकी पगड़ी खा जावे अब ट्रस्ट्की प्रोपर्टी तो बहोत रोज भाड़ा चिठ्ठी भाडूति बदलें भाड़ा तो ट्रस्ट्के नामपे ही होवे पर जो पगड़ी मिले वो सब खा जाय ये वाको चेयरको एडवान्टेज् हतो मैंने वासु कही के "बात तो तुम्हारी ठीक हे पर पगड़ी की तो कोई लिखित रसीद देगो नहीं वाको हिसाब कहां हे?" ऐसे ही परमात्मा चेयरपे बैठो भयो भगवान् खाली चेयरको एडवान्टेज् ले हे हिसाब पूरो रखे एक आदमी अपनी पत्नीसु प्रेम कर रह्यो हे एक औरत अपने पतिसु प्रेम कर रही हे एक बाप अपने बेटासु प्रेम कर रह्यो हे मैं वामें कहां हूं जमा खर्च बराबर हे देख लो दुनियाको चौपड़ा कहीं कोई घोटाला नहीं हे पर बीचकी पगड़ी इधर-उधर हो जाय **न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवति आत्मनस्तु कामायसर्व प्रियं भवति.**" ये वा चेयरको एडवान्टेज् ले जाय.

(ब्रह्मकी मायिकता!)

या लिये पेहलो कपट तो सृष्टिकी प्रक्रियामें ही रख दियो हे बिचारे अद्वैती लोग क्या करें! मायिक नहीं कहें सगुणब्रह्मकु तो क्या कहें!! ऐसी सब बात देखके घबरा जायें तो वे मायिक केह दें. महाप्रभुजी जैसेन्कु यह बात अच्छी नहीं लगे वो कहें "**ऐसे नहीं कहिये ऐसे कहिये के भली यह खेलवेकी बानि.**" उन अद्वैतीनकी तो धीरज छूट जाय तो केह दें के सगुणब्रह्म मायिक हे करें क्या! आचार्यचरणकु वो बात पसंद नहीं आवे अब पसंद नहीं आवे तो वो ये कहें के "'कौन यह खेलवेकी बानि?' मत कहो, ऐसे कहो 'भली यह खेलवेकी बानि!'." यह मिथ्या नहीं हे ये खेल भी भलो हे. प्रभु करें सो भली करें ये आचार्यचरणको भाव हे. वामें बेचारो मायावादी क्या करे! घबरा जाय एक-आध बखत ठगा

जाय तो डर जाय. आप कोई गाँवमें जाओ और घुसते ही आपकु कोई ठग ले तो आप जब अपने गाँव जाओगे तो सबकु यह ही तो कहोगे के "वा गाँवमें मत जइयो वहां तो बहोत ठग हें." अरे पांच दस लाखकी बस्तीमें कोई एक-दोने तुमकु ठग लियो तो कोई आखो गाम थोड़े ही ठग हे! पर होवे क्या हे के एक बार नयो-नयो आदमी ठगा जाय तो वाकु सारो गाम ठग लगे.

ऐसे ही बेचारे अद्वैती लोग आवें सोचके के जगत्‌की चर्चा करोगे तो "**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**" (ब्र.सू.१।१।१) करेंगे. अब ब्रह्मको स्वरूप विचार करवे बैठें तो एकाध जगह ठगा जायें अब ठगा जायें तो उनकु सारो जगत् ही माया दीखे, फिर ठाकुरजी स्वयं भी आ जायें तो वो भी उनकु माया दीखें. ब्रह्म स्वयं उनके सामने कृष्णरूप धारण करके आवे तो भी श्रीशंकराचार्य कहें हें मायिक हे. सो "**सम्भवामि आत्ममायया**" (भग.गीता४।६) वो आत्ममाययाकु शंकराचार्य कहें के मायिकरूप ब्रह्म हे, प्रभु भी मायिक हें. खुद ब्रह्म आ गयो खुद ब्रह्म केह रह्यो के "**बहूनि मे व्यतितानि जन्मानि... तानि अहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप!**" (भग.गीता४।५) तो बोलें के नहीं नहीं तुम भी मायिक हो. क्योंके जगत्‌में मायाके रूपसु एक बखत ठगा गये अब डर लग गयो. अब सगुणब्रह्म आयो तो जाओ मायिक! अब देखो ब्रह्म भी मायिक! एक रिफ्लेक्सएक्शन् जैसो हो जाय.

रिफ्लेक्सएक्शन् काहेकु कहें! जैसे 'पावलो' नामको रशियामें एक वैज्ञानिक हतो वाने एक प्रयोग कियो वाने कुत्ताकु रोटी देवेके पेहले घंटी बजानी शुरु करी महीना भर तक रोज ऐसे घंटी वाकु सुनायी महीनाके बाद रोटीकु देखके जो लार टपकनी चहिये हती वो घंटीकी आवाजपे टपकवे लगी. अब रोटी आवेके नहीं आवे घंटी बजते ही लार टपकवे लग जाती, ये हे 'रिफ्लॅक्सएक्शन्'.

जैसे अपन् पैर जमीनपे रखें और कोई चीज चुभे तो पैर अपने आप उठ जाय वो 'रिफ्लेक्सएक्शन्' केहवावे, वो अपने आप ही घटित हो जाय. ऐसे एक दो बखत ठग जाय तो वो मायावादीन्को माइन्ड कन्डीशन्ड हो जाय. अब फिर ब्रह्म भी आवे तो वो रिफ्लेक्सएक्शन्सु केह दें के 'माया' हे. इधर घंटी बजी और उधर लार टपकी. अरे परब्रह्म भी मायिक! सब मायिक क्योंके माइन्ड कन्डीशन्ड हो गयो. ऐसे नहीं हे थोड़ो मायिक भी हे तो थोड़ो खुद भी हे. जैसे अपने यहां ट्रस्टमें थोड़ो चेयरको एडवान्टेज् ले हे पर नेचरल् कमायी भी हे क्योंके ट्रस्ट धंधा नहीं केहवावे पर एक्स्ट्राकॅरिकुलम् एक्टिविटी हे. ट्रस्टी बननो धंधा नहीं हे. अपन् ट्रस्टी कौनकु बनावें जाके खुदके धंधा अच्छी तरेहसु चलते होंय मुफतियेकु ट्रस्टी नहीं बनावें. ऐसे वाके अच्छे चलते भये धंधा तो हें तो ट्रस्टी बन्यो, पर थोड़ो बहोत चेयरको एडवान्टेज् ले हे.

(क्रीडाके लिये देहधारण)

गोपिका कहें हे के **गतिविदः तवोद्गीतमोहिता** तेरे गीतसु सब मोहित हो जायें हें. **"गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् यो अन्तःचरति सो अध्यक्षः क्रीडनेन इह देहभाक्"** (भाग.पुरा.१०।३०।३६) शुकदेवजी परीक्षितकु फटकारे हें अरे ये गोपी रास नहीं करतीं और ये उन गोपिन्के साथ रास नहीं करतो तो क्या वो हतो नहीं उनके साथ! उनके पतिरूपसु कौन हतो? वो ही तो हतो. उनके पुत्ररूपसु कौन हतो? वो खुद हतो. विभिन्न रूपन्में ये सारी क्रीड़ा वाहीकी तो चल रही हे. वाने ही अलग अलग रूप लेके एक रासक्रीड़ा और कर ली तो वामें फरक क्या पड़ गयो! अपन् तो परिछिन्नरूप हें या लिये फरक पड़े हे. जैसे स्टेजपे अपन् एक हीरोकु देखें एक विलनकु देखें. वामें विलनकु अपन् बदमाश मानें और हीरोकु आदर्श मानें. हीरो होके कोई बदमाशीके काम करे तो अपन्कु नाटक अच्छो नहीं लगे याही तरहसु विलन सद्वृति दिखाते होंय तो भी

अपनूकु अच्छो नहीं लगे. विलन होके सद्वृति क्यों!! पर समझ लो के कोई कुशल अभिनेता टर्न्-बाइ-टर्न् कभी विलन बनके कभी हीरो बनके स्टेज्पे आ जातो होय तो अपन् रोक सकें क्या वाकु!! विलन बनके विलनको अभिनय अच्छो कर ले हीरो बनके हीरोको अभिनय अच्छो कर ले तो वाकु कोई कैसे रोक सके!! कभी कभी फिल्ममें बतावें के एक ही आदमी दो रोल कर रह्यो हे एक दूसरेके आमने-सामने आ जायें एक दूसरेके उपर तलवार भी चलावें अब वामें कौन अच्छो और कौन बुरो? दोनों ही एक जैसे हें एक आदमी दोनों रोल कर रह्यो हे. याही तरेह पतिको रोल भी वोही कर रह्यो हे और पत्नीको रोल भी वोही कर रह्यो हे. पिताको रोल भी वोही कर रह्यो हे और पुत्रको रोल भी वोही कर रह्यो हे. पापीको रोल भी वोही कर रह्यो हे और पुण्यात्माको रोल भी वोही कर रह्यो हे. या स्टेजपे सारे रोल अलग-अलग हें पर परदाके पीछे तो एक ही व्यक्ति हे "**एकोहं बहुस्याम् प्रजायेयं**" (छान्दो.उप.६।२।३) वो एक ही इतने सारे चरित्रनूकु निभा रह्यो हे वाने कोई एक नयो नाटक दिखा दियो एक नयी लीला दिखा दी तो वामें कौनसी बड़ी बात हो गयी! वामें इतनी चिन्ता करवेकी क्या बात हे! ये तो धीरज हे. शुकदेवजीकु धीरज हे या लिये वो कपटी नहीं मानें हें. वो एक और लीला दिखावेके कारण उनके हृदयको भाव आरूढ़ हे महाप्रभुजीकी तरेह के जब सारी लीला वो कर रह्यो हे तो जो भी लीला वो कर रह्यो हे वाको आनंद लेते जाओ. चेयरको एडवान्टेज् ले तो भी सेंक्शन् करो. वहां तो जो वो करे सो सब भली, अपनूकु तो खाली सेंक्शन् करनो हे, पर धीरज छूट जाय.

(तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम्)

श्रुति यों कहे हे "**एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति**" (ऋक्.संहि.१।१६४।४६) "**अजायमानो बहुधा विजायते तस्यः धीराः**

परिजानन्ति योनिम्'' (तैत्ति.आर.३।१३।३). वो अज हे 'अज' मानें जो पैदा नहीं होतो होय, पर वही बहोत रूप ले के पैदा हो जाय, अब यदि धीरज नहीं होय तो यों लगे के सब मिथ्या हे, पर धीरज होय तो पता चले के सारेके सारे रूप वाके लिये भये सच्चे हें उनमें एक भी कपट नहीं हे. अनेक रूप लेने होय तो अपने पास कपटके सिवाय कोई दूसरी व्यवस्था हो नहीं सके, क्योंकि अपनी जो रेन्ज् हे वो उतनी ही हे. अपनी रेन्ज् इतनी हे के जब अपनूकु सब एक साथ नहीं दीखे तो अपनूकु समझ नहीं आवे वोही कृष्ण जो अस्तेयं अहिंसा अचौर्यको गीतामें उपदेश करवेवालो माखन-चोरी कैसे कर सके! यासु अपनूकु लगे के या तो माखनचोरीलीला कपट होयगी अथवा गीताको उपदेश कपट होयगो! और अधिक धीरज छूट जाय तो दोनों ही लीला कपट लगेंगी, समझमें नहीं आवे बात तो धीरज छूट गयी क्या करें! पर जो समझें हें जिनमें ब्रह्मके स्वरूपकु समझवेकी धीरज हे के **''अजायमानो बहुधा विजायते तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम्''** . एक ही तथ्य अनेक रूप ले सके ये बात धीरजसु ही उनकु समझमें आवे के वो एक होते भये भी अनेक रूप ले सके. **''ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे!** (नरसिंहमहेता). खुद वो खुदके सामने नाच सके. एक महाप्रभु इन सारी बातनूकु सेंक्शन् भी कर दें के **''भली यह खेलवेकी बानि''** यामें कपट काहेकु केहनो! जो कपट करेगो तो जाके सामने वो कपट करेगो वो भी वो खुद ही तो हे. जैसे **''ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे''** ऐसे कपट कर रह्यो हे तो खुदके सामने ही तो कपट कर रह्यो हे. जाकु ठग रह्यो हे वो भी ब्रह्म हे और जो ठग्यो जा रह्यो हे वो भी ब्रह्म हे. **''सर्वं खलु इदम् ब्रह्म''** (छान्दो.उप.३।१४।१) कहां कपट आ गयो! या भावसु आचार्यचरण केह दें के **''भली ये खेलवेकी बानि''** हम कौन ये केहवेवाले जब वो खुदकु ही ठग रह्यो हे तो अपन् कौन! आप कांचमें देखके मुस्कुराते होव अथवा दांत निकालते होव वामें दूसरेकु क्या

समस्या हो सके! मोकु आप दांत दिखाओ तो मैं केह सकूं के "पागल हो गये हो क्या! क्या हो गयो जो दांत दिखा रहे हो!" पर कांचमें खुदकु देखके आप जो भी करो वामें मोकु या समस्या होयगी! आपको कांच आपको चेहरा और आपके दांत. ऐसे ही ब्रह्म आपने सामर्थ्यसु खुदके रूपके साथ ठगाई करे के और कछु करे वो तो वो स्वयंके साथ ही तो कर रह्यो हे यामें कोई ज्ञानीकु चिंता करवेकी आवश्यकता नहीं हे धीरज रखनी छोड़नी नहीं धीरजके साथ समझनो के **"अजायमानो बहुधा विजायते"** . याके लिये ये गोपी केह रही हे के ये **कुटिलकुन्तलमुख** जो ज्ञानी हें पर उन् ज्ञानीकी धीरज छूट जाय वाको उपाय क्या!

(आपीतमपि नातृप्यत्)

"आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थाअपि उरुक्रमे कुर्वन्ति अहैतुकीं भक्तिम् इत्थम्भूतगुणो हरिः" (भाग.पुरा.१।७।१०). ये कुमारिकायें आत्माराम मुनि हते समाधिमें ध्यान लगाके निर्ग्रन्थ हते इनकु भोजनादिकी आवश्यकता नहीं हती अपनी समाधिमें मस्त हतें, पर रामको रूप सामने आ गयो तो उनकी समाधि टूट गयी तो वामें उनकी क्या गलती! इनकी कोई अल्पताको या समाधिके सामर्थ्यको कोई दोष नहीं हे पर उन प्रभु श्रीरामके सौन्दर्यको अपराध हतो के इनकी समाधि टूट गयी. याहि लिये आगे जाके कहेंगे के **"अपरा अनिमिषदृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् आपीतमपि नातृप्यत् सन्तः तच्चरणं यथा"** (भाग.पुरा.१०।२९।७). जा बखत रासमें प्रभु प्रकट भये वा बखत आचार्यचरण बहोत सुंदर बात कहे हें **"अपराऽनिमिषदृग्भ्यां"** यहां तो ये केह रही हे **जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्** पर जा बखत प्रभु प्रकट भये तब उनको रूपमाधुर्यको लावण्य ऐसो हतो के इनकी निमेष पड़नी बंद हो गयीं.

"'अपरा अनिमिषदृग्यभ्याम् जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् आपीतमपि

नातृप्य'' प्रभुने कही के तुम ब्रह्माकु गाली दे रहे हो न! तो मैं ऐसो रूप लेके प्रकट होऊं के तुम्हारी निमेष ही नहीं पडे वैसो मुखारविन्द लेके सौन्दर्यको पान करते भये पूरी तरेहसु पान कर लियो फिरभी अतृप्त रही.

चौबेजीकी कथामें ऐसो आवे के उनने खूब खा लियो खायो तो जजमान घबरा गयो वाने कही के ''महाराज कछु चूरण खा लो नहीं तो अपच हो जायगी.'' चौबेजीने कही ''चूरण खावेकी जगह पेटमें होती तो एक लड्डू नहीं खा लेतो?'' चूरण खावेकी जगह नहीं बची इतनो पेट भर गयो **आपीतमपि** इतनो खावेके बाद भी चौबेजीकु तकलीफ ही रहे जामें चूरण खावेकी जगह भी नहीं रही नहीं तो एक लड्डू और खा लेतो; **आपीतमति नातृप्यत् सन्तः तच्चरणं यथा** दर्शन करवेके बाद भी तृप्ति नहीं भयी यहां तक खा लियो फिर भी तृप्ति नहीं भयी. दो चौबेन्के लिये दो जजमानन्में झगड़ा भयो एकने दूसरेसु पूछी के ''तुम्हारे यहां चौबेजी कैसे जिमाये?'' तो वो बोल्यो के ''हमारे यहां चौबेजीकु जिमावें तो बादमें उनकु खाटपे लिटाके ले जानो पड़े.'' तो दूसरो बोल्यो के ''बड़े दरिद्र हो तुम लोग हमारे यहां तो इतनो खवावें के चौबेजीकी घर जावेकी भी हिम्मत नहीं होय वो वहीं खाके सो जायें.'' ऐसो एकदम आपीततृप्ति ही नहीं होवे. चौबे खा भले ही लेवें पर उनकी तृप्ति नहीं होवे चौबेकु संस्कृतमें 'चतुर्वेदी' कहे हें चारों वेद चौबेन्के यहां होवे हें. ये चारों वेदकी श्रुतियें **आपीत** खूब खा रही हें इतनो खा रही हें पर उन बीचारीन्की तृप्ति नहीं होवे जैसे चौबेन्कु तृप्ति नहीं होवे, अब प्रभु इनकु सामग्रीमें लड्डू पेड़ान्में ठग लेवे हें **''सन्तः तच्चरणं यथा''** जैसे सन्त लोगन्में न ग्रंथि हे न मोक्षकी कामना हे न भोगकी कामना हे इन कामनान्सु रहित होते भये भी भगवान्के चरणपे ध्यान अकाम ही होतो रहे हे. नहीं तो साधारण आदमीकु ऐसो होवे के कोई भी काम करे तो कोई न कोई कामना

तो करे ही हे. जैसे कोइ कहें के "अरे निष्कामयोग बतायो हे." पर निष्कामयोगकु अपनावेकी भी तो कोई कामना होवे हे. निष्कामयोगकी कामना नहीं होय तो वो वाकु अपनावेगो कैसे! कामना नहीं होवे तो निष्काम भी नहीं होवे कुछ बातें ऐसी खराब हें दुनियामें के जिनको कोई उपाय ही नहीं हे. जैसे एक प्रसिद्ध वाक्य हे आप यदि यों कहो के जितनी भी फिलोसोफी हे वो खोटी हे तो ये अपने आप एक फिलोसॉफिकल् वाक्य हे. फिलोसोफीकु नकारनो अपने आपमें एक फिलोसोफी हे. ऐसे ही कामनाकु छोड़वेके लिये कहें के "ये कामना छोड़ी, वो कामना छोड़ी हमने सब कामनायें छोड़ीं" तो ये भी तो एक कामना भई कामनासु कहां छुटकारा हे! क्योंकि "**सोऽकामयत् बहुस्याम प्रजायेय** (तैत्ति.उप.२।६) कामनासु ही सृष्टिको प्रादुर्भाव भयो, कामनामें ही सृष्टि छिपी भयी हे, कामनामें ही सृष्टि लीन हो रही हे. याकु नकारोगे तो वामें भी कोई न कोई कामना छिपी भई निकलेगी बिना कामनाके तो कामनाकु भी नकार नहीं पाओगे. या तरेहसु ठाकुरजीको भी ऐसो स्वरूप हे. सब रूपसु आप ठाकुरजीकु नकार दो तो वो रूप भी ठाकुरजीको ही हे. **कितव योषित कः त्यजेद् निशि.**

(गतिविद्-भजने तारतम्यविद्)

सर्वैः यावती गति संपाद्यते तां भवानेव दास्यतीति वयं वा गतिविदः गोपी कहे हे "हम भी जाने हें गति." **तेषां भजने भगवद्भजने च तारतम्यविदः** और हमकु ये भी पता हे के "**न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति**" (बृह.उप.२।४।५) तू कहांसु ठग रह्यो हे थोड़े बहोत रहस्य हमकुं भी मालूम हें. या लिये प्रभुने वहां कही के "**मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः विचिन्वन्ति हि अपश्यन्तो मा कृद्वं बन्धुसाध्वसम्** (भाग.पुरा.१०।२६।२०). तुम यहां क्यों आयीं! कोईके माँ कोईके पिता कोईके पुत्र कोईके भाई कोईके पति तुमकु सब खोज रहे

हें और तुमकु पायेंगे नहीं तो बड़े दुःखी हो जायेंगे. "**भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो हि अमायया तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां च अनुपोषणम्**" भगवान्‌ने कह्यो ये तुम्हारो परम धर्म हे वाको जवाब देते बखत गोपिकान्‌ने क्या कह्यो? "**यत् पत्यपत्यसुहृदाम् अनुवृत्तिः अंग! स्त्रीणां स्वधर्मः इति धर्मविदा त्वया उक्तम् अस्त्वेवम् एतदुपदेशपदे त्वयि ईशे प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुः आत्मा**" (भाग.पुरा.१०।२९।३२). महाराज ये जो आप धर्मोपदेश दे रहे हो के अपने अपने परिवारमें सब रहें और अपने अपने परिवारके सदस्यन्‌की सेवा करें; ये तुमने बहोत अच्छो धर्मको उपदेश दियो विद्वान हो धर्मके जानकार हो अच्छो उपदेश दियो! पर हम ये केह रहे हें के तुम हमारे परिवारमें रेह रहे हो और हमारे परिवारमें जितने सदस्य हें, उन सब रूपन्‌में तुम ही हमकु बिराजमान दिखायी दे रहे हो. ये उपदेशपद तुम ही प्राप्त करो क्योंकि तुम ही हमारे प्रेष्ठ हो. जोभी तनुभृत हें उनमें तुम ही प्रेष्ठ हो क्योंके (आपने ही कह्यो हे) "**अहम् आत्माऽऽत्मनां धात! प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिः यत्कृते प्रियः**" (भाग.पुरा.३।९।४२). जितने भी प्रेष्ठतम हें; जैसे घर अपन्‌कु क्यों प्रिय लगे? क्योंके या घरमें अपनी देहसम्बन्धी जितनी भी बातें हें वो मिले हें. देह क्यों प्रिय लगे हे क्योंके ये देह अपनो देह हे. आत्मा प्रिय हे या लिये देह प्रिय लगे हे. आत्मा क्यों प्रिय लगे हे? क्योंके आत्माके भीतर परमात्मा बिराजे हे. देह प्रिय होय तो आत्मा प्रियतर हे और आत्मा यदि प्रियतर हे तो परमात्मा प्रियतम हे या लिये प्रियतम तो तू ही हे, प्रेष्ठ तो तू ही हे. "**प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुः आत्मा**" परमात्मा होवेके कारण प्रियतम तो तू ही हे. तू जो उपदेश दे रह्यो हे के परिवारकी सेवा करो तो वो सेवा क्या तेरे तक पहोंचवेवाली नहीं हे! और जब वो सेवा तेरे तक ही पहोंचनी हे तो सीधी तेरी सेवा ही क्यों नहीं? या तरेहसु धर्मविद् कृष्णकु गोपीजनन्‌ने उत्तर दियो हे. वो बात यहां याद दिलायी जा रही हे **तेषां भजने भगवद्-भजने**

च तारतम्यविदः.

(तव उद्गीतेन च मोहिता:)

किञ्च तव उद्गीतेन च मोहिता:. हम तो सारे धर्मकु जाने हें हम धर्मकी जानकारीके कारण ये भी जान सके हें के "**पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मनं ऐक्षद् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वम् ईच्छन्**" (कठोप.२।१।१). परमात्माने इन्द्रियन्के द्वार बाहरकी तरफ खोल दिये हें, इन इन्द्रियन्को जो प्रवाह हे वो बाहरकी तरफ कर दियो हे याके लिये अपन् बाहरकी सब चीजन्कु प्यार करे हें, यदि आँखकु मींचके इन्द्रिय प्रवाह अन्दरकी तरफ मोड़ोगे तो ये प्रवाह अन्दरकी तरफ मुड़ जायेगो. "**यदा संहरते चायं कूंर्मो अंगानीव सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता**" (भग.गीता २।५८). जैसे कछुआ अपने हाथ पैर पूंछ मोहड़ा सब सिकोड़के अंदर ले ले. वा तरेहसु इन्द्रियन्के व्यापार जो विषयन्की तरफ जा रहे हें वाकु कभी सिकोड़के अपने-अपने आत्माकी तरफ ले लोगे तो अन्दर भी तुमकु परमात्मा मिल सके हे; और हमकु ये रहस्य पता हे के अन्दर हृदयमें स्वयं आँख मींचके भी अंतरात्माकु खोज्यो जा सके हे. घरमें बैठके भी परमात्माकु खोज्यो जा सके हे और हम खोज भी लेते क्योंके हम आपीत हें. खोजवेकी भी आवश्यकता नहीं हे हृदयमें ही चरण बिराजमान हें पर **हृदये स्थापितम् बहि न समायाति** तो उनने कही के बाहर लावेकी क्या जरूरत हे? तो कहे क्योंके **उद्गीतेन मोहिता:** तेंने वेणु बाहर बजायी अंदर बजातो तो हम अन्दर जातीं. हम तो वेणुके प्रवाहमें स्थित हें यदि हृदयमें वेणु बजातो तो हृदयमें खिंचके जातीं बाहर वेणु बजायेगो तो बाहर खिंचके आयेंगी. तेंने गलती करी देख! हृदयमें बजातो तो सर्वथा हम अपनी अन्तरात्माकी तरफ मुड़ जातीं अगर तू अन्तरात्मामें छिपके वेणु बजातो तो! पर ऐसे तो तूने बजायी नहीं या वृंदावनमें खड़े होके वेणु बजायी हे या लिये हम वृन्दावन आयी हें. नहीं तो

हमकु ये रहस्य पता हे. **किञ्च तव उद्गीतेन च मोहिता:** और **उद्गीत** मानें उनकु वेणुको मध्यम स्वर सुनायी नहीं पड़्यो जैसे जंगलमें कहीं वेणु बजती होय तो वाकी धीमी-धीमी ध्वनि कानमें आवे हे. ऐसी धीमी धीमी ध्वनि इनके कानमें नहीं आयी बल्कि बहोत तेज ध्वनि इनके कानमें आयी, ऐसी के जाने इनकु दौड़वेके लिये व्यथित कर दियो परवश कर दियो. वा तरेहको इनकु उद्गीत सुनायी पड़्यो के जासु उद्गमन हो गयो लांघती चली गयीं सारो **अतो मोहयित्वा समानीय.**

अब तेंने कपट कैसे कियो हम परिवारमें हते वहांसु हमारी आसक्ति छुड़ाई. अन्तरात्मामें जो परमात्माकु खोजवेको हमारो विवेक हतो वो वेणुनादके द्वारा छुड़ायो और वृन्दावनमें वेणुनाद करके हम सबकु इकठ्ठी करी और **उभयभ्रंशार्थम् अरण्ये निशि योषित: क: त्यजेत्!** यहां जंगलमें हमकु बुलाके यहांसु भी हमकु छोड़के जा रह्यो हे! **सर्वदैव स्त्रियो न त्याज्या: सुतराम् अरण्ये सुतरां निशि.** स्त्रीकु तो कभी अकेले छोड़नो ही नहीं चहिये. **सुतराम् अरण्ये** और वो भी जंगलमें! कभी अकेले छोड़्यो जाय जंगलमें और भी **सुतरां निशि** वो भी रात्रिमें! **यदर्थं वा समाहूता तदपि अदत्वा इति अभिप्रायेण सम्बोधनम्.** जा हेतुसु वेणुनाद करके बुलायो वा हेतुके पूरो होवेसु पेहले ही हमकु छोड़ दियो. अब यासु यह निष्कर्ष आ गयो के **कितवानां वयं संबन्धिन्य: अतोऽस्माकं तेषु न प्रवेश:.** यासु यह सिद्ध भयो के और कोई बात नहीं हे हमारो प्रेम कोई कपटीके साथ जुड़ गयो हे याके लिये सात्त्विकने बात कही के हम देव हें वो सब खोटी बात हे हम कोई देव नहीं हें हम तो कपटीकी प्रेमिका हो गई हें कपटीकी प्रेमिका हें ये हमारो दुर्भाग्य हे और कोई चक्कर नहीं हे. या सद्भाग्य हे तो ये ही हमारो सद्भाग्य हे के ऐसे कपटीकी हम प्रेमिका हें. **पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलङ्घ्य ते अन्ति अच्युत आगता गतिविद: तव उद्गीतमोहिता कितव! योषित: क:**

त्यजेद् निशि.

श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हें- **''गता बुद्धिः शुद्धिर् जगति विरुणद्धि स्वपतिरप्ययये लज्जा गुर्वी गुरुपतिसुतानां न गणिता यदर्थं तत्संग सखि न भविता यद्यचिरतस् तदा नाहं पश्यामि अहह मरणाद् अन्यदरणम्''** (विज्ञप्ति २।२६). जाके कारण हमारी शुद्ध बुद्धि अन्तरात्माकु खोजवेकी हमारी जो शुद्ध बुद्धि हती वो चली गयी जो हमारे पति हते उनके विरोधकु हमने मान्यो नहीं. जो गुरु-लज्जा स्त्रीके लिये सबसु बड़ो साधन हे; **''कीर्ति श्री वाक् च नारीणां** (भग.गीता १०।३४). ये तीन कीर्ति वाणी और श्री ये नारीमें ईश्वरीय तत्त्व हें मानें इनके कारण ही लज्जातत्त्व स्त्रीमें आवे हे. कीर्ति नहीं होय तो लज्जाको कोई प्रश्न ही खड़ो नहीं होय. कीर्ति बिगड़ी वा स्त्रीको सबकछु बिगड़ गयो श्री बिगड़ी तो स्त्रीको सबकछु बिगड़ गयो. वाणी स्त्रीकी बिगड़ी तो सबकछु बिगड़ गयो वा लज्जाकु भी हमने छोड़ दियो जा हेतुसु के तेरे संग चिरतर संग होवे. वो नहीं होवे तो मृत्युके अलावा हमारी और कौनसी गति अच्छी हे! ये छेल्ली गति बताके तामसी गोपिकान्ने; क्योंके इतनी विकलता भई हे वो विरहको ताप भावार्द्र हृदयके काष्ठकु इतनो जला रह्यो हे के ये बेचारी धुंआ छोड़े हें **न मरणाद् अन्यदरणम्** और हमारे क्या उपाय हे!

(सारे पुष्टिजीव गतिविद)

आचार्यचरणकी जो ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा हे वो भगवद्मुखारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा हे, चरणारविन्दकी भक्तिकी दीक्षा नहीं हे. ब्रह्मसम्बन्धमें जो कछु कह्यो जा सकतो हतो **''पतिसुतान्वय भ्रातृबान्धवान् अतिविलंघ्य ते अन्ति अच्युत आगताः गतिविदः तवोद्गीतमोहिता कितव! योषितः कः त्यजेद् निशि!!''** में केह दियो. यामें जो कछु कह्यो जा सके

वो ही बात ब्रह्मसम्बन्धमें आचार्यचरणने कही हे आचार्यचरणके सामने **तदपेक्षया हीना "सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः पापपीनस्य"** पुष्टिमार्गीय जीव हें और याही लिये ये ब्रह्मसम्बन्धकी भूमिका हे **गतिविदः तवोद्गीतमोहिताः "माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः"** (नारदपञ्चरात्र). पुष्टिमार्गमें माहात्म्यज्ञान कितनो अपेक्षित हे इतनो के भगवान्के मुखारविन्दद्वारा उद्दीप्त जो वेणुगीत हे वासु मोहित होनो चहिये और गतिविद होनो चहिये. उद्दीप्त मोह ही अपनो ज्ञान हे और गतिविदता ही अपने यहां भक्ति हे. प्रभु कहां प्राप्त हों (ये ही उत्कटता हे.) पुष्टिभक्तिमें साक्षात् स्वरूपासक्ति में कोई समझौताको सवाल नहीं हे, याको कोई सब्स्टीट्यूट नहीं हे. भक्त गतिविद होने चहियें. (गोपिका पहोची वामें) सब रस्तापे इन्डिकेशन् क्या हते के प्रभु कितने माइल् दूर हें! कोई इन्डिकेशन् हते क्या, जो अब दायें मुड़ो अब बायें मुड़ो! तब कैसे पहोंच गयीं! क्योकिं वे सबके सब गतिविद हें. उनकी अन्तरात्मा साक्षी दे के स्वरूप यहां हें. जैसे प्रभु गतिविद हें वो तो हें ही पर सारे पुष्टिजीव गतिविद हें. क्यों गतिविद हें? क्योंके उनकी भक्ति उनकु गति जनावे हे. जो गति हे वो भक्ति ही हे. **"भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिः नान्यथा भवेत्"** (पु.प्र.म.१२) भगवत्स्वरूपसेवाके लिये ही ये पुष्टिसृष्टि हे बाकी अन्य सब मर्यादाकी सृष्टि मोक्षके लिये हो सके और प्रवाहकी संसारभोगके लिये हे, पर पुष्टिसृष्टि तो भगवत्सेवाके लिये ही हे पर ये भगवत्स्वरूप बिराजे कहां हे वा गतिकु भी ये अच्छी तरहसु जाने हे **गतिविदः तवोद्गीतमोहिताः**. या तरहसु **"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः स्नेहः = भक्ति."** भक्तिपूर्वक जो भगवत्सेवामें प्रवृत्त भयो **पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलङ्घ्य,** माने ब्रह्मसम्बन्ध लेके **ते अन्ति अच्युत आगताः** अच्युतके पास पहोंच गये. दूसरे तो जो भी सम्बन्ध हें वो च्युतसम्बन्ध हें केवल प्रभुके साथको सम्बन्ध वो जा प्रकारको भी होय अच्युतसम्बन्ध रहेगो. वो सम्बन्ध कभी छूटेगो नहीं भाव स्थिर होनो चहिये, भाव रूढ़ होनो चहिये तो

वो भाव कभी छूटेगो नहीं. ये अपन् अच्युतकी तरफ जो जा रहे हें वो अच्युतगति ही ब्रह्मसम्बन्ध हे. ये जो अपनी मोहकी निशा हे ये जो अपन् भवाटवीमें भटक रहे हें **कितव! योषितः कः त्यजेद् निशि** यासु अपन् भी कितव! नहीं केहते भये भी प्रार्थना तो कर ही सकें हें. जब ब्रह्मसम्बन्ध हमने लियो जब हम शरणागत हें जब या मोहकी अन्धकार भरी रात्रिमें या भवाटवीमें माहात्म्यज्ञानपूर्वक तेरो भजन हम कर रहे हें तो क्या तू हमकु छोड़ देगो! **"दुष्टतमोऽपि दयारहितोऽपि विधर्मविशेषकृतिप्रार्थितोऽपि दुर्जनसंगरतोऽपि अवरोऽपि कृष्ण तवाऽस्मि न चास्मि परस्य"** (पञ्चाक्षरमंत्रगर्भस्तोत्र.१.) हे कृष्ण! तेरो ही हूं और कोईको नहीं हूं. **"काममयोऽपि गताश्रयणोऽपि पराश्रयणाशयचंचलितोऽपि वैषयिकादरसंवलितोऽपि कृष्ण तवास्मि न चाऽस्मि परस्य"** .(पञ्चाक्षरमंत्रगर्भस्त्रोतम्.३).

(हीनताकी उत्कृष्टता)

कितव! योषितः कः त्यजेद् निशि. यामें अपने सारे पुष्टिमार्गकी कथा आ गयी यामें अपन् सब आ गये. ये हीनभावको अधिकार अपन् सबकु हे और या हीनभावसु अपन् सब प्रभुकु **कितव! योषित कः त्यजेद् निशि** केह सके हें. ये हीनता ही अपनी उत्कृष्टता हे, अन्य अपनी उत्कृष्टता तो अपन्कु दीखे ही नहीं हे. यह अधिकार प्रभुने दियो हे के अपन् प्रभुकु **कितव!** केह सकें हें. बस यामें अपनो सारो उत्कर्ष आ गयो अपन्कु मुक्ति नहीं चहिये, अपन्कु ज्ञान नहीं चहिये **"न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् न योगसिद्धि न अपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे"** (वृत्रा.चतु.२). स्वर्ग नहीं चहिये मुक्ति नहीं चहिये ब्रह्मलोक नहीं चहिये कोई साम्राज्य नहीं चहिये, बस ये अधिकार पुष्टिजीवन्को बन्यो रहे के अपन् प्रभुकु एकाध गाली दें तो वो अपनी गाली सहन करें. चाहे तो पलटके अपन्कु हीन केह दें बस अपन्कु हीन सुननो मंजूर हे वो अपनी गाली तो सुन रह्यो हे तो मुक्तिकु

लेके करेंगे क्या!! अपन् पुष्टिजीवकु ये गालीको अधिकार बहोत हे यामें सारो आ गयो "**भगवदीयत्वेन परिसमाप्त सर्वार्था:**" (भाग.पुरा.५।६।१७). सारे अर्थ यामें परिपूर्ण हो गये.

----*----

॥श्लोक : १७॥

उत्थानिका :

ततः उत्तमाः आत्मानमेव निन्दन्ति रहसि इति :

महाप्रभुजीने **देवनिन्दिकाः सात्त्विकतामस्यः भगवन्निन्दिका तामसतामस्यः स्वनिन्दिका राजसतामस्यः इति,** ये केहके तामसभाव तीन प्रकारके बताये देवनिन्दक भगवन्निन्दक और आत्मनिन्दक. जो तामस-सात्त्विक गोपी हती वाने **जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद दृशाम्** कहेके देवनिन्दा करी मने ब्रह्माजीकी निन्दा करी, जो तामस-तामस गोपिका हती वाने **कितव!** केहके भगवन्निन्दा करी और अब ये तामस-राजस है ये आत्मनिन्दा करे हे.

तत उत्तमाः आत्मानेव निन्दन्ति रहसि इति. यासु उत्तम आत्माकी अपनी निन्दा कर रही हे क्योंके राजस हे. ये ध्यान रखियो जो हीन हे अपने सिम्प्टम् वासु ज्यादा मिले हें. हम तो यों कहें, जब सिम्प्टम् अपने वासु ज्यादा मिलें तो अपनूकु बीमारी भी वोही होनी चहिये. दूसरी कौनसी बीमारी अपन् लेंगे के जासु अपनो मेल खावे यासु ही होमियोपॅथीमें दवाई देवेसु पेहले सिम्प्टम् मिलाये जावें, जितने सिम्प्टम् मिलें वो दवाई दी जाये आप तो अपनी सारी सिम्प्टम् देख लो. **"पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान् अतिविलङ्घ्य ते अन्ति अच्युत आगता गतिविदः तवोद्गीतमोहिता कितव! योषितः कः त्यजेद् निशि"** सु अपनी सारी सिस्टम् मेल खा रही हे. अपनी दवाई भी ये ही हे के अपन् या तरहसु हीनभावसु प्रभुकु **कितव!** केह दें के "भई अब हमकु क्यों छोड़े हे. कपटी तू हमसु क्यों कपट करे हे जब हमने ब्रह्मसम्बन्ध ले लियो, जब हम तेरी सेवामें प्रवृत्त हो गये, तेरे उद्गीतसु मोहित होके तेरे पास आये तब भी या भवाटवीमें अकेले भटकें! यदि हम भटक रहे हें तो यामें हमारी

गलती नहीं हे तू कपटी हे. यह यासुं उत्तम हे.

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्॥
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहं मुह्यते मनः॥१७॥

सुबोधिनी :

नो मनः अतिस्पृहं सद् मुह्यते इति. तत्र कारणत्रयं गुणत्रयसहितं - वाक्यं हास्यम् उरश्चैव कामानन्दाधिकारिणः रहसि एकान्ते या संविद् ज्ञानं वा. पूर्ववत् हृच्छयस्य कामस्य उदयो येन तादृशम्. प्रहसितयुक्तम् आननं प्रेमपूर्वकं वीक्षणं च यस्मिन्. श्रियो धाम बृहदुरः. भगवद्रूपस्य वा षड्गुणत्वम् उच्यते - रहसि संविदो यस्माद् इति एतादृशं त्वां, हृच्छयस्य उदयो यस्मात्, प्रहसितम् आननं यस्य, प्रेमपूर्वकं वीक्षणं यस्य, बृहदुरः श्रीधाम च वीक्ष्य. प्रमाणादिबलरूपता भगवद्रूपे निरूपिता. वक्षसि च स्वस्थित्यर्थं यशः श्रीः च निरूपिता. मुखदर्शनेनैव प्रहसितयुक्तत्वात् पूर्वस्थित्यभावः, ततः कामः, प्रेमवीक्षणेन च तस्य स्थिरीकरणं, ततः स्वयोग्यता, ततो भोगचातुर्यं प्रथमविशेषणेन - एवं सर्वं भविष्यतीति अतिस्पृहायुक्तं मनः मुह्यते केवलं मोहं प्राप्नोति, पदार्थालाभात् मुहुः मूर्च्छा समायातीति जीवनमरणान्यतराभावाद् धिग् जीवनम् इत्यर्थः॥१७॥

(मोहके कारण : गुणत्रय और भगवद्रूपके षड्गुण)

नो मनः अतिस्पृहं सद् मुह्यते इति तत्र कारणत्रयं गुणत्रयसहितम्. ये अपनी आत्माकी निंदा कर रही हे के भई तेरी क्या गलती! तोकु क्यों कपटी कहें ब्रह्माकु क्यों गाली दें सारो दोष हमारे मनको हे, हमारो मन तोपे मुग्ध होवे हे. मन मुग्ध नहीं होतो तो कोई स्पृहा बहोत ज्यादा बठति क्योंके **वाक्यं हास्यमुरश्चैव कामानन्दाधिकारिणः. रहसि ऐकान्ते या संविद ज्ञानं वा पूर्ववत् हृच्छयस्य कामस्य उदयो येन तादृशम्.** १. प्रभुके वचन २. प्रभुको हास्य ३. प्रभुको उन्नत वक्षस्थल, इन तीन कारणनूसु तीन गुण उत्पन्न होवे हें १. भगवद्वाक्य भगवद्विषयक

लालसा अपने मनमें पैदा करे २. हास्य अपने मनमें आनंद पैदा करे और ३. भगवान्‌को वक्षस्थल अपनी अधिकारिता बतावे. एकान्तमें जो बात प्रभुने कही हें वह लालसा प्रकट करे हें. **प्रहसितयुक्तम् आननं प्रेमपूर्वकं वीक्षणं च यस्मिन्** और हास्ययुक्त मुखारविंदसु प्रेमपूर्वक जो प्रभु अपनूकु देखे हें और वक्षस्थल श्रीको निवासस्थान हे.

भगवद्रूपस्य वा षड्गुणत्वं उच्यते रहसि संविदो यस्माद् इति एतादृशं त्वां. हृच्छयस्य उदयो यस्मात्. प्रहसितम् आननं यस्य, प्रेमपूर्वकं वीक्षणं यस्य, बृहदुर श्रीधाम च वीक्ष्य प्रमाणादिबलरूपता भगवद्रूपे निरूपिता. प्रभुके षड्गुण बताये ऐसो स्वरूप के जासु काम उत्पन्न होवे, ऐसो स्वरूप के जो हास्ययुक्त हे, ऐसो स्वरूप के जो प्रेमसु अपने भक्तनूकु देख रह्यो हे और ऐसो उन्नतवक्ष के जामें श्रीनिवास कर सके यासु सारे प्रमाणादिबल, प्रमाण प्रमेय साधन फल चारों बल प्रभुमें दिखाये. **वक्षसि च स्वस्थित्यर्थं यशः श्रीः च निरूपिता.** जो वक्ष श्रीको धाम हे, तो श्रीभावापन्न जो कुछ भी हे मानें जोभी भक्त हें उन् सबन्‌को धाम प्रभुको वक्ष हे.

(अतिस्पृहायुक्त मनकी स्थिति)

मुखदर्शनेनैव प्रहसितयुक्तत्वात् पूर्वस्थित्यभावः, तत कामः, प्रेमवीक्षणेन च तस्य स्थिरीकरणं तत स्वयोग्यता ततो भोगचातुर्यम्. प्रथम विशेषणेन एवं सर्वं भविष्यतीति अतिस्पृहायुक्तं मन मुह्यते केवलं मोह प्राप्नोति पदार्थालाभात् मुहुः मूर्च्छा समायातीति जीवनमरणान्यतराभावाद् धिग् जीवनम् इति अर्थः. ये सारे गुण देखके और भक्तन्‌को मन मुग्ध हो जाये अतिशय मुग्ध हो जाये **"मुग्धेऽर्धसम्पत्ति परिशेषात्"** (ब्र.सू.३।२।१०). व्यासजी कहे हें अतिशय स्पृहायुक्त होके मन जो मोहित होवे हे पर मोहसु लाभ तो होवे नहीं हे. (जब) मोहसु लाभ नहीं होवे (तब) फिर याद आवे के अभी तक प्राप्त नहीं भयो फिर लालसा जगे. लालसाके कारण हृदयमें फिर लीलायें जगें, लीलाकी स्मृतियें जगें, मनोरथें जगें. उन मनोरथन्‌के अनुरूप भाव जगें, हृदयमें फिर

आन्तरदर्शन होवे. आन्तरदर्शन होवे फिर विस्मृति होवे और फिर मोह पैदा हो जाये (तब मूर्छा आवे). **मुहुः मूर्च्छा समायाति.** आखो जीवनको क्रम जैसे घड़ियालको पेन्डुलम् हे. या बाजु आवे वा बाजु जावे ऐसे जीवन और मरण के बीच प्राण घूमते रहे हें न पूरो जी पावे और न पूरो मर पावे. ये अतिस्पृहाशील हमारो मन हे ये वाको दोष हे. बहोत राजसभावसु केह रहे हें बहोत कातरभाव भी हे यामें भावमें थोड़ी तामसता भी हे. तेरो दोष नहीं हे सब हमारे मनको दोष हे. तेरेमें तो ये सारे गुण ही गुण हें तेरे वाक्य कामजनक हें, तेरो हास्य आनन्दजनक हे, तेरो प्रेमवीक्षण हमकु अधिकारी बनावे हे, तेरो जो उन्नतवक्ष हे वो हमकु अधिकारी बनावे हे. याके लिये तेरेमें तो सब गुण ही गुण हें इन तीन कारणनूसु जो कुछ अवगुण हे वो हमारे मनको हे. ये अतिस्पृहा हे यदि इतनी स्पृहा नहीं होती तो मन काहेकु परेशान होतो! ये मोह क्यों होतो! मनमें ये सारो मोह अतिस्पृहाके कारण हो रह्यो हे.

या तरहसु तामसराजस गोपिका आत्मनिंदा करे हे. भगवन्निन्दा नहीं करे हे पर तामसभाव हे या लिये वामें छिपी भयी भगवन्निदा तो व्यक्त हो ही रही हे, पर कायरता बहोत बढ़ गयी हे, वाके लिये आत्मनिंदाके व्याजसु भगवन्निन्दा करे हे. जो भगवन्निन्दाके लिये भगवन्निन्दा कर रही हती वो शायद आत्मनिंदा कर रही हती. हीना हती या लिये वो भगवन्निन्दामें आत्मनिंदा कर रही हती. जो देवनिंदक हती वो देवनिंदामें भगवन्निन्दा कर रही हती और ये आत्मनिंदामें भगवन्निन्दा कर रही हे. याही लिये यामें तामस-राजसत्व हे जो जैसे भी हें तेरे हें. कातरता इतनी हे के यासु ज्यादा कछु केहवेको हे नहीं **"यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा त्वमेव शरणं मम मारणे वारणे वापि दासीनां नः प्रभुः गतिः"** (विज्ञप्ति.१।२६) ये जीव और क्या केह सके!!

----✻----

॥श्लोक : १८॥

उत्थानिका :

पुनः अनन्यपूर्वा एतावत्कालं मनोरथाभिनिविष्टाः किञ्चित् प्रार्थयते व्रजवनौकसाम् इति :

या तरहसु तीन विवाहिता तामस गोपिकान्ने कह्यो अब याके बाद फिर दो श्लोक कुमारिकान्के ऋषिरूपान्के आ रहे हें. पुनः **अनन्यपूर्वा एतावत्कालं मनोरथाभिनिविष्टा किञ्चित् प्रार्थयते व्रजवनौकसाम् इति.** एक एक गोपी प्रार्थना करे और दूसरी गोपीन्के मनोरथकी वाके भावन्सु संगति हे के नहीं वाको तारतम्य विचार करती रहें. या शायद अपनी अपनी प्रार्थना करवेमें ऐसी कलिलता आ जाये के दूसरी क्या केह रही हे वो सुनाई ही नहीं पड़े हे. अपनी प्रार्थना करे और वा प्रार्थनामें वाके जो मनोरथ जगें उन् मनोरथन्के कारण जो वाकु आन्तरदर्शन भये, जा लीलाकी हृदयमें अभिव्यक्ति भयी वामें वो खोयीसी रहे हे. कभी वा लीलारसाब्धिमें डूब जावे और कभी वामेंसु उभर आवे. उभर आवे तो फिर याद आवे और फिर प्रार्थना करे :

व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्॥
त्यज मनाक् च नः त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥१८॥

इयं ते व्यक्तिः व्रजवनौकसां वृजिनहन्त्री पापनाशिका विश्वस्यापि अत्यर्थं मंगलरूपम्. दोषनिवर्तकं विशेषाकारेण अस्माकमेव, गुणाधायकं सर्वेषाम्. अतः एतादृशं मनाक् त्यज. त्यागावश्यकत्वे हेतुः त्वत्स्पृहात्मनाम् इति, त्वय्येव स्पृहायुक्त आत्मा अन्तःकरणं यासाम्. किं त्यक्तव्यम्? इति आशंकायाम् आह स्वजन... इति, स्वजनानां गोपिकानां हृद्रुजां हृदयरोगाणां कामरूपाणां यदेव निषूदनं भवति, नितरां सूदनं नाशनं

यस्मात्, केषाञ्चित् पापनाशकः केषाञ्चित् फलदाता, तादृशो अस्माकं रोगनिवर्तको भवतु इति॥१८॥

(प्रभुको स्वरूप और व्रजमें प्राकट्र्य)

पेहले ही गोपिकाने कह्यो हतो के "**जयति ते अधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि.**" अब वा न्यायसु ये केह रही हे के **व्रजवनौकसां व्यक्तिः अंग! ते**" . भागवत कहे हें "**नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिः भगवतो नृप! अव्ययस्य अप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः**" (भाग.पुरा.१०।२९।१४). प्रभुको प्राकट्य क्यों भयो? निःश्रेयसमात्रके लिये. **अव्ययस्य अप्रमेयस्य** प्रभु **अव्यय** हें उनकुं जन्म-मरण नहीं हे ऐसे प्रभु प्रकटे हें. प्रभु **अप्रमेय** हें कोईके ज्ञानको विषय हो सके ऐसो प्रभुको स्वरूप नहीं हे और यहां सर्वज्ञानविषयक भये. प्रभु **निर्गुण** हें कोई प्रकारके गुण प्राकृतगुणन्को प्रभुमें संस्पर्श नहीं हे फिर भी "**बभूव प्राकृतः शिशुः** (भाग.पुरा.१०।३।४६) प्राकृत शिशु बनके प्रभु व्रजमें प्रकट भये और जैसे प्राकृत शिशु लीला करे सारी लीलायें करीं. इतनी कोमलता प्रभुने दिखायी के जितनी प्राकृत शिशुमें होवें. **निर्गुणस्य गुणात्मनः प्राकृतधर्मानाश्रयः** ये सारे प्राकृतधर्मन्को अनाश्रय होते भये भी प्रभु **अप्राकृतनिखिलधर्मरूपः** हें. सारे गुणन्की जो गति हे सो जहां भी जो भी गुण हे मानें एक बालकमें कोई बालसुलभ सौन्दर्य हे तो वो प्रभुके ही कोई गुणको प्रकाश हे.

श्रुतिमें समझावे हें के प्रभु सगुण कैसे भये! अपन् तो सगुण ऐसे होवें के अपनी आँख हे वासु अपन् देखें, कान हें वासु अपन् सुनें, हाथ हें वासु अपन् पकड़ें, पर प्रभुको स्वरूप ऐसो नहीं हे श्रुति अपनकु समझावे हे के "**पश्यन् चक्षुः श्रृणवन् श्रोत्रम्**" (बृह.उप.१।४।७). देखवे लगे वाको नाम ही चक्षु हे. "**अपाणिपादौ जवनौ ग्रहीताः**" (श्वेता.उप.३।१९). हाथ और चरण नहीं हे पर पकड़

सके हे, या लिये हाथ पैर हें दौड़ सके या लिये चरणरूप हें, वहां हाथको और स्वरूपको भेद नहीं हे जैसे अपन् अपने हाथकु काट सकें अलग ऐसो नहीं हे प्रभुमें सारी अप्राकृतसामर्थ्य हे वो ही सामर्थ्य प्रभुकी इन्द्रियरूपसु कही जाये हे. गुणात्मा ही हें प्रभु गुणरूप ही हें प्रभु गुणाधार नहीं हें. जैसे अपनूमें अपन् और अपनो हाथ ऐसो भेद हे पर ऐसो प्रभुमें प्रभुके अंगनूमें भेद नहीं हे. अव्यय होवेके कारण निर्गुण होवेके कारण गुणात्मा होवेके कारण कृत्स्नप्रज्ञानघन एक रूप हे. **"अव्ययस्य अप्रमेस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः"**.

(सर्वोद्धारकता कृष्णावतारकी विशेषता)

कृष्णको जो व्रजमें प्राकट्य भयो हे वो प्राकट्य क्यों हे? **नृणां निश्रेयसार्थाय** निश्रेयमात्रके लिये भयो हे. **"अहन्यापृतं निशि शयानम् अतिश्रमेण लोकं विकुण्ठम् उपनेष्यति गोकुलं स्म"** (भाग.पुरा.२।७।३१). ये व्रजभक्त कछुभी साधन कर नहीं सकेंगें इन व्रजभक्तनूसु कुछ अपेक्षा रखनी गलत हे. ये दिनमें काम करेंगे और रात्रिमें थकके सो जायेंगे इनके दिनके काममें तू आड़े आतो रहे ये रातकु सोते रहें और तू इनके स्वप्नमें आतो रहे. **"लोकं विकुण्ठम् उपनेष्यति गोकुलं स्म"**. ये जो तेरो गोकुल हे ये वैकुण्ठरूप ही हे, बल्कि वैकुण्ठाधिक्य हे यदि तू प्रकट हो जाये तो. **"जयति ते अधिकं जन्मना व्रजः"**. तेरे व्रजमें जन्मसु या व्रजकी शोभा हे. **"अहन्यापृतं निशि शयानम् अतिश्रमेण"** दिनमें अपने काममें लगे भये रातमें थकके सोवेवाले व्रजके वासीनूको ऐसो उत्कर्ष हे के जैसो **"देवाअपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः"** (भग.गीता.११।५२). गीतामें कह्यो है देवतायें भी या रूपके या व्रजके नित्य दर्शनकी आकांक्षा रखें हें. उद्धवजी जैसो परमज्ञानी कहे हे : **"आसामहो चरणरेणुजुषाम् अहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्"** (भाग.पुरा.१०।४४।६२). भक्त तो यहां तक कहें के **"वरं वृन्दावनेऽरण्ये शृगालत्वं भजाम्यहम् न तु वैशैषिकीम् मुक्तिं प्रार्थायामि कदाचन"** (न्यायभू.पृ.५९४). निर्गुण स्थितिमें

स्थित होवेके बजाय, आत्माके केवल्यमें अथवा परमात्मामें स्थित होवेके बजाय वृन्दावनमें सियालकी योनि मिले तो वो भी मोकु मंजूर हे. यहां तक भक्त कहे हे क्योंके वृन्दावनमें प्रभुके या स्वरूपको माहात्म्य हे वृन्दावनको माहात्म्य हे के **"व्रजवनौकसां व्यक्तिः अंग ते"**. ये व्यक्ति प्रभुकी अभिव्यक्ति ये व्रजवासीनूके लिये हे. शायद और भी जितने अवतार भये सब प्रभुके ही अवतार हें. सब अवतारनूमें प्रभुने अपने स्वरूपको आनन्द तत्तदधिकारी भक्तकु करायो पर कृष्णावतारकी एक विशेषता हे के जामें प्रभु कहे हें **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहम्"** (भग.गीता.४।११). जा भावसु जो जीव आयो वाकु स्वीकार्यो, नहीं आयो तो जबरदस्ती दानघाटीपे वाकु रोकके पकड़यो **"यहीं हमारो राज हे व्रजमंडल सब ठौर तुम हमारी कुमुदनी हम कमल वदनके भौंर नागरी दान दें"** (दानलीला) ये कृष्णावतारको माहात्म्य हे के प्रत्येक भक्तकु मानें **"हृष्यत्त्वचो अश्रुः मुमुचुः तरवो यथा आर्याः"** (भाग.पुरा.१०।१८।९). वृक्षपर्यन्तकु नदीकु पशुकु पक्षीकु **"प्रायो बत अम्ब! विहगाः मुनयो वने अस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्"** (भाग.पुरा.१०।१८।१४) निरुद्ध किये हें. या लीलाके लिये प्रत्येक प्राणीके प्रत्येक मनोरथके अनुरूप वाकु आनन्द देवेको विलक्षण सामर्थ्य कृष्णावतारमें ही हे अन्य कोई अवतारमें नहीं हे. प्रभुको स्वरूप भावात्मक हे पर भावनूको जैसो लेहरातो सागर कृष्णमें हे और जितनी विविध प्रकारकी भावनूकी लहेर या कृष्णसागरमें उठे हें ऐसी कहीं अन्यत्र नहीं उठे हें; भले ही कोई पुष्टिको अवतार मान्यो जाय. अन्य सब अवतारनूमें प्रभुने भक्तपे उपकार कियो हे. भक्तनूकु यह अभिमान भयो या गर्व भयो के जैसे प्रहलादजी कहे हें के "नृसिंह अवतार मेरे लिये भयो" पर कृष्णावतारकी खासियत ये हे के सब जने यों कहें के "मेरे लिये भयो" पर कौनके लिये भयो ये निश्चित नहीं भयो. **व्रजवनौकसां व्यक्तिः अंग ते** और या व्रजके माध्यमसु मात्र विश्वके जो पुष्टिभावके प्राणी हें उन सबकु प्रभुने आश्वासन दियो हे के यदि साधनबलसु

मुक्ति दी जा सके हे ऐसी व्यवस्था या मर्यादा मैंने स्थापित की हे तो वा मर्यादाकु तोड़वेकी भी मेरी सामर्थ्य हे. जैसे कल मैंने आपकु बतायो के जो मर्यादा मैंने स्थापित करी हे लोकमर्यादा वेदमर्यादा उन् सब मर्यादान्कु तोड़वेकी मेरी सामर्थ्य हे. यद्यपि रामावतार भयो नृसिंहावतार भयो वामनावतार भयो और अनेक अवतार भये पर जो ईश्वरीय मर्यादा ईश्वरने स्थापित करी उनकु तोड़वेकी सामर्थ्य होयगी सब अवतारन्में पर उनने तोड़ी नहीं. सारे पुष्टिजीवकु जो केवल स्वरूपासक्त हें जो सृष्टि केवल ''भगवद्रूपसेवार्थ'' हे वा सृष्टिकु उन अवतारन्सु वैसो आश्वासन नहीं मिल पायो जैसो कृष्णावतारसु आश्वासन मिल्यो. या लिये भक्त कहे हें के : ''**कौन रस गोपिन् लीनो घूंट मदनगोपाल निकट कर राखे प्रेमकामकी लूट. निरखि स्वरूप नन्दनन्दनको लोक लाज गयी छूट. परमानन्द वेद सागरकी मर्यादा गयी टूट**'' (परमानन्ददास). मर्यादाकु तोड़वेकी जो पुष्टिकी सामर्थ्य हे वो प्रभुने अन्य अवतारन्में प्रकट नहीं करी हे. सामर्थ्य जरूर होयगी असामर्थ्यको तो प्रश्न उठे ही नहीं हे पर उन् अवतारन्में प्रभुको मूड वैसो नहीं हे के स्वयंकी स्थापित मर्यादाको स्वयं ही उल्लंघन करें. ये तो ऐसी स्थिति प्रभुने स्वीकार करी हे के, या समय इतने स्पोर्टिंग् मूड्में प्रभु हें के काम क्रोध लोभ मोह भय द्वेष जितनी भी वृत्तिन्की शास्त्रने निन्दा करी हे उन सारी वृत्तिन्सुभी प्रभुने जीवकु प्राप्त होके दिखायो. द्वेषकी निन्दा करी ''**रागद्वेषवियुक्तेस्तु विषयानि इन्द्रियैः चरन्**'' (भग.गीता.२।६४) तो बोले के ''चल द्वेषसु प्राप्त होऊंगो मोसुं द्वेष करके तो देखो! मैं द्वेषसु भी प्राप्त हो सकुं. कामकी निन्दा करी हे ''**कामः एषः क्रोधः एषः रजोगुणसमुद्भवः महाशनो महापाप्मा विद्धि एनम् इह वैरिणम्**'' (भग.गीता.३।३७). चल मैं कामसु भी प्राप्त होके दिखाऊंगो. ज्ञानी लोग रोते रहें हल्ला मचाते रहें ये जो षड्वैरी हैं षडरिपु हैं होतो होयगो. पिकनिक्के मूड्में हें न प्रभु ये पिकनिक् मूड हे. जा बखत पिकनिक् मूड आयो वा बखत कोई मर्यादा नहीं चहिये. ''**कामं क्रोधं भयं स्नेहं**

ऐक्यं सौहृदमेव वा नित्यं हरौ विदधते यान्ति तन्मयतां हि ते" (भाग.पुरा.१०।२६।१५) और जो ज्ञानी हें वो तो बिचारे डर गये के ये क्या चक्कर हो गयो! कहां फेर पड़ गयो! ज्ञानकु हमने अब तक साधन मान्यो उनसु प्रभु प्राप्त नहीं हो रहे हें और ये कैसो मूड आ गयो के सबकु निन्दित साधनन्सु भी प्रभु प्राप्त हो रहे हें.

(व्रजलीलाको वैशिष्ट्य)

जैसो पिकनिक् मूड प्रभुको या अवतारमें हे वैसो और अवतारन्में नहीं आयो. "**हि ही ही हींकारान् प्रतिपशु वने कुर्वति सदा नमद् ब्रह्मेशेन्द्रप्रभृतिषु च मौनं धृतवति**" (श्रीपरिवृढा.३). गायन्के पीछे जैसे ग्वाला दौड़े हे 'ही-ही' करके गाय तो बोल नहीं सकें पर ये गायन्कु नाम ले-ले के बुलावे हें जो के नितान्त अज्ञानी प्राणी हे और ब्रह्माजी और देवतायें ऋषि-मुनियें स्तुति करें तो वा तरफ ताकवेको भी मूड नहीं हे, क्योंके वो तो रुटीन् हे वामें क्या देखनो! या बखत तो कुछ ऐसो ही पिकनिक् को मूड हे अब चाहे जो भी होय पर अपन् तो रुटीन्सु हटके या बखत पिकनिक् मूड्में आये हें. व्रजकु जैसो ठाकुरजीने पिकनिक्स्पोट मान्यो ऐसो कोईकु नहीं मान्यो, 'ब्रह्माण्डनायक!' केहवेसु ठाकुरजीकु वो मजा नहीं आवे जैसो 'व्रजाधिप!' केहवेसु आवे. "**व्रजराजबिराजत घोषवरे वरणीय मनोहररूपधरे धरणीरमणीरमणैक परे**" (राज.आर्या.१). पृथ्वीपे पधारके व्रजमें रमण करवेको जैसो रूप भयो के जितने भी दोष जीवन्में भरे भये हते उन सारे दोषन्कु "**असाधनमपि साधनं करोति**" (त.दी.नि.प्र.१।१) और "साधनं असाधनं करोति". जो साधन नहीं हते ऐसी सब वस्तुन्कु साधन बनायो दोषको हनन कैसो कियो **वृजिनहन्त्र्यलं** कैसे शास्त्रने जिनकु दोष मान्यो प्रभुने कही "चलो ऑलराइट दोष मान्यो हे न! मैं अपनी पुष्टिको सामर्थ्य प्रकट करूं तो ये दोष ही गुण हें." जिन-जिनकु दोष गिनायो शास्त्रने उनकु गुणरूपसु प्रकट

कर दियो, उनकी गुणरूपता बनायी और जिन-जिनकी गुणरूपता बतायी शास्त्रने उनकु कही के रुटीन्के बखत देख्यो जायेगो वैकुण्ठाधिपतिके डिपार्टमेंट्में, यहां तो अभी व्रजाधिपको डिपार्टमेंट चल रह्यो हे यामें रूटीन्की जरूरत नहीं हे. **"कौन रस गोपिन् लीनो घूंट... परमानन्द वेदसागरकी मर्यादा गयी टूट"** या लिये कहे हें **इयं ते व्यक्ति व्रजवनौकसां वृजिनहन्त्री पापनाशिका** यहां गोपिकानूके व्याजसु पुष्टिको सिद्धान्त प्रभुने स्थापित कियो.

(अर्जुनके व्याजसुं गीतोक्त सिद्धान्त प्रकट कियो)

जैसे अर्जुनके प्रश्नके व्याजसु प्रभुने गीताको सिद्धान्त प्रकट कियो वहां ये नहीं समझनो के प्रभुके सामने केवल अर्जुन हे. केवल अर्जुन होतो तो चर्चा इतनी देर नहीं चलती! दो चपत लगाते और केहते के "जो केह रह्यो हूं वो कर." जो बात इतने विस्तारसु केहनी हती अरे क्या जरूरत हती अर्जुनकु इतने विस्तारकी! अठारह अध्यायमें गीताको अर्जुनकु निरूपण करवेकी प्रभुकु क्या जरूरत पड़े हे! जो **"शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिषु ऐक्याद् वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्ध"** (भाग.पुरा.१।१५।१९) जाके इतने सम्बन्ध हें वो एक शैयापे सो सके एक थालीमें खा सके एक दूसरेकु **"हे कृष्ण! हे यादव! हे सखा! इति"** केह सके ऐसे जाके घनिष्ठ सम्बन्ध वाकु गीता उपदेश व्याजसु केहनी पड़े! कान पकड़के केहते के "चल बादमें विचार करियो अभी तो जैसे मैं केह रह्यो हूं वैसे कर." वा बातकु क्या अर्जुन ना कर देतो! अर्जुनमें क्या इतनी ताकत हती के भगवान्के स्नेहके आग्रहकु ना कर सके! यदि भगवान् केह देते के "चल मार दे पेहले बादमें देखी जायगी", तो क्या अर्जुनकु भगवदाज्ञाकी अधिक आवश्यकता हती के इनके **"स्वजन हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव! यद्यपि एते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् कथं न ज्ञेयम् अस्माभिः पापाद् अस्माद् निवर्तितुं कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिः जनार्दन! कुलक्षये प्रणश्यन्ति**

कुलधर्माः सनातनाः. धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम् अधर्मो अभिभवति उत अधर्माभिभवात् कृष्ण! प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः. स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय! जायते वर्णसंकरः संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च. पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः दोषेरेतै कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः'' (भग.गीता.१।३७-४३). या लॉजिकमें क्या पड़तो! जा बखत भगवान् अपनी दोस्तीके आग्रहसु केहते के ''चल मैं केह रह्यो हूं तीर चला.'' तो ये सब लॉजिक् चल पाती क्या! अर्जुन तो व्याज हतो प्रभुने भी देख्यो के ''चलो मेरो ये सिद्धान्त मेरो दोस्त सुननो चाह रह्यो हे तो याके व्याजसु व्यक्त हो जावे दो सबके काम आ जायगो.'' और या उपदेशकी सार्थकता रेह गयी यामें जैसो मूड निभेगो क्योंके अपने दोस्तकु बात केहवेमें जो मूड बने हे वो गामकु केहवेमें थोड़े ही आवे! गामकु केहवेमें तो वो मूड नहीं आतो पर केहनो तो गामकु ही हतो गामकु केहनो हतो पर गामकु इतने प्यारसु कही जा सके क्या ये गीताको उपदेश! **''पार्थो वत्स सुधीः भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्''** (भग.गीता.महा.). ये जो गीताको वत्स हतो वो पार्थ ही हतो. पार्थ वत्स हतो पार्थके लिये ये दुह्यो गयो पर वत्सके लेवेके बाद दूध तो सबकु मिले ना! गायके थनमें जो दूध पैदा होवे वो कौनके लिये होवे? अपने बछड़ाके लिये पैदा होवे बछड़ा सामने बंध्यो होवे और गाय दूध दे दे बछड़ा पिये और बच्यो भयो फिर गाम पीवे. ऐसे गीताको जो दुग्ध हतो वो प्रभुने दियो तो अर्जुनकु पर पियो सबनूने.

(व्रजलीलाको रहस्य)

याही तरहसु व्रजलीलामें एक सीधीसी बात आपकु बताऊं जो स्वयं श्रुतिरूपा हें, जो स्वयं ऋषिरूपा हें वो यदि तामस भी हो गयीं तो उनको बिगड्यो क्या! जैसे भगवान्की एक लीला हती वैसे ही उनकी भी एक लीला हे ये तो अपने लिये एक आश्वासन हे के नहीं! यदि तुममें माद्दा होय तो ऐसो सम्बन्ध भी प्रभुके

साथ स्थापित हो सके हे. सम्बन्ध स्थापित करवेको माद्दा होनो चहिये ये सम्बन्ध स्थापित हो सके हे वो अपनूकु एक उदाहरण दियो. जैसे गीताको उपदेश भगवान्ने अर्जुनके माध्यमसु दियो और ये तो स्वयं श्रुतिरूपा ही हें यदि नहीं लीला करते तो भी लीला तो अनवरत चलती रेहती. इनके तामसत्व होवेसु इनको कुछ बिगड़े नहीं हे. इनके सात्त्विक होवेसु इनको कोई उत्कर्ष नहीं हे. ये तो नित्यसिद्धान्मेंसु आये भये हें नित्य प्रभुके साथ नित्यविहार करवेवाले व्रजभक्त हें. इनके तामस होवेसु इनको क्या बिगड़ सके हे! अथवा इनके सात्त्विक होवेसु इनको कौनसो उत्कर्ष हो सके हे! इनके कौनसे वृजिन हते जो प्रभुकु खतम करने पड़ें! इनमें वृजिन हें ही नहीं और यदि वृजिन हें तो अंगीकार किये भये वृजिन हें के चलो आज वृजिन अंगीकार करेंगे और तुम दूर करो. जैसे खेलमें एक बच्चा चोर बन जाय और एक बच्चा सिपाही बन जाय सिपाही चोरकु पकड़ ले. जो बच्चा चोर बन्यो तो क्या वह सचमुचको चोर हे! वो चोर नहीं हे वाने चोरी करी हे ये बात तो सच हे पर वो चोर न चोर हे और न सिपाही सिपाही हे. वो जो सिपाही बन रह्यो हे वासु वा लीलाको कोई एक लीलात्मक उत्कर्ष हे और जो चोर बन रह्यो हे वासु कुछ लीलात्मक अपकर्ष हे? ये तो लीला हे पर अपने यहां सचमुचमें ये स्थिति हे यदि कृष्ण या तरहके सम्बन्ध स्थापित नहीं करे तो अपने जैसे जीवन्को जो रूपसेवार्थ सृष्टि हे जिनमें साधनबल नहीं हे साधनाभिमान नहीं हे वो यदि प्रभु यातरहसु आश्वासन न दें तो कैसे भगवदभिमुख हो सकेंगे!

याही लिये आचार्यचरण कहें हें **"कौण्डिन्यो गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तद्भावो"** (संन्या.नि.८). इनमें कोई वृजिन नहीं हे इनने तो वृजिन अपने लिये स्वीकार्यो हे. इनके वृजिन स्वीकारवेसु पुष्टिजीवन्के साथ मानें इनने भगवान्सु एक तरहकी छूट ले ली के प्रभु अवतीर्ण होवेवाले हें तो चलो हम वृजिन स्वीकार लेंगे.

हम तामसभाव स्वीकार लेंगे देखें अब प्रभु क्या करें हें! जब प्रभु अवतीर्ण होवेवाले हते तो इन गोपिकानूने अपनेपे कृपा करवेके लिये तामसभाव अंगीकार कियो हे. सात्त्विकभाव राजसभाव अंगीकार कियो हे जासु अपनी जो वृत्तियें राजस तामस सात्त्विक हें उनकु आश्वासन मिल जाये. ये वाही बखत हतो ऐसी बात नहीं हे एक बखत उदाहरण मिल जाये तो सबकु छूट मिल जाय न! उदाहरण नहीं मिले तो श्रुति तो कहे हे : **“नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्”** (कठोप.१।२।२३). वाके तो अनर्थ किये जा सकें हें पर लीलाको अनर्थ कैसे करोगे! लीलाको अनर्थ नहीं हो सके अधिकसु अधिक लीलाकु तुम छुपा सको हो पर लीलाको अनर्थ कैसे होयगो! ज्यादासु ज्यादा तुम ये कहोगे के लीला मिथ्या हे मायिक हे पर लीला हे ही नहीं ऐसो तो नहीं केह सकोगे. यहां रहस्य खुल जाये हे फिर यदि ये लीला मायिक भी हे तो हे! ये लीला भई हे मायासु भई चाहे प्रभुके आनन्द स्वभावसु भई चाहे प्रभुकी कृपा शक्तिके कारण ये लीला भई. लीला भई तो भगवद्रूपसेवार्थ रूपसेवाके लिये जो पुष्टिसृष्टि पैदा भई हे वाके वृजिन चाहे जितने भी हें वो दूर होयेंगे. **“अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलम् आत्मसात् कुरु”** (आळवन्दारस्तो.५१). यदि तू मेरेपे दया नहीं करेगो तो तोकु मेरे जेसो दयनीय कोई मिलेगो ही नहीं और अपन् जो दयनीय हें अपनी स्थिति इनने स्वीकारी और स्वीकारके ये मार्ग प्रशस्त कियो. इनने या मार्गपे चलके पगडण्डी बनायी हे अपनूकु तैयार पगडण्डी मिली हे यापे अपन् निर्भय होके चल सके हें प्रभुके साथ ये सम्बन्ध स्थापित हो सके हे.

व्रजलीला प्रकट नहीं होती तो **“नमद् ब्रह्मेशेन्द्रप्रभृतिषु च मौनं धृतवति”**. नमस्कार करते भये स्तुति करते भये जो ब्रह्मादिकनूके आगे

मौन हो जाये ऐसे प्रभु उनकु ऐसे देखवेको साहस हो सके! जीवको देखवेको भी साहस नहीं हो सके हे. जापानमें जब राजाशाही हती तब ऐसो नियम हतो के राजाकु देख्यो नहीं जातो हतो माथा नीचे करके खड़ो रेहनो पड़तो. देखो तो सजा मिलती इतनो कठोर नियम हतो. जब इतने क्षुद्र राजानूके ऐसे नियम होवें तो ब्रह्माण्डनायककी ओर देखवेकी कौनकी हिम्मत पड़े! इनने देखके नहीं पर पीटके गाली देके भी पुष्टिजीवनूकु इतनी हिम्मत दिलवा दी जो तुम्हारो माद्दा होनो चहिये स्नेह होनो चहिये तुम तामसभावसु याकु गाली भी दे सको **कितव** भी केह सको हो **कुहक** भी केह सको हो और ऐसो करवेमें यदि कोई पाप लगेगो तो वाकी चिंता तुम क्यों करो हो! "**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिश्यामि मा शुचः** (भग.गीता.१८।६६) वा पापको हिसाब वो खुद चुकायेगो.

बच्चा होय खर्चा करतो होय और बाप वात्सल्ययुक्त होय तो जब बच्चा खर्चा कर आवे तो बाप चुकातो रहे हे के नहीं! ऐसे तुम थोड़े बहोत पाप करके प्रभुकु गाली भी दोगे तो वाको जो खाता हे जो वाको ऑफिशियल् रिकॉर्ड मेन्टेन् करनो पड़तो होयगो वो प्रभु चुका देते होंयगे के "भई ये मेरे खातामें मांडियो."

ऐसो कहे हें के जा बखत स्वराजको आन्दोलन चलतो हतो वा बखत ...ने स्वराजफण्ड्मेंसु कितने हजार रुपियाकी शराब पी ली. गांधीजी फण्ड्के ट्रस्टी हते उनके पास शिकायत गयी के "स्वराज फण्डमेंसु कोई बडेनेताने इतनेकी शराब पी ली." गांधीजीने कही "याकु स्वराजफण्ड्में ही मांडो अरे स्वराजको संघर्ष तो कर रहे हें शराब पी ली तो पी ली." गांधीजीने वाकु शराबखातेमें नहीं मंडवायो स्वराजखातेमें ही मंडवायो स्वराज प्राप्तिमें ये खर्च भयो.

ऐसे ही अपन् कुछ काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य की

जो शराब पी रहे हें वाकु ठाकुरजी कहेंगे के याकु स्वराज खातेमें ही चढ़ाओ. क्योंके काम करनो हे पुष्टिको काम मर्यादासू स्वराज स्थापित करवेको करनो हे वो जैसे होयगो वैसे ही तो होयगो. जब पुष्टिको काम करनो हे तो सब तरहके जीवनूकु सहन करनो पड़ेगो ये स्वराज खाता हे के जामें **"व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्"**. विश्वके लिये मंगलरूप हे पर हमारे लिये तो **दोषनिवर्तकं विशेषाकारेण अस्माकमेव** गामके लिये तू मंगलरूप होयगो पर हमारे दोष यदि तू निवर्तन नहीं करे तो और कोईकी ताकत नहीं हे के हमारे दोष निवर्तन करे **गुणाधायकं सर्वेषाम्** और सबनूमें तू गुणाधान करतो रहे पर हमारे दोषको निवर्तन तो तू ही कर सके हे, क्योंके ये तेरो अवतार हमारे लिये ही हे और हम ऐसे मरीज हें के तेरे बिना और कोईसु ठीक भी नहीं हो सकें.

(पुष्टिभक्तन्को स्वरूप = त्वत्स्पृहात्मना)

त्यागावश्यकत्वे हेतुः अरे भई! हमारे ही मरीज तुम क्यों हो सबके सब दुनियामें और बहोत चिकित्सक हें. याके उत्तरमें कहे हें **त्वत्स्पृहात्मनाम् इति त्वय्येव स्पृहायुक्त आत्मा अन्तःकरणं यासाम्,** मानें बीमार रहें तो भी तेरी ही स्पृहा हे, मर जायें तो भी तेरी ही स्पृहा हे, और ठीक हो जायेंगे तो भी तेरी ही स्पृहा हे, हमकु कोई अन्य चिकित्साकी स्पृहा नहीं हे. तेरे अलावा न कोई दवाईकी स्पृहा हे और न ठीक होवेकी स्पृहा हे और यदि कोई स्पृहा है तो वो हे तेरी स्पृहा.

वृत्रासुर कहें हें **"अजातपक्षाइव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ता प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनो अरविंदाक्ष! दिदृक्षते त्वाम्"** (वृत्रा.चतु.३). जैसे चिड़ियाको बच्चा घोंसलामें बैठ्यो रहे वाकु कुछ पता ही नहीं हे के दाना कहांसु आयो कौन खवावे और चिड़ियाकु

न जाने कितने बखत कौआनूसु बचनो पड़तो होयगो कितनी बखत खेतको रखवालो वाकु पत्थर मारके डरातो होयगो ये सब वा बच्चाकु क्या पता. घोंसलामें बैठे भये वाकु तो इतनो पता हे के सुबह भयी और संझा तक कभी न कभी माँ आयेगी और चुग्गी भरके दाना लायेगी और मोकु खवायेगी. अपनी माँके स्तन्यकी बछड़ा जैसे प्रतीक्षा करतो रहे हे अपनो पति जैसे परदेस चल्यो गयो होय वाकी पतिव्रता स्त्री जैसे झरोखान्पे बैठी बाट देखती रहे या तरहसु मेरो मन तोकु देखतो रहे. **त्वत्स्पृहात्मना** हो गये हें.

पुष्टिभक्तको स्वरूप यदि कोई एक बातमें व्यक्त कियो जा सकतो होय तो त्वत्स्पृहामें हमारो सारो स्वरूप व्यक्त हो गयो "**भगवद्रूपसेवार्थं तत् सृष्टि नान्यथा भवेत्**" (पु.प्र.म.१२). भगवत्-स्वरूपासक्तिके लिये ही ये सृष्टि हे और याको कोई अन्य प्रयोजन नहीं हे और कोई स्थितिको कारण भी नहीं हे. यदि भगवत्स्वरूपासक्ति नहीं भई तो समझ लो के वो जीव या पुष्टि-सृष्टिको नहीं हे कोई अन्य सृष्टिसु या सृष्टिके कुलमें जनम गयो हे. यहांको जीव तो वोही हे जाकु भगवत्स्वरूपासक्ति हे और सब पंचायत हो सकें हें.

यदि भगवत्स्वरूपासक्ति हे तो एसे भक्तन्के पापन्को वृजिनहन्त्र्यलं बनके सारो खातो वो चुकायेगो. भगवान् ये केह सके हें "**अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः. क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति कौन्तेय! प्रतिजानिहि न मे भक्तः प्रणश्यति. मां हि पार्थ! व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः. स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः तेऽपि यान्ति परां गतिम्**" (भग.गीता.९।३०-३२). भगवान् स्वयं प्रतिज्ञा नहीं कर रहे हें के मेरे भक्तको कभी नाश नहीं होयगो अर्जुनकु केह रहे हें के तू प्रतिज्ञा कर गामके सामने जाके के कृष्णके भक्तको कभी नाश नहीं होयगो चाहे जैसो होय तामस होय राजस होय सात्त्विक होय तामसमें तामस होय. "**कौन्तेय**

प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति''. यदि मेरो भक्त हे तो वाको नाश नहीं हे ये बात पत्थरपे लिखी भई ध्रुव सत्य हे. ब्रह्माण्डके नियम टल सकें पर ये नियम नहीं टल सके **वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम्**. क्यों जो कृष्णभक्त हे वो स्वरूपासक्त हे कृष्णको स्वरूप ऐसो हे के वो तुमकु मुक्तिमें स्पृहा रखवे नहीं देगो, वो भुक्तिकी स्पृहा तुमकु रखवे नहीं देगो यदि कृष्णके तुम पुष्टिभक्त हो सीधोसो मतलब वाको ये हे के तुमकु स्वरूपासक्ति हे यदि स्वरूपासक्ति नहीं हे तो समझ लो के तुम कृष्णके पुष्टिभक्त नहीं हो तुम कोईके भी भक्त हो सको हो तुम्हारे मनमें कृष्णके कुछ और अर्थ हो सके हें पर कृष्णके तुम भक्त तो नहीं हो यदि तुम्हारेमें स्वरूपासक्ति नहीं हे; और यदि कृष्णके भक्त हो तो स्वरूपासक्ति ही एक मात्र लक्षण हे वो ही एक सिस्टम् हे. **त्वत्स्पृहात्मनः** तुम्हारो स्वरूप तुम्हारो एसेन्स् तुम्हारो कॅरेक्टर बस एक याहीमें पारिभाषित हो जाये कृष्णस्पृहा हे तो पुष्टि हे, कृष्णस्पृहा नहीं हे तो पुष्टि नहीं हे. **''उनकी मरजी नहीं हे तो क्या दें तूल दास्तां खत्म एक आहमें हे''** . ज्यादा सुननी होयतो सारी बात सुनो और नहीं सुननी होयतो एक नि:श्वास हम छोड़ेंगे और सारी बात व्यक्त हो जायेगी. एक कृष्णस्पृहाके नि:श्वासमें सारो पुष्टिको भाव व्यक्त हो जाय हे. एक कृष्णस्पृहाको नि:श्वास नहीं हे तो सारी कथा केहते रहो सब व्यर्थ.

किं त्यक्तव्यम् इति आशंकायाम् आह स्वजन...इति. कहें के तुम व्रजके वनके जीवन्के लिये प्रकट भये हो विश्वमें तुम मंगल करते होओगे, पर तुम तो हमारे पापन्कु दूर करवेवाले हो दोषन्कु दूर करवेवाले हो और हम तुम्हारी स्पृहालु हें प्रभु हमकु मत छोड़ो. गोपी खुद कृष्णके संवादकु बोले हे काहेकु छोडूं तो कहे हे के एक चीजकु छोड़ दो **स्वजनानां गोपिकानां हृद्रुजां हृदयरोगाणां कामरूपाणां यदेव निषूदनं** भवति नितरां सूदनं नाशनं यस्मात्. ये हमारे हृदयमें जो ताप तूने जगायो हे वा तापकु खतम कर दे, हमकु मत छोड़.

केषाञ्चित् पापनाशक केषाञ्चित् फलदाता तादशो अस्माकं रोगनिवर्तकौ भवतु इति. हम तो हमारे पापनाशनकी प्रार्थना नहीं करें पाप हम नरकमें भी भुगतवेकु तैयार हें, वाके लिये हम तोसु कोई छूट नहीं मागे हें. हमने जो पाप किये हें उनकु हम नरकमें भुगतवेकु तैयार हें.

तातजी महाराजके जमानामें वृन्दावनके एक बाबाजी आते हते अच्छे भक्त हते उनकु बैठे-बैठे ठाकुरजीकी आज्ञा हो जाती हती जब वो यहां आये तो उनने तातजी महाराजकु कही के ‘‘हमकु या मंदिरमें बंद कर दो.’’ तातजी महाराजने बहोत समझायो पर वो नहीं माने और बंद हो गये और कही के ‘‘पीटो अब मोकु.’’ खुदकी पिटाई करवायी अब न जाने उनके क्या पाप हते या तो ऐसो होयगो के कृष्ण उनकी पिटाई देखनो चाहतो होयगो! क्या बात हती क्या नहीं हमकु बराबर याद नहीं हे बचपनकी बात हे.

भक्त तो अपने पाप स्वयं भुगतवेकु तैयार हे. भक्त कभी भी प्रभुसु यह नहीं कहे हे के ‘‘तू मेरे पाप माफ कर.’’ भक्त तो यह मांगे हे के ‘‘तू हमारे ताप दूर कर’’ और वो ताप कौनसे हें ये संसारके ताप नहीं, त्वत्स्पृहाके जो ताप हें, त्वत्स्पृहाजन्य जो ताप हें उन तापनूकु दूर कर दे बस इतनी ही मांग हे और कोई मांग नहीं हे. पापके हिसाबकु हम भुगतवेकु तैयार हें पुण्य हमकु नहीं चहिये, नहीं तो पुण्य हम कर सकें ऐसी स्थिति हमारी हे नहीं क्या करें लाचारी हे. **अस्माकं हृदये स्थापितं बहि स्थापय.** हमारो एक ताप हे पर कथञ्चित् तू तेरे चरणकु तेरे मुखारविन्दकु तेरे स्वरूपकु बहि स्थापित कर दे तो हमारो ताप दूर हो जाय इतनी ही हमारी प्रार्थना हे. यासु अधिक प्रार्थना पुष्टिमार्गमें दोषावह हे. कोई कहे के पापनाश करियो कोई कहे के मोकु ये फल

दीजियो, हमकु तो बस इतनो ही हे के **तादृशो अस्माकं रोगनिवर्तको भवतु इति.** जो हमारो हृदयको ताप हे वाको निवर्तन तू कर दे तो हमारी सब बातें यामें आ गयीं.

----✻---

॥श्लोक : १९॥

उत्थानिका : काचिद् राजस-तामसी सखेदम् आह यत्ते इति :

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु॥
तेनाटवीम् अटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिः भ्रमति धीः भवदायुषां नः॥

॥इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे अष्टाविंशतितमो अध्यायः॥

सुजातं यच्चरणाम्बुरुहं चरणकमलं भीताः सत्यः स्तनेषु शनैः दधीमहि. शनैः धारणे हेतुः कर्कशेष्विति. 'प्रिय!' इति सम्बोधनात् स्नेहाद् धारणम्. सुजातम् इति, तथा महत् सम्यक्प्रकारोत्पन्नं शीतलं सुगन्धि तापनाशकं भवति अतः स्तनेषु स्थापनम्. प्रियत्वाद् धाष्ट्र्येन स्थापनम्. तेनैव अतिकोमलेन अस्मान् त्यक्त्वा अस्मद् दोषेण इदानीम् अटवीम् अटसि! स्वयम् अदुःखेन स्थित्वा यदि अन्यस्मै दुःखं दातुं शक्नुयात् तर्हि प्रयच्छेत्, नतु स्वयमपि दुःखं प्राप्य. तत्र अस्माकं सन्देहः किं व्यथते न वा इति. स्विद् इति उत्प्रेक्षायां-किं न व्यथते! अपितु व्यथतएव. कूर्पादिभिः शर्करादिभिः, 'कूर्प'शब्देन विषमाः शर्करा उच्यन्ते. तर्हि व्यथतएव, कथम् उत्प्रेक्ष्यते, तत्र आह भ्रमति धीः इति, बुद्धिः केवलं परिभ्रमति. यदि व्यथते इति निश्चयः स्यात् तदा बुद्धिः शान्तैव भवेत्, पुनः यद् आयाति तेन सन्देहः. तत्र हेतुः भवदायुषाम् इति, भवल्लीलार्थमेव आयुः येषाम्. पूर्वन्तु खेदेन मनःपीडा निरूपिता, इदानीन्तु मूर्च्छा निरूप्यते इत्यन्तस्थितिः. एवं सर्वासां मूर्च्छापर्यन्तं स्थितिः ज्ञातव्या-पुनः लीलाप्रवेशे प्रलापः, पुनः स्वरूपस्थितौ गानम् इति. एवं साधनपरीक्षयोः यावत् तावत् तासां तापो निरूपितः॥१९॥

सुजातं यच्चरणाम्बुरुहं चरणकमलं भीता सत्य स्तनेषु शनैः दधीमहि. शनैः धारणे हेतु कर्कशेषु इति. प्रिय! इति सम्बोधनात् स्नेहाद् धारणम्. हमने इन चरणनूकु हृदयपे पधरायो तो हृदयकी जो रुक्षता हती वो अन्दरसु नष्ट हो गयी हृदयकी जो कर्कशता हती वो अन्दरसु नष्ट हो गयी, पर बाहर तो अभी कर्कशता हे याके लिये हमकु इन चरणनूकु वक्षपे पधरावेमें बड़ो संकोच होवे हे के तेरे चरणनूकु या कर्कश वक्षपे कैसे पधरानो याके लिये **भीता शनैः दधीमहि** बहोत भयसु बहोत सावधानीसु बहोत हल्केसु हम इन चरणनूकु अपने वक्षपे पधरावे हें.

जो लोग चरणस्पर्श करवे आते तो उनकी कॅटेगरी दादाजीने बनायी हतीं. दादाजी आज्ञा करते के कितने तरहके लोग आवें. कोई चरणदंश करवे आवे. दादाजीको पैर सूज्यो रेहतो तो दादाजीकु लोगनूके नाखून चुभ जाते दादाजी देखके केहते के ‘‘देख ये चरणदंशके लिये आयो हे.’’ कोई चरणप्रहार करवे आतो कोई चरणपेषण करवे आते दादाजीको पैर बहोत दूखतो क्योंके उनके पैरमें बोनटी.बी हती. सबके प्रकार दादाजी गिनाते दादाजी केहते के ‘‘चरणस्पर्श करवे तो कोई सोमेंसु एकाध ही आवे हे बाकी तो सब कोई चरणदंश कर जाय, कोई चरणप्रहार कर जाय, कोई चरणपेषशण कर जाय.’’ भयसु बहोत मृदुतासु चरणकु अपनेपे पधरानो इतनी मृदुता आद्रता कौनके भावमें आवे! और **प्रिय!** केहके ये बतायो के हम कितने स्नेहसु तेरे चरण धारण करे हें और कितने भयसु धारण करे हें. **सुजात** केहवेसु ये बतायो के तेरे चरणकमल शीतल हें, सुगन्धित हें, तापनाशक हें चन्दन जैसे हें. चन्दन वक्षपे धारण करो तो जैसी ठंडक होवे ऐसे ही तेरे चरणकु धारण करवेसु होवे हे. वामें शीतलता हे सुगन्ध हे भक्तिकी सुगन्ध हे. तापनाशकता हे सहस्रपरिवत्सरनूसु चले आये भये तापकी नाशकता हे **प्रियत्वाद् धाष्ट्र्येन स्थापनम्.** ये बात ठीक हे के कभी कभी धृष्टतासु तेरी इच्छा नहीं होय तो भी हम पधरा

लें. उतनो तेरेपे अधिकार तेंने ही हमकु प्रिय होवेके कारण दियो हे याके कारण धृष्टतासु पधरावें नहीं तो हम धृष्टता नहीं करें. **तेनैव अतिकोमलेन अस्मान् त्यक्त्वा अस्मद्दोषेण इदानीम् अटवीम् अटसि.** ऐसे कोमल चरणन्सु हमकु छोड़के अटवीमें अटन करें, वनमें तू फिर रह्यो हे.

स्वयम् अदु:खेन स्थित्वा यदि अन्यस्मै दु:खं दातुं शक्नुयात् तर्हि प्रयच्छेत् नतु स्वयमपि दु:खं प्राप्य. ये कहे हे के और हमकु कोई खेद नहीं हे हमने अभिमान कियो ये हमने मान लियो. यह नहीं करनो चहिये हतो हमारो माजना बतायवेके लिये तू छिप गयो तो कोई दु:खकी बात नहीं. चल हमकु दु:ख देवेके लिये छिप्यो होतो तो हमकु दु:ख मिल गयो हमकु अब समझमें आयो हे के जो हमने मान कियो वो गलत हतो पर तू क्यों अटवीमें अटन कर रह्यो हे! तू तकलीफ पाके हमकु तकलीफ दे वामें तोकु क्या सुख मिलेगो! तू तकलीफ नहीं पातो होय और हमकु तकलीफ मिलती होयतो चल वो तकलीफ हमकुं मंजूर हे पर खुद तकलीफ पाके हमकु तकलीफ देवेमें तोकु कौनसो लाभ मिलेगो! **तत्र अस्माकं सन्देह किं व्यथते न वा! इति.** याही लिये हमकु संदेह होवे हे के खुद तकलीफ पाके तू हमकु तकलीफ दे रह्यो हे तो ऐसो काम तू कर रह्यो हे के नहीं! ये संदेह हमकु होवे हे यदि तू सचमुचमें तकलीफ पा रह्यो हे तो तो हमकु बड़ो कष्ट हे और तकलीफ नहीं पा रह्यो हे तो ये बता के कहां हे? या वनमें तू नहीं हे, या वनमें तू अटन नहीं कर रह्यो हे तो तू कहां चल्यो गयो बस तू ये बता दे. अब तक तो हमारे साथ हतो.

स्विद् इति उत्प्रेक्षायां किं न व्यथते! अपितु व्यथतएव. कूर्पादिभि शर्करादिभि 'कूर्प' शब्देन विषमा शर्करा उच्यन्ते. क्योंके या वनमें कोई

छोटे कंकड़ कोई बड़े कंकड़ कोई छोटे पत्थर कोई बड़े पत्थर ऐसे पड़े भये हें उनसु तेरे चरण बिंधते होंयगे ये सोचके हमारी बुद्धि चकरा रही हे. **तत्र आह भ्रमति धीः इति बुद्धि केवलं परिभ्रमति. यदि व्यथते इति निश्चय स्यात् तदा बुद्धि शान्तैव भवेत्.** और यदि ये निश्चित हो जाये के तू अपने आपकु कष्ट दे रह्यो हे तो तो हमारी बुद्धि शांत हो जायेगी मानें काम करनो बंद कर देगी. तबतो ये राजसभाव भी नहीं रहेगो ये व्यथासु भी ऊपरी अवस्था हो जायेगी के तू अपने आपकु कष्ट दे रह्यो हे. **तत्र हेतु भवदायुषाम् इति. क्यों संदेह हो रह्यो हे? भवल्लीलार्थमेव आयुः येषाम् पूर्वन्तु खेदेन मनःपीडा निरूपिता. इदानीन्तु मूर्च्छा निरूप्यते इत्यन्तस्थितिः.** वा गोपीनकु तो प्रभुकु कष्ट हो रह्यो हे ये सोचके कष्टको भास हो रह्यो हतो पर अब वा विप्रयोगको जो ताप हे वो ऐसी अवस्थापे पहोंच्यो के वा गोपिकाकी मूर्च्छाकी स्थिति आ रही हे याके लिये ये **भ्रमति** केह रही हे **भ्रमति धीः भवदायुषां नः.** मानो के ये एक-एक पत्थर उनके दिमागमें ऐसो चक्कर काट रहे हें के उनकी बुद्धिसु टकरा रहे हें और वो फिर भी जी रहे हें वाको एक मात्र कारण हे के ये तेरी लीला चल रही हे. रविन्द्रनाथ कहें हें : **"तोमार लीला होबे ऐ प्राण भरे. ये संसारे रेखे छे ताइ धरे रहिबो बांधा तोमार बाहुडोरे बंधन आमार सेइ टुकु थाकबाकि"** (रविन्द्रनाथ). रवीन्द्रनाथ कहे हे के तेरी लीला होवे याके लिये प्राण धरे भये हें, ये संसारमें टिके भये हें. अब हमारो एक ही बंधन बाकी रेह गयो हे और तो सारे बंधन छूट गये हें तेरो बाहुबंधन वो ही एक बंधन बाकी रेह गयो हे वो बंधन अभी तक पूरे तौरपे बंध नहीं पायो हे या लिये यहां बंधे भये हें बाकी और कोई बंधन अवशिष्ट नहीं हे. **एवं सर्वासां मूर्च्छापर्यन्तं स्थितिः ज्ञातव्या पुनः लीलाप्रवेशे प्रलापः.** या प्रकारसु गोपिकाऐं अपने भावन्की तीव्रता तापकी तीव्रतामें मूर्च्छित हो रही हें फिर लीलाको भान होवे हे फिर प्रलाप शुरु होवे हे फिर मूर्च्छाकु प्राप्त होवे

हें या तरहसु फिर स्वरूपस्थ होवे हें फिर गावे हें. **एवं साधनपरीक्षयोः यावत् तावत् तासां तापो निरूपितः.** या प्रकारसु साधन और परीक्षाकी जो जो पराकाष्ठा हे जितनो साधन कियो जा सकतो हतो दीनतावश वो इन गोपीन्ने अपनी पराकाष्ठसु कियो और प्रभु जितनी परीक्षा ले सकते हते उतनी परीक्षा लिवा जा चुकी अब यासु ज्यादा तापको वर्णन अनभीष्ट हे.

....

(प्रभुको प्राकट्य)

एकोनत्रिंशके अध्याये प्रसादं भगवत्कृतम्।।
रोदनात् प्राप्य तुष्टास्ता निर्णयज्ञा इतीर्यते।।१।।
नहि साधनसम्पत्त्या हरिः तुष्यति कस्यचित्।।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम्।।२।।
सन्तुष्टः सर्वदुःखानि नाशयत्येव सर्वतः।।
अतो निर्णयवाक्यानि भजनार्थं न्यरूपयत्।।३।।

एवं पूर्वाध्यायान्ते तासां स्तुतिम् उक्त्वा, ततः पूर्वाध्याये तासां प्रलापम् उक्त्वा, उभयमपि उपसंहरन् तयोः असाधनतायां जातायां रोदनं कृतवत्य इति आह इति..इति.

इति गोप्यः प्रगात्यन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।।
रुरुदुः सुस्वरं राजन्! कृष्णदर्शनलालसाः।।

पूर्वोक्तप्रकारेण सर्वाएव गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च जाताः. यदा अस्माभिः एकः प्रकारः उक्तः तास्तु चित्रधा विलापयुक्ता जाताः. यदा तयोः असाधनत्वं जातं तदा सर्वाः सम्भूय महद्रोदनं कृतवत्यः. रोदने निमित्तम् आह कृष्णदर्शनलालसाः इति, नतु स्वदेहरक्षार्थम्।।१।।

याके लिये या तरहसु गाती भई रोती भई कृष्णदर्शनलालसावाली गोपिकानूके साधनकी अब कोई सीमा नहीं रेह गयी तब उंचे स्वरसु रुदन कियो.

ततो भगवान् ब्रह्माविष्णू रुद्रश्च भूत्वा पुनः कृष्णएव जातइति आह तासाम् आविरभूद् इति :

तासाम् आविरभूद् शौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः।।२।।

सुबोधिनी :

तासां मध्यएव भगवान् आविर्भूतः मायाजवनिकां दूरीकृत्य भगवान् प्रकटो जातः यतः शौरिः शूरस्य पौत्रः शौर्यम् अत्र प्रकटनीयम् इति, सर्वेषां दुखनिवारणार्थमेव यदुवंशे अवतीर्ण इति. तदा तासां दोषनिवृत्त्यर्थं स्मयमानं मुखाम्बुजं यस्य, ईषद्हसन्मुखः तासां वैक्लव्येन सन्तुष्टः. स्मितयुक्तं स्मयमानं, स्मय-मानाभ्यां वा सहितं मुखाम्बुजं यस्य. भक्तानां दोषो भक्तेभ्यो निर्गतो भक्तौ समायाति इति ज्ञापनार्थम्. तदानीन्तनं रूपं वर्णयति पीताम्बरधरः इति. पीताम्बरं हास्यसंकोचार्थं हस्ते धृत्वा तिष्ठति. अथवा व्यापिवैकुण्ठरूपेण एतावत्कालं लक्ष्म्या सह रमणं कृत्वा तेनैव रूपेण प्रादुर्भूतः. स्रग्वी वनमालायुक्तश्च. मध्ये ब्रह्मादिपूजां च गृहीतवान् लक्ष्म्या वा अतो विलम्बः इत्यपि सूचितम्. अतएव प्रथमश्लोके पूर्वाध्याये "श्रयत इन्दिरा" इति उक्तम्. इदानीन्तु उपेक्षा कर्तुम् अयुक्तेति प्रादुर्भूतः. अतः आगमनम् उक्तम् अग्रे. (यद्वा तत्र हेतुम् आह विशेषणद्वयेन. इदानीम् अनाविर्भावेतु न रसो न वा कीर्तिः, स्वयन्तु आच्छादनेन रसत्वसाधकपीताम्बरधरः कीर्तिमयस्रगवान् च. अतः प्रकट इत्यर्थः. अन्यथातु भक्तानां स्वरूपतिरोधाने उक्तोभयाभावः स्फुटः इति भावः.) ननु कन्दर्पेण कथं न वशीकृतः, स्वपूतना खिन्नेति, तत्र आह साक्षान्मन्मथस्यापि मन्मथः. आधिभौतिको मन्मथः देवतारूपः. ततः आध्यात्मिकः सर्वहृदयेषु साक्षान्मन्मथः. तस्यापि अयं मन्मथः आधिदैविकः सर्वस्यापि सर्वत्वात्. अतः कन्दर्पोऽपि मुग्धः कन्दर्पस्यापि अशक्यमोहः कन्दर्परूपश्च. अतः तासां दैन्ये प्रादुर्भूते तन्निवारणार्थं कामरूपमेव प्रकटीकृतवान्. अतः तेन पूर्ववत् कामसम्पन्नाः ताः कृताः ।।२।।

इन व्रजभक्तन्में कैसे पैदा भयो? या तरहसु भगवान्ने खुदने मान पैदा करके मान प्रकट कीयो. भगवान्के आवेशके कारण इनमें मान आयो क्योंके भगवान्में जो ऐश्वर्य हे वह भगवत्सम्बन्धसुं इनमें आयो. एक बात बताऊं के जब भगवान्ने इनके ऊपर हाथ धर्यो तो इनकु भयो के हमारो भी ऐश्वर्य हे के प्रभु हमारे कंधापे हाथ

धरें हें भगवान्ने इनके कंधापे श्रीहस्त धरके इनमें मान जगायो. इनमें मान जगायवेके कारण एक तरहसु भगवान् **ब्रह्मा** भये और इनको मान जगाके इनके साथ विहरण कियो वा मानकु सहन कियो यासु प्रभु **विष्णु** भये और वही मान जब बढ्यो तो प्रभु तिरोहित होके या तरहसु रुद्रको स्वरूप दिखायो ये सब रोवे लग गयीं और **रुद्रश्च भूत्वा पुनः कृष्णएव जात.** फिर प्रभु कृष्ण हो गये, रमणके लिये प्रकट भये.

आचार्यचरण बहोत सुन्दर एक बात कहे हें : **इदानीम् अनाविर्भावेतु न रसो न वा कीर्तिः, स्वयं तु आच्छादनेन रसत्वसाधकः पीताम्बरधरः कीर्तिमयस्रग्वान् च. अत प्रकट इति अर्थः.** इतनो ताप होवेके बाद भी यदि प्रभु प्रकट न होवें तो न तो लीलामें रस ही रेह जायगो और न ही प्रभुकी कोई कीर्ति रेह जायगी. ये सोचके **तासाम् आविरभूत् शौरि स्मयमानमुखाम्बुजः.** वो स्मय जो हतो इनको स्मय इनको मान जो गोपिकान्ने कियो वो प्रभुने अब स्वयं धारण कर लियो **स्मयमानमुखाम्बुजः** प्रभुके मुखाम्बुजपे वो मान और स्मय आयो क्यों आयो. प्रभुकु अब गर्व हो गयो के बताओ ऐसे भक्त कोई और देवके हें जैसे मेरे हें! ऐसो अभिमान जैसो पेहले इनको स्मय हतो के जैसो हमारो कृष्णके साथ सम्बन्ध हे ऐसो और कोईको नहीं हे ऐसो स्मय-मान इनकु भयो जैसो स्मय-मान इनके मुखारविन्दपे झलक्यो हतो वो रुद्रलीला करके प्रभुने उपसंहरण कियो और वा स्मय और मान कु खुदके मुखपे धारण कियो. अब ये केह रहे हें हंसते भये **पीताम्बरधरः स्रग्वी.** संस्कृतमें केवल ‘पीताम्बर’ शब्द केह दो तो वाको अर्थ हो जाय हे पीत अम्बर और पीत अम्बर हे जाको वाकु ‘पीताम्बर’ कह्यो जाय हे. पीताम्बरधरः केह रहे हें क्योंके श्रीहस्तमें पीताम्बर लेके पधारे हें. धारण तो कियो हे पर हाथमें यों लेके आये हें जासु जो रोती भई हें उनके आंसु पोंछ सकें जो ग्लान हो गयी हें उनकु आश्वासन दे सकें. वो

शायद माफी मांगवेके लिये पधारे होंय माफ कर दो. इतनी रोयी हो तो एक एक गोपिकासु माफी मांगनी. तो प्रभुकु कितनी बड़ी झोली चहिये इतनो बड़ो पीताबर प्रभुने पसार्यो के सबकी क्षमा प्रभुकु मिल सके. **तासाम् आविरभूद् शौरि स्मयमानमुखाम्बुजः.** आचार्यचरण कहे हें के **शौरि शूरस्य पौत्रः.** शूरके पौत्र हें न! या लिये शौरि केह रहे हें शौर्यम् अत्र प्रकटनीयम् इति. अब तो यहां अपनो शौर्य दिखानो ही पड़ेगो नहीं तो जायेंगे कहां! **सर्वेषां दुःखनिवारणार्थमेव यदुवंशे अवतीर्ण इति तदा तासां दोषनिवृत्त्यर्थ स्मयमानं मुखाम्बुजं यस्य, ईषद्हसन्मुखः तासां वैक्लव्येन सन्तुष्टः.** ऐसो हास्य जामें स्मय और मान दोनों प्रकट होते होंय और जामें प्रभुको ऐसो भाव झलक जाय के कोई औरके ऐसे भक्त नहीं हें जैसे मेरे भक्त हें. एसे प्रभु प्रकट भये **तासाम् आविरभूद् शौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः. अतः तासां दैन्ये प्रादुर्भूत तन्निवारणार्थ कामरूपमेव प्रकटीकृतवान् अतः तेन पूर्ववत् कामसम्पन्नाः ताः कृताः.** जा दैन्यके कारण उनको काम तिरोहित होवे जा रह्यो हतो वाकु फिर अपने अलौकिककामसु सर्वकालीन कामसु सम्पन्न कियो.

श्रीगुसांईजी आज्ञा करें हें अपन्ने भी न जाने कितनी गालियें गोपीगीतके माध्यमसु प्रभुकु दीं पर अपनो भाव या अधिकार अपनो हे के नहीं ये तो वो जाने जो या मार्गपे चलीं और अपन् भी या मार्गपे चले. अपनो या मार्गपे चलवेको अधिकार हे के नहीं ये पता नहीं पर खुली पगडण्डी दीखी तो और कहां जाते! वनमें तो भटक नहीं सकते हते जो वन हतो वामें एक ये ही पगडण्डी मिली अपनकु और जो पगडण्डी मिली वाकी नाककी सूधमें अपन् भी गये. अपन्ने भी ठाकुरजीकु **कितव**! कह्यो, अपन्ने भी ठाकुरजीकु **कुहक**! कह्यो. ये कह्यो तो अपनकु भी मजा आयो वस्तुत यामें अपनो अधिकार हे के नहीं अपनकु नहीं पता.

श्रीगुसांईजी एक बहोत सुंदर बात कहे हें "**विज्ञप्तौ वा अपराधे वा पाखण्डे वा मदुक्तय: पर्यवस्यन्ति कुत्र इति न जाने अहं विमूढधी:**" (विज्ञप्ति.१।६१). अपनूने जो प्रभुकु **कितव!** कह्यो, अपनूने प्रभुकु **कुहक!** कह्यो वो अपनी विज्ञप्ति मानेंगे प्रभु के अपनो अपराध मानेंगे पता नहीं! पर जो कछु भी मानें वो मानें अपन् मूढ़धी हें. मूढ़तावश जो पगडण्डी गोपिकानूने बनायी वापे अपन् चले अपन् जैसे भी हें प्रभु हमारो अंगीकार करें.

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज.

श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हें :

मंगलमखिलं गोपीशितुरिति मंथरगतिविभ्रममोहित रासस्थितगानम्॥
त्वं जय सततं गोवर्धनधर! पालय निजदासान्॥

(मंगलार्ति.४)

ये आखो गोपीगीत मंगलगीत हे याकु अपन् गोपीगीत न केहके मंगलगीत कहें **मंगलम् अखिलं गोपीशितुरिति मंथरगतिविभ्रममोहित रासस्थितगानम्.** रासस्थित जो गान हे वो मंगल हे. "**त्वं जय सततं गोवर्धनधर! पालय निजदासान्.** अपने लिये तो गोवर्धनधरकी जय होय और वो अपनो पालन करे या पुष्टिमार्गमें ये ही अपनी प्रार्थना हे. इतनो ही अपनो अधिकार हे बाकी तो जो कुछ कियो वो गोपीजननूके शब्दनूसु गोपीजननूके भावसु कियो नहीं तो अपनो अधिकार कहां हे.

उद्धरणतालिका
(अ - ऐ)

अंबुदस्य स्वभावोऽयं समये	(विज्ञप्ति.१।८)	१३७
अकाम: सर्वकामो वा	(भाग.पुरा.२।३।१०)	४५३
अक्षण्वतां फलम् इदं न	(भाग.पुरा.१०।१८।७)	३८,२५०
अचिन्त्यकार्यकर्ता	(पु.स.ना.५।६८)	१०५
अजातपक्षाइव मातरं	(वृत्रा.चतु.३)	५५१
अजामिलादिदोषाणां नाशको	(कृ.स्त्रो.७)	३३३
अजायमानो बहुधा विजायते	(तैत्ति.आर.३।१३।३)	१६७,५२४
अजो नित्य: शाश्वतो	(भग.गीता २।२०)	३०९
अण्वपि ब्रह्म व्यापकं	(त.दी.नि.प्र.१।५४)	३२३
अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे	(सि.मु.१२)	४९७
अत्र 'कटाक्ष'पदेन	(सुबो.१।१६।३२)	१२०
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा	(ब्र.सू.१।१।१)	२९,५२२
अथो अमुष्यैव मम अर्भकस्य	(भाग.पुरा.१०।८।४०)	१५०
अद्वैतवीथिपथिकै: उपास्या:	(मधुसुदनसरस्वती)	१८१
अधरं मधुरं	(मधु.१)	६१
अनन्याः चिन्तयन्तो	(भग.गीता.९।२२)	५००,५०२
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम्	(वि.धै.आ.५)	१२८
अनुजा विष्णो:	(भाग.पुरा.१०।४।९)	१६३
अनेकतन्त्रकान्तारे	( )	१४६
अन्तर्निष्ठा विरहो वा	(सुबो.१०।४४/४७।५८)	४३५
अन्यानि भूतानि मात्राम्	(बृह.उप.४।३।३२)	२४३
अपरा अनिमिषदृग्भ्यां	(भाग.पुरा.१०।२९।७)	५२६
अपराधसहस्रभाजनं पतितं	(आळवन्दारस्तो.५१)	५४९
अपाणिपादौ जवनौ ग्रहीता:	(श्वेता.उप.३।१९)	५४१
अपि चेत् सुदुराचारो	(भग.गीता.९।३०-३२)	५५२

अभिलाषाश्चिन्तनश्च	(केषाञ्चिन्मते)	३०३
अमीहलाहलमदभरे	(बिहारी)	३०२
अमृतत्वस्यतु न आशा	(बृह.उप.४।५।३)	३२०,५२०
अलावा ईदके मिलती हे	(गालीब)	४०७
अशोच्यान् अन्वशोचस्त्वं	(भग.गीता २।११)	६०
असमर्पित वस्तूनां	(सि.र.४)	४९२,४९३
असाधनमपि साधनं करोति	(त.दी.नि.प्र.१।१)	५४५
अहं त्वा सर्वपापेभ्यः	(भग.गीता १८।६६)	५५०
अहं ब्रह्म अस्मि	(बृह.उप.१।४।१०)	१३३,१८१
अहं भक्तपराधीनः	(भाग.पुरा.९।४।६३)	१९८,२२७
अहं मनुरभवं सूर्यश्च	(बृह.उप.१।४।१०)	२२१
अहं मम असौ पतिः	(भाग.१०।८।४२)	१५०
अहन्यापृतं निशि शयानम्	(भाग.पुरा.२।७।३१)	५४२
अहम् आत्माऽऽत्मनां	(भाग.पुरा.३।९।४२)	५२९
'आत्मज उत्पन्न'इति	(सुबो.१०।५।१)	१६८
आत्मन्येव आत्मना तुष्टः	(भग.गीता २।५५)	४८४
आत्मसम्भाविताः स्तब्धाः	(भग.गीता १६।१७)	४५४
आत्मारामश्च मुनयः	(भाग.पुरा.१।७।१०)	१८१,५२६
आत्मारामोऽपि अरीरमत्	(भाग.पुरा.१०।२६।४२)	१८५
आनन्दसिंधु बढ्यो हरितनमें	(परमानन्द)	४१८
आयुर् मनांसि च दृशा	(भाग.पुरा.१।१५।१५)	८८
आर्तो अर्थार्थी जिज्ञासु	(भग.गीता.७।१६)	४४४
आशाबन्धः कुसुमसदृशं	(मेघदूत.पूर्व.९)	५४
आसामहो चरणरेणुजुषाम्	(भाग.पुरा.१०।४४।६२)	५४२
आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि	(छान्दो.उप.७।२५।२)	४९२,४९३
आहुश्च ते नलिननाभ!	(भाग.पुरा.१०।७९।४९)	१२७
इत्थं शरत्स्वच्छजलं	(भाग.१०।१८।१)	२१५
इदमेव इन्द्रियवताम् फलम्	(सुबो.कारि.१०।१८।१०)	१०६,१०८,४६९

इनको बरजे हते	(८४.वै.वा.२०.प्र.१)	४७२
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि	(भग.गीता २।६०-६१)	१३१
इन्द्रो मायाभिः	(बृह.उप.२।५।१९)	५१९
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे	(भग.गीता १८।६१-६२)	१८४
उद्धरेद् आत्मना	(भग.गीता.६।५)	३२२
उपसंहर विश्वात्मन्	(भाग.१०।३।३०)	१६४
उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः	(त.दी.नि.प्र.१।८०)	५०४
ऊर्ध्वम् गच्छन्ति सात्त्विकाः	(भग.गीता.१४।१८)	५११
ऋषिणां पुनर् आद्यानाम्	(उत्त.रामच.१।१०)	१०४
ऋते ज्ञानाद् न मुक्ति	( )	३२०
एक ही अनंग साधि	(उद्धवशतक)	२१७
एकं सद् विप्राः बहुधा	(ऋक्.संहि.१।१६४।४६)	५२४
एकाकी न रमते	(बृह.उप.१।४।३)	२१३,४००
एके कर्मप्रवृत्ताः सततम्	(प्रभु.विज्ञ.५।२)	२७७
एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय	(छान्दो.उप.६।२।३)	२१५,५२४
एवं प्रतारणाशास्त्रं	(त.दी.नि.१।८०)	५०४
एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः	(बृह.उप.३।७।३)	२२१
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य	(द्र.विष्णुपुरा.६।५।४७)	३०७

(क - ङ)

कामं क्रोधं भयं स्नेहं	(भाग.पुरा.१०।२६।१५)	५४५
कामः एषः क्रोधः एषः	(भग.गीता.३।३७)	५४४
काममयोऽपि गताश्रयणोऽपि	(पञ्चाक्षरमंत्रगर्भस्त्रोतम्.३)	५३४
कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः	(भग.गीता.७।२०)	४५४
कामोऽपि तत्तद्-इन्द्रिय	(बालबो.विवृत्ति.२)	२४३
काव्येषु कोमलधियो	(वेदान्तदेशिक)	३३६
काहेको देह दमत साधन	(हरिरायजी)	४४७
किं स्वप्नम् एतद उत देवमाया	(भाग.पुरा.१०।८।४०)	१५०

किमपि किमपि मन्दं	(उत्त.राम.१।२७)	३१२
किम् आसनं ते गरुडासनाय	(त.दी.नि.प्र.१।१)	३७२
कियान् पूर्वं जीवः	(विज्ञप्ति १।१)	३,३२२,३२६
कीर्ति श्री वाक् च	(भग.गीता १०।३४)	५३२
कुल्या पौराणिकाः	(जलभेद.३)	५०३
कृष्णकृपागुण जात न	(नागरीदास)	२३८
कृष्णाधीना तु मर्यादा	(त.दी.नि.३।५।२६)	१२३
कृष्णो अहं पश्य गतिं	(भाग.१०।२७।१९)	२२१
केवलेनहि भावेन	(भाग.पुरा.११।१२।८)	५०२
कौण्डिन्यो गोपिका प्रोक्ता	(संन्या.नि.८)	५४८
कौन रस गोपिन् लीनो	(परमानन्ददास)	५४४,५४६
कौन्तेय प्रतिजानिहि	(भग.गीता ९।३१)	५५४
क्रीडार्थम् आत्मनः	(भाग.पुरा.८।२२।२०)	३१९
कृष्णकृपागुण जात	(नागरीदास)	२३८
क्वासि क्वासि महाभुज!	(भाग.पुरा.१०।२७।३९)	१३
गगनं गगनाकारं सागरं	(रामा.युद्धका.१०७।५१)	१६३
गता बुद्धिः शुद्धिर जगति	(विज्ञप्ति २।२६)	५३२
गणिविडम्बनि तस्य	(प्रतिवादिभयंकरअण्णंगराचार्य)	४०१
गिरिधर सबही अंगको	(परमानन्ददास)	५१४
गुंचे तेरी जिन्दगीपे	(जोश मलीहाबादी)	१७६
गुलचींकी साजिशें हैं	(नसीम)	४७०
गोकुलं सर्वम् आवृण्वन्	(भाग.पुरा.१०।७।२१)	१३३
गोपीनां तत्पतीनां च	(भाग.पुरा.१०।३०।३६)	५१९,५२३
गोपीनां परमानन्दः	(भाग.पुरा.१०।१६।१६)	५१५
गोप्यः किम् आचरद्	(भाग.पुरा.१०।१८।९)	४९९,५०७
गोमयपायसन्यायः	(लौकि.न्याय.४०३)	३७४

(च-ञ)

चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितः	(भाग.पुरा. १०।२९।१४)	१६

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः	(भग.गीता ।७।१६)	२३४
चरणं पवित्रं विततं पुराणं	(महानारा.उप.१।११)	२७५
चक्षुरागो मनःसंगः	(वात्स्या.कामसू.)	३०३
चितवन रोकेहु ना रही	(सूरदासजी)	५१६
चिन्तिताधिकदायकः	(पु.स.ना.२७९)	५,८,४८२
जगौ कलं वामदृशां	(भाग.पुरा.१०।२६।३)	९१,११२
जनस्य साकेतनिवासिनः	(रघुवंश ५।३१)	४८१
जयति जननिवाशो	(भाग.पुरा.१०।८७।४८)	१६५,१६६,१६७
जर जाओरी लाज मेरे	(नंददास)	४३७
जाको लगे सो जाने	(सागर)	३०३
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः	(भग.गीता २।२७)	३०९
जोपे श्रीवल्लभ प्रकट न	(सगुणदास)	१००
जैसो हूं तैसो कहाऊं तेरो	(श्रीहरिरायजी)	४६
ज्ञानभक्त्योः तु भगवदाविर्भावार्थं	(सुबो.१०।२६।१३)	१४२
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि	(भग.गीता.४।३७)	२७५
ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं	(त.दी.नि.१।१४)	१४३,१८०,२७५
ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति	(भग.गीता १३।२५)	२६०
ज्येष्ठानाम् स्मित-हसिते	(साहित्यदर्पण.३।२१७)	२५३
झुक रही सुन मुरलीकी	(परमानन्द)	४०२

(त - न)

तथैव तस्य लीलेति	(नव.र.८)	१२९
ततः तस्यां दृष्टौ भगवान्	(सुबो.१।१६।३२)	१२१
तथा न ते माधव तावकाः	(भाग.पुरा.१०।२।३३)	२२५
तथापि मन्नेत्रवपुः प्रभृतीनां	(विज्ञप्ति १।४५)	२२०,२२५
तथैव तस्य लीलेति	(नव.र.८)	१२९
तदा अन्यसेवातु व्यर्था स्यात्	(सेवा.वि.५)	१३६
तदा ज्ञानमार्गे स्थातव्यम्	(सेवा.वि.५)	५१७

तद्धाम परमं मम	(भग.गीता १५।६)	३९२
तन्मनस्का: तदालापा:	(भाग.पुरा.१०।३१।४३)	४,६,१८
तम् अद्भुतं बालकम्	(भाग.१०।३।९-१०)	१६६
तर्कागोचरकार्यकृत्	(पु.स.ना.५।६८)	१०६
तस्मात् मच्छरणं गोष्ठं	(भाग.पुरा.१०।२२।१८)	१३५
तस्यावलोकमधिकं	(भाग.पुरा.३।२८।३१)	२६०
ता दृष्ट्वान्तिकम्	(भाग.पुरा.१०।२६।१७)	१११
तासाम् आविर्भूत् शौरि:	(भाग.पुरा.१०।२९।२)	१५,१२८
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत्	(भाग.पुरा.२।३।१०)	४५४
तुम घनसे हो घनश्याम	(धोंधी)	३४९
ते नाधीतश्रुतिगणा	(भाग.११।१२।७-८)	७,१४५,३७७
ते हि दुर्लभा एकत्र समुदिता:	(सुबो.१।१६।३२)	१२१
तेरी भ्रोंहकी मरोरनते	(नंददास)	३६८
तोमार लीला होबे ऐ	(रविन्द्रनाथ)	५५९
त्रिवर्गसाधकानीति न	(बालबोध.५)	४८५
त्रैगुण्यविषया वेदा:	(भग.गीता २।४५)	४८५
त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं	(विज्ञप्ति १।४४)	२२०
त्वद्वियोगे य आद्यो	(विज्ञप्ति १।२७)	३११,३१७
त्वद्वियुक्तस्य जीवस्य	(विज्ञप्ति १।३०)	२९४,३१०
त्वन्नामोच्चारणेऽपि	(विज्ञप्ति १।१६)	३१६
दिग्गन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डा:	(जगन्नाथ)	२८९
दिवसे सर्वे श्यामा मळी	(वल्लभा.६।४-८)	४०३,४१७
दुष्टतमोऽपि दयारहितोऽपि	(पञ्चाक्षरमंत्रगर्भस्तोत्र.१.)	५३४
द्यूतं छलयताम् अस्मि	(भग.गीता .१०।४१)	३१७
दृष्ट्वा कुमुद्वन्तम् अखण्डमण्डलं	(भाग.पुरा.१०।२९।३)	११८
देवाअपि अस्य रूपस्य	(भग.गीता.११।५२)	५४२
दैत्यो नाम्ना तृणावर्त:	(भाग.पुरा.१०।७।२०)	१३२
दैवी ह्येषा गुणमयी	(भग.गीता.७।१४)	३०१

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया	(मुण्ड.उप.३।१।१)	१५२,१५८,१८४
द्वितीयाद् वै भयं भवति	(बृह.उप.१।४।२)	२१३
धनं सर्वात्मना त्याज्यं	(त.दी.नि.२.२५६)	३२९
धन्यास्ता: व्रजगोपिकाहि	( )	२४८
धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां	(भाग.पुरा.१०।३०।३०-३१)	१७
धर्मेण पापम् अपनुदति	(महा.नारा.उप.१७।८)	४९०
ध्यायेत् चिरं विततभावनया	(भाग.पुरा.३।२८।३१)	२६१
न अपश्यत् कश्चन आत्मानं	(भाग.पुरा.१०।७।२३)	१३३,१३४
न अयं मृगो नापि नरो	(भाग.पुरा.७।८।१९)	२३१
न तत् समोऽस्ति	(भग.गीता ११।४३)	५०२
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं	(वृत्रा.चतु.२)	५३४
न पारये अहं चलितुं	(भाग.पुरा.१०।२७।३७)	१४,६९,२३१,५१५
न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां	(भाग.पुरा.१०।२९।२२)	६६
न माता न पिता	(भाग.पुरा.१०।४३।३८)	१६५,१६७
न वा अरे सर्वस्य कामाय	(बृह.उप.४।५।६)	१६०,५१९,५२८
न वा अरे पुत्राणां कामाय	(बृह.उप.४।५।६)	५२०
न विना विप्रलम्भेन शृंगारं/संभोग:	(द्र.साहि.दर्प.३।२१३)	६६
न हि असंन्यस्तसंकल्पो	(भग.गीता.६।२)	२६२
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्	(भग.गीता.६।४०)	३१६
निरोधो अस्य अनुशयनं	(भाग.पुरा.२।१०।६)	४४
ननु प्रपन्न: सकृदेव नाथ	(आळवन्दार.स्तो.६७)	४७७
नन्दगोपसुतं देवि पतिं	(भाग.पुरा.१०।१९।४)	३८
नन्दस्तु आत्मज उत्पन्ने	(भाग.पुरा.१०।५।१)	१६७
नायकोत्कर्षार्थम् 'अच्युत'इति	(सुबो.१०।१८।१)	२१६
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो	(कठोप.१।२।२३)	५४९
निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं	(भाग.पुरा.१०।२६।४)	११८
नीचैर गच्छति उपरि	(मेघदूतम्.उ.४९)	२२५
नैषातिदु:सहा	(भाग.पुरा.१०।१।१३)	३१४

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिः	(भाग.पुरा.१०।२६।१४)	५४१

(प-म)

पत्न्यस्तु षोडशसहस्रम्	(भाग.पुरा.१०।५८।४)	३२५
पराञ्चि खानि व्यतृणत्	(कठोप.२।१।१)	१५२,५३०
पश्यन् चक्षुः शृणवन् श्रोत्रं	(बृह.उप.१।४।७)	५४१
पार्थो वत्स सुधीः भोक्ता	(भग.गीता.महा.)	५४७
पित्रोः सम्पश्यतोः	(भाग.१०।३।४६)	१६५
पिबन्तइव चक्षुर्भ्यां लिहन्तइव	(भाग.पुरा.१०।७०।५-६)	२४५,२५१
पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः	(नि.ल.१८)	३२९
पुनः पुलिनम् आगत्य	(भाग.पुरा.१०।२७।४४)	१८
पुरुषते तियभाव उपज्यो	(सूरदास.)	५०६
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां	(त.दी.नि.३।१०।१११)	२८१
पूजां दधुः विरचितां	(भाग.पुरा.१०।१८।११)	४४३
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः	(भाग.पुरा.११।२।५५)	२२५,३८७
प्रतियात् व्रजं नेह स्थेयं	(भाग.पुरा.१०।२६।१९)	११२
प्रपच्छुः आकाशवद अन्तरं	(भाग.पुरा.१०।२७।४)	३०१
प्रायो बत अम्ब!	(भाग.पुरा.१०।१८।१४)	५४३
प्रार्थये रसिकाः स्वैरं	(शृं.र.म.)	६२
प्रार्थिते वा ततः किं	(वि.धै.आ.२)	१३९,१५६, १९३,४५४
प्रौढापि दुहिता यदवत्	(अंतः.प्रबो.८)	४७३
फलं वैमुख्यतः तमः	(त.दी.नि.१।८०)	५०४
बभूव प्राकृतः शिशुः	(भाग.पुरा.१०।३।४६)	५४१
बलिष्ठा अपि मद्दोषाः	(विज्ञप्ति.१।६६.)	२६५
बहूनि मे व्यतितानि	(भग.गीता.४।५)	५२२
बर्हापीडं नटवरवपुः	(भाग.पुरा.१०।१८।५)	३४९,३६४
बहोत दिनान्की अवधि	(घनानन्द.)	३११

बावरी व्हे जात	(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)	४४७
ब्रज भयो महरिके पूत	(जन्मा.बधा.सूरदास)	४०६
ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे	(नरसिंहमहेता)	५२५
ब्रह्मज्ञानीने मुक्तिमार्गीय	(वल्लभाख्यान.१।७)	४६९
ब्रह्मवादे निरुक्तिस्तु	(पत्रा.३)	३७३,३७४
ब्रह्मादयो बहुतिथं	(भाग.पुरा.१।१६।३२)	११६,११९
ब्रह्मारुद्र त्यां कोण	(वल्लभा.१।११)	५१६
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या	(भाग.पुरा.१०।४४।२५)	१४५
भक्त्यातु अनन्यया	(भग.गीता.११।५४)	५००,५०२
भगवति उत्तमश्लोके	(भाग.१०।४४।२५-२७)	१८२
भगवदीयत्वेन परिसमाप्तसर्वार्था:	(भाग.पुरा.५।६।१७)	२२०,४६८,५३५
भगवद्रूपसेवार्थं तत् सृष्टि	(पु.प्र.म.१२)	५३३,५५२
भगवानपि ता रात्रीः	(भाग.पुरा.१०।२६।१)	१११,१३१
भगवानेव हि फलं स	(पु.प्र.म.१७)	९,४६
भगवान् ब्रह्माविष्णू रुद्रश्च	(सुबो.१०।२९।२)	१२८
भज गोविन्दं भज...	(शंकराचार्य)	३०
भज् सेवायाम्	(पाणि.धा.पा.भ्वा.१०२३)	२९७
भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद्	(भाग.११।२।३७)	२१३
भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां	(भाग.पुरा.१०।२६।२४)	५२९
भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति	(तैत्ति.आर.३।१४।१)	३८६
भाग्यहीन जीव जेणे	(वल्लभा.७।७)	४६७,५०६
भूतल भूषण विष्णुस्वामीपथ	(वधाई:सगुणदास)	९३
भूल जिन जाय मन अनत	(श्रीहरिरायजी)	२२
मंगलमखिलं गोपीशितुरिति	(मंगलार्ति.४)	५६५
मनएव पिता वाङ् माता	(बृह.उप.१।५।७)	१११
मनश्चक्रे	(भाग.पुरा.१०।२६।१)	१११
मनोरथान्तं श्रुतयो यथा	(भाग.१०।२९।१३)	२३९
मम नाथ! यदस्ति	(आळवन्दार.५६)	४६९

मया इमा रंस्यथ क्षपाः	(भाग.पुरा.१०।१९।२७)	३०,४००,४४६
मां विधत्ते अभिधत्ते मां	(भाग.पुरा.११।२१।४३)	२९२,२९४,४९६
मातरः पितरः पुत्राः	(भाग.पुरा.१०।२६।२०)	५२८
माभूत् परीवादनवावतार	(रघुवंश.५।२४)	४८१
माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः	(नारदपञ्चरात्र)	५३३
मिथिलायां प्रदीप्तायां	(महाभा.१२।२६१।४)	४५९
मुग्धेऽर्धसम्पत्ति परिशेषात्	(ब्र.सू.३।२।१०)	५३८
मुनिः विवक्षुः भगवद्गुणानां	(भाग.पुरा.३।५।१२)	१००
मुहूर्तम् अभवद् गोष्ठं	(भाग.पुरा.१०।७।२२)	१३३
मूढाअपि वैष्णवाः विष्णुगतिम्	(भाग.पुरा.१०।२७।१०)	४२८
मेरो मन अनत कहां	(सूरदास)	५०६
मैवं विभो अर्हति भवान्	(भाग.१०।२६।३१)	२४,११४,१८५

(य-व)

यजन्ते सात्त्विका देवान्	(भग.गीता.१७।४)	५११
यज् देवपूजा संगतिकरण	(पाणिनीधातुपाठे.१।१०८७)	५११
यतो वा इमानि	(तैत्ति.उ.२।१)	२९५
यत् पत्यपत्यसुहृदाम्	(भाग.पुरा.१०।२६।३२)	५२९
यथा कायिकगतिः गोपिकानां	(सुबो.३।२९।११)	४९५
यदा संहरते चायं कूर्मो	(भग.गीता.२।५८)	५३०
यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा	(विज्ञप्ति.१।२६)	५३९
यद् अल्पं तन्मर्त्यम्	(छान्दो.उप.७।२४।१)	१०२
यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं	(भग.गीता.१०।४१)	३१७
यन्मदन्यद नास्ति कस्माद्	(बृह.उप.१।४।२)	२१५
यस्मात् क्षरम् अतीतो	(भग.गीता१५।१८)	३९२
यस्यां जाग्रति भूतानि	(भग.गीता.२।६९)	४३४
यह सुख रमा तनिक	(नंददास)	१८६
यहीं हमारो राज हे	(दानलीला)	५४३

'यः सर्वज्ञः...'यमवादीति	(विज्ञप्ति.१।१५९)	१६०
यादृशोऽसि हरे! कृष्ण!	(सेवाश्लोका-१०)	४५८
यावद् बहिःस्थितो वह्नि	(सुबो.कारि.१०।१।१६-१७)	१२५
युवां मां पुत्रभावेन	(भाग.१०।३।४५)	१५९
ये अन्ये अरविन्दाक्ष!	(भाग.पुरा.१०।२।३२-३३)	२२२,२२४
ये यथा मां प्रपद्यन्ते	(भग.गीता.४।११)	२३३,२६६,५४३
यो अन्तः प्रविश्य मम	(भाग.पुरा.४।९।६)	१८५,३७८
यो यदंशः सः तं	( )	२७२
यो वै भूमा तत्सुखं	(छान्दो.७।२३।१)	१०२
योगः चित्तवृत्तिनिरोधः	(यो.सू.१।१।१)	३५६
योगमायाम् उपाश्रितः	(भाग.पुरा.१०।२६।१)	१५१
रघुवर यदभूः त्वं तादृशो	(आळवन्दारस्तो.६६-६७)	४७८
रन्तुं मनश्चक्रे	(भाग.पुरा.१०।२६।१)	४,९१
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानि	(भग.गीता.२।६४)	५४४
रासस्त्रीभावपूरितविग्रहः	(सर्वो.स्तो.१६.नाम.४२)	५०५
रूपं यत् तत् प्राहुर्	(भाग.पुरा.१०।३।२४-२७)	१६३
रूपाद्यभावाद् हि न	(ब्र.सू.शां.भा.२।१।११)	५०४
लेकर मीन दूधमें राखो	(हिलगपद)	४९३,५१७
लोकेषणाया पुत्रेषणाया	(बृह.उप.३।५।१)	३२७
लौकिके तु भावेषु यत्रैव	(सुबो.कारि.१०।५।५)	१२४
वंशस्तु भगवान् रुद्रः	(कृष्णोप.८)	४९०
वपुरादिषु योऽपि	(स्तोत्ररत्नम्.५२)	२६
वयम् इह पदविद्यां तर्कम्	(न्यायकु.भू.पृ.६६)	२४१
वरं नेत्रे मुद्रा	(विज्ञ.३।२७)	५०७
वरं वृन्दावनेऽरण्ये	(न्यायभू.पृ.५९४)	५४२
वस्तुतस्तु महारसनिधान	(सुबो.टिप.१०।२७।३७)	७१
वामबाहुकृतवामकपोलो	(भाग.पुरा.१०।३२।२)	४१४
वालाग्रशतभागस्य शतधा	(श्वेता.उप.५।९)	३२२

वासांसि जीर्णानि	(भग.गीता.२।२२)	४६९
विचार्यैव सदा देयं	(जलभे.वि.३)	४७२
विज्ञप्तौ वा अपराधे	(विज्ञप्ति.१।६१)	५६५
वियोगो बाधते तावद्	(विज्ञप्ति.१।६४)	३५५
विलज्ज उद्गायति नृत्यते	(भाग.पुरा.११।१४।२४)	१७४
विषयेन्द्रियसंयोगाद यत्	(भग.गीता.१८।३८)	९२,२०३
वीतरागभयक्रोध: स्थितधीः	(भग.गीता २।५६)	४८४
वेददधिमध्य नवनीत जे	(वल्लभा.७।२)	४९८
वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यो	(भग.गीता १५।१५)	४९६
वेदो शिवः शिवो वेद	( )	४९६
वैष्णवीं व्यतनोद् मायां	(भाग.पुरा.१०।८।४३)	१५०
व्रजराज-विराजित-घोषवरे	(राज.आर्या.१)	५४५

(श-ह)

शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम्	(भाग.३।२८।२७-२८)	१९७
शतायुषान् पुत्र-पौत्रान्	(मन्त्राक्षता)	४८८
शब्दोहि धूमवद् लोके	(सुबो.का.१०।२७।५)	१२४,५१०
शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिषु	(भाग.पुरा.१।१५।१९)	६,५४६
शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहैः	(त.दी.नि.प्र.१)	४९७,४९८
शास्त्रयोनित्वात्	(ब्र.सू.१।१।२)	५०२,५०४
शेष सुरेस दिनेस गनेस	(रसखान.)	४९२
श्यामो भवति शृंगार:	(भरतनाट्यशास्त्र,अ.६)	४१६
स इममेव आत्मानं	(बृह.उप.१।४।३)	१८६,२१८
स वै नैव रेमे तस्माद्	(बृह.उप.१।४।३)	१११,२१५,३४५
संकल्पादेव कामा समुतिष्ठन्ते	(छान्दो.उप.८।२।१०)	२४४
संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमाय	(भाग.१०।३०।२७-२९)	१६
सकृदेव प्रपन्नाय 'तवास्मि'	(वाल.रामा.६।१८।३३)	४७४
सञ्चिन्तयेद् भगवत:	(भाग.पुरा.३।२८।२१)	४४८

सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्	(भग.गीता १४।१७)	१३२,३०५
सत्यं ज्ञानम् अनन्तं	(तैत्ति.उप.२।१)	४८६
सत्यं वद धर्मं चर	(तैत्ति.उप.१।११।१)	२९४
सम्भवामि आत्ममायया	(भग.गीता.४।६)	५२२
सर्व प्रवाहः सर्वत्र स्वानुकूल्येन	( )	४९५
सर्वं खलु इदं ब्रह्म	(छान्दो.उप.३।१४।१)	४०४,५२५
सर्वज्ञे त्वयि अज्ञतरः	(विज्ञप्ति.१।३४)	४७८
सर्वधर्मान् परित्यज्य	(भग.गीता.१८।६६)	२७६,४७४
सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य	(श्रीकृष्णशरणाष्टकम्.१)	५३७
सर्वात्मना दुरापत्वं ज्ञात्वाऽपि	(विज्ञप्ति.४२)	१६०
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा	(नव.२)	१५६
सो अश्नुते सर्वान् कामान्	(तैत्ति.उप.२।१)	५०१
सोऽकामयत् बहुस्याम	(तैत्ति.उप.२।६)	५२८
स्कन्धम् आरुह्यताम्	(भाग.१०।२७।३८)	६९
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा	(भग.गीता.२।५४)	४२२
स्निग्धस्मितानुगुणितं	(भाग.पुरा.३।२८।३१)	२६०
स्मयमानमुखाम्बुजः पीताम्बरधरः	(भाग.पुरा.१०।२९।२)	४७६
स्मरगरलखण्डनं मम	(जयदेव.)	१८७
स्वजन हि कथं हत्वा	(भग.गीता.१।३७-४३)	५४७
स्वभावजेन कौन्तेय	(भग.गीता १८।६०-६१)	३२०
स्वस्कन्धमेव आरुह्यताम्	(सुबो.१०।२७।३९)	६९,२३२
स्वामिनीनां हि बहिः	(सुबो.का.टि.१०।२६।७)	२८६
हरिः पूर्णः पूर्णतरः	(रूपगोस्वामी)	१७२
हा नाथ रमण प्रेष्ठ	(भाग.१०।२९।२)	१५
हासं हरेः अवनताखिललोकती	(भाग.पुरा.३।२८।३२)	२६२,४१३
हांके हटक हटक	(नन्ददास)	३६१,४०५
हासो जनोन्मादकारी च माया	(भाग.पुरा.२।१।३१)	२३०,२५६
हिहीहीहींकारान् प्रतिपशु	(परिवृढाष्टक.३)	७५,५४५

हृष्यत्त्वचो अश्रुः मुमुचुः	(भाग.पुरा.१०।१८।९)	५४३
क्षोणीकोणशतांशपालन...	(वेदान्तदेशिक)	३३७